कबीर-परम्परा

(गुजरात के संदर्भ में)

डॉ० कान्तिकुमार भट्ट
एम० ए०, पी० एच-डी०, साहित्यरत्न



अभिनव भारती
४२-सम्मेलन मार्ग-इलाहाबाद-२११००३

दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० की उपाधि के
लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

प्रथम संस्करण : दिसम्बर १९७५
मूल्य : रुपए ३५.००

[illegible] द्वारा प्रकाशित [illegible]
[illegible]
[illegible] इलाहाबाद में मुद्रित ।

पीठिका

गुजरात में संतों की परम्परा कबीर-नामदेव के समय से चली आई है; उनमें निर्गुण मतवादी संतों का प्रभाव विशेष रहा है। इनमें से अनेक ने हिन्दी में संतवाणी की रचना की है। हिन्दी भाषा के साथ हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में इन संत-कवियों का बहुमूल्य योगदान है।

उन संतों के जीवन तथा रचनाओं को प्रकाश में लाने का काम गुजराती साहित्य में श्री डाह्याभाई देरासरी, श्री मोदी तथा श्री जनक दवे ने किया था; किन्तु हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम डा० अंबाशंकर नागर ने सन् १६५७ में राजस्थान विश्वविद्यालय की पी० एच-डी० की उपाधि के लिए अपना प्रबन्ध "गुजरात की हिन्दी सेवा" प्रस्तुत कर इस दिशा में एक ठोस कदम उठाया था। तदनन्तर उनके निर्देशन में डा० रामकुमार गुप्त ने अपने प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन" द्वारा हिन्दी-सेवी सन्तों के जीवन तथा उनकी वाणी का अनुसंधान किया। गुजरात के हिन्दी सन्तों की वाणी के दो संग्रह भी प्रकाश में आये। "गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी" का संपादन डा० अंबाशंकर नागर तथा डा० रमणलाल पाठक ने किया तथा "गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी" सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर द्वारा प्रकाशित हुई।

विहंगावलोकन :—गुजरात में सन्तों की इन परम्पराओं में कबीर साहब की शिष्य-परम्पराएँ भी हैं, किन्तु इस दृष्टि से इस विषय पर विचार नहीं हुआ। श्री किसनसिंह चावड़ा ने गुजराती में "कबीर-संप्रदाय" पर एक ग्रंथ लिखा है। इसमें उन्होंने कबीरमत के (गुजरात में) प्रचार तथा प्रभाव पर विचार किया है, किन्तु सांप्रदायिक शिष्यों को कबीर के शिष्य के रूप में मान लिया है। कबीर की परम्परा पर डा० एफ० ई० की ने अपने प्रबन्ध में विचार किया था। उन्होंने भी संप्रदाय के प्रवर्तकों को कबीर के शिष्य मान लिये थे। इस विषय पर मौलिक दृष्टि से सर्वप्रथम आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने विचार किया था। कबीर के प्रमुख शिष्य तथा उनकी सन्त-परम्पराएँ गुजरात में होने से एतद् विषयक तथ्यों के अभाव में उन्होंने स्वीकार किया कि कबीर के प्रमुख शिष्य तथा उनकी परम्परा के विषय में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है।

अपने प्रारम्भिक अध्ययन काल से मैं कबीर की वाणी तथा विचारों से प्रभावित हूँ। संयोग से "कबीरवट" का पर्यटन हुआ। कबीरवट के विषय में तत्वाजीवा की कथा से मुझे एक नया उन्मेष मिला। गुजरात में कबीर के सर्वतोमुखी प्रभाव को

देखकर गुजरात की सीमा में कबीर पर अनुसंधान करने का विचार मैंने किया। निर्णय लेने से पूर्व मैंने गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० अंबाशंकर नागर जी से मार्गदर्शन लिया था।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा का अनुसंधान कर उत्तर भारत के अनेक सन्तों तथा संप्रदायों को प्रकाश में ले आये। ये सन्त बहुधा कबीर-मतावलंबी थे, किन्तु कबीर के शिष्य तथा उनकी परम्पराएं अज्ञात थीं, इसलिए इस अभाव पर आश्चर्य तथा दुःख व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था— "अब तक कबीर के किसी शिष्य के विषय में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव रहा है; और हम कबीर की शिष्य-परम्परा के विषय में कुछ भी निर्णयात्मक रूप में कहने की स्थिति में नहीं हैं।"

कबीर के जीवन तथा उनकी विचारधारा के विषय में अनेक विद्वानों ने अनुसंधान किया है, किन्तु कबीर को किसी विशेष क्षेत्र से जोड़ कर इस विषय पर कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं हुआ था। डा० एफ० इ० की ने अपने प्रबन्ध "कबीर एण्ड हिज फालोअर्स" में कबीर तथा उनकी परम्परा के शिष्यों पर विचार किया था; किन्तु उन्होंने कबीर-पन्थ के प्रवर्तक सन्तों को ही उनकी शिष्य-परम्परा मान ली। इसका कारण यह था कि कबीर के प्रमुख शिष्य तथा उनकी परम्पराएं अज्ञात थीं।

मैं पहले "गुजरात में कबीरमत" शीर्षक से गुजरात में कबीरमत का प्रचार, संप्रदाय-स्थापना, कबीर की शिष्य-परम्परा तथा कबीर के प्रभाव का अनुसंधान करना चाहता था। हिन्दी साहित्य में "कबीर की विचार धारा" पर डा० गोविंद त्रिगुणायत ने शोध-प्रबन्ध लिखा है। मुझे अपने कार्य में गुजरात प्रदेश से कबीर के प्रमुख शिष्यों के वृत्त तथा रचनाएँ प्राप्त हुई थीं तथा उनके दो शिष्यों की आज तक की अनेक परम्पराएँ मिली थीं, इसलिए मैंने अपने शोध-प्रबन्ध का शीर्षक "गुजरात में कबीर-परम्परा" रखा।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तरी भारत की संत-परम्परा" का अनुसंधान किया था। मैंने गुजरात की कबीर-परम्परा का अध्ययन किया। आचार्य चतुर्वेदीजी ने कबीर के शिष्यों तथा उनकी परम्परा के विषय में ऐतिहासिक सामग्री के अभाव की जो सूचना दी थी, उनकी यह सूचना मेरे लिए मेरे विषय की प्रेरणा बनी है तथा "उत्तरी भारत की संत-परम्परा" इसकी पृष्ठभूमि। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के निर्दिष्ट किये हुए अभाव की पूर्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने का मैंने विनम्र प्रयास किया है।

विषय का महत्व :—कबीर साहब के प्रमुख शिष्य तथा उनकी परम्परा के सन्तों का वृत्त तथा उनकी रचनाएं अप्राप्य थीं। कबीर के प्रमुख शिष्यों के विषय में भी कोई ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हुई। इस स्थिति में कबीर के प्रायः सौ वर्ष पीछे प्रवर्तित कबीर पन्थ के सन्तों को कुछ विद्वानों ने कबीर के शिष्य के रूप में स्वीकार

कर लिया। गुजरात के हिन्दी संत साहित्य को डा० रामकुमार गुप्त ने हिन्दी सन्त-साहित्य की अभिन्न कड़ी कहा था। हिन्दी के सन्त-साहित्य के मूल प्रवर्तक कबीर हैं। गुजरात में हिन्दी में जो संतवाणी लिखी गई है, उसके प्रवर्तक भी कबीर साहब थे, क्योंकि उन निर्गुण मतावलंबी सन्तों में कबीर साहब की शिष्य परम्परा के सन्त ही सर्वाधिक थे। गुजरात में कबीर की विचार-धारा के प्रचार का काम इन संतों ने किया था।

गुजरात में कबीर के शिरोमणि शिष्य सन्त ज्ञानीजी द्वारा प्रवर्तित राम कबीर सम्प्रदाय कबीर का मूल सम्प्रदाय है, क्योंकि उनके शिष्य ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ ने इसका प्रचार किया था। गुजरात में उन दोनों शिष्यों की परम्पराएं आज भी प्रवर्तमान है। कमाल साहब ने भी गुजरात में निवास किया था, तथा उनके पाँच प्रमुख शिष्य गुजरात के निवासी थे। सूरत के संत निर्वाण महाराज मूल रामानन्दी थे, किन्तु कबीर-समागम से "निर्वाण साहब" कहलाने लगे थे।

कबीर साहब ने गुजरात के अनेक स्थानों का भ्रमण किया था तथा कबीरवट एवं मणिपुर में निवास किया था। उनका प्रभाव गुजरात के अनेक सन्तों, सम्प्रदायों तथा साहित्य पर पड़ा था। गुजरात में सन्त ज्ञानीजी, पद्मनाभ, कमाल, तत्वाजीवा, निर्वाण तथा संत रैदास उनके समकालीन थे। ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ के जीवनवृत्त की निश्चित तिथियां प्राप्त होती हैं। ये कबीर के जीवन काल के विषय में पुनः विचार करने को बाध्य करती है। कबीर-परम्परा से इन सन्तों की वाणी अभी प्रकाश में नहीं आई है। जब उनकी सारी वाणी प्रसिद्धि में आयेगी, हिन्दी साहित्य को कबीर परम्परा की बहुत बड़ी देन होगी।

कबीर के प्रमुख शिष्यों के वृत्त के अभाव में विद्वानों ने कबीरपन्थी सन्तों को उनका शिष्य मान लिया था। पद्मनाभ के परिचय के अभाव में गुजराती के प्रबंधकार पद्मनाभ के विषय में कबीर के शिष्य पद्मनाभ होने की संभावना दिखाई गई थी। इस दशा में कबीर की शिष्य परम्परा का अनुसंधान एक मौलिक प्रयास है; तथा किसी अंचल से सम्बन्धित कबीर विषयक शोध का प्रायः यह प्रथम प्रयास है।

विषय का विभाजन :—"गुजरात में कबीर परम्परा" को दो खंडों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) गुजरात में कबीर की शिष्य परम्परा

(२) गुजरात में कबीर का प्रभाव

प्रबन्ध में कबीर के शिष्य, उनकी परम्पराएँ तथा गुजरात के सन्त, सम्प्रदाय तथा साहित्य पर पड़े कबीर के प्रभाव पर विचार किया गया है।

शोधकर्ता का प्रस्तावित योगदान :—कबीर के जीवनवृत्त तथा कालनिर्णय में गुजरात प्रदेश से प्राप्त प्रमाणों का आधार नहीं लिया गया था। कबीर की कोई

देखकर गुजरात की सीमा में कबीर पर अनुसंधान करने का विचार मैंने किया। निर्णय लेने से पूर्व मैंने गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० अंबाशंकर नागर जी से मार्गदर्शन लिया था।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा का अनुसंधान कर उत्तर भारत के अनेक सन्तों तथा संप्रदायों को प्रकाश में ले आये। ये सन्त बहुधा कबीर-मतावलंबी थे, किन्तु कबीर के शिष्य तथा उनकी परम्पराएं अज्ञात थी, इसलिए इस अभाव पर आश्चर्य तथा दुःख व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था— "अब तक कबीर के किसी शिष्य के विषय में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव रहा है; और हम कबीर की शिष्य-परम्परा के विषय में कुछ भी निर्णयात्मक रूप में कहने की स्थिति में नहीं है।"

कबीर के जीवन तथा उनकी विचारधारा के विषय में अनेक विद्वानों ने अनुसंधान किया है, किन्तु कबीर को किसी विशेष क्षेत्र से जोड़ कर इस विषय पर कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं हुआ था। डा० एफ० इ० की ने अपने प्रबन्ध "कबीर एण्ड हिज फालोअर्स" में कबीर तथा उनकी परम्परा के शिष्यों पर विचार किया था; किन्तु उन्होंने कबीर-पन्थ के प्रवर्तक सन्तों को ही उनकी शिष्य-परम्परा मान ली। इसका कारण यह था कि कबीर के प्रमुख शिष्य तथा उनकी परम्पराएं अज्ञात थी।

मैं पहले "गुजरात में कबीरमत" शीर्षक से गुजरात में कबीरमत का प्रचार, सम्प्रदाय-स्थापना, कबीर की शिष्य-परम्परा तथा कबीर के प्रभाव का अनुसंधान करना चाहता था। हिन्दी साहित्य में "कबीर की विचार धारा" पर डा० गोविंद त्रिगुणायत ने शोध-प्रबन्ध लिखा है। मुझे अपने कार्य में गुजरात प्रदेश से कबीर के प्रमुख शिष्यों के वृत्त तथा रचनाएँ प्राप्त हुई थी तथा उनके दो शिष्यों की आज तक की अनेक परम्पराएँ मिली थीं, इसलिए मैंने अपने शोध-प्रबन्ध का शीर्षक "गुजरात में कबीर-परम्परा" रखा।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तरी भारत की संत-परम्परा" का अनुसंधान किया था। मैंने गुजरात की कबीर-परम्परा का अध्ययन किया। आचार्य चतुर्वेदीजी ने कबीर के शिष्यों तथा उनकी परम्परा के विषय में ऐतिहासिक सामग्री के अभाव की जो सूचना दी थी, उनकी यह सूचना मेरे लिए मेरे विषय की प्रेरणा बनी है तथा "उत्तरी भारत की संत-परम्परा" इसकी पृष्ठभूमि। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के निर्दिष्ट किये हुए अभाव की पूर्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने का मैंने विनम्र प्रयास किया है।

विषय का महत्व :—कबीर साहब के प्रमुख शिष्य तथा उनकी परम्परा के सन्तों का वृत्त तथा उनकी रचनाए अप्राप्य थी। कबीर के प्रमुख शिष्यों के विषय में भी कोई ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हुई। इस स्थिति में कबीर के प्रायः सौ वर्ष पीछे प्रवर्तित कबीर पन्थ के सन्तों को कुछ विद्वानों ने कबीर के शिष्य के रूप में स्वीकार

कर लिया। गुजरात के हिन्दी संत साहित्य को डा० रामकुमार गुप्त ने हिन्दी सन्त-साहित्य की अभिन्न कड़ी कहा था। हिन्दी के सन्त-साहित्य के मूल प्रवर्तक कबीर हैं। गुजरात में हिन्दी में जो संतवाणी लिखी गई है, उसके प्रवर्तक भी कबीर साहब थे, क्योंकि उन निर्गुण मतावलंबी सन्तों में कबीर साहब की शिष्य परम्परा के सन्त ही सर्वाधिक थे। गुजरात में कबीर की विचार-धारा के प्रचार का काम इन संतों ने किया था।

गुजरात में कबीर के शिरोमणि शिष्य सन्त ज्ञानीजी द्वारा प्रवर्तित राम कबीर सम्प्रदाय कबीर का मूल सम्प्रदाय है, क्योंकि उनके शिष्य ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ ने इसका प्रचार किया था। गुजरात में उन दोनो शिष्यों की परम्पराएं आज भी प्रवर्तमान है। कमाल साहब ने भी गुजरात में निवास किया था, तथा उनके पाँच प्रमुख शिष्य गुजरात के निवासी थे। सूरत के संत निर्वाण महाराज मूल रामानन्दी थे, किन्तु कबीर-समागम से "निर्वाण साहब" कहलाने लगे थे।

कबीर साहब ने गुजरात के अनेक स्थानों का भ्रमण किया था तथा कबीरवट एवं मणिपुर में निवास किया था। उनका प्रभाव गुजरात के अनेक सन्तों, सम्प्रदायों तथा साहित्य पर पड़ा था। गुजरात में सन्त ज्ञानीजी, पद्मनाभ, कमाल, तत्वाजीवा, निर्वाण तथा संत रैदास उनके समकालीन थे। ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ के जीवनवृत्त की निश्चित तिथियां प्राप्त होती हैं। ये कबीर के जीवन काल के विषय में पुनः विचार करने को बाध्य करती हैं। कबीर-परम्परा से इन सन्तों की वाणी अभी प्रकाश में नहीं आई है। जब उनकी सारी वाणी प्रसिद्धि में आयेगी, हिन्दी साहित्य को कबीर परम्परा की बहुत बड़ी देन होगी।

कबीर के प्रमुख शिष्यों के वृत्त के अभाव में विद्वानों ने कबीरपन्थी सन्तों को उनका शिष्य मान लिया था। पद्मनाभ के परिचय के अभाव में गुजराती के प्रबंधकार पद्मनाभ के विषय में कबीर के शिष्य पद्मनाभ होने की संभावना दिखाई गई थी। इस दशा में कबीर की शिष्य परम्परा का अनुसंधान एक मौलिक प्रयास है; तथा किसी अंचल से सम्बन्धित कबीर विषयक शोध का प्रायः यह प्रथम प्रयास है।

विषय का विभाजन :—"गुजरात में कबीर परम्परा" को दो खंडों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) गुजरात में कबीर की शिष्य परम्परा

(२) गुजरात में कबीर का प्रभाव

प्रबन्ध में कबीर के शिष्य, उनकी परम्पराएँ तथा गुजरात के सन्त, सम्प्रदाय तथा साहित्य पर पड़े कबीर के प्रभाव पर विचार किया गया है।

शोधकर्ता का प्रस्ताविक योगदान :—कबीर के जीवनवृत्त तथा कालनिर्णय में गुजरात प्रदेश से प्राप्त प्रमाणों का आधार नहीं लिया गया था। कबीर की कोई

निश्चित परम्परा प्राप्त नहीं थी। कबीरपन्थी परम्पराओं का प्रारम्भ विद्वानों ने कबीर के पर्याप्त पीछे माना है। आचार्य चतुर्वेदी तथा डा० केदारनाथ द्विवेदी ने स्वीकार किया है कि कबीर के किसी भी गुरुमुख शिष्य का वृत्त प्राप्त नहीं होता था। गुजरात में कबीर साहब के पांच प्रमुख शिष्य थे। कमाल साहब ने भी यहां निवास किया था। कमाल के भी पाँच प्रमुख शिष्य गुजरात में थे। सन्त दादू के शिष्य जगाजी की परम्परा वर्तमान है। गुजरात में कबीर के दो शिष्यों की अनेक परम्पराएँ अविच्छिन्न रूप से चली आ रही हैं। उनके शिष्यों के जीवन का निश्चित समय प्राप्त होता है। जीवणजी की परम्परा तथा रविभाण परम्परा का मूल कबीर की ही परम्परा है। निर्वाण परम्परा कबीर मतावलंबी है। निर्वाण साहब पहले "महाराज" कहलाते थे, किन्तु कबीर के प्रभाव से "साहब" नाम स्वीकार किया था। उनके पोते शिष्य हीरादास ने कबीर पन्थ की विधिवत् दीक्षा ली थी।

कबीर पन्थ का प्रारम्भ कबीर के पर्याप्त पीछे हुआ था। किन्तु कबीर के समय में ही उनके शिष्य ज्ञानीजी ने गुजरात में रामकबीर सम्प्रदाय की स्थापना की थी।

गुजरात में हिन्दी तथा गुजराती में प्राप्त सन्त-साहित्य कबीर विचारधारा से प्रभावित है। यहाँ के सन्तों की वाणी पर कहीं-कहीं कबीर-वाणी का सीधा प्रभाव भी परिलक्षित होता है। गुजरात में ऐसे अनेक सन्त एवं सम्प्रदाय हैं, जो किसी-न-किसी रूप में कबीर परम्परा से सम्बन्धित हैं।

अपने निदेशक प्रो० नित्यानन्द पटेल हिन्दी-विभागाध्यक्ष, एस० बी० गार्डी कालेज के प्रति आभार मात्र व्यक्त करके ऋण मुक्त होना नहीं चाहता। इनके अतिरिक्त डा० अम्बाशंकरजी नागर, डा० दयाशंकर शुक्ल, डा० श्रीराम नागर, डा० अरविन्द देसाई, डा० रायदरस मिश्र, प्रो० गरीवाला, प्रो० सी० बी० ठाकर, प्रो० वंशीभाई पटेल, प्रो० नारायणभाई पटेल तथा श्री माणेकलाल राणा का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अमूल्य सहायता की और समय-समय पर प्रेरणा और परामर्श दिया। मैं उन महन्तों-महात्माओं का भी आभारी हूँ जिनकी सहायता से मन्दिरों और मठों में हस्तलिखित ग्रन्थ और अन्य सामग्री प्राप्त हुई।

—कान्तिकुमार भट्ट

हिन्दी विभाग
महाराजा राजेन्द्रसिंह जी आर्ट्स एण्ड साइन्स कालेज
राजपीपला (गुजरात)

अनुक्रम



अध्याय पहला

गुजरात में कबीर की शिष्य-परंपरा

कवीर के शिष्यों की निश्चित संख्या या किसी एक गुरुमुख शिष्य के विषय में अवतक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा गया। एतद् विषयक ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में कुछ लोगों ने यह मत दिया, कि कबीर ने कोई शिष्य ही नहीं वनाया। दूसरी ओर कवीर के सौ, दो सौ वर्ष पश्चात् होने वाले संतों को भी कवीर के साक्षात् शिष्यों के रूप में घोषित किया गया। इस परिस्थिति में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने स्वीकार किया कि ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में न हम अभी कवीर साहव के प्रमुख शिष्यों की कोई निश्चित संख्या ही ठहरा सकते अथवा न उनका साधारण परिचय तक भी दे सकते हैं।[१] कवीर के शिष्य के रूप में अनेक संतों एवं भक्तों के नाम लिये जाते हैं। मोटे तौर पर हम इन्हें चार विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

प्रत्यक्ष शिष्य—इनको गुरुमुख शिष्य भी कहते हैं। वे ही कवीर के सच्चे शिष्य हैं, जिन्होंने कवीर साहव से दीक्षा पाई है ; संसार को छोड़ कवीरमत का प्रचार किया है तथा कवीर की शिष्य-परम्परा चलाई है।

सांप्रदायिक शिष्य—ये कवीर के प्रत्यक्ष शिष्य नहीं हैं, क्योंकि कबीर-संप्रदाय का प्रवर्तन कवीर साहव के पश्चात् हुआ था। कबीर-पंथ में वंकेजी, सेहतेजी, चतुर्भुज तथा धर्मदास के नाम कवीर साहव के शिष्य के रूप में लिये जाते हैं। धर्मदास को छोड़कर अन्य तीन शिष्यों का वृत्त अप्राप्य है, संभवतः इसलिये "कवीर-मंसूर" में यह उल्लेख किया गया है कि उनमें से एकमात्र धर्मदास प्रकट हुए हैं, अन्य तीन का आविर्भाव अभी नहीं हुआ।[२] किन्तु विभिन्न दिशाओं में उनको भेजने की कथा तथा उनकी वाणी के उल्लेखों से इसका मेल नहीं खाता।

पंथप्रवर्तक शिष्य—निर्गुण-पंथ के प्रवर्तकों को कवीर का शिष्य प्रस्थापित करने की चेष्टा कवीरपंथी संतों द्वारा की गई है। ऐसे किसी भी संत को कवीर का शिष्य घोषित करने में काल का अन्तर कभी वाधक नहीं हुआ। कभी-कभी उस पंथ के अनुयायी इसको स्वीकार नहीं करते। मूल पुरुष कवीर साहब की महत्ता का विस्तार

१. उत्तर भारत में संत परंपरा, पृष्ठ २६०।

२. "कवीर-मंसूर", पृष्ठ १३०।

करने के प्रयोजन से ऐसे प्रयास किये जाते हैं।

भक्त या सेवक—कबीर साहब इतने बड़े संत थे तथा सारे देश में उनकी कीर्ति इतनी फैल गई थी, कि अनेकानेक लोगों ने उनका उपदेश सुना था, तथा अपने जीवन में परिवर्तन कर लिया था। संसार में रहते हुये भी संभव है, ये लोग कबीर को गुरु मानते रहे हों। किन्तु ये कबीर के दीक्षित-शिष्य नहीं थे। साहित्य में हमें इन शिष्यों का उल्लेख यों मिलता है—

(१) सांप्रदायिक उल्लेख—कबीरपंथी साहित्य में बंकाजी, सेहतेजी, धर्मदास तथा चतुर्भुज का उल्लेख कबीर के प्रमुख शिष्यों के रूप में है। कबीर के बारह पंथ माने जाते हैं, उनके प्रवर्तकों को भी कबीर के शिष्य कहते हैं। एक अन्य स्थान पर कबीर के द्वादश शिष्यों के नामों का उल्लेख है। कबीर ने दास का वेश धारण कर जिनको बोध दिया, उनके नाम हैं—बंकेजराय, चतुरभुज, सेहतेजी बाई, मौलिकराय, बिजली खान, राजा वीरसिंह, कंवलापति, भोपालराय, रानी सुधर्मा, मथुरा, रत्नाबाई तथा कंदोई जानी। इनमें सविशेष राजा एवं रानियों के नाम हैं। रत्नाबाई कबीर के अनन्तर हुई थीं। ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ जैसे कबीर के प्रमुख शिष्यों के नाम इसमें नहीं हैं।

(२) रामकबीर-पंथी संत स्यामदास की वाणी में उल्लेख—स्यामदास ने कबीर के प्रमुख शिष्य ज्ञानीजी के साथ अन्य शिष्यों में तत्वाजीवा, पद्मनाभ, शाह सिकंदर, नानक तथा बच्छराज के नाम दिये हैं।[1]

(३) नाभाजी की भक्तमाल—नाभादास ने अपनी भक्तमाल में पद्मनाभ एवं ज्ञानीजी (चतुरदास) के नामों का कबीर के शिष्य के रूप में उल्लेख किया है। ज्ञानीजी विषयक उल्लेख स्पष्ट नहीं है। प्रियादास ने अपनी टीका में तत्वाजीवा को कबीर का शिष्य बताया है।

(४) राघोदास की भक्तमाल—दादू पंथी संत राघोदास ने अपनी भक्तमाल में कबीर के नव शिष्यों के रूप में कमाल, कमाली, पद्मनाभ, रामकृपाल, नीर, धीर, ज्ञानी, धर्मदास तथा हरदास के नामों का यों उल्लेख किया है।

"प्रथमे ही दास कमाल, दूती है दास कमाली।
पद्मनाभ पुनि तृतीय, चतुरथ रामकृपाली।
पंचम् पष्टम् नीर धीर, सप्तम् पुनि ज्ञानी।
अष्टम् है धर्मदास, नवम् हरदास प्रमानी।
नव का नवतर तिरनकौ, जनराघो कह्यो पयोधि मन।
ज्युं नारायण नव निरमए, त्युं कबीर किये शिष्य नव॥" ६४०॥

१. उ० घ० प० र० मा०, पृष्ठ २००।

इसमें एक धर्मदास के सिवा अन्य किसी सांप्रदायिक शिष्य का नाम नहीं है, और ज्ञानी जी, पद्मनाभ, हरदास आदि के नाम हैं, जो अन्यत्र प्राप्त नहीं होते ।

(५) गुगली-भक्तमाल—गुजराती के एक प्राचीन कवि मुकुन्द गुगली की भक्तमाल के 'कबीर-चरित्र' में उनके पाँच शिष्यों के रूप में कमाल, कुमार (बंकेजी), सेहतेजी, सिकन्दर शाह एवं ज्ञानी के नामों का उल्लेख है ।

"कमाल, कुमार सेहजी, सिकंदर शाह जेह शिष्य ।
गोतवण "ज्ञानी" तणी करी, जाणी लीधुं भविष्य ।।"[1]

इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थान पर उन्होंने सात शिष्यों के नामों का उल्लेख किया है । उनमें गोपालदास, धरमदास, शांतिदास, सिकन्दर शाह, वीरसिंह, हरप्रसाद सेठ तथा पुत्र कमाल के नामों का उल्लेख है ।[2]

(६) बाबादीन की वाणी—बाबादीन दरवेश ने अपनी एक कुण्डलिया में नर्मदा तट पर कबीरबट वाले स्थान में कबीर साहब के उपदेश द्वारा संसार-सागर पार करने वाले चार भक्तों के नाम दिये हैं। मंछातेली, हरदास, रंगदास तथा जुगलदास । भक्त विरुदावली में लिखा है ।

"साहेब रेवा तीर पे, दियो विमल उपदेश ।
मंछातेली तीर गये, काटे भव कलेश ।
काटे भव कलेश, और तीरे हरदास ।
रंगदास रंगाय, सत्यनाम पियासा ।
कहत दीन दरवेश, जुगलदास सुहागी ।
संत कबीर चेताय, रेवातीर अनुरागी ।।"

इनमें से हरदास के नाम का उल्लेख राघोदास ने अपनी भक्तमाल में कबीर के नव शिष्यों में किया है । सूरत में कबीर एवं निर्वाण का समागम हुआ था, वह मंछातेली की उपस्थिति का उल्लेख संत कवि दूलाराम ने भी किया है ।[3]

(७) साहित्यिक उल्लेख—(१) पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने एकमात्र दादू दयाल को कबीर के मार्ग का अनुयायी बताया है । (२) डा० रामकुमार वर्मा ने धर्मदास को कबीर का प्रमुख शिष्य माना है तथा उनका विस्तृत विवरण दिया है ।[4] (३) डा० बड़थ्वाल ने इस विषय पर विचार नहीं किया तथा सांप्रदायिक नाम–धर्मदास, सूरत गोपाल, जागूदास, भागूदास आदि को शिष्य स्वीकार कर लिया है ।[5] (४) डा०

---

१. प्रा० का० मा० ग्रं० ११, पृ० २१४ ।
२. वही, पृ० २३० ।
३. "संत निर्वाण साहेब" श्री माणेकलाल राणा, पृ० ४८६ ।
४. हिं० सा० आ० इ०, पृ० २६८ ।
५. हिं० का० नि० सं०, पृ० ११० ।

सरनाम सिंह शर्मा ने सांप्रदायिक परम्परा के शिष्य धर्मदास, बिजलीखां, वीरसिंह, सूरत गोपाल, जागूदास आदि को कबीर का शिष्य माना है। उनमें एक तत्वाजीवा का भी नाम है। कबीर साहब एवं धर्मदास के मिलन का भी उल्लेख किया गया है। धर्मदास द्वारा बांधोगढ़ में तथा सूरत गोपाल द्वारा काशी में कबीर-पंथ की शाखायें चलाई गई थीं।[१] (५) डा० केदारनाथ द्विवेदी ने सांप्रदायिक शिष्य तथा राघोदास की भक्तमाल वाले शिष्यों का उल्लेख किया है। इनमें पद्मनाभ, ज्ञानीजी तथा तत्वाजीवा के नामों का भी उल्लेख है। तदुपरांत अनेक भक्तों के भी नाम हैं। पद्मनाभ के विषय में डा० मोहनसिंह तथा डा० श्रीवास्तव के मत का उल्लेख किया है।[२] (६) डा० यूसुफ हुसेन ने कबीर के किसी शिष्य के नाम की चर्चा नहीं की, किन्तु इस तथ्य को स्वीकार किया कि कबीर के अनेक शिष्य थे, कबीर साहब ने शिष्यों का एक समूह बनाया था, जो परम्परा, भेदभाव और बाह्याचार का नाश करने और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन को प्रश्रय देने के लिये तैयार था।[३] (७) एकमात्र आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के शिष्यों के विषय में विस्तृत विचार किया है। उन्होंने कमाल, कमाली, पद्मनाभ, तत्वाजीवा, ज्ञानीजी, जागूदास, भागूदास, सूरतगोपाल एवं धर्मदास के विषय में चर्चा की है, किन्तु प्रामाणिक सूत्रों के अभाव में किसी को भी कबीर का समकालीन या शिष्य स्वीकार नहीं किया।[४]

भक्त और सेवक

कबीर साहब ने अनेक दुःखी, पतित तथा पथच्युत मानवों का उद्धार किया था। ऐसे अनेक लोग थे, जो कबीर के उपदेश से प्रभावित होकर उनको गुरु मानते थे। कुछ लोगों ने उनके उपदेश से अपना जीवन उन्नत बना लिया था। कुछेक राजा भी उनके प्रभाव में आये थे। वीरसिंह बघेला तथा बिजलीखां पठान ऐसे सेवक थे।

भक्त तथा शिष्य में अन्तर यह है, कि भक्त अपने कल्याण के लिये गुरु के बताये हुये मार्ग पर चलता है। शिष्य गुरु निर्दिष्ट मार्ग पर चलता हुआ समाज के अन्य जनों को उपदेश देता है तथा गुरु की शिष्य-परम्परा को आगे बढ़ाता है। कबीर-संप्रदाय के ग्रंथों में ऐसे सेवकों के जो नाम लिये जाते हैं, उनमें रत्नाबाई जैसे अन्य भी हैं, जो कबीर के पर्याप्त पीछे हुये थे। अन्य भक्तों में नीलिकराय, भोपालराय, सुधर्मा-रानी, मथुरा, कंदोई जानी आदि के नाम हैं।

शिव-सुमन— कबीर के अनेक शिष्यों में एक सुमन का नाम सांप्रदायिक ग्रंथों में गिना जाता है।[५] कथा ऐसी है, कि एक बार सुमन के घर संत आये थे। घर में

१. "कबीर, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत", पृ० ५४।
२. "कबीर और कबीरपंथ", पृ० ८४।
३. "ग्लिम्पसिज आफ मिडिवेवल इन्डियन कल्चर", पृ० १६।
४. उ० भा० सं० प०, पृ० २५८।
५. "कबीर चरित्र प्रकाश", श्रीतनदी साहब, पृ० १५१।

आतिथ्य करने के लिये कुछ भी नहीं था। सुमन अपने पुत्र शिव को लेकर चोरी करने गया। शिव के पकड़े जाने पर सुमन ने शिव का मस्तिष्क काट लिया, जिससे कि वह पहचाना न जा सके। कहते हैं, अतिथि संतों ने शिव को पुनर्जीवित किया था। इस कथा का एक दूसरा भी रूप है, जिसमें शिव को फांसी हो गई थी।

संप्रदाय के ग्रंथों में बताया है, कि ये संत कबीर तथा कमाल थे। कहते हैं, कमाल को अपनी साधुता का अभिमान हो गया था। उनको सच्चे सन्त का दर्शन कराने कबीर साहब वहाँ ले गये थे। गरीबदास ने शिव द्वारा गुरु का शीश चढ़ाने का उल्लेख किया है।[1] कबीरपंथी साहित्य में सुमन को दिल्ली के पास हंसपुर का निवासी बताया है, किन्तु "भक्ति रसामृत" में इसी कथा को भिन्न नाम से दिया है। पिता विश्वंभर करण जाति का वणिक है, पत्नी का नाम रेवती तथा पुत्र का नाम रघुनाथ है। पुनर्जीवित होने पर उसका नाम सुमन रखा जाता है। संतों के नाम कोई उल्लेख नहीं है।[2]

सुमन ने कुछ सन्त-वाणी लिखी होगी, ऐसा लगता है। उनकी वाणी के किसी हस्तलिखित ग्रंथ का एक पृष्ठ मिला है, जिसमें सुमन के नाम से लिखी १२ साखियाँ हैं।[3] इन साखियों में अपने घर अतिथि हरिजन के आने का उल्लेख है, कबीर साहब का नाम नहीं है।

"हरिजन आये पोहणे, क (........) पर उपगार कियो।
सिस काटी घर में रखो, वाको धड़ ले सूली दियो।।"

इन साखियों में सूली पर से जीवित करने का उल्लेख है।

"आठ पहोर लटकंत रहे, सिस बहोणो तन।
जति सति के पारखी, जीवन कियो सुमन।।"

पंथप्रवर्तक शिष्य

कबीर साहब के अनन्तर कबीरमत से प्रभावित कई निर्गुण-पंथ अस्तित्व में आये थे। गुजरात में दादूपंथ, राधास्वामी संप्रदाय, सत्केवल संप्रदाय तथा प्रणामी संप्रदाय जैसे पंथ कबीर के पर्याप्त पीछे प्रवर्तित हुये थे, इन पंथों के प्रवर्तकों के नाम कबीर के शिष्यों में लिये जाते हैं। यह सही है, कि ये पंथप्रवर्तक निर्गुण मार्गी हैं, कबीर विचारधारा से या कबीर-पंथ से प्रभावित हैं। अलग पंथ स्थापना के कारण पहले उनका विरोध किया जाता है, किन्तु जब पंथ की स्थापना हो जाती है, तथा उनके अनुयायियों का एक मंडल बन जाता है, तब किसी भी रूप में उनको कबीर का शिष्य-

१. "गरीब सद्‌गुरु को क्या दीजिये, देने को कुछ नाय।
शिव ने सिर सोंप्यो, सेवे शिश चढ़ाय।।"
२. "श्री भक्तचरित्र" (अनुवाद) स० सा० व० का०, पृ० ६९।
३. यह पृष्ठ लेखक के पास है।

प्रमाणित करने की चेष्टा की जाती है, यद्यपि यह बात उस पंथ के अनुयायियों को स्वीकार्य नहीं होती, क्योंकि ये लोग नहीं चाहते कि उनका गुरु किसी अन्य पंथ के गुरु का चेला था। प्रत्येक पंथ का अनुयायी अपने पंथ-प्रवर्तक को आदि पुरुष मानता है। कबीर-पंथ के एक महंत श्री तपस्वी साहब ने राधास्वामी संप्रदाय के प्रवर्तक मुन्शी शिवदयाल को कबीर-परम्परा का शिष्य माना है[1], किन्तु उस पंथ के अनुयायी कबीर-विचारधारा के प्रभाव को भी स्वीकार करना नहीं चाहते। नानक, दादू, प्राणनाथ आदि संतों के विषय में यही स्थिति है।

राधास्वामी— का जन्म सं० १८७५ में हुआ था। उन्होंने स्वीकार किया है कि गुरुओं की आज्ञा से मेरी आत्मा ने आगे यात्रा की, तथा सत्पुरुष के दर्शन किये।[2] शिवनारायण ने अपने गुरु का नाम दुःखहरण दिया है। कहते हैं, यह दुःखहरण नाम कबीर का ही है। इस प्रकार "दादू" के गुरु "बुढ्ढन" तथा नानक के गुरु "जिंदा" भी कबीर साहब के नाम हैं।[3] राधास्वामी ने अपने गुरु का नाम नहीं दिया, तथापि कबीर के शिष्यों की सूची में उनका नाम है। सं० १८५० में सौराष्ट्र में सुरेन्द्र-नगर के पास "उमरडा" गांव के पास नदी तट पर प्रकट होकर कबीर साहब ने शामला भगत, कोया भगत, देवा भगत तथा सूरा भगत को अपना शिष्य बनाया था, ऐसा भी उल्लेख है।

दादू दयाल— दादू का जन्म सं० १६०० लिखकर उसी पृष्ठ पर उनको कबीर का प्रमुख शिष्य भी बताया गया है। इसके साथ दादू के जीवन का एक रोचक प्रसंग भी दिया है। सन्त दादू ने अपनी एक सभा में वृद्धों से पूछा कि क्या किसी ने कबीर साहब को देखा है? सभा में से एक वृद्ध ने बताया कि जब वह छोटा बालक था, अपने नाना के साथ काशी में कबीर साहब की सभाओं मे जाया करता था। तदनन्तर दादू के कहने पर उन्होंने कबीर के स्वरूप का वर्णन किया था। कबीरपंथी ग्रंथ में दिये हुये इस प्रसंग से फलित होता है कि कबीर साहब से दादू का साक्षात् हुआ नहीं था, किन्तु गरीबदास जी ने तो लिखा है कि सद्गुरु ने उनको पान की पीक दी थी।

"सांभर में सद्गुरु मिले, दिये पान की पीक।"

ऊपर का प्रसंग भी गरीबदास ने लिखा है। गरीबदास (सं०१७७४) ने कबीर के दर्शन तथा उनके द्वारा दीक्षा-प्राप्ति का भी उल्लेख किया है।[4] बाबा दीन दरवेश (सं० १७६८-१८८६) का नाम भी कबीर के शिष्यों की सूची में है।[5]

---

१. कबीर ब्रह्म प्रकाश, पृ० २७५।

२. वही, हिदायेतनामा, पृ० ३८६-३६३।

३. वही, पृ० २७६।

४. वही, पृ० २६३।

५. कबीर ब्रह्म प्रकाश, श्री तपस्वी साहब, पृ० २७१।

कुबेरदास—उनके अनुयायी उनको "करुणासागर" कहते हैं। वे कबीर की किसी-न-किसी परम्परा से सम्बन्धित हैं, क्योंकि वे अखा की परम्परा में आते हैं। उन्होंने अपने शिष्य नारायणदास से कहा था कि मैं तुम्हें वही उपदेश देता हूँ, जो कबीर साहब ने धर्मदास को दिया था। अपने परम सद्गुरु के रूप में उन्होंने कबीर साहब का नाम लिया है, किन्तु वे अभी डेढ़ सौ वर्ष पहले (वि० सं० १८२९-१९३४) हुये थे, तथापि उनका नाम भी कबीर के शिष्यों की सूची में सम्मिलित किया गया है।[1]

प्राणनाथ—प्रणामी पंथ के प्रवर्तक प्राणनाथ का नाम भी कबीर के शिष्यों में लिया जाता है, किन्तु उन्होंने सं० १६८७ में किसी देवचन्द नाम के संत से दीक्षा ली थी। कहते हैं, एक बार प्राणनाथ जहाज में बैठकर दीव बन्दर जा रहे थे, कबीर ने उन्हें दर्शन देकर "बीजक ग्रन्थ" दिया था।[2]

नानक—गुरु नानक कबीर के प्रत्यक्ष शिष्य थे या नहीं, यह बड़ा विवादास्पद प्रश्न रहा है। कबीरपंथी उनको कबीर का शिष्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न करते हैं, और नानकपंथी इस बात का विरोध करते हैं। "गरीबदास की वाणी" की भूमिका में एक साखी लिखी है, जिसमें कबीर की झाँकी देखकर नानक ने "वाह" कही थी, वही वाह सिक्ख धर्म में है, ऐसा उल्लेख है।

"झाँखी देख कबीर की, नानक कीती वाह।
"वाह" सिखों के गल पड़ी, कौन छुड़ावे थाह॥"

"कबीर-मंसूर" में भाई वाला के अनुसार नानक ने बाबर से कहा था, "मैं कलन्द कबीर का चेला हूँ। कबीर और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। नानक के गुरु का नाम "जिंदा बाबा" है। कबीरपंथ की छत्तीसगढ़ी शाखा वाले कबीर को जिन्दा फकीर कहते हैं। श्रीतपस्वी साहब ने अपनी पुस्तक "कबीर ब्रह्म प्रकाश" में नानक के कबीर के शिष्य होने के निम्नांकित प्रमाण दिये हैं।

एच. एम. एल्पनीस्टन ने " भारत का इतिहास " में नानक को कबीर का शिष्य कहा है।[3] श्री देवेन्द्र नाथ रोय ने अपने इतिहास में लिखा है, कि नानक साहब धार्मिक उपदेश कबीर साहब से सीखे थे।[4] मोनियर विलियम ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि नानक ने कबीर की वाणी को अपने ग्रन्थ में दाखिल किया है।[5] राजा शिवप्रसाद बनारसी ने अपने ग्रन्थ मे लिखा है—"पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर साहब के शिष्य नानकशाह ने सिखों का एक नवीन धर्म चलाया।[6]

---

१. वही, भूमिका, पृ० २२।
२. सद्गुरु श्री कबीर चरितम्"--स्वामी ब्रह्मलीन मुनि, पृष्ठ ६८८।
३. "भारत का इतिहास" १२ वीं जिल्द प्रथम भाग, पृ० ६७८।
४. "भारत का संक्षिप्त इतिहास", पृ० १०५।
५. "भारत का धार्मिक ध्यान व आयुष्य", प्रकरण : ६, पृ० १५८।
६. "तारीख आइनानु" (सप्तम संस्करण), पृ० १०५।

नानक की जन्मसाखी (पृ० २६६) में भाई मरदाना के प्रश्न के जवाब में नानक कबीर को अपना गुरु बताते हैं।[1] यह सत्य है कि नानक कबीर साहब को और उनके विचारों को बड़े आदर से देखते थे और उनकी विचारधारा पर कबीरमत का पर्याप्त प्रभाव भी पड़ा है। श्री यूसुफ हुसेन ने गुरु गोविन्ददास के कथन के आधार पर लिखा है कि नानक का उपदेश कबीर से प्रभावित और प्रेरित था।[2] किन्तु नानक के लिए कबीर का साक्षात् शिष्य होना संभावित नहीं लगता, क्योंकि उनका जन्म ही कबीर के अनन्तर हुआ था। आ० परशुराम चतुर्वेदी और डा० बड़थ्वाल ने इस बात का समर्थन किया है। उद्देश्यों की समानता और साधना-प्रणाली के ऐक्य के आधार पर आ० परशुराम चतुर्वेदी ने नानक को कबीर के अनुयायियों द्वारा प्रभावित माना है।[3] डा० बड़थ्वाल ने कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में मानते हुये नानक का जन्म उनके २१ वर्ष अनन्तर बताया है और कबीर के सत्य-प्रसारक आन्दोलन का परवर्ती नेता कहा है।[4] कबीर की मृत्यु सं० १५०५ के स्थान पर यदि १५५२ भी स्वीकार की जाय, तो भी उनका कबीर से विधिपूर्वक दीक्षित होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। खालसा पंथ के गुरुओं ने गुरु नानक का जीवनवृत्त अत्यन्त गहराई से व्यवस्थित लिखा है, इसलिये यदि कबीर से मिलन का या दीक्षा का प्रसंग हुआ होता, तो उनके बुढ्ढन आदि साथियों ने इसे अवश्य लिख लिया होता।

कबीरपंथी-परम्परा के शिष्य

कबीर-पंथ में कबीर के शिष्यों के रूप में प्रमुख चार तथा कुल बारह शिष्यों के नाम लिये जाते हैं। कहते हैं, कबीर साहब ने धर्मदास को उत्तर में, चतुर्भुज को दक्षिण में, बंकेजी को पूर्व में तथा सेहतेजी को पश्चिम दिशा में जाकर धर्म-प्रचार करने का आदेश दिया था। धर्मदास ने कुटवाणी, बंकेजी ने ज्ञानवाणी, सेहतेजी ने बीजक वाणी तथा चतुर्भुज ने टकसार वाणी लिखी थी। कबीरपंथ का प्रचार कबीर के अनन्तर हुआ था, इसलिये ये कबीर के समकालीन साक्षात् शिष्य नहीं हैं। संभव है, ये कबीर-पंथ के प्रमुख प्रचारक हों, इसलिये धर्मदास के साथ उनके भी नाम कबीर के शिष्यों की सूची में जोड़ दिये हों। इस प्रकार टकसारी साहब, दरिया साहब, पान साहब, भीखा साहब, तुलसी साहब कबीर के निधन के बहुत पीछे हुये थे।

मलूकदास—उनका जन्म सं० १६३१ तथा मृत्यु सं० १७३९ में हुई थी।[5]

---

१. "कबीर ग्रन्थ प्रकाश", पृ० १६६।
२. "मिडीएवल इन्डियन कल्चर", पृ० २८।
३. उ० भा० सं० प०, पृ० ४२१।
४. हिं० का० नि० सं०, पृ० १११।
५. [illegible]

कहते हैं, उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर कबीर साहब ने उनको दर्शन दिये थे। ये कबीरपंथी थे। उन्होंने कबीर के लिए "बन्दी-छोड़" शब्द का प्रयोग किया है।

जागूदास—उनका नाम कबीर के प्रमुख शिष्यों में लिया जाता है। उनका जन्म सं० १५३८ में तथा दीक्षा सं० १५४५ में बतायी गयी है। कहते हैं, उनके माता-पिता ने कम उम्र में उन्हें कबीर साहब को दे दिया था। उनकी शाखा में १७ महंत हुए। आ० चतुर्वेदी जी ने उनको कबीर का समकालीन माना है, किन्तु कबीरपंथी विद्वान स्वामी श्री ब्रह्मलीन जी मुनि ने उनको कबीर का समकालीन नहीं माना। उन्होंने लिखा है, कि जब समागम ही नहीं हुआ, तो उपदेश की तो बात ही क्या ?[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की उद्धृत एक जनश्रुति के आधार पर तो वे धर्मदास से १७५ वर्ष पीछे हुए थे। उनके जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना पर प्रकाश नहीं पड़ता। आचार्य चतुर्वेदी उनको सं० १५५० के लगभग अवस्थित मानते हैं।[2]

सूरत गोपाल—कहते हैं, वही सर्वाजीत पंडित थे, जो कबीर से गोष्ठी करने गये थे, और उनके शिष्य हो गये। उनका मूल नाम सर्वानन्द था। "अमर सुख-निधान" ग्रन्थ उनका लिखा हुआ मानते हैं, किन्तु इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १७८६ बताया जाता है। भाषा की दृष्टि से वह आज से सौ-डेढ़ सौ वर्ष से पहले का नहीं है। सम्भवतः इसीलिए डा० की ने इसे सूरत गोपाल की रचना नहीं माना।[3] रे० वेस्ट काट ने इस शाखा की जो तालिका दी है, उसमें उनका क्रम चौथा है। प्रथम नाम किसी स्यामदास का है, किन्तु कबीरपंथी ग्रन्थों में कबीर के पीछे सूरत गोपाल का नाम है, तथा स्यामदास का नाम चौथा है।[4]

राघोदास की भक्तमाल में धर्मदास के सात शिष्यों में सूर्तिगोपाल का भी नाम है। इनके साथ जागूदास तथा भागोदास के भी नाम हैं।

चतुर्भुज—कबीर-पंथ में प्रवर्तक चार शिष्यों में धर्मदास के सिवा अन्य किसी का वृत्त प्राप्त नहीं है। कबीरपंथी ग्रन्थों में भी उनके नाम के सिवा अन्य उल्लेख नहीं हैं। कबीर के शिष्य ज्ञानी जी का मूल नाम चतुरसिंह था, किन्तु ये राम-कबीर सम्प्रदाय के स्थापक थे।

सेहतेजो—उनका जीवनवृत्त प्रायः अप्राप्य है। अनुराग सागर में उनका धर्मराय के साथ संवाद है। सहेज के वचन सुनकर सिर नवाकर धर्मराय चले जाते

---

१. "सद्गुरु श्री कबीर चरितम्", पृ० ७३१।
२. उ० भा० सं० प०, पृ० २८०।
३. "कबीर एन्ड दी कबीरपंथ", पृ० ९२।
४. उ० भा० सं० प०, पृ० २८०।

हैं। तदनन्तर सत्य पुरुष सहेज को निरंजन के पास भेजता है।[१] संसार की उत्पत्ति के समय सहेज द्वारा कुछ कार्य भी कराये गये हैं। उनके विषय में अन्य कोई वृत्त प्राप्त नहीं होता।

वंकाजी—वंकेज या राय वंकाजी का नाम कहीं के राजा का हो, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। उनके नाम का उल्लेख कबीर के शिष्य के रूप में कबीरपंथ के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में मिलता है। "ज्ञानसरोदा" में कबीर द्वारा उनको उपदेश देने का उल्लेख है।

"कहैं कबीर वंकेज बुझाई, शब्द प्रताप सब दूरी पराई।"

पंथीय साहित्य उनके वृत्त के विषय में मौन है, किन्तु जब पंथ का प्रारम्भ ही कबीर के एक शताब्दी पश्चात् हुआ, तब कबीर के समकालीन गुरुमुख शिष्य होने की कोई सम्भावना नहीं है।

कबीर की परम्परा में दो संतों का नाम "वंकाजी" था। एक सूरत की लोचनदासी परम्परा के संत समर्थदास का मूल नाम वंकाजी था। उनका जन्म सं० १५५० में हुआ था।[२] ये कबीर के शिष्य पद्मनाभ के शिष्य लोचनदास के शिष्य थे। यह परम्परा रामकबीर सम्प्रदाय की परम्परा है।

एक अन्य वंकाजी इसी परम्परा के सन्त प्यारेदास के शिष्य थे। उनका जन्म कटोसण के राजा खानाजी के घर हुआ था। उनको अपने पूर्वजन्म का ज्ञान था। पूर्वजन्म में वे पाटण के परमार जैतसिंह थे। उनकी पत्नी का नाम सजनादेवी था।[3] पति-पत्नी इस तीसरे जन्म में भी मिले थे। वंकाजी के साथ धरमपुर राज्य की राजकुमारी चन्द्रावती ने विवाह किया था, वह पूर्वजन्म की सजनादेवी थी। पाटण के पास सिद्धपुर के मेले में चन्द्रावती ने अपने पूर्वजन्म के पति को पहचान लिया था। दोनों के विवाह हो जाने के कुछ वर्ष पश्चात् एक दिन माधवदास के शिष्य सुमनदास की वाणी सुनकर दोनों में विरक्ति उत्पन्न हो गई। वंकाजी ने प्यारेदास जी के आश्रम में निवास किया, जबकि चन्द्रावती ने सूरत के पास खरवासा में तेजानन्द स्वामी के आश्रम में निवास किया था। अन्त में दोनों पति-पत्नी ने एक साथ सूरत में समाधि ले ली थी।

ये दोनों संत कवि थे। वंकाजी ने "वंकादास" नाम से संतवाणी की रचना की थी। चन्द्रावती ने भी सुन्दर पदों की रचना हिन्दी में की थी।[४] उन दोनों की वाणी में कबीर विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

१. "जाहु सहेज निरंजन पाहे, देहु जो कछु मागही।", पृ० २२।
२. "गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी", पृ० ४७।
३. जैतसिंह के जीवनवृत्त का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।
४. चंद्रावती का चरित्र अन्यत्र दिया गया है।

धर्मदास—कबीर-पंथ की स्थापना धर्मदास ने की थी। सन्त-साधुओं द्वारा अनेक ग्रन्थ लिखवाये गये। इनमें से अधिकतर 'कबीर-धर्मदास-सम्वाद' के रूप में हैं। पंथ में पंजा-परवाना द्वारा एक सूत्री संचालन स्थापित किया गया। पंथ के अनुयायी एकमात्र धर्मदास को कबीर का शिष्य मानते हैं। सम्भवतः इस प्रकार के प्रचार के कारण कबीर के ज्ञानी जी एवं पद्मनाभ जैसे प्रमुख शिष्य अँधेरे में चले गये थे।

नाभादास ने इन दो शिष्यों का उल्लेख किया है, किन्तु धर्मदास के नाम का उल्लेख नहीं है। प्रियादास (सं० १७०२) ने तत्वाजीवा का कबीर के शिष्य के रूप में उल्लेख किया है। राघोदास ने अपनी भक्तमाल में कबीर के नौ शिष्यों में एक धर्मदास का नाम भी दिया है।[1]

धर्मदास का समय—कबीरपंथी विद्वान् श्री ब्रह्मलीन जी मुनि ने धर्मदास का समय पन्द्रहवीं शताब्दी का अंतिम भाग माना है।[2] श्री रामलालजी ने धर्मदास का समय सं० १४७५-१६०० दिया है। मेकालिफ का मत यह था, कि सं० १५२१ में धर्मदास ने कबीर की रचनाओं का संकलन किया था।[3] रे० एफ० ई० का निश्चित मत था, कि धर्मदास कबीर के समकालीन नहीं थे। उन्होंने धर्मदास का समय ई० स० १६१६ (सं० १७२६) ठहराया है। प्रियादास के समय (सं० १७०२) तक धर्मदास के प्रभाव का दर्शन नहीं होता तथा राघोदास ने सं० १७१७ में उनका उल्लेख किया है; इससे लगता है कि सं० १७०२ के पश्चात् और सं० १७१७ के पूर्व उनका आविर्भाव हुआ होगा। इसके पूर्व कबीर विचारधारा का जो प्रभाव दिखाई देता है, वह कबीर के प्रत्यक्ष शिष्यों की परम्परा तथा गुजरात में राम-कबीर-सम्प्रदाय का प्रभाव है।

कबीर के साक्षात् शिष्य के रूप में धर्मदास के नाम की कल्पना का एक प्रमुख कारण कबीरपंथी ग्रंथों का "कबीर-धर्मदास संवाद" है। धर्मदास ने अपनी वाणी में कबीर प्राप्ति का उल्लेख किया है।

"धरमदास कबीर पिय पाये, मिट गई आवाजानी।"

उनकी वाणी पर कबीरमत का एवं कबीरवाणी का भी प्रभाव है; किन्तु कबीर के समकालीन होने का कोई प्रमाण नहीं है। धर्मदास ने अपनी वाणी में कबीर मिलन का जो उल्लेख किया है, वह सूक्ष्म दर्शन का मिलन है। "साहेब कबीर प्रभु मिले विदेही, झीना-दरस दिखाइया।" सुखनिधान में जिन्दरूप में आकर मिलने का कथन है। "जिन्द रूप जब धरा सरीरा, धर्मदास मिलि गये कबीरा।" गरीबदास (सं० १७७४-१८३५) को जैसे गुरु रूप में दर्शन हुए थे, संभवतः ऐसी ही दर्शन धर्मदास को हुए थे। डा० केदारनाथ द्विवेदी का मत है, कि धर्मदास कबीर के निधन

१. "राघोदास की भक्तमाल", पृ० १७९।
२. सद्गुरु श्री कबीर चरितम्", पृ० २६८।
३. "दी सिख रिलिजन" भा० ६, पृ० १४१।

"पद्मनाभ को प्रगट भये अनुराग, सांई को प्रेम से सिर नवांई।
बस्ती छांड़ चल बसे अकेला, हरिसे प्रीत लगाई॥"[1]

स्वामी तेजानंद वि० सं० १६१२ में गुजरात में आये थे, अतः यह पद्मनाभ कबीर का समकालीन नहीं हो सकता।

४—पद्मनाभ "जैनी"—आ० परशुराम चतुर्वेदी ने एक अन्य पद्मनाभ का उल्लेख किया है, जो प्रायः कबीर का समकालीन था। उसने "डुंगर-बावनी" की रचना की थी। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने उसका रचनाकाल वि० सं० १५४३ बताया है, किन्तु यह पद्मनाभ जैन था।[2] इसलिये कबीर के शिष्य होने की कोई संभावना नहीं है।

५-रामयश ब्राह्मण—पद्मनाभ को रामकबीर भी कहते थे। रामकबीर को श्री भगवताचार्य ने स्वामी रामानन्द का शिष्य माना है।[3] कहते हैं, स्वामी जी ने रामयश ब्राह्मण को शुक्लतीर्थ में पंच-संस्कार करके रामकबीर नाम दिया था, किन्तु यह मात्र भ्रम है, क्योंकि पद्मनाभ कबीर के ही शिष्य थे।

६-प्रबंधकार—गुजराती साहित्य में एक पद्मनाभ का उल्लेख आता है, जिन्होंने वि० सं० १५१२ में "कान्हडदे प्रबन्ध" नाम का एक ऐतिहासिक काव्य लिखा था। वे वीसनगर के नागर ब्राह्मण थे तथा उन्होंने मारवाड़ प्रदेश में झालोर के राजा अखेराज के आश्रय में इस ग्रन्थ की रचना की थी। डा० मोहनसिंह ने समय के आधार पर उनके विषय में कबीर के शिष्य-पद्मनाभ होने की संभावना व्यक्त की थी।[4]

७-एक अन्य भ्रम—स्वामी श्री योगीराज गोवरसजी ने पद्मनाभ का सही वृत्त अप्राप्य होने पर एक कमाल कल्पना की है, कि पद्मनाभ को ही कमाल मान लिया है। पद्मनाभ के जीवन का रामनाम से एक कोढ़ी को रोगमुक्त करने का प्रसंग कमाल के नाम के साथ जोड़ दिया है। आपने कल्पना की कि पद्मनाभ द्वारा उस कोढ़ी को रोगमुक्त करने पर कबीर साहब ने कहा "कमाल है"। तब से उनका नाम "कमाल" हो गया।[5] कबीर के शिष्य पद्मनाभ का समय भक्तमाल की टीका में रूपकलाजी ने सं० १५७४ के आसपास माना है।[6]

---

१. "संत तेजानन्द"—श्री माणेकलाल राणा, पृष्ठ २६।
२. "राजस्थानी भाषा और साहित्य", पृष्ठ २५२ उ० भा० सं० प०, पृष्ठ २६७।
३. "रामानन्द सम्प्रदाय", पृष्ठ १७०।
४. "कबीर-हिज बायोग्राफी", पृष्ठ ८६।
५. "वैष्णव कबीर", पृष्ठ २२७।
६. भक्तमाल की टीका", पृष्ठ ५४०।

कबीर-शिष्य पद्मनाभ

१-उल्लेख—नाभादास ने अपनी भक्तमाल में कबीर-शिष्य के रूप में पद्मनाभ का उल्लेख किया है। उनके विषय में नाभादास ने बताया है, कि उनके लिये "रामनाम" ही सब कुछ था, वही सेवा थी, वही पूजा थी। जप, तप, तीर्थ सब कुछ रामनाम था। प्रीति या वैर सब कुछ रामनाथ था। राम से अधिक महत्व नाम को दिया था। अजामिल या राम के सामने हनुमान जैसे भक्त पद्मनाभ ने कबीर की कृपा से परमतत्व का साक्षात्कार किया था।[1]

२-भक्तमाल की टीका में पद्मनाभ के एक प्रसंग का वर्णन है। काशी-निवासी एक कुष्ठरोगी वणिक को आत्महत्या से रोक कर उन्होने रामनाम से रोगमुक्त किया था।[2] भक्तमाल की एक अन्य टीका में पद्मनाभ को पंडित बनाकर शास्त्रार्थ के लिये कबीर के पास भेजा है। रामनाम की अवगणना के कारण उनकी पूजा के लिये अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती थी, तब वह कबीर के चरणों में गिरकर शिष्य बन गया।[3]

३-जगाजी दादू दयाल के शिष्य थे। उन्होंने एक भक्तमाल लिखी है, जिसमें भक्तों की सूची मात्र दी है। उसमें पद्मनाभ तथा अध्यारुजी के संयुक्त नाम का उल्लेख है।

४-कबीरपंथी ग्रन्थ "कबीर-कसौटी" में कबीर के सर्वप्रथम शिष्य के रूप में पद्मनाभ के नाम का उल्लेख हुआ है।[4]

५-कबीर साहब की एक साखी निम्न प्रकार है।

"पाटण ते उजरू भला, रामभगत जिह ठांई।
रामसनेही बाहरा, जमपुर मेरे भाई।।"[5]

इसमें पाटण के प्रसिद्ध रामभक्त पद्मनाभ का उल्लेख हुआ हो, ऐसी संभावना दिखाई पड़ती है।

---

१. "नाम महानिधि मंत्र, नाम ही सेवा पूजा।
जप तप तीरथ नाम, नाम बिन और न दूजा।
नाम प्रीति, नाम वैर, नाम कहि नामी बोले।
नाम अजामिल साखी, नाम बंधन ते खोले।
नाम अधिक रघुनाथ तें, राम निकट हनुमान कह्यो।
कबीर-कृपा ते परमतत्व, पद्मनाभ परचो लह्यो।।" ६८ ।।

२. "भक्तिरस बोधिनी टीका," पृष्ठ ४६५।

३. "भक्तदास गुण चित्रनी", पृष्ठ ४६७।

४. "कबीर कसौटी" वेंकटेश्वर प्रेस, सं० २०१९, पृष्ठ ३२।

५. क० ग्रं० परिशिष्ट, पृष्ठ २५६।

स्थान—पद्मनाभ गुजरात की तत्कालीन राजधानी पाटण के निवासी थे। पाटण में उनकी वाड़ी आज भी उनके नाम से "पद्मवाड़ी" कहलाती है। वहाँ प्रति वर्ष पद्मनाभ के निर्वाण-दिन पर बड़ा मेला लगता है। पद्मनाभ के चार पुत्र तथा एक पुत्री थी। उनके दो पुत्रों की वंश-परम्परा पाटण में वर्तमान है। उनके एक पुत्र माधवदास की परम्परा अहमदाबाद में है। पाटण के प्रजापतियों में स्वामी-परिवार पद्मनाभ की परम्परा है।

इस परंपरा के एक सज्जन[1] के पास "भविष्योत्तर पुराण" नाम का एक प्राचीन ग्रन्थ है। उस हस्तलिखित ग्रन्थ में "पद्मनाभ-माहात्म्य" है। पद्मनाभ के विषय में कुछ श्लोक संस्कृत में भी लिखे हुए हैं।

"नैव्ये घि विविध तय दात द्विरि महात्मने।
पद्मनाभ हरये पूज्यते पूजनं ततः ॥ ४ ॥
पश्चाला पूर्वत आस्या स्थान भोग्यादये तृणं।
वंशे प्रजापतिना हित्वा, विभवि भविष्यति ॥ ४ ॥

कबीर का शिष्यत्व प्रमाण

१—पाटण में पद्मवाड़ी में कबीर का स्थान (क्यारा) है।

२—जीवणजी रामकबीर संप्रदाय के प्रमुख संत थे। उन्होंने अपनी वाणी में कबीर के साथ पद्मनाभ का उल्लेख किया है।

"बावन—बाहेरो जीवणा, डोले सरे न काज।
चकवे दास कबीर जी, के पद्मनाभ को राज ॥"[2]

३—रामकबीर संप्रदाय के एक अन्य संत श्यामदास ने "ज्ञानमहिमा" में पद्मनाभ के पाटण में प्रकट होने का उल्लेख किया है। लिखा है,

"कबीर की आज्ञा से पद्मनाभ ने पाटण में जन्म लिया था।"[3]

४—जीवणजी यात्रा पर जाने से पूर्व पद्मवाड़ी में गये थे, पद्मनाभ (क्यारा) के दर्शन किये तथा कबीर को माला रखकर भोग लगाया था।[4]

५—पद्मनाभ की परंपरा के संतों ने कबीर को ही सद्गुरु माना है।

जीवनकाल:—नाभाजी ने कबीर के शिष्य के रूप में पद्मनाभ का उल्लेख किया था। प्रियादास की टीका में कुष्ठ रोगी बनिये को रोगमुक्त करने की कथा है,

१. स्वामी मोतीलाल नानालाल, पावर हाउस, पाटण।
२. उ० ध० पं० र० मा०, पृष्ठ १२०।
३. "दास कबीर की आज्ञा पाई, पाटण मांही प्रगटे आई।
श्री पद्मनाभ नाम धराया, संतन के सुख कारण आया ॥"
४. "विवेक समुद्र" सरदारपुर गादी, पृष्ठ १६६।

किन्तु रूपकलाजी की टीका में पद्मनाभ को सं० १५७४ के आसपास जीवित माना है।[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने षष्टम्दास के समय के आधार पर एक महंत का औसत गद्दीकाल २५ वर्ष लेकर पद्मनाभ का समय निर्णीत करने का प्रयास किया है।[2] अन्यत्र इसी प्रबन्ध में इसकी चर्चा की गई है। गुजरात में संतों की परंपराओं का औसत-काल ३५ वर्ष का आता है। इसके अतिरिक्त पद्मनाभ के जन्म तथा मृत्यु के निश्चित वर्ष मिलते हैं। तदनुसार सं० १४५८ में उनका जन्म हुआ था तथा सं० १५६५ में उन्होंने समाधि ली थी।

आधार

१–पद्मनाभ आख्यांन—यह हस्तलिखित ग्रंथ पुनियाद के रामकबीर-मंदिर में है। किसी माधवदास ने मूल ग्रंथ सं० १५६७ में लिखा था। पद्मनाभ की समाधि (सं० १५६५) के मात्र दो वर्ष पीछे यह लिखा गया था।

"संवत् पनरो सड़सतो सार, चैत्र सुदी पुनम रविवार।
सारदा त्रुठे उतमने ठार, पवित्र पद्मवाड़ी मोझार।
संक्षेप मात्र कथातणो सार, दस अध्याय में कर्यो विस्तार।
हरिजन ना जे दासनो दास, हरि-गुरु प्रतापे कहे माधवदास ॥"

पद्मनाभ के एक पुत्र का नाम माधवदास था, जिनकी परंपरा अहमदाबाद में आज भी प्रवर्तमान है। संभव है, इस ग्रंथ के रचयिता वही माधवदास हों। यह ग्रन्थ उन्होंने पद्मवाड़ी में बैठकर लिखा था। अहमदाबाद में चंडोला तालाब पर भी एक पद्मवाड़ी की रचना माधवदास ने की थी, जो आज भी है। इस ग्रन्थ की नकल मराठों के अंतिम युद्ध के समय (प्रायः सं० १८१७)[3] की गई थी। माधवदास ने स्वीकार किया है, कि पद्मनाभ की संक्षिप्त कथा दस अध्यायों में विस्तार करके कही गई है, इसलिए इसमें दैवी तत्व तथा कल्पना का आना स्वाभाविक है।

कथा—ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में शंकर-पार्वती संवाद तथा पुराणों के दृष्टांत, दूसरे में कलियुग के अधर्म की कथा, दुर्वासा द्वारा कृष्ण को अधम योनि में जन्म धारण करने का शाप, तीसरे में दक्ष को ऐसा ही शाप, बद्रिकाश्रम में शिवदास की सेवा के बदले में उनके घर जन्म लेने का वरदान, शिवदास का पाटण में प्रजापति करण के रूप में जन्म, चौथे अध्याय में पाटण की पद्मवाड़ी का वर्णन, पांचवे में नैमिषारण्य का माहात्म्य, छठें में पद्मनाभ का जन्म, सातवें में उनके नाम-संस्कार, आठवें में वाड़ी की (सं० १४७१ में) स्थापना, चार पुत्र तथा एक पुत्री का उल्लेख, नवें अध्याय में

---

१. "भक्ति सुधा स्वाद", पृष्ठ ५४०।
२. उ० भा० सं० पं० पृ०, पृष्ठ २६८।
३. "हिन्दी प्रजानो टूंको इतिहास", लेखक कामदार, पृष्ठ १३१।

वाड़ी में निवास, सरोवर की खुदाई, बादशाह के दर्द का उपचार तथा उनको उपदेश, तथा दसवें अध्याय में वाड़ी का माहात्म्य दिया गया है।

२–पद्मनाभ पुराण—इसे "पद्मनाभ प्रागट्य माहात्म्य" भी कहा गया है। माधवदास लिखित ग्रंथ को ही पाटण के वैद्य श्री ज्येष्ठाराम गोविंदराम जोशी ने सं० १९७२ में पालनपुर के राजभक्त प्रेस में मुद्रित करवाया था। यह ग्रन्थ भी आज दुष्प्राप्य है।

३–पद्म-पुराण :—यह हस्तलिखित ग्रन्थ (क्रम-८४) पुनियाद के रामकबीर मंदिर के राम पुस्तकालय में है।[1] इसका रचना-वर्ष सं० १६६६ है। इसके लेखक श्री० मोहन भट्ट ने ग्रन्थ के अंत में इसका उल्लेख किया है।

"सोल जगनोतेर सार, कार्तिक सुद पुनम गुरुवार।
विष्नुतणे पदे करशे वास, कहे मोहन भट्ट हरिनो दास ॥"

सं० १८०८ में लिखी इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि अहमदाबाद में माधवदास की परंपरा के वर्तमान महंत श्री चीमनलाल स्वामी के पास है। यह ग्रन्थ गुजराती भाषा में "कड़वां" में लिखा गया है। पद्मनाभ के जीवन की वही कथा है, जो अन्य ग्रन्थों में दी गई है! कृष्णजन्म के अनुकरण में पद्मनाभ का प्राकट्य बताया है। एक विशेष उल्लेख यह है कि पद्मनाभ अपने मित्र धनराज पंड्या को साथ लेकर सरस्वती के तट पर वाड़ी की रचना करते हैं।

श्री मोहन भट्ट ने पद्मनाभ के जन्म का वर्ष, तिथि तथा नक्षत्र एवं घटिका भी दी है। उस काल के सम्भवतः किसी भी संत के जन्म के विषय में इतना निश्चित समय प्रायः नहीं मिल पाता।

"संवत् चौद ने अठावन, मधु मास पावन जाणिये।
शुक्ल पक्षे पञ्चमी, गुरुवार शुद्ध प्रमाणिये ॥ ४ ॥
नवकरण योग, सुकार्य सुन्दर, नक्षत्र उत्तम रोहिणी।
दिन घटी द्वादस प्रथम चढते, अवतर्या त्रिभुवन धणी ॥ ५ ॥"[2]

४-पद्मनाभ-आख्यान—यह हस्तलिखित ग्रन्थ (क्रम-७१) पुनियाद मन्दिर के राम पुस्तकालय में है। इसका लेखक कोई विष्नुदास है। ग्रन्थ के अन्त में "लय विस्नुदासकृत पद्मनाभ आख्यान" लिखा है। पद्मनाभ की वही कथा नारद द्वारा कहलाई गई है। इसमें वाड़ी, मृत्तिका के "क्यारे", तुलसी का झुंड, तथा गोमती कुंड का वर्णन है।

---

१. यह ग्रंथ पुनियाद के स्व० महंत श्री यदुनाथजी को जोगीवाड़ा, पाटण के भक्त प्रजापति वीरचंद जीवाभाई से प्राप्त हुआ था।

२. "पद्म पुराण" कड़वुं २५, पृष्ठ ४८।

५-धनराज पंड्या (अध्यारुजी) के कीर्तन—धनराज पद्मनाभ के मित्र एवं शिष्य थे। उनके २८ कीर्तनों में पद्मनाभ पर "पद्म धोल" तथा वाड़ी पर रास लिखा है। उनके पदों के आधार पर पद्मनाभ के जीवन के निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं।

निवास स्थान सरस्वती के तट पर पद्मवाड़ी, पाटण—सुन्दर शरीर—प्रजापति जाति—पिता करण तथा माता का नाम लक्ष्मी—पत्नी पातालदे—संत जैसा सरल जीवन—वैष्णवी भक्ति।

६-जीवणजी की वाणी—जीवणजी ने कबीर के साथ पद्मनाभ की महिमा गाई है। पद्मनाभ तथा धनराज ने एक-दूसरे को पहचाना तथा भक्तों का कार्य किया।[1]

७-स्यामदास की वाणी—उन्होंने लिखा है, कि जैसे काशी में कबीर थे, ऐसे पाटण में पद्मनाभ थे। पद्मनाभ ने अध्यारु (धनराज पंड्या) को दीक्षा दी, तब कबीर साहब उपस्थित थे।

"तहां दास कबीर भये सहाई, संत सङ्गत हरि-भक्ति दृढ़ाई ॥ ३७ ॥
सत्गुरु दास-कबीर परमाना, रघुपति सत्साहेब करी जाना ॥ ३८ ॥"[2]

शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी

१-भ्रम एवं शंकाएँ—कुछ कबीरपंथी ग्रंथों में भी "ज्ञानी" नाम का उल्लेख है। इसे कबीर का पर्याय समझा जाता है। "निरंजन बोध" में सत्पुरुष जीवों को निरंजन (कालपुरुष) से मुक्त कराने ज्ञानी को मृत्युलोक में भेजते हैं। यही कथा सरभंग संप्रदाय के एक हस्तलिखित ग्रन्थ में भी है। इस कारण से डॉ० केदारनाथ द्विवेदी ने शंका व्यक्त की थी, कि "ज्ञानी" शब्द किस व्यक्ति की ओर निर्देश करता है।[3]

अनुराग सागर में भी यही सृष्टि की उत्पत्ति की कथा है। उसमें धर्मदास, सद्गुरु एवं ज्ञानीजी के बीच संवाद है। सद्गुरु स्वयं 'ज्ञानीजी की कथा' कहते हैं। "कबीर मंसूर" में भी वही कथा है। इसमें सत्पुरुष ज्ञानीजी को मृत्युलोक में भेजते हुए कहते हैं, कि मैंने धर्मदास को भेजा था, किन्तु वह प्रतिमा-पूजा में फँस गया है, उसको भी सावधान करो।[4]

२-बालकरामजी की टीका—श्री बालकराम जी ने भक्तमाल की टीका लिखी हैं। उसमें चतुरदास पर लिखे एक छप्पय की टीका में चतुरदास नाम खोजीजी का होने का उल्लेख किया है। उनके विषय में लिखा है कि वे संसार से उदासीन थे।

---

१. उ० ध० पं० र० मा०, पृष्ठ १२०।
२. वही, पृष्ठ २३९।
३. "कबीर और उनका पंथ", पृष्ठ ३२७।
४. "कबीर मंसूर" अनु० सुधादासजी, पृष्ठ १२०।

साधुओं का सत्संग करते थे। मृत पिता के फूल गंगाजी में छोड़ने नहीं गये, तो स्वयं गंगाजी ने आकर उन्हें स्नान कराया था। इसके बाद की कथा ज्ञानीजी के जीवन की कथा है, जो ज्ञानीजी के प्रथम गुरु खोजीजी के नाम के साथ मूल कथा से जोड़ दी गई है।[1] 'चतुरसिंह' ज्ञानीजी की पूर्वावस्था का नाम था। चतुरदास तथा खोजीजी दो भिन्न व्यक्ति हैं। भक्तमाल के छप्पय ९७ में १८ भक्तों की नामावली में दोनों के अलग-अलग नाम हैं।

३-कबीरपंथी साहित्य—"कबीर-मंसूर" में लिखा है कि ज्ञानीजी कलियुग में कबीर नाम से प्रकट हुए और "सत्कबीर" और "कबीर साहब" के नाम से प्रसिद्ध हुए।[2] लगता है, कि ज्ञानीजी की परंपरा के किसी संत ने उनकी महत्ता बढ़ाने उनको कबीर से पूर्व प्रस्थापित किया है।

४-मार्गी संप्रदाय का प्रवर्तक—आचार्य क्षितिमोहन सेन ने ज्ञानीजी को कबीर का शिष्य माना है। उनको कुछेक पंथों का प्रवर्तक कहा है, तथा उसमें विशेष रूप से "मार्गी संप्रदाय" का उल्लेख है।[3] ज्ञानीजी रामकबीर संप्रदाय के प्रवर्तक थे। संभव है, मार्गी संप्रदाय पर उनका प्रभाव पड़ा हो।

५-श्री चावड़ाजी का भ्रम—गुजराती के एक लेखक श्री किसनसिंह चावड़ा ने ज्ञानीजी को सं० १८०० के आसपास जीवित माना है, तथा उनके द्वारा जेसलमेर के राजकुमार चतुरसिंह को दी गई दीक्षा का उल्लेख किया है।[4] वास्तव में तो ज्ञानीजी ही स्वयं जेसलमेर के राजकुमार चतुरसिंह थे, जिनको कबीर ने दीक्षा दी थी।

१—गुरु कबीर – भक्तमाल में चतुरदास का जो उल्लेख है, वह ज्ञानीजी का है। कबीर सम्प्रदाय के एक विद्वान् श्री हनुमानदास ने लिखा है, कि भक्तमाल में एकमात्र ज्ञानीजी का उल्लेख है, जो कबीर के शिष्य थे।[5] किन्तु कबीर के शिष्य के रूप में पद्मनाभ का उल्लेख भी है।

२—राघोदास की भक्तमाल में कबीर के नौ शिष्यों में ज्ञानी जी का नाम है। राघोदास ने ज्ञानीजी पर अलग से लिखा है कि उन्होंने पश्चिम देश में उपदेश दिया था तथा परमार्थ किया था। उनमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि थे और काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ एवं अभिमान का उन्होंने त्याग किया था। वे धर्मशील, संतोषी,

१. "भक्तदाम गुण चित्रनी" टीका (सं० १८२१), पृष्ठ २७७।
२. कबीर मंसूर, पृष्ठ १२०।
३. "मिडिवल मिस्टीसिज्म आफ इण्डिया," पृष्ठ ११६।
४. "कबीर सम्प्रदाय" पृष्ठ १४५।
५. "वैराग्य प्रकाश", पृष्ठ २।

दयालु एवं विनम्र थे। अभिमान को तो उन्होंने दूर ही रखा था। रत्तीभर भी कभी क्रोध नहीं किया। उन्होंने कबीर से ज्ञान-प्राप्ति की थी।[1]

३–कबीर संप्रदाय के एक ग्रन्थ "सर्वाजीत पंडित की गोष्ठी" में ज्ञानीजी के विषय में कबीर के शिष्यत्व का उल्लेख किया है।

"ज्ञानी के गुरु कबीर भये, मन के सब संशय गये।"[2]

४–ज्ञानीजी की परम्परा के चौथे महंत जीवणजी हुए। उन्होंने कबीर द्वारा ज्ञानीजी को दिये गए उपदेश का उल्लेख अपनी वाणी में किया है। उन्होंने ज्ञानी को गोरखनाथ का अवतार माना है।

"गुर्जर खंड में प्रगटे, ज्ञानी गोरखनाथ।
दास कबीरे जीवणा, मस्तक दीन्हो हाथ।।"[3]

५–सरदार पुर गद्दी के महंत स्यामदास (सं० १७५०) ने लिखा है, ज्ञानीजी के सारे संशय नष्ट कर गुरु कबीर ने उनको दीक्षा दी थी।

"ज्ञानी के भये कबीर सहाई, रामनाम जिन्हें दीन्हो बताई।
ज्ञानी के गुरु कबीर भये, मन के सब संशय गये।।"[4]

६–गुजराती साहित्य के एक प्राचीन कवि मुकुंद (सं० १७०८) ने अपनी भक्तमाल में कबीर के शिष्यों में ज्ञानी के नाम का उल्लेख किया है।[5]

७–मलूकदास कृत "ज्ञानबोध" में स्वामी रामानन्द तथा कबीर के साथ ज्ञानीजी के नाम का उल्लेख है।[6]

८–ज्ञानीजी की परंपरा के एक संत कवि ने ज्ञानीजी की शंका का कबीर द्वारा निवारण, उपदेश आदि का वर्णन किया है।[7]

९–किसी सन्त ने चार प्रकरण में "कबीर-ज्ञानी संवाद" लिखा है। इस संवाद में ज्ञानीजी के अनेक प्रश्नों के उत्तर कबीर साहब ने दिये हैं।[8]

---

१. "राघोदास की भक्तमाल" सं० श्री अगरचंद नाहटा, पृष्ठ १७८।
२. सर्वाजीत पण्डित की गोष्ठी, पृष्ठ ८९।
३. उ० ध० पं० र० सा०, पृष्ठ १७५।
४. वही, पृष्ठ २०१।
५. प्रा० का० मा० ग्रं० ११, पृष्ठ २१४।
६. रामानन्द सम्प्रदाय, पृष्ठ ४४।
७. परिचित पद संग्रह, पृष्ठ १०५।
८. त्रिकम तारण संग्रह, पृष्ठ २११ से २२२।

१०-स्वयं ज्ञानीजी ने अपनी वाणी में लिखा है, कि वटवृक्ष के बीज को देखकर मेरा मन संशय में पड़ गया था, कि पहले वृक्ष था या बीज। तथा इतने छोटे बीज में इतना बड़ा वृक्ष बनने की शक्ति कैसे होती है ? कबीर साहब के मिलने से मेरे सारे संशय नष्ट हो गये।

"वटक बीज मांड में जटक भया मन धीर।
जनज्ञानी का संशय मिटा, सदगुरु मिले कबीर ।।"

११-कबीरवट नर्मदा के मध्य में आ गया है। उनके दक्षिणतट पर झगड़िया के पास सांझापुर नाम का गाँव है। इस गांव में ज्ञानीजी का मन्दिर, समाधि एवं स्थान है। ज्ञानीजी की वंशपरम्परा में वर्तमान समय में महंत मधुसूदन दास हैं। मन्दिर में ज्ञानीजी की वाणी के हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं।

कबीर वाणी में ज्ञानीजी के नाम का उल्लेख—कबीर साहब की वाणी में ज्ञानीजी के नाम के उल्लेख एकाधिक स्थान पर मिलते हैं। वर्तमान समय में इनके अज्ञात होने से "ज्ञानी" शब्द के अन्य अर्थ लिये गये हैं।

१-रामसार ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति में गुरु रामानन्द तथा शिष्य ज्ञानी के नाम का उल्लेख है।

"सदगुरु रामानन्द प्रताप, हरजी अंतर प्रगट्या आप।
कहे कबीर ए भेद अगाध, ज्ञानी विरला बूझे साध ।।"[1]

२-कबीर की एक साखी की पंक्ति है, "कबीर गुरु बसे बनारसी, सिस समदां तीर।" इसका अर्थ यह लगाया जाता है, कि गुरु रामानन्द काशी में निवास करते थे तथा उनके शिष्य कबीर जगन्नाथ पुरी में समन्दर तट पर बसे थे। आगे यह भी कल्पना की गई कि साखी का सर्जन वहाँ पुरी में हुआ होगा, किन्तु कबीर साहब सविशेष काशी में निवास करते थे। इसलिये ज्ञानीजी ने यह पंक्ति अपने गुरु कबीर के विषय में लिखी हो, ऐसी संभावना अधिक है। ज्ञानीजी ने अपनी वाणी में महल वाड़ी को छोड़ कर समन्दर तटे निवास करने का भी उल्लेख किया है।

"मंडी वाड़ी परहरी, किया समुद्रां वास।
तहां ज्ञान निरभे भया, कालजाल नहीं पास ।। १७ ।।"[2]

ज्ञानीजी के मन्दिर के पास में नर्मदा तट पहले था। अब वहाँ से नर्मदा हट गई है, किन्तु समन्दर का पानी ज्वार के समय नर्मदा में आता है और बाढ़ का पानी वहाँ तक आता है।

३-कबीर-ग्रंथावली के एक पद की अन्तिम पंक्तियाँ हैं—

---

१. यह ग्रन्थ (राम सार ग्रन्थ) पुनियाद मंदिर में है।
२. ज्ञानीजी की वाणी का यह हस्तलिखित "साखी ग्रन्थ" लेखक के पास है।

"गुरुदेव ज्ञानी भयो लगनिया, सुमिरन दीन्हो हीरा ।
बड़ी निसरनी, नाँव रामको, चढ़ गयो कीर कबीरा ॥"[१]

यह पद ज्ञानीजी का लिखा इसलिये लगता है, कि कबीर अपना नाम प्रारम्भ में लिखते हैं, अन्त में नहीं । लगता है, इस पद में ज्ञानीजी ने सद्गुरु मिलन का उल्लेख किया है । ज्ञानी को गुरु से लगन लग गई थी । गुरु ने उन्हें "नामस्मरण" रूप हीरा भेट किया था तथा रामनाम की सीढ़ी पर कबीर साहब चढ़ गये थे ।

४-कबीर का ऐसा ही एक अन्य पद है, जिसमें कबीर साहब ने ज्ञानी को स्पष्ट संबोधन किया है, तथा ज्ञानीजी को हीरारूप में पहचान कर अलखनिरंजन की उपासना का आदेश दिया । दोनों गुरु-शिष्य सूर्य एवं चन्द्र की ज्योति के समान हैं ।

"चंद सूरज दूई ज्योति स्वरूप, ज्योति अंतरि, ब्रह्म अनूप ।
कहुं रे ज्ञानी ! ब्रह्म विचारुं, ज्योति अंतरि धरी आप सारुं ।
हीरा देखी हीरे करो आदेश, कहे कबीर निरंजन अलेख ॥"[२]

इस पद में "दूई" "कहुं" "विचारुं" "करो" "आप सारुं" जैसे गुजराती शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है । गुजरात में ज्ञानी जी के साथ कबीर के निवास का निर्देश इसमें मिलता है ।

५—कबीर का एक पद है, जिसमें कबीर ने ज्ञानी की यौगिक शक्ति की प्रशंसा की है । उन्होंने पंड्या (पंडित) से संबोधन कर कहा, कि एक आश्चर्य की बात यह है कि सुर, नर, गंधर्व को मोहित करने वाले, तीन लोक को एक शृंखला में बाँधने वाले राजाराम की अनाहत की यंत्रिका बज रही है, जिसकी दृष्टि मात्र से आत्मा उस नाद में लीन हो जाती है ।

चतुरसिंह भाठी (ज्ञानी) ने गगन में सिंगी एवं चुंगी से एक कनक-कलश पा लिया । पवन रूपी प्याले में रस की निर्मल धारा झरती है । तीनों भवन में एक ही योगी है, जो कहीं (जेसलमीर) का राजा है । ऐसा पुरुषोत्तम (ज्ञानी) कबीर के रंग में राता है । उन्होंने अन्य सारे भ्रम को भुला कर मन को राम-रसायण में रंग दिया है ।[३] इस पद में "जाकि दृष्टि" तथा "कलश-एक पाया" में किसी एक व्यक्ति

१. क० ग्रं०, पृष्ठ १२२ ।
२. क० ग्रं० परिशिष्ट, पृष्ठ २८४ ।
३. "अचरज एक सुनहु रे पंडिया, अब कछु कहत न जाई ॥
सुरनरगन गंधर्व जिन मोहे, त्रिभुवन मेखलि लाई ।
राजाराम अनहद किंगुरी बाजै, जाकि दृष्टि नाद जब लागै ॥ १ ॥
भाठी गगन सिडिया, अरु चुंडिया, कनक कमश इक पाया ।
तिसमहि धार चुए अति निरमल, रसमहि रसन चुआया ॥ २ ॥

का निर्देश है, तथा "भाठी" "राजा" तथा "ज्ञानी" एवं "कबीर रंग राता" के निर्देश ज्ञानी के प्रति हैं, ऐसा लगता है।

ज्ञानीजी की वाणी में कबीर के नाम का गुरु रूप में उल्लेख—ज्ञानीजी के प्रथम गुरु खोजी जी थे, किन्तु उनकी शंकाओं का समाधान कबीर साहब द्वारा हुआ था। तदनंतर ज्ञानी ने कबीर को अपना गुरु माना था। उन्हें सद्गुरु कबीर द्वारा संसार में दुर्लभ परब्रह्म की भक्ति प्राप्त हुई थी।

"दूलभ इस संसार में, भगत्य ए परिब्रह्म।
ज्ञानी सो सद्गुरु दई, मेटा था सब मर्म ॥"[1]

ज्ञानी ने कबीर साहब की महत्ता का वर्णन किया है। कबीर सब में शिरोमणि हैं। सुर, नर एवं मुनियों के शिरमौर हैं। ज्ञानी उनको जाकर मिला और उत्तम स्थान प्राप्त किया। तेजपुंज सद्गुरु मुझे मिले; उनका देव जैसा स्वभाव था। सारा अंधकार दूर हो गया।[2]

ज्ञानी ने लिखा है, कि कबीर जी अन्य प्रदेश (काशी) के निवासी थे। यहाँ (गुजरात में) आकर वे मुझे मिले थे। उनके दर्शन से मेरे तन की सारी तपन दूर हो गई और मैं शीतल होकर सुख में समा गया।

"उन देश का कबीर जी, हमकु मिले जो आये।
तपत्य गई, सितल भया, सुख में रह्या समाये ॥"[3]

ज्ञानीजी को गुरु की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ज्ञानीजी ने निश्चल मन से गुरु-कबीर की सेवा की थी।

"ज्ञानी गुरु सेवा करी मन निश्चल धरी धीर।
तीन लोक में गाइये, कहे कबीर कबीर ॥"[4]

सद्गुरु कबीर साहब की कृपा से सब शिष्यों में ज्ञानीजी शिरोमणि शिष्य थे; "ज्ञानी गुरु परसाद तें सकल शिरोमणि होई।" तथापि ज्ञानीजी ने स्वीकार किया है,

---

एक घु बात अनुप बनी है, पवन पियाला सजिया।
तीन भवन मांही एको जोगी, कहहु कवन है राजा ॥ ३ ॥
ऐसे ज्ञानी प्रगट्या पुरुषोत्तम, कहु कबीर-रंग राता।
और दुनी सब भरम भुलानी, मन रामरसायण राता ॥ ४ ॥"
—क० ग्रं० परिशिष्ट, पृष्ठ २६५; "संत कबीर", पृष्ठ २८५।

१. ह० लि० "साखी ग्रंथ", पृष्ठ ६७ (लेखक के पास है)।
२. वही, पृ० ६२।
३. ह० लि० "साखी ग्रंथ" पृ० ८३ (लेखक के पास है)।
४. वही, पृ० ६७।

कि राम एवं कृष्ण से कौन बड़ा था, फिर भी उन्होंने गुरु-सेवा की थी। ज्ञानी सब में शिरोमणि है, किन्तु गुरु के आगे बिलकुल अधीन है।

"ज्ञानी शिरोमणि सकल में, पण गुरु आगे अधिन।"[1]

तत्वाजीवा

उल्लेख (१) नाभादास की भक्तमाल :—नाभादास ने भक्तमाल में तत्वाजीवा को रामानंदी कहा है। यह सम्भव है, कि उन्होंने पहले स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली हो। किन्तु भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने कबीर के शिष्य के रूप में उनका उल्लेख किया है। उन्होंने तत्वाजीवा के टेक की कथा भी दी है। तत्वाजीवा दो भाई ब्राह्मण जाति के विद्वान् थे। किसी पूरे गुरु की खोज में थे। आंगन में एक सूखा वृक्ष था। अभ्यागत संतों के चरणजल से इसे सींचा जाता था। जिस संत के चरणजल से वह पुनः पल्लवित हो जाय, उनको गुरु के रूप में प्रस्थापित करने का निश्चय उन्होंने किया था। अन्त में कबीर साहब के चरणजल से वह वटवृक्ष नवपल्लवित होने से उन्होंने कबीर को गुरु किया था।[2]

(२) राघोदास की भक्तमाल :—दादू के शिष्य सन्त राघोदास ने कबीर के नी शिष्यों में तत्वाजीवा के नाम का भी उल्लेख किया है। तत्वाजीवा पर उन्होंने एक छप्पय लिखा है। यह नाभाजी के अनुकरण में लिखा हुआ है।[3]

(३) साम्प्रदायिक ग्रन्थ :—कबीर पन्थ के कुछ ग्रन्थों में कबीर के शिष्य के रूप में तत्वाजीवा के नाम का उल्लेख है।[4] कबीरपन्थी सन्त गरीबदास ने लिखा है, कि चालीस वर्ष तक वे साधुओं के चरणोंदक से सूखे ठूँठ को सींचते रहे, अन्त में कबीर साहब के चरणोदक से जो वृक्ष हरा हो गया, वही कबीरवट है।

(४) ग्रन्थ साहेब का उल्लेख :—गरीबदास ने दक्षिण में तत्वाजीवा को कबीर-मिलन का तथा सूखे वृक्ष के पुनः पल्लवति होने का उल्लेख किया है।

---

१. वही।

२. "भक्ति सुधाजल समुंद भये, बेलावलि गाढ़ी।
पूरब जा ज्यों रीति, प्रीति ऊत्तरोत्तर बाढ़ी।
रघुकुल सदृश सुभाव, सिष्ट गुन सदा धर्मरत।
शूर धीर उदार दया परदच्छ अनन्य व्रत।
पद्म खण्ड पद्मा पधति, प्रफुल्लित कर सविता उदित।
तत्वाजीवा दछिन देस, वंशोद्धर राजत विदित ॥ ६९ ॥"

३. "भक्तमाल की टीका" प्रियादास, छप्पय ३१२।

४. "राघोदास की भक्तमाल" छप्पय ८२, पृ० ८०।

५. "सर्वाजीत पडिण्त की गोष्ठी", पृ० ८९।

"गरीब तत्वाजीवा को मिले, दक्षिण बीच दयाल।
सूखा ठूंठा हरा हुआ, ऐसे नजर निहाल॥"[१]

(५) स्यामदास :—ज्ञानीजी की परम्परा के एक सन्त जीवण जी के पोता शिष्य स्यामदास ने कबीर के कृपापात्र शिष्यों के वर्णन में तत्वाजीवा का नाम लिया है।

"तत्वा-जीवा को भये सहाई, ताते अविगत की गति पाई।"[२]

(६) अध्यात्म तत्व संवाद :—श्री हनुमानदास जी ने कबीर तथा तत्वाजीवा के बीच हुए संवाद को "अध्यात्म-तत्व संवाद" के रूप में लिखा है। उसमें तत्वाजीवा की कथा संक्षेप में दी है :

"तत्वा जीवा भ्रात द्वौ, करत साधु की सेव।
रामदरस, सद्गुरु परस, जानन चाहत भेव॥ ८॥"[३]

अन्य उल्लेख :—श्री मणिलाल मेहता ने लिखा है, कि तत्वाजीवा पंचगौड़ान्तर्गत औदीच्य ब्राह्मण थे। डा० सेन ने इस कथा का समर्थन किया है।

(७) माणेकदास की वाणी :—सन्त माणेकदास सूरत के लोचनदास की परम्परा के सन्त प्यारेदास के शिष्य थे। वे कबीरवट के स्थान में सं० १७४५ से १७६० तक निवास करते थे। कबीरवट की छाया में निवास करने का अपने लोभ का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि यहाँ तत्वाजीवा की टेक को कबीर साहब ने निभाया था। इस विषय की एक कुण्डलिया इस प्रकार है।

"धन्य भक्ति बखानिये, तत्वाजीवा की टेक।
आंगन में एक वृक्ष थे, साधु आये अनेक।
साधु आये अनेक, चरणामृत सींचवायो।
उर में बढ़ो विश्वास, साचे संत जब आयो।
'माणिक' मंगल गावरी, संत कबीर जब आये।
तत्वाजीवा के अंगना, सूखे वटवृक्ष जीवायो॥"[४]

(८) "भक्त वीरुदावली" :—बावादीन दरवेश की "वीरुदावली" वस्तुतः एक भक्तमाल है। इसमें कबीर की गुजरात-यात्रा का विस्तृत वर्णन है। निम्नांकित कुण्डलिया में तत्वाजीवा की पीड़ा को कबीर द्वारा दूर होने का प्रसंग है।

---

१. "गुरु ग्रंथ साहब"—सचेत साखी का अंग।
२. उ० भा० पं० र० मा०, पृ० २००।
३. "अध्यात्म तत्व संवाद", पृ० १२।
४. "राणा जाति" दीपोत्सवी अंक (ई० स०, १९७०)।

"संत कबीर दयानिधि, रेवा के तीर आय ।
गोसँया की पीर को साहिब दिये मिटाय ।
साहिब दिये मिटाय, संत महिमा अपारी ।
सूके काठ नीपाए, सद्गुरु की बलिहारी ।
फहल दीन दरवेश, महातम कबीरवट ही को ।
साहिब मेरा सलाम, कबीर गुरु दयानिधि को ॥"

इस स्थान पर कबीर साहब के सं० १४६५ में आने का उल्लेख कबीर मन्दिर की दीवार पर लगे एक शिलालेख में है । संसार प्रसिद्ध उस कबीर वट के नाम से ही कबीर साहब के सम्बन्ध का निर्देश तो मिल ही जाता है ।

कबीर साहब के जाने के पश्चात् मंगलेश्वर के ब्राह्मणों ने मुसलमान को गुरु करने के अपराध में तत्वा तथा जीवा-दोनों भाइयों को जाति बाहर किया था । विवाह-व्यवहार भी बन्द कर दिया । इस समस्या को सुलझाने के लिए उन्होंने एक साधु को गुरु की आज्ञा के लिए काशी भेजा । कबीर साहब को सूचना मिली कि दोनों भाई आपस में संतानों का विवाह कर लो, किन्तु भक्ति में शिथिलता मत आने दो ।[1] इस निर्णय से ब्राह्मणगण हैरान हो गया । इस प्रकार के विवाह की कल्पना उनके लिए असह्य थी । अन्त में उन्होंने दोनों भाइयों को जाति में पुनः सम्मिलित कर लिया था ।

दोनों भाई मंगलेश्वर के ब्राह्मणों के पुरोहित थे । उनकी कुछ खेती भी थी । उनका घर कबीरवट वाले स्थान में था । निकट के शुक्लतीर्थ गांव में शिवमार्गी तथा शाक्तों के मध्य विग्रह चलता था । तत्वा और जीवा दोनों भाई संत-सेवा तथा पुरोहिती की व्यवस्था अपने भानजे रामशंकर को सौंपकर एक दिन तीर्थयात्रा को निकल पड़े । कहते हैं, काशी में कबीर साहब की सूचना से दोनों ने स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली थी । तदनन्तर स्वामी रामानन्द ने कबीर के शिष्य ज्ञानी से अनुरोध किया कि तुम इन दोनों भाइयों को ज्ञान प्रदान करो । तत्वाजीवा ने शैव तथा शाक्तों के संघर्ष की कथा स्वामी जी से कही; इस पर स्वामी जी ने कबीर को आज्ञा दी, कि तुम इस कार्य के लिए गुजरात की यात्रा करो ।

---

१. "काना कानी भई, द्विज जाति जाति गई ।
पांति न्यारी न्यारी कर दई, कोउ बेटी नहीं लेत है ।
चल्यो एक काशी जहां बसत कबीर धीर ।
जाय कही पीर, जब कौन हेत है ।
दोऊ तुम भाई करो, आपस में सगाई होय ।
भक्ति सरसाई न घटाई चित चेत है ॥"
—भक्तिरस बोधिनी टीका—पृ० ४७१ ।

कबीर साहब की यह द्वितीय यात्रा थी। इस समय कबीर ने नर्मदा तट पर कबीरवट के स्थान में निवास किया था। कबीर ने जातिवालों के साथ तरवाजीवा का समाधान करवाया था। कबीर के उपदेशों का गुजरात में बहुत प्रभाव पड़ा था। एकमात्र शाक्तों ने कबीर की अहिंसा को स्वीकार नहीं किया। कबीर ने इसलिए अपनी वाणी में शाक्तों की निंदा की है। काशी से गुजरात में आते हुए मार्ग में नर्मदा के दक्षिण तट पर चांदोद में उनको रुकना पड़ा था; क्योंकि वहाँ शैव तथा शाक्तों का संघर्ष चरम सीमा तक पहुँच गया था। कबीर साहब एकेश्वर तथा आत्मतत्व का उपदेश देते थे तथा निराकार की भक्ति करने को कहते थे। शाक्त इस बात का भी विरोध करते थे।

गुरु-कबीर :—तरवा जी ने अपनी वाणी में कबीर का गुरु रूप में अनेक बार उल्लेख किया है।

"दास कबीर गुरु भेद बताया, तब तें जनम मरण लखि पाया।"

तरवा जी कहते हैं, चौरासी लाख बार देह धारण की, तथा नाना प्रकार के कष्ट सहे; अब भला हुआ कि गुरु-कबीर की आशा मिल गई।[1]

सद्गुरु कबीर साहब ने मुझे आज्ञा दी कि "तरवा मेरे उपदेशों को तुम गाँवों में ले जाना, जिससे जीव के सारे बन्धन टूट जावेंगे।[2]

एक तो चौरासी लाख योनि में से मनुष्य का शरीर मिला; तथा उसमें भी कबीर साहब जैसे सद्गुरु मिल गये।

लाख चौरासी भरमी में, पाया मनुष्य शरीर।
जीवन मुक्त सद्गुरु किया, साहब सत्य कबीर॥"[3]

तरवा जी ने जगत् की असारता का उपदेश दिया था। उन्होंने कहा, कि जगत् एक वृक्ष है, जिसके तल में लोग बैठते हैं, और उठ चले जाते हैं। कोई किसी के लिए रुकता नहीं। कोई किसी का नहीं, अगर तेरा कोई है, तो वह मर क्यों गया? तूने उसे रोका क्यों नहीं?[4]

तरवा जी समानता के समर्थक तथा अभिमान के विरोधी थे। सिर पर टोकरी हो या छत्र, गरीब हो या अमीर, जन्म एवं मृत्यु के सामने सब एक हैं, कोई भेद नहीं।

---

१. "वैराग्य प्रकाश" सं० हनुमानदास जी, साखी ६२।
२. वही, साखी ६७।
३. वही, साखी ८५।
४. वही, साखी ४२।

"कै गरीब सिर टोकरी, कै सिर छत्तर होय।
जनम मरण में एक से, तत्वा भांति न दोय।"[1]

तत्वा जी ने राम के गुण गाये हैं। जहाँ तक शरीर में जीव है, राम के गुण गा ले, अन्यथा पछताएगा।[2] तत्वा जी ने सगे सम्बन्धियों को छोड़ कबीर साहब की शरण ली थी; इस बात का उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में किया है।

"तत्वा गुरु शरण गही, तजि के नाता नेह।"

परम्परा :—तत्वा जी ने गुरु आज्ञा लेकर मंगलेश्वर छोड़ विहार में फतुहा में निवास किया था। वहाँ उनकी परम्परा में २२ पीढ़ियाँ हुई हैं। ये लोग स्वामी रामानन्द तथा कबीर के बाद एक तत्वाजी को आदि पुरुष मानते हैं। तत्वाजी के साथ जैसा जीवा शब्द लगता है, वैसे ही इस गद्दी के महन्तों के साथ लगता है; जैसे "तत्वा-जीवा" "पुरुषोत्तम जीवा"।[3]

इस परम्परा की दूसरी विशेषता यह है, तत्वा जी से आगे गणेशदास जी तक किसी ने मठ या मन्दिर नहीं बनवाया था। वे अजाचक वृत्ति रखते थे तथा विरक्त थे। कुन्तादास से आगे की परम्परा "दासपद" से विभूषित की गई है।

कमाल साहब

कमाल साहब कबीर के शिष्य थे, इस पर किसी का विरोध नहीं, किन्तु कबीर पन्थ के अनुयायी उनको कबीर के पुत्र के रूप में स्वीकार नहीं करते। विद्वानों ने कमाल को कबीर का पुत्र माना है। उनकी वाणी में उन्होंने हमेशा अपने लिए "कबीर का बालका" शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा शब्द प्रयोग शिष्य भी कर सकता है, किन्तु अन्य किसी शिष्य ने ऐसा नहीं किया था।

कहते हैं, उनका अपने पिता से मतभेद था। मतभेद का कारण था, अत्यधिक शिष्य बनाना। अनधिकारी को यौगिक सिद्धियाँ (इल्मेफकीरी) सिखाना भी कबीर पसन्द नहीं करते थे। अहमदाबाद में कमाल साहब के साठ अनुयायी शिष्य थे।

गुजरात से सम्बन्ध—कबीर साहब ने कमाल को आज्ञा देकर मतप्रचारार्थ अहमदाबाद भेजा था।[4] अहमदाबाद के सुल्तान ने कसौटी की थी। कमाल साहब ने अपनी यौगिक शक्ति का परिचय (परचा) दिया था। गुजराती साहित्य के कवि मुकुन्द (सं० १७०८) ने कमाल की तीर्थयात्रा का उल्लेख किया है।[5] आचार्य परशुराम

१. वही, साखी ३०।
२. वही, साखी ३५।
३. "बीजक मूल" सं० स्वामी हनुमानदास जी।
४. "बोध सागर", पृ० १५१५।
५. प्रा० का० मा० ग्रं० ११, पृ० २३०।

चतुर्वेदी ने अन्तर्साक्ष्य के आधार पर महाराष्ट्र में पंढरपुर तक की कमाल की यात्रा को स्वीकार किया है।[1]

काशी में कबीर साहब ने कमाल को महाप्रतापी सन्त निर्वाण साहब से मिलने की सूचना दी थी। तदनुसार कमाल उनसे मिलने सूरत गये थे। उन्होंने सगुणमतावलम्बी निर्वाण तथा निर्गुण मतवादी कबीर के समागम का रहस्य उनसे पूछा था। निर्वाण साहब ने उनको समझाया कि सगुण तथा निर्गुण से अवधूत पर होता है। मिलन में तो सत्संग ही सुखदायक होता है। निर्वाण साहब ने जीवों के उद्धार के लिए निकले कमाल को धन्यवाद दिये थे। सत्संग में दो दिन व्यतीत कर कमाल लौट आये थे।[2]

गुजरात के विभिन्न स्थानों में से कमाल के पाँच शिष्यों का जीवन-वृत्त मिलता है।

निर्वाण साहब

जायल गद्दी के सन्त केशवदास द्वारा निर्वाण पहले दीक्षित हुए थे, ऐसा उल्लेख श्री माणेकलाल राणा ने अपने "सन्त निर्वाण साहेब" ग्रंथ में किया है। उनकी दी हुई जायल की परंपरा में केशवदास रामानन्द की छठी पीढ़ी के महन्त हैं। यह परंपरा सन्दिग्ध लगती है, क्योंकि निर्वाण स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर, रैदास तथा खोजीजी के समकालीन थे। इस स्थिति में वे उनकी छठी पीढ़ी के शिष्य कैसे हो सकते हैं, यह एक प्रश्न है।

कबीर-मिलन :—कबीर साहब के साथ उनका समागम हुआ था। पहले वे उनको मिलने कबीरवट गये थे, तदनन्तर कबीर साहब निर्वाण के निमन्त्रण पर सूरत आये थे तथा एक रात रुके थे।

"महाराज निर्वाण से भेट्या दास कबीर।
स्थूल दो एक प्राण थे, अभेद संत शरीर ॥"[3]

सगुण मतवादी रामानन्दी अखाड़े में निर्गुण मतवादी कबीर के आगमन एवं आदर को देख अखाड़े के कुछेक साधुओं ने शंका उठाई थी। उनको समझाते हुए निर्वाण साहब ने निम्नांकित पद में कहा कि अवधूत के लिए कोई भेद नहीं रहता।

"फकीरा नैं कैसे दिल दुभावो, साधु। तेरे दिल में अचरज आवो ॥ टेक ॥
फकीरा से गुरु कैसे नाता, निर्गुण के गीत गावो।
हम तो निर्गुण राम के प्यारे, क्यों भेद दुरावो ॥ १ ॥

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २६० ।
२. "संत निर्वाण साहेब", पृ० ६२३ ।
३. सं० नि० सा०, पृ० ४७७ ।

कबीरा जुगन जुगन का जोगी, अवधू को पिछनायो।
रामानन्द गुरु सिरपे धारके, काशी डेरा लगायो ॥ २ ॥
भेदाभेद चतुराई छांड़े, संत से मेरी सगायो।
चरणकमल चाहु संत का, प्रेमे रहहु लपटायो ॥ ३ ॥
कबीरा जौहरी ठाढ़ें हाट में, अवधू अभेद पिछनायो।
संत को संत जब ही भेट्या, प्रेम बदरिया छायो ॥ ४ ॥
दुर्लभ संत समागम कीन्हो, जीवन को सुखदायो।
संतन से मेरी प्रेम सगाई, निर्वाण को यश गायो ॥ ५ ॥[1]

कबीर साहब ने निर्वाण को "साहब" का विरुद दिया था, तब से निर्वाण महाराज 'निर्वाण साहब' कहलाने लगे। उनकी वाणी में कबीरवाणी के प्रभाव का दर्शन होता है। इस सन्दर्भ को देखते हुए निर्वाण साहब का स्थान कबीर साहब के प्रमुख शिष्यों में माना गया है।

निष्कर्ष

कबीर के गुरुमुख शिष्य—कबीर के शिष्य तथा उनकी परम्परा पर डा० की, आ० परशुराम चतुर्वेदी तथा डा० केदारनाथ द्विवेदी ने विचार किया था। डा० की ने धर्मदास प्रस्थापित कबीरपन्थ के महात्माओं के विषय में विचार किया था। इस पन्थ के प्रवर्तक धर्मदास कबीर के समकालीन नहीं थे। इस परम्परा के किसी भी महात्मा को कबीर का साक्षात् शिष्य नहीं स्वीकार किया जा सकता।

आ० चतुर्वेदी ने कबीर के शिष्यों के रूप में कमाल, ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ की चर्चा की थी। ज्ञानीजी के विषय में "मंझनी" बिहार के निवास का उल्लेख तथा अन्य वृत्त के अभाव में कोई असंदिग्ध मत स्थापित न हो सका था। पद्मनाभ के भी निश्चित वृत्त के अभाव में डा० मोहनसिंह ने गुजराती प्रबन्धकार को कबीर-शिष्य पद्मनाभ होने की धारणा बना ली थी।

कबीर के संसर्ग में आने वाले तथा उनके प्रभाव एवं उपदेश से जीवन परिवर्तन करनेवाले अनेक भक्तों के नाम कबीर के शिष्य के रूप में लिये जाने लगे थे, किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में डा० केदारनाथ द्विवेदी ने स्वीकार किया कि "यह कहना कठिन है, कि कबीर ने किसी को विधिवत् शिष्य बनाया था अथवा नहीं।"[2] कबीर के शिष्यों तथा उनकी परम्परा के विषय में प्रवर्तित अज्ञान पर आ० परशुराम चतुर्वेदी ने आश्चर्य व्यक्त किया था।

---

१. वही, पृ० ४८८।
२. कबीर और कबीरपंथ, पृ० ८३।

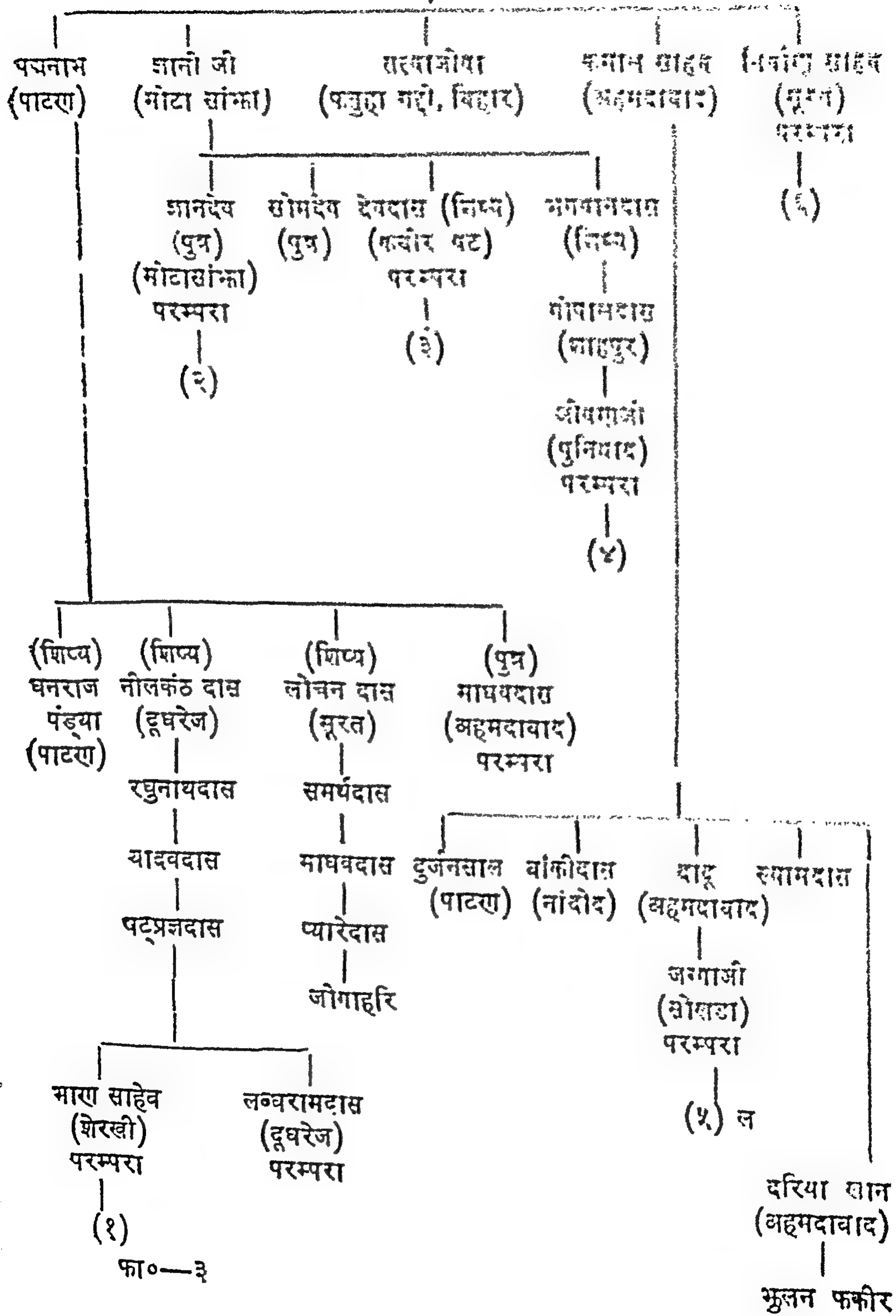
गुजरात प्रदेश से कबीर के साक्षात् शिष्य ज्ञानीजी, पद्मनाभ, निर्वाण तथा तत्वाजीवा का वृत्त प्राप्त हुआ ; तथा कमाल साहब के भी पाँच शिष्यों का वृत्त यहीं से मिला है। यह तथ्य विचारणीय है।

अब तक गुजरातेतर प्रदेशों से कबीर साहब या कमाल साहब का एक भी साक्षात् शिष्य प्रमाणित नहीं हो पाया था। इस परिस्थिति में एकमात्र गुजरात प्रदेश में से कबीर साहब के पाँच तथा कमाल साहब के भी पाँच साक्षात् शिष्यों के वृत्त का प्राप्त होना आकस्मिक नहीं हो सकता। गुजरात में कबीर साहब के निवास एवं उनके प्रभाव का यह सूचक है। ज्ञानीजी कबीर के शिरोमणि शिष्य थे। उन्होंने कबीर की सेवा की थी। कबीर साहब के उपदेश से उनके भ्रम का निवारण हुआ था। इन शिष्यों ने कबीर की विचारधारा का गुजरात में प्रचार किया था। एक तत्वाजीवा को छोड़कर अन्य शिष्यों की परम्पराएँ आज भी यहाँ वर्तमान हैं। निर्वाण साहब का कबीर साहब से समागम हुआ था, तथा वे उनसे प्रभावित हुए थे। अपने एक पद में उन्होंने कबीर साहब के प्रभाव का वर्णन किया है। ऐसे तो कबीर के शिष्य के रूप में अनेक संतों एवं भक्तों के नाम लिये जाते हैं, किन्तु ये पाँच शिष्य ही कबीर के समकालीन एवं गुरुमुख शिष्य प्रमाणित हो सकते हैं। पद्मनाभ एवं ज्ञानी जी का उल्लेख नाभाजी ने किया था। प्रियादास ने तत्वाजीवा की कबीरवट वाली कथा का उल्लेख किया था। कबीरपंथी ग्रन्थ "कमाल बोध" में कमाल को उपदेशार्थ गुजरात भेजने का उल्लेख है। संभवतः कमाल ने अपनी उत्तरावस्था गुजरात के अहमदाबाद में बिताई थी।

ज्ञानीजी जेसलमेर के राजकुमार चतुरसिंह थे। विरक्त होकर वे संत खोजीजी के पास गये थे। खोजीजी ने उनको कबीर साहब के पास कबीरवट में भेजा था। कबीर से दीक्षा पाकर कबीरवट के सामने तट पर मणिपुर (वर्तमान मोटा सांभा) में उन्होंने निवास किया था। पद्मनाभ गुजरात की तत्कालीन राजधानी पाटण में निवास करते थे, जहाँ आज भी उनका स्थान 'पद्मवाड़ी' है। सूरत में निर्वाण साहब के अखाड़े में उनकी समाधि तथा उनके स्मरण-चिह्न आदि हैं। एक तत्वाजीवा कबीर साहब की आज्ञा से अपना निवास-स्थान मंगलेश्वर छोड़ बिहार के फतुहा गाँव चले गये थे।

———

गुजरात में कबीर की शिष्य-परम्परा



गुजरात में कबीर की वर्तमान शिष्य-परम्पराएँ

(१) शेरखी गद्दी (वड़ौदा)–कबीर-पद्मनाभ-नीलकंठ-रघुनाथदास-यादवदास-षट्प्रज्ञदास (छट्ठा बावा)-माणसाहब–रविसाहब-रामदास-बालदास-रेवादास-राविका-दास-राघवदास-माधवदास-रघुवीरदास।

(२) मोटासांभा गद्दी (राजपीपला विभाग)––कबीर-ज्ञानीजी-ज्ञानदेव-रामदेव-वासुदेव-नरमेराम-आमेराम-दयाराम - रघुनाथदास - रामदास - हरगोविंददास-गोपालदास-गोरधनदास-रामकृष्णदास-मधुसूदनदास।

(३) कबीर वट-गद्दी (भरूच)--कबीर-नीरदास-देवदास (ज्ञानीजी का शिष्य)-रघुनाथदास-दयालदास-भगवानदास-देवादास-जगन्नाथदास-कमलदास-बालकदास-रामरतनदास-गोरधनदास-रामदास-विश्नुदास-तुलसीदास-गोकुलदास।

(४) पुनियाद गद्दी (वड़ौदा)—कबीर-ज्ञानीजी-भगवानदास-गोपालदास-जीवणजी-स्यामदास-द्वारकादास-राघवदास-वसंतदास-नरसिंहदास-भगवानदास-रघुनाथदास-जगन्नाथदास-यदुनाथदास-जगदीशचन्द्र।

(५) सोखड़ा गद्दी (वड़ौदा)—कबीर-कमाल-दादू-जग्गाजी-नरसिंहदास-स्वामीदास-माणाभाई-वसनजीभाई-संगजीभाई-वृन्दावनदास-छबीलदास - धर्मदास-रतनबाई-हिंमतलाल-प्रभाशंकर-बापूरामजी।

अध्याय दूसरा

कमाल तथा निर्वाण की परम्परा

कबीर-पंथी ग्रंथों में भी इसको स्वीकार किया गया है, कि कमाल साहब कबीर मत का प्रचार करते थे, तथा तदर्थ वे अहमदाबाद भेजे गये थे।[1] उन्होंने अहमदाबाद में निवास किया था, तथा समग्र गुजरात में उन्होंने भ्रमण किया था। गुजरात के विभिन्न विभागों से उन्हें शिष्य प्राप्त हुए थे। गुजरात में कमाल ने कोई पथ नहीं चलाया। सूरत के सुप्रसिद्ध संत निर्वाण साहब के मिलन एवं सत्संग के लिये वे उनके पास गये थे। निर्वाण साहब ने उन्हें सगुण-निर्गुण से परे जो तत्व है, उसको समझाया था।

निर्वाण साहब

कहते हैं, निर्वाण साहब मूल रामानन्दी जायल गद्दी के महंत केशवदास के शिष्य थे। गुरु-आज्ञा से सूरत के नवाब की क्रूरता को दूर करने के प्रयोजन से सं० १५३७ में सूरत आये थे। तत्कालीन नवाब हयातखान ने हिन्दुओं के लिये कड़े कानून बनाये थे। कोई भी हिन्दू साधु किले के अंदर नगर में नहीं जा सकता था। इसी कारण से पकड़े गये एक साधु के यह पूछने पर कि हमें बिना अपराध क्यों पकड़ा गया है, हयातखान ने उसको कत्ल कर दिया था।

निर्वाण साहब पर अमानुषी अत्याचार किये गये थे; किन्तु निर्वाण साहब ने अपने योगबल से इसका प्रतिकार किया तथा अन्त में नवाब को उनके सामने झुकना पड़ा। निर्वाण साहब तथा उनकी परम्परा के सन्तों के प्रभाव से हिन्दुओं पर होते जुल्म कम हो गये। अनेक हिन्दू तथा मुसलमान उनके भक्त थे। मुसलमान उन्हें पीर मानते थे। कबीर साहब से उनका सत्संग हुआ था। उनके प्रभाव से "निर्वाण महाराज" के नाम को छोड़ कबीर साहब का दिया हुआ "निर्वाण साहब" नाम उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

---

१. "चले कमाल तब सिस नवांई।
अहमदाबाद तब पहुंचे जाई।"—बोधसागर (बम्बई), पृ० १५१५

कमाल साहब

संत कमाल साहब को कबीर साहब के साक्षात् शिष्य मानने में समय की दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि कबीर के सीधे या औरस पुत्र के रूप में भी वे उनके समसामयिक ठहरते हैं। कमाल कबीर साहब के पुत्र थे या शिष्य मात्र थे, इस पर मतभेद है। कबीरपंथी उनको कबीर का पुत्र नहीं मानते, क्योंकि वे कबीर को गृहस्थ के रूप में नहीं स्वीकार करते। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने आदि ग्रन्थ के एक पद के आधार पर कबीर को गृहस्थ माना है।[1] संप्रदाय वाले आदि ग्रन्थ में संगृहीत कबीर की वाणी को प्रामाणिक नहीं मानते। पंथ के साहित्य में कमाल के जन्म के विषय में एक चमत्कारिक घटना का उल्लेख किया जाता है। बादशाह सिकन्दर के सामने गङ्गा में बहते हुए किसी लड़के के शव को कबीर ने जीवित किया; इस पर सिकन्दर के मुख से "कमाल" शब्द निकल पड़ा। बस वही उस लड़के का नाम हो गया और वह कबीर का शिष्य बन गया।[2]

कमाल साहब की बहुत कम वाणी प्राप्त होती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की त्रिवार्षिक खोज रिपोर्ट (१९३२-३४) में प्राप्त हुये एक पद में उन्होंने "कबीर के पूत कमाल है, जिन यह मत जाणीं।" लिखा है।[3] गुजरात में उनकी अन्य रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। उनमें उन्होंने अपने आपको "कबीर का बालका" कहा है।

"कहत कमाल कबीर का बालका, राम का नाम तेरा संग-साथी।"

यह कहा जाता है कि शिष्य भी अपने को गुरु का पुत्र लिख सकता है; किन्तु जैसा उल्लेख कमाल ने किया है, कबीर के अन्य किसी शिष्य ने नहीं किया। उनकी वाणी में "कहत कमाल कबीर का बालका" ऐसा आता है, जैसा कबीर के पदों में "कहत कबीर सुनो भाई साधो।" आता है। कमाल साहब का ऐसा उल्लेख अकारण नहीं हो सकता। डा० केदारनाथ द्विवेदी के दिये हुये उद्धरणों में भी "कबीर का पूत कमाल" का उल्लेख है।[4] गुजराती कवि मुकुंद की भक्तमाल (सं० १७०८) में भी लिखा है; कि कमाल कबीर के पुत्र थे, तथा शिरोमणि संत थे।[5] राघोदास की भक्तमाल में कमाल पर लिखी गई एक कुंडलिया में उन्हें कबीर का पुत्र बताया है।

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २६५।

२. कबीर ग्रन्थ प्रकाश, पृ० ६०।

३. त्रिवार्षिक विवरण—का० ना० प्र० स०, पृ० ४२।

४. कबीर और उनका पंथ, पृ० ८४।

५. ना० प्र० पा० पं० ११, पृ० २३०।

करणी जीत कबीर-सुत, अद्‌भुत कला कमाल की ।[1]

पिता-पुत्र के मतभेद का कारण—कमाल के विषय में एक निंदात्मक श्लोक लिखा गया है ।

बूड़ा वंश कवीर का, उपजियो पूत कमालू ।
हरिका सुमिरन छांड़ि के घर ले आया मालू ॥
(गुरु ग्रंथ साहेव, सलोक—११५ ।)

यह दोहा कवीर का लिखा हुआ है, ऐसा कहा जाता है; किन्तु कमाल से अप्रसन्न किसी अन्य साधु की रचना होने की संभावना अधिक है ।

संत कमाल पहुँचे हुए संत थे । वे पंथ-रचना के विरोधी थे ।[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, कि जव उनसे कवीर संप्रदाय की स्थापना की बात कही गई, तो वे राजी नहीं हुए और कवीर के दुनियादार चेलों ने खिन्न होकर "बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल" कहा था ।[3]

आ० क्षितिमोहन सेन ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा था "कमाल ने पंथ-रचना के प्रस्ताव के जवाव में कहा था, कि मेरे पिता के शब्द और सिद्धान्तों की हत्या, उनकी हत्या के वरावर है, जो मेरे लिये संभव नहीं है ।" इस वात पर रुष्ट होने पर लोगों ने यह कहा कि—कमाल के इस रुख से कबीर की परंपरा ही लुप्त हो जायगी ।[4]

गुजरात के कवीरपंथी साहित्य में इस विषय पर एक अन्य दोहा प्रसिद्ध है जिसमें उक्त दोहे की द्वितीय पंक्ति जोड़ दी गई है । इस दोहे से यह स्पष्ट होता है कि कबीर के पीछे उनके नाम पंथ नहीं चलाने के अपराध में ही कमाल को पिता के वश को डुबो देने वाला तथा धर्मदास को 'सत्‌नाम का नेजाधारी लाल' कहा है ।

नेजा ग्रही सत्‌नामका, धर्मदास एक लाल ।
बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल ॥

गुजराती के एक प्राचीन कवि मुकुंद (सं० १७०७) ने अपनी भक्तमाल में कमाल साहब को महाशिरोमणि संत कहा है । दुःखहरण की भक्तमाल में कमाल की प्रशस्ति में एक दोहा कहा गया है, जिसमें कवीर को आधा तथा कमाल को पूरा भक्त कहा था, क्योंकि कबीर एक अज्ञात जुलाहे के पुत्र थे, जब कमाल महात्मा कबीर के पुत्र थे ।

---

१. राघोदास की भक्तमाल, सं० श्री अगरचंद नाहटा, पृ० ८१ ।
२. कबीर एन्ड हिज फालोअर्स—एफ० ई० की, पृ० ४५ ।
३. हिन्दी साहित्य, पृ० १४१ ।
४. मिडिएवल मिस्टीसिज्म आफ इण्डिया, १९३०, पृ० ९१ ।

कमाल गुजरात में आते थे, तब मार्ग में ऐसे अनेक भक्तों के उद्धार का उल्लेख मिलता है। अयोध्या के सीतापुर में एक ब्राह्मण के पुत्र. जम्मु को उपदेश दिया था, जो बाद में "जम्मु साहब" कहलाया। मारवाड़ में सुरताजी तथा जुगनू नाम का एक किरात-दोनों कमाल साहब के उपदेशों से विरक्त हो गये। सांगानेर में नरपतिसिंह राठौर, झालोर गढ़ में पद्मसेन चौहान, तथा सिरोही में रमानाथ ब्राह्मण कमाल साहब के भक्त हुए थे। पालनपुर में "मेहाजी" नाम के जाट राजपूत को उपदेश देकर कमाल साहब वहाँ से दांता गये थे। वहां कुंभा नाम के भील का उद्धार किया था। दांता से वे पाटण आये थे। पाटण में देवचंद नाम का वणिक उनके उपदेशों से विरक्त हो गया। पाटण के पास सिद्धपुर के एक किसान की पत्नी दुराचारिणी थी। कमाल साहब के उपदेश से वह साध्वी बन गयी उन्होंने संतवाणी लिखी है। उनके कुछ गीत भी प्राप्त होते हैं।

कमाल के गुरुमुख शिष्य—गुजरात में कमाल साहब के गुरुमुख शिष्यों में संत दरियाखान, संत बाँकीदास, संत दुर्जनसाल के वृत्त मिलते हैं। स्यामदास की रचनायें प्राप्त हुई हैं, उनका जीवनवृत्त अप्राप्य रहा है। संत दादू दयाल गुजरात के अहमदाबाद के निवासी थे तथा कमाल साहब के प्रभाव में आये थे, इसलिये उनकी गणना कमाल के शिष्यों में की गई है।

(१) संत दरियाखान

दरियाखान अहमदाबाद के निवासी थे ; जाति के पठान थे। ये कमाल के प्रमुख शिष्यों में थे। दरियाखान कवि थे। उनकी रचनाओं में गुरु रूप में कमाल साहब का उल्लेख हुआ है। उन्होंने अपने गुरु कमाल की प्रशस्ति की है। उनकी भाषा में उर्दू का प्राधान्य दिखाई देता है।

मुरशिद भेद बताइया, साहिब संत कमाल।
रब्ब रहिमन पेखके, दरियाखान हुए न्याल ॥
इल्म कमाल को पाय के दरियाखान गये जीत ॥

दरियाखान ने अनेक पदों की रचना की है। उनके पदों में संसार की निस्सारता, नाम-जप का उपदेश तथा सद्गुरु की प्रशस्ति है। हरिदर्शन के विषय का उनका एक पद द्रष्टव्य है।

तेरा जलवा कौन दिखावै।
तेलन बाती, सूझत न ज्योति, जाग्रत कौन लखावै ॥
बीज चमकै, झरमर मेह बरसै, नवरंग मोर भीजावै ॥

पल एक पीव दिदार न दिसे, जियरा बहुत तड़पावें ।
दरियाखान को खोज लगाकर, आप ही आप मिलावें ॥[1]

झुलन फकीर—संत दरियाखान का एक झूलन फकीर नाम का शिष्य था, जो बाद में "सांई झूलनशा पीर" के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने भी संतवाणी की रचना की थी। एक रचना द्रष्टव्य है।

ख्वाब को देख के भूल मत राचिये, यह बाजीगर का खेल है जी।
रूप जोवन दिन चार का देखना, जबलग दीप में तेल है जी।
हम तुम दोनों हिलमिल रहे, यह सराय पल छिनका महेल है जी।
"झूलन फकीर" पुकार कर कहे, क्यों बंदे बदफेल है जी।[2]

(२) संत कवि बाँकीदास

कमाल साहब ने गुजरात का भ्रमण किया था। वे सूरत गये थे। संभवतः वे चांदोद, नांदोद (राजपीपला) वाले मार्ग से गुजरे थे। उस काल में नांदोद में भीलों की बस्ती विशेष थी। बाँकीदास नाम का एक भील मृग का शिकार करके आता था। मार्ग में उसको कमाल मिले। कमाल साहब के उपदेश से उसने हिंसा करना छोड़ दिया। वह कमाल साहब का शिष्य बन गया। उनके विषय में संतकवि दूलाराम ने लिखा था।

सुकृत अगले जनमके, भेट्या संत कमाल।
विकट यही संसार में, बांकीदास हुये न्याल ॥
साधु परहित पेखके, निकसे पंथ कराल।
बांकीदास प्रभु को भजो, अब तो चल ही कमाल ॥

(माणेकलाल राणा के संग्रह से)

कमाल साहब के साथ बांकीदास व्यास-तीर्थ गये थे। वहाँ भजन करने का उपदेश देकर कमाल साहब आगे चले गये। अनेक वर्षों के बाद वे कमाल साहब से मिलने गये थे, वहाँ कबीर साहब भी उनको मिले थे। संतसमागम से बांकीदास काव्य-रचना करने लगे थे। उनके पदों में कबीर साहब के आत्मतत्व तथा परब्रह्म से प्रेम के दर्शन होते हैं। उनके एक पद में सद्गुरु के वियोग का वर्णन है। उन्होंने अपने विरह की तुलना मछली तथा चकवी से की है।

जल भीतर मछली खेले, चकवी चाहत भोर।
साहेब कमाल बिछुरें मिलें हों, बांकीदास प्रभु भोर ॥

---

१. संत वाणी अंक—(पृ० ४४८) कल्याण, गोरखपुर।
२. वही।

निम्नलिखित एक पद में कबीर के आत्मतत्व का सुन्दर वर्णन है ।

खोज पियारे अपने घट में, हरदम साहिब तेरा है ॥ टेक ॥
परदेशां खोजन गये री, घर हीरा की खाण है ।
अपने घर की सुध बिसरायो, ऐसो तू नादान है ॥ १ ॥
कस्तुरी मृगनाभ में, ढूंढत फिरै बनवास है ।
ज्यों मेंहदी में लाली छिपाई, पियरा तेरे पास है ॥ २ ॥
बोलनहार की खोज लगावो, उनकी दौर हुल्लास है ।
प्रेम का झूला साहिब बैठे, तू उनका ही दास है ॥ ३ ॥
साहिब कमाल को पिव पिछनाया, सब घट प्रेम प्रकाश है ।
'बांकीदास' बाहिर मत ढूंढे, आतमराम अविनाश है ॥ ४ ॥

(श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से)

(३) संत दुर्जनसाल

कबीर साहब ने कमाल को काशी से गुजरात में भेजा था । इस प्रसंग पर एक दोहा कहा गया है ।

सद्गुरु दया उपजी, देख जगत का हाल ।
शरणागत उबारने, धाया पूत कमाल ॥

("राजपूत बन्धु" (बड़ौदा) दिसम्बर, १९४७)

काशी से निकलकर गुजरात आते हुए मार्ग में "सोजीत" गांव के पनघट पर वे पानी पीने को रुके थे । एक राजपूत युवक वहां स्त्रियों की छेड़छाड़ कर रहा था । कमाल साहब ने उसको उपदेश देने का प्रयास किया, किन्तु उसने कमाल साहब का मजाक उड़ाया । कमाल साहब अत्यन्त स्वरूपवान थे, उनको देखकर पनिहारियां उनके प्रति आकृष्ट हुईं, किन्तु कमाल साहब ने विनम्रता से कहा ।

सुन्दर मुख, विमल छवि, जा दिन ग्रसे काल ।
कमाल किसी का न रहे, ता दिन कौन हवाल ॥

कुछ समय पश्चात् कमाल के उपदेश का प्रभाव दुर्जनसाल पर होने लगा । उनके हृदय में परिवर्तन हुआ । वे उन नारियों को अपने साथ मेले में ले जाने को आये थे, किन्तु जब चले गये तो उन नारियों ने समझा कि अकेले मेले में चले गये होंगे किन्तु वे तो कमाल साहब के पीछे गये थे । कमाल को पाकर उन्होंने चरण पकड़ लिये तथा उनके साथ हो गये । कमाल साहब ने उनको सरस्वती तट पर सिद्धपुर के पास रह कर हरिस्मरण करने की आज्ञा दी । गुरु से बिछुड़ने का दुःख उन्होंने अपनी वाणी में व्यक्त किया है ।

पनघट पंथ छुड़ायके, लाये वसमी वाट।
बिचमें लूटत हो बालमा, कैसे मिटत उचाट॥

कुछ वर्ष पश्चात् दुर्जनसाल गुरु से मिलने काशी गये थे। कमाल कबीर साहब की सेवा में थे। दुर्जनसाल को देख उन्होंने कबीर साहब से निवेदन किया कि यह मेरा शिष्य "नामस्मरण" प्राप्त करके आया है।[1] उस समय कबीर ने निखालसता से कमाल की सराहना की थी।

कबीर खोजी नामका, खोज फिरे संसार।
निज घरमें थे जौहरी, उनका नहीं पतिहार॥

गुरु की अनुज्ञा लेकर दुर्जनसाल गये। दूसरे ही दिन देखा, तो उन्होंने देहत्याग किया था। कबीर ने कहा : "ये सुघड़ खेलाड़ी थे, जीत गये।"

(४) संत स्यामदास

संत स्यामदास के जीवन का वृत्त अप्राप्य है। उनकी वाणी से लगता है, कि वे गुजराती थे। उनकी वाणी की एक हस्तलिखित पोथी प्राप्त होती है। (यह पोथी लेखक के पास है)। इस ग्रन्थ में उनकी रचनाओं में १४ रेख्ता, ४ जकरी, ४ झूलना, ५० साखी, ४ पद, ४ उलटवासी तथा २ आरती संकलित हैं। उनकी वाणी कबीर वाणी की परंपरा का निर्देश देती है।

स्यामदास के आराध्य राम हैं। राम के साथ उनका सम्बन्ध चन्द्र-चकोर का है, उनका प्रकाश उनके रोम-रोम में फैल गया है। "स्याम सनेही राम है, रोम-रोम प्रकाश।" स्यामदास के राम बाहरी राम नहीं हैं, घट-घट में व्यापी आतमराम हैं, ये मात्र नाना प्रकार के भेष धारण करते हैं।

स्याम सनेही राम है, आपन ही में देख।
सब घट रमता राम है, नाना विधि के भेख॥

उनके राम निर्गुण राम हैं, मेंहदी के पत्तों में जो लाली छिपी हुई है, ऐसे ईश्वर निरंजन हैं। "मेंहदी केरे पात ज्यूँ, लाली लखी न जाय।"

स्यामदास कमाल के शिष्य थे। उन्होंने अपनी वाणी में गुरु के रूप में कमाल साहब के नाम का उल्लेख किया है।

स्यामदास मंगल कहे, सद्गुरु मिले हि कमाल।
अधर साहेब का डोरना, हम ही झुलावनहार॥ (ह० लि० प्र०, पृ० ११)

ब्रह्म को 'पुष्प की सुवास' की कबीर की उपमा का उपयोग स्यामदास ने निम्नांकित रचना में किया है।

---

१. इल्म फकीरी नावड़ी, बड़ो, "साहेब" को नाम।
दुर्जनसाल जो पायके, आया गुरु के धाम॥

सून्नके महल में, तख्त आछा बन्या, पिव की स्हेज पर मौज पाया।
आपमें पिव और पिवमें आप है, आपको देख दूजा वहाया।
कहे स्यामदास सद्गुरु प्रताप से, पुहुप की वास, ज्यों ब्रह्म छाया॥

नामदेव तथा कबीर की वाणी का स्यामदास ने अध्ययन किया हो ऐसा प्रतीत होता है। नामदेव, सूर तथा कबीर की वाणी प्राप्त होने का स्यामदास ने उल्लेख किया है।[1] "सास बहू के पास सोती है, तो पुत्र माता को जन्म देता है।" ऐसी उलटवासियाँ भी स्यामदास ने हिन्दी में लिखी थीं।

(५) संत दादू दयाल

संत दादू का जन्म गुजरात में अहमदाबाद में हुआ था। दादू के शिष्य जनगोपाल ने अपनी "परची" में लिखा है कि अहमदाबाद में बचपन में वे कांकरिया के तालाब पर खेलते थे और वहीं उनको गुरु का मिलन भी हुआ था। दादू की भाषा पर गुजराती भाषा का प्रभाव है। उनके नाम कुछ गुजराती रचनाएँ भी देखने में आती हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन को अहमदाबाद में दादू के चिह्न ढूँढने में सफलता न मिली तथा लोगों के अज्ञान एवं उदासीनता का सामना करना पड़ा;[2] इससे आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी अपना कोई मत स्थिर नहीं किया। दीक्षा के पश्चात् वे नराणा चले गये थे, तथा मृत्युपर्यंत वहीं रहे थे। इस परिस्थिति में अहमदाबाद में उनके कोई चिह्न न मिलें, तो कुछ असंभव नहीं है।

दादू का जन्म सं० १६०१ में तथा निर्वाण सं० १६६० में हुआ था।[3] उनके पिता का नाम लोदीराम था, वे नागर थे तथा उनका विवाह वड़नगर में हुआ था। गरीबदास तथा मिस्कीनदास उनके पुत्र थे, ऐसा कबीरपंथी महंत श्री तपस्वी साहब ने लिखा है।[4] किन्तु दादू ने स्वयं अपनी वाणी में अपने को पिंजारा जाति का बताया है। "किसगु पूजै गरीब पिंजारा।" दादू की दो पुत्रियों के नाम नन्बा तथा सुन्बा था। इसके आधार पर दादू मुसलमान पिंजारा लगते हैं। आचार्य सेन ने "श्रीयुक्त दाऊद वंदि दादू यार नाम" के आधार पर दादू का मूल नाम दाऊद माना है।[5] दादू के मृत्यु स्थान नराणा के विषय में संभवतः कोई मतभेद नहीं है।

---

१. नामा, सूर, कबीर की, वाणी अगम अगाध।
आई है हर हुकमनु स्याम तुम्हारे हाथ॥ ५०॥

२. 'दादू' उपक्रमणिका, पृ० ११।

३. 'संत दादू' सस्ता साहित्य, अहमदाबाद (भूमिका)।

४. कबीर धर्म प्रकाश (२०१६), पृ० २६८।

५. 'दादू', पृ० १७।

दादू के शिष्य रज्जब तथा गोपालदास ने लिखा है कि दादू ने फत्तेपुर सिक्री में अकबर के साथ ४० दिन तक समागम किया था।

अकबर शाही बुलाइया, गुरु दादू को आप।
सांच झूठ ब्योरो हुओ, रह्यो 'नाम' प्रताप।।

उन्होंने धर्म के विविध अंगों पर चर्चा की थी। अल्लाह क्या है? प्रश्न का उत्तर देते हुए दादू ने कहा था, कि अल्लाह प्रेम का दूसरा नाम है।

इश्क अलह की जाति है, इश्क अलह का अंग।
इश्क अलह मौजूद है, इश्क अलह का रंग।।

दादू का गुरु—संत दादू ने अपनी वाणी में अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया, इसलिए उनके गुरु का प्रश्न विवादास्पद रहा है। इसके विषय में विद्वानों ने विविध मत स्थिर किये हैं।

विभिन्न मत—डॉ० विलसन तथा आ० परशुराम चतुर्वेदी ने बुढ्ढन को दादू का गुरु माना है। पं० सुधाकर द्विवेदी, आ० हजारी प्रसाद तथा डॉ० ताराचन्द ने कमाल को दादू का गुरु स्वीकार किया है। दादूपंथी तथा कबीरपंथी कबीर को ही उनका गुरु मानते हैं। डा० त्रिगुणायत तथा डा० रामकुमार गुप्त मानवगुरु के अभाव में तथा दादू कबीर का समकालीन सिद्ध नहीं होने से कबीर को मानसगुरु के रूप में स्वीकार करते हैं।

दादू के किसी भी मानसगुरु को स्वीकार नहीं करने वाले विद्वान् दादू की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं, जिसमें दादू ने पशु, पक्षी तथा वनस्पति को भी गुरु बनाने का उल्लेख किया है।

दादू सबही गुरु किया, पशु पंखी बनराई।
पंचतत्व, गुन तीन में, सब ही मांही खदाई।।

किन्तु एक अन्य साखी में "साचा समरथ गुरु मिला, तिन तत्व दिया बताई।" भी लिखा है। वह एक ऐसा समय था, जब "निगुरा" रहना पाप समझा जाता था।

दादू ने कबीर के नाम का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया है, किन्तु कहीं भी उन्हें अपना गुरु नहीं लिखा।

कबीर बिचारा कही गया, बहुत भांति समुझाई।
दादू दुनिया बावरी, ताके संग न जाई।। १८६।।
(दादू दयाल की बानी, पृ० १५१)

ऐसी ही एक अन्य साखी में कबीर के विषय में अतीत का संकेत मिलता है।

तन मटकी, मन हीं प्राण बिलोवनहार।
तत्व कबीरा ले गया, छाछ पिये संसार।।[1]

---

१. 'संत दादू', पृ० ६, सस्ता साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद।

इसमें "तत्व कबीर ले गया', में कबीर के निधन की सूचना है।

दादू का समय सं० १६०१ से १६६० है। कबीर साहब का निधन सं० १५५२ के लगभग हुआ था, किन्तु यदि सं० १५७५ के वर्ष को भी लिया जाय तो भी दादू कबीर के समकालीन नहीं ठहर सकते। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने दादू को कबीरपंथी बताकर कबीर के प्रभाव का समर्थन किया, किन्तु दादू के गुरु का निर्णय नहीं दिया।[1] श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने भी दादू को गुजराती तथा कबीरपंथी कहा था। उनके गुरु कमाल या बुढ्ढन थे, ऐसा लिखकर निर्णय नहीं दिया था।[2] गरीबदास ने दादू के गुरु के रूप में कबीर का समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है, कि वह बूढ़ा बाबा कबीर थे। उन्होंने दादू को पान की पीक दी थी। "दादू को सद्गुरु मिले, दी पान की पीक।"

डा० विल्सन ने कमाल की चौथी पीढ़ी के शिष्य बुढ्ढन को दादू का गुरु माना है।[3] आ० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि सुन्दरदास ने जिस वृद्धानन्द का उल्लेख किया है, वही यह बुढ्ढन है। किन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि सं० १६१९ में किसी बुढ्ढन या वृद्धानन्द का वर्तमान होना किन्हीं प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं हुआ।[4]

कोई भी कबीरपंथी संत किसी अन्य संत के गुरु के रूप में कबीर साहब के नाम का उल्लेख करता है, तब उस संत को कबीर का समकालीन नहीं समझना चाहिये; क्योंकि ये लोग कबीर साहब को त्रिकाल व्याप्त मानते हैं। अपने समकालीन नहीं होने पर भी उन्होंने धर्मदास, गरीबदास आदि को दर्शन दिया था तथा उनके प्रायः सौ वर्ष पूर्व हुए गोरखनाथ को भी हराया था।

दादू के गुरु के रूप में कबीर साहब का समर्थन करने वाले गरीबदास ने ही दादू के जीवन का एक प्रसंग लिखा है, जिसमें स्पष्ट होता है, कि दादू ने कभी कबीर साहब को देखा न था। एक दिन संत दादू ने अपनी सभा "अलख दरिबा" में एक प्रश्न पूछा, कि यहाँ कोई ऐसा है, जिसने कबीर साहब को देखा है? एक वृद्ध ने कहा, कि मैंने बचपन में उन्हें देखा था। मैं अपने नाना के साथ काशी में उनकी सभाओं में आता था। उनकी देह शीशे जैसी पारदर्शक थी; नजर रुकती न थी। मैं उनको देखा ही करता था। दादू ने उनकी आँखें धुलवा कर उस जल का आचमन किया तथा अन्य संतों को भी दिया। दादू की यह पंक्ति इसके समर्थन में दी जाती

1. हिं० सा० इ० (तेरहवाँ संस्करण), पृ० ८६।
2. मध्यकालीन साहित्य, पृ० ३२४।
3. रिलिजस सेक्ट्स आफ दी हिन्दूज, पृ० १०३।
4. उ० भा० सं० प० (द्वितीय संस्करण), पृ० ४९२।

है। "जिन आँखिन गुरु देखिया, सो किन पिवे धोय।"[1] इससे स्पष्ट है, कि दादू कबीर के समकालीन नहीं थे।

गुरु कमाल—डा० ताराचन्द ने दादू को कमाल का शिष्य कहा था तथा दादू पर संत कमाल द्वारा सूफीमत का प्रभाव पड़ने का निर्देश किया था।[2] गुजरात के संत साहित्य के विद्वान् लेखक श्री अनवर आगेवान ने कमाल को दादू का गुरु माना है।[3]

डा० बड़थ्वाल ने दादू के गुरु के रूप में कमाल का विरोध ऐतिहासिकता के कारण किया था। दादू को प्रथम गुरु दर्शन सं० १६१२ में हुए तथा दीक्षा अठारह वर्ष की आयु में सं० १६१९ में हुई थी। यह सब कबीर के निधन के पर्याप्त पीछे हुआ। किन्तु कमाल के जीवित होने की संभावना है, और उनके वृद्ध होने की अधिक संभावना है। बुड्ढन कबीर की पाँचवीं पीढ़ी में पड़ता है। तदनुसार उसका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण हो सकता है। दादू का आविर्भाव इसी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। इस दृष्टि से देखने पर कमाल साहब के समकालीन होने की संभावना सर्वाधिक है।

यह प्रसिद्ध है, कि कमाल पंथस्थापना के विरोधी थे। पंथ के अनुयायियों में वे अप्रिय थे; संभवतः इसलिये पंथ में उनका नाम हटाकर कबीर के नाम की स्थापना की गई है।

दादू के लिये कमाल के शिष्य होने की दूसरी संभावना यह थी, कि कमाल अपनी उत्तरावस्था में तथा दादू अपनी पूर्वावस्था में एक ही नगर अहमदाबाद में रहते थे। कबीर की आज्ञा से कमाल ने निवास किया था तथा दादू ने अपने बचपन के प्रायः बीस वर्ष कांकरिया तालाब पर खेलने में काटे थे। अहमदाबाद में कमाल का एक अन्य शिष्य दरियाखान पठान भी था। इस परिस्थिति में दादू कमाल साहब के प्रभाव में आये हों, यह संभव जान पड़ता है।

कमाल तथा दादू के संवाद को "मरम गहरा" नाम से प्रसिद्ध किया गया है। इसमें वर्षा काल में कमाल का दादू के घर जाना, दादू का सत्कार, आदि उल्लेख है। कमाल ने उन्हें कहा था कि मेरे भगवान् मेरे दिल के दरवाजे पर अन्दर आने की प्रतीक्षा में खड़े हैं। दादू ने यही प्रश्न अपने विषय में पूछा; तब कमाल ने उनको "मरम-गहरा" समझाया था। दादू पंथी इसे आज भी गाते हैं

१. कबीर ब्रह्म प्रकाश, पृ० २७१।
२. इन्फ्लूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृ० १८५।
३. 'संत दादू' स० सा० व० का०, अहमदाबाद, पृ० ६।
४. 'संत दादू' स० सा० व० का०, अहमदाबाद, पृ० ९।

दादू के शिष्य—संत लालदास की नाममाला के अनुसार दादू के शिष्यों की संख्या प्रायः १५२ होती है। इसमें से १०० वीतरागी संत थे। अन्य ५२ शिष्यों ने थांवा (स्थान) बनाकर भजन के साथ संसार भी चलाया था। उनमें से अब २५ स्थान बच गये हैं। उनमें से चार या पाँच में ही महंतों की परंपरा बची है।[1]

दादू के प्रमुख शिष्यों में रज्जब, सुन्दरदास, प्रागदास, बाजिंद, जगाजी, जगजीवन तथा बसनाजी के नाम आते हैं। उनके अन्य शिष्यों में राघोदास अपनी भक्तमाल के कारण और निश्चलदास अपने "विचार-सागर" ग्रन्थ के कारण प्रसिद्ध हुए थे।

दादू के शिष्य सुन्दरदास ने गुजरात में भ्रमण किया था। उनकी वाणी के हस्तलिखित ग्रन्थ गुजरात में प्राप्त होते हैं। उनके एक शिष्य जगाजी ने बड़ौदा के पास सोखड़ा गाँव में निवास किया था, जहाँ उनकी समाधि है, तथा उनका पंथ (जगाजी-पंथ) भी चलता है।

जगाजी को मिलने उनके गुरु बन्धु जगजीवन आया करते थे। जगाजी ने अपनी वाणी में इस बात का उल्लेख किया है।[2] इस प्रकार दादू के अन्य शिष्यों का सम्बन्ध भी गुजरात से रहा होगा, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

दादू की रचनाएँ—दादू ने अनेक रचनाएँ की हैं। कबीर वाणी जैसी उनकी साखियाँ भी विभिन्न अंगों में विभक्त हैं। दादू की परंपरा के संतों ने गुरुओं की वाणी का समीचीन संरक्षण किया है। गुजरात में उनकी वाणी की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती हैं।

उनकी वाणी कबीर विचारधारा से प्रभावित है। कई स्थान पर कबीर वाणी का प्रभाव भी देखने को मिलता है। दादू प्रकृति से नर्म तथा समन्वयात्मक वृत्ति वाले संत थे। उनमें नाम मात्र का भी अभिमान नहीं था। अपने अनुयायियों को पंथ चलाने के लिये अपना नाम नहीं दिया, इसे परब्रह्म-संप्रदाय नाम दिया था।

कबीर-विचारधारा का प्रभाव—दादू निर्गुणमतवादी थे। उन्होंने लिखा है कि "मैं निर्गुनिया, गुन नहीं जाना।" दादू ने राम की भक्ति की। कबीर ने राम की जिस रूप में भक्ति की थी, उसी रूप में दादू ने भी की थी।

जो था कंत कबीर का, वही वर मैं वरी हूं।

दादू का मार्ग उनके गुरु द्वारा दिखाया गया था। वही सांई का मार्ग उन्होंने ग्रहण किया था। वेद या कुरान का निर्दिष्ट मार्ग वह नहीं था। दादू ने भी राम के

१. उ० भा० सं० प० (द्वितीय संस्करण), पृ० ५०१।

२. जगा-जीवन मिलिया, जनम मरण में टलिया।—पद-२०।

३. 'संत दादू', पृ० ४७।

में विश्वास किया है। दादू कहते हैं, कि जिसके मुख से राम के नाम को छोड़ कर कुछ और निकलता है, उस अपराधी जीव के लिये तीन लोक में कहीं ठिकाना नहीं है।[1] राम के विरह में दादू तड़पता है, वह रात-दिन रोता है; किन्तु रोते-रोते ही वह साहब में मिल गया।[2]

दादू ने अभिमान-त्याग का उपदेश दिया है, तथा निर्वैरता रखने को कहा है। दादू की वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है।

कबीर—पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होई॥

दादू—दादू अच्छर प्रेम का, कोई पढ़ेगा एक।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढ़े अनेक॥[3]

कबीर—लाली मेरे लालकी, जित देखों तित लाल।

दादू—सब रंग तेरे तें किये, तू ही सबरंग मांही॥[4]

कबीर—केशन कहा बगारिया, जो मूंड़े शत बार।
मनको कहा न मुंडिये, जामें विकार अपार॥

दादू—मनका मस्तक मुंडिये, काम क्रोध के केश।
दादू विषय विकार सब, सदगुरु के उपदेश॥[5]

कबीर—राम न मरि है, तो हम काहेकु मरि है।

दादू—दादू सेवक राम का, निर्भयी, न डराहीं।

कबीर—सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे।
दुखिया दास कबीर है, गावे अरु रोवे।

दादू—सबको सुखिया देखिये, दुखिया नहीं कोई।
दुखिया दादू दास है, ऐन परस नहीं होई॥[6]

(६) संत जगाजी

दादू दयाल के अनेक शिष्यों में एक जगाजी का भी नाम है, किन्तु उनका स्थान तथा जीवनवृत्त अब तक अज्ञात था। जहां उनका समाधि-मन्दिर है, वहां तथा उनके अनुयायियों में उनको रामानन्दी वैष्णव माना जाता है। वड़ौदे से सातेक मील

१. 'संत दादू', पृ० ४७।
२. वही, पृ० ५५।
३. वही, पृ० ५५।
४. वही, पृ० ५८।
५. वही, पृ० ५१।
६. वही, पृ० ५३।

की दूरी पर सोखड़ा गाँव में उनका समाधि-मन्दिर है। गाँव से प्रायः एक मील पर वेलिया-केजर" के बीहड़ स्थान में उन्होंने प्रथम निवास किया था। वहाँ अब एक विशाल मन्दिर बना है।

मन्दिर की ओर से प्रकाशित जगाजी की कुछ वाणी तथा प्रार्थना की पुस्तक "बोध पाठ" के प्रारंभ में जगाजी के आगमन के प्रसंग का उल्लेख है। चरवाहों की गायों में से एक गाय वहाँ जगाजी के पास चली जाती थी, तथा बिना दोहे दूध देती थी। किसी चरवाहे ने इसे देखा। गांव में जाकर सब को समाचार दिये। गांव वाले जाकर जगाजी को गांव में ले आये। पहले "बुधेड-तालाव" पर एक कुटिया में उन्होंने निवास किया था। तदनन्तर उस स्थान पर ठहरे थे, जहाँ आज उनका समाधि-मन्दिर बना है।

सोखड़ा गाँव में एक धनबाई के पुत्र देवजी को "जलंधर" हुआ था। जगाजी की कृपा से वह रोगमुक्त हो गया। देवजी के सात पुत्र थे। गाँव की वर्तमान बस्ती उनकी पुत्र-परंपरा है; इससे यह गाँव "देवजी-सोखड़ा" के नाम से प्रसिद्ध है।

जगाजी की सोखड़ा-आगमन की तिथि "बोध पाठ" में सं० ११११७ जेष्ठ कृष्णपक्ष की द्वितीया दी हुई है। जगाजी को रामानन्द-संप्रदाय की गलताजी शाखा की परंपरा में गेसानन्द का शिष्य बताया है। सर्वप्रथम इन दो बातों का मेल नहीं है। स्वामी रामानन्द (सं० १३५७-१४६७) की परंपरा की छठीं पीढ़ी का शिष्य उनसे दो शताब्दी पूर्व कैसे संभव हो सकता है?

गलता गद्दी की परंपरा कृष्णपयहारी की परंपरा है। उसमें किसी अंगदास या गेसानन्द का उल्लेख नहीं है। कील्हदास के शिष्य के रूप में छोटे कृष्णदास का नाम है।[१] अतः यह परंपरा निराधार है। उसमें कबीर के शिष्य ज्ञानीजी को जगाजी का गुरु-बन्धु बताया गया है, यह भी निराधार कल्पना मात्र है। बोधपाठ में दी गई जगाजी की परंपरा तथा समय दोनों कल्पित हैं।

इस पुस्तिका में जगाजी की आज तक की परंपरा दी गई है, उसमें महंतों की १५ पीढ़ियां हुई हैं। २५ या ३५ वर्ष के औसत गद्दी-काल के आधार पर भी बोधपाठ में दिया गया वर्ष कल्पित ही ठहरता है। वस्तुतः जगाजी रामानन्दी सगुण भक्त नहीं थे। जगाजी का मन्दिर राम का मन्दिर नहीं है, उनकी समाधि पर बनाई छत्री है। मूर्ति की नहीं, समाधि की पूजा होती है। एक घटना का उल्लेख होता है, कि किसी ने मन्दिर में रखी रणछोड़जी की मूर्ति को चेरीटी कमिश्नर द्वारा हटवा दिया था। इससे निर्देश मिलता है, कि जगाजी की परंपरा मूर्तिपूजक संप्रदाय की नहीं है। जगाजी की वाणी से भी वे निर्गुणपंथी लगते हैं।

---

१. रामानन्द सम्प्रदाय, पृ० २००।

दादू दयाल के शिष्य—"बोधपाठ" में जगाजी के ३५ शब्द, ३५ कवित्त तथा २४ साखी हैं। "बोधपाठ" की वाणी में कहीं दादू का उल्लेख नहीं है। संयोग से मन्दिर के एक बहुत पुराने भक्त से दादू तथा उनके जगाजी सहित अन्य शिष्यों की वाणी का एक हस्तलिखित ग्रन्थ[1] प्राप्त हुआ। इसमें जगाजी के पदों में गुरु रूप में संत दादू दयाल के नाम का उल्लेख है। इस ग्रंथ में जगाजी के चार पद हैं, जो "बोधपाठ" में संकलित नहीं किये गये।

उल्लेख—(१) आचार्य चतुर्वेदी ने दादू के बावन शिष्यों में से तेईस शिष्यों के नाम दिये हैं, उन नामों में जगाजी का नाम है।[2] (२) राघोदास की भक्तमाल में दादू के शिष्यों में वसनाजी के साथ जगाजी का नाम है। "वसनो, जग्गो, लाल, भाखु, टीला अरु चाँदा।"[3] (३) जगाजी की वाणी के हस्तलिखित ग्रन्थ में चार पद हैं। उनमें पहले पद में जगाजी ने अपने गुरु दादू दयाल की महिमा गाई है तथा दूसरे पद में दादू की कृपा का उल्लेख किया है। उन्होंने अनेक दृष्टांत दिये हैं; जैसे महादेव ने सुकदेव को, गोरख ने भरथरी को, दत्त ने यदुराय को, विश्नु ने नारद को, कृष्ण ने सुदामा को, नामदेव ने त्रिलोचन को, कबीर ने हरिदास को, रामानन्द ने रैदास को तथा पद्मनाभ ने अध्यारु को कृपा कर अपनाया, ऐसे दीनदयाल दादूजी ने मुझे अपना लिया। (४) राघोदास ने भक्तमाल में दादू के शिष्यों के भजनस्थल (स्थान) का उल्लेख किया है। जगाजी का स्थान भरूच की ओर होने का उल्लेख इसमें है। "जगाजी भडोंच मधि, प्रचाधारि मानिये।"[4] (५) जगाजी के जीवन विषयक किसी प्रसंग का उल्लेख सोखड़ा से प्राप्त नहीं होता। संत दादू का नाम भी उनको अज्ञात है; किन्तु दादू के शिष्य राघोदास ने अपने गुरुवन्धु के जीवन तथा व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डाला है।

"जगाजी में परिपक्व भक्ति-भावना थी। वे सन्त तथा गुरु की सेवा करते थे। फत्तेपुर सीक्री से सलीमाबाद गये थे। वहां रसोई का काम सौंप कर "सीरनी" की भिक्षा कराकर कसौटी हुई। इसमें उत्तीर्ण होने पर उन्हें दक्षिण में भरूच की ओर भेजा गया था। दादू दयाल का वह शिष्य जगाजी जगदीश की ज्योति के समान था।"[5]

जगाजी की वाणी में "जगजीवन" तथा "जीवन" शब्द का उल्लेख अनेक बार हुआ है। संभव है, वह जगाजी के गुरुबंधु जगजीवनदास के विषय में हो। "जगा-जीवन

१. लिपिकाल—सं० १८२०, स्थान—बवाणी, लिपिकार—सुखराम गुरु बलिराम।
२. उ० भा० सं० प०, पृ० ५०२।
३. 'राघोदास की भक्तमाल' सं० श्री अगरचंद नाहटा, पृ० ३६२।
४. वही, परिशिष्ट—१, पृ० २७०।
५. राघोदास की भक्तमाल—वही परिशिष्ट १, पृ० १९७।

झलिया जनम-मरण भे टलिया ।" तथा "जगा-जीवन मिले, निर्वाण सूझे ।" जैसे उल्लेखों में जगाजी के साथ जगजीवन के मिलन की सूचना-सी लगती है ।

जगाजी के समय का निर्णय—जगाजी के जन्म तथा मृत्यु के वर्ष अज्ञात हैं। उनके जन्म का वर्ष निर्णीत करना दुष्कर है, किन्तु उनके निधन के वर्ष का अनुमान किया जा सकता है। उनका समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध था, क्योंकि सन्त दादू का समय सं० १६०१ से १६६० है ।[1] जगाजी उनके समकालीन थे ।

दादू के शिष्य सुन्दरदास के विषय में प्रसिद्ध है, कि जब वे शिष्य हुए, तब बालक थे। जगजीवनदास ने उनको काशी भेज संस्कृत पढ़ायी थी। कहते हैं, सुन्दर-दास सन्त दादू के 'जग्गा' नाम के एक शिष्य के अवतार थे ।[2] सुन्दरदास के जन्म का वर्ष सं० १६५३ था। जगाजी के निधनोपरांत तुरन्त ही सुन्दरदास का जन्म हुआ होगा जिसने इस प्रकार अवतार लेने की जनश्रुति को जन्म दिया होगा। तदनुसार उनकी समाधि का वर्ष सं० १६५२ प्रतीत होता है। जगाजी की परम्परा की १५ पीढ़ी के अनुसार भी यही समय आता है ।

जगाजी पर कबीर-मत का प्रभाव—जगाजी निर्गुण राम के भक्त थे। रघुकुल मणि राम को वे निराकार ब्रह्म मानते थे ।

व्यापक राम चराचरो, राम अंतरयामी ।
तेहज राम सीतापति, जन जगाजी स्वामी ॥ (बोध पाठ, पृ० २४)

जगाजी के सांई "सर्व निरन्तर" तथा "सर्वव्यापक" हैं। अपने आप निराले हैं, रूप, रंग तथा वर्ण रहित हैं, सेवक के पालक हैं ।[3] उनकी वाणी में "सांई" तथा "साहब" शब्द का प्रयोग सविशेष हुआ है। जगाजी-पंथ का गुरुमंत्र है; "ॐ तत्व निरन्जन तारक राम" जगाजी ने राम के नाम की महिमा गाई है। तमाम प्रकार की साधनाओं में "नामजप" शिरोमणि साधन है। "सकल साधना में शिरोमणि नाम, जनहि जगांकु एही काम ।" जगाजी ने एक सुन्दर रूपक देकर इस बात को समझाया ।

जुगीया जानवर जंगली, क्यों आया हरि पास ।
राम-घंटावल बाजिया, वेध्या नाम-विश्वास ॥ (बोध पाठ, पृ० ७)

जगाजी कहते हैं, मैं तुम्हें ढूंढता हूं, मिलने पर मैं तुम में छिप जाऊंगा और तुमको अपने में छिपा लूंगा ।

---

१. हिं० सा० इ० (२०१८), पृ० ८६ ।
२. उ० भा० सं० प०, पृ० ५०७ ।
३. बोधपाठ, पृ० १५ ।

जगाजी ने समाज के दंभ, कर्मकांड, मिथ्याचार, शुष्कज्ञान तथा जाति-पांति का विरोध किया है। उनको पूरा गुरु मिल गया, अब उन्हें जप, तप, तीर्थ, व्रत तथा योग की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें सहज में संतोष हो गया है।[1]

जगाजी परम भक्त थे। उनकी भक्ति में निराधारता, अनन्य भाव तथा समर्पण की भावना है। उनके सगे-सनेही एक हरि हैं, अन्य कोई उनको भाता नहीं।

हरि विन जिऊरा काऊ रहेणो न पावे।
जन ही जगाकु अवर न भावे।

४. संत निर्वाण साहब

(१) जीवनवृत्त—संत निर्वाण का मूल नाम लक्ष्मीदास था तथा काशी में किसी ब्राह्मण के घर उनका जन्म हुआ था। सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने गृहत्याग कर तीर्थाटन किया। कहते हैं, जायल में केशवदास से दीक्षा प्राप्त कर "निर्वाणदास" नाम धारण किया था।[2]

उन दिनों सूरत में नवावी राज्य था। "मिराते सिकन्दरी" में सूरत के नवाव के रूप में ई० स० १४१० में मस्तीखान तथा १४८२ में मलेक गोपी के नाम का उल्लेख है; किन्तु इसके मध्य में हुए नवावों के नाम का उल्लेख नहीं है। सूरत के एक कवि दूलाराम (सं० १८३०-७०) ने "निर्वाण-चरित्र-प्रकाश" में नवाव हयातखान का उल्लेख किया है, जो वड़ा दुष्ट, अन्यायी तथा खुदगर्ज था। दूलाराम ने उसके समय का वर्णन किया है।

फकीरा को आदर मिले, साधु आने न पाय।
दो बंदे साहिव के, कैसे रखो जुदाय॥
लग्न वेरो हिन्दवा लगे, मुक्त रहे मोमीन।
घोर खुदे, अरु ताजिया, हिन्दवा उठावत दीन॥[1]
(संत निर्वाण साहव—श्री माणेकलाल राणा (२०२८), पृ० ६२)

हिन्दुओं पर विवाह-कर, घोर की खुदाई तथा ताजिया उठाने के काम जैसे अन्य अत्याचार भी किये जाते थे। साधुओं के लिए नगर-प्रवेश का अधिकार नहीं था। इस प्रतिबन्ध से अज्ञात पाँच साधु वन्दी बनाये गये थे। उनमें से एक ने विरोध किया, उसको कत्ल किया गया। वचे हुए चार साधुओं ने जायल गद्दी के महन्त केशवदास को ये समाचार सुनाये। नवाब को मार्ग पर लाने तथा हिन्दू जाति के कष्टों को दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने संत निर्वाण को योग्य समझ कर सूरत भेजा। सं० १५३७ में निर्वाण साहब सूरत पधारे थे। संत कवि दूलाराम ने उनके

१. बोध पाठ, पद २०।
२. संत निर्वाण साहव—श्री माणेकलाल राणा (२०२८), पृ० ३।

आगमन का निश्चित वर्ष दिया है।

पंद्रह सौ सड़तीस में, प्रगट चेतावनी दीन्ह।
परचा दिया नवाब को, यवन अपना कर लीन्ह।

निर्वाण ने सूरत में रुघनाथ पुरा, चौथिया शेरी में धूनी लगाई थी। तदनन्तर नवाब के महल के सामने आसन जमाया था। नवाब ने उनको वहाँ से हटाने के अनेक प्रयास किये, किन्तु सफल न हुआ। अन्त में संत की शक्ति के सामने उसको झुक जाना पड़ा।

तदनन्तर निर्वाण साहब के प्रभाव से हिन्दू जाति पर होते अत्याचार बन्द हो गये।

सूरत में स्थान—सूरत में निर्वाण अखाड़े का स्थान अभी भी है। निर्वाण गद्दी को लोग पहले नवलखी गद्दी कहते थे, क्योंकि उसकी वार्षिक आमदनी लगभग नव लाख रुपये की थी। अखाड़े में नव हाथी थे। अखाड़े में जाने के मार्ग को 'निर्वाण-रोड' कहते हैं। यह स्थान पहले बहुत विस्तृत था। इसका अधिकांश भाग अब गृहस्थों के अधिकार में आ गया है। मध्य में समाधि-मन्दिर है। मन्दिर में नव समाधियाँ हैं। मध्य में संगमरमर की विशाल समाधि निर्वाण की है। इसके ऊपर सूरत में आगमन का वर्ष सं० १५३७ तथा समाधि का वर्ष सं० १५७० लिखा हुआ है। अन्य समाधियाँ इस परंपरा के महन्तों की हैं।

स्मृति चिह्न—निर्वाण अखाड़े में निर्वाण का शंख, माला, खड़ाऊँ, बाण-धीय्या तथा गुदड़ी है। इनमें गुदड़ी का सविशेष महत्व लगता है। अन्य चीजें समाधि-मन्दिर में खुली पड़ी रहती हैं, जबकि गुदड़ी सुरक्षित रूप में मंजूषा में रख दी जाती है। ज्ञानीजी के मेले के दिन उसे निकाल कर एक ऊँची पीठिका पर फूलों से सजाया जाता है।[1] कहते हैं, वह तार-तार हो गई थी, उसके टुकड़े जो ले गये, वे धनी हो गये हैं। वर्तमान गुदड़ी मूल गुदड़ी नहीं है।

(२) संत समागम—निर्वाण साहब उस काल में इतने प्रसिद्ध हो गये थे, कि उनके समकालीन संत उनको मिलने चले आते थे, तथा वे भी भ्रमण करते रहते थे, अतः अनेक संतों का सहज मिलन हो जाता था। निर्वाण साहब सूरत में सं० १५३७-७० में अवस्थित थे। नानक (सं० १५२६-९५), संत रैदास (सं० १४७१-१५७६), मीरां (सं० १५५५-१६२०), ज्ञानीजी (सं० १४५१-१५५९) तथा कबीर साहब (सं० १४३०-१५५२) निर्वाण के समकालीन लगते हैं, इसलिये उन सब का मिलन संभव था। लोक कवि दूलाराम ने इन संतों के साथ निर्वाण के समागम का विशद वर्णन किया है।

---

१. गुदड़ी की फोटो कापी लेखक के पास है।

नानक—दक्षिण से भ्रमण करते हुए गुरु नानक सूरत आये थे।[1] गुरु नानक के विषय में निर्वाण साहब ने निम्नांकित पद लिखा है।

भजन रंग डार दियो री, सदगुरु समर्थ गुरु नानका ॥ टेक ॥
जोगी जोग जुगुत से न्यारे, भक्ति साहब लालका ॥ १ ॥
रामनाम अमीरस पिये, कहां निशान कालका ॥ २ ॥
अवधू जगत उबारन आये, छांडा धंध जंजालका ॥ ३ ॥
सत् साहेब के रूपको पेरे सोही सदगुरु बालका ॥ ४ ॥
विदेही गुरु नानक देवको, जुहार सांई निर्वाणका ॥ ५ ॥
(संत निर्वाण साहब, पृ० ६२३)

रैदास—संत कवि दूलाराम ने रैदास-मिलन का उल्लेख किया है। रैदास पर लिखे पद में उन्होंने "ऐसे संत मिले सुखदायी" लिखा है।

भक्ति रैदास को भावै ॥ टेक ॥
जात बरन कछु कुल न देखे, हरि भज हरि को पावै ॥ १ ॥
जनम जनम चाहे बीत जाये, भक्त तो भक्त कहावै ॥ २ ॥
भक्ति हेतु मुक्ति नहीं मांगे, फिर फिर फेरा खावै ॥ ३ ॥
रामनाम अमीरस पीवै, कैसे काल सतावै ॥ ४ ॥
ऐसे संत मिले सुखदायी, सोही निर्वान यश गावै ॥ ५ ॥
(संत निर्वाण साहब, पृ० ६३६)

सेना—सेना भक्त पर लिखे गये पद में उनके मिलन की अभिलाषा व्यक्त की है। इससे तो यह प्रतीत होता है, कि मिलन नहीं हुआ था।

सेना ऐसी लगन हरिसे, बहुरि तोहे जुहार।
निर्वाण ऐसे संत भक्तनको, दर्शन चहे दिलदार ॥

पीपा—पीपा को संबोधित एक पद निर्वाण ने लिखा है, किन्तु इसमें मिलन का कोई उल्लेख या अभिलाषा नहीं है। समय को देखते हुये भी यह संभव नहीं लगता। पद में निर्वाण साहब ने उनका यश ही गाया है। "राजर्षि! तेरो यश गावे, सांई निर्वाण बलिहारी।" ("संत निर्वाण साहब", पृ० ६३७) इसमें धना भक्त के मिलन का भी उल्लेख किया गया है। निर्वाण ने अपने एक पद में सन्त नामदेव का भी यश गाया है, किन्तु इसको मिलन का निर्देश नहीं मान लेना चाहिये।

मीराँ—निर्वाण भ्रमण करते हुये मेवाड़ में मीराँ को मिलने उनके मंदिर में गये थे। वहां भजन की धुन में सम्मिलित हुये थे। अपने एक पद में निर्वाण ने मीरां की भक्ति को धन्यवाद देते हुये उनके विषय में हरि से लगन, माया का त्याग, संतों का संग—जैसी बातों का उल्लेख किया है। निर्वाण साहब के आगमन तथा मिलन

१. 'बड़े आनन्द से मिले, नानक से निर्वाण' दूलाराम।

पर मीरां के भी दो पद उपलब्ध होते हैं। अपने एक पद में मीरां ने संतों में निर्वाण की श्रेष्ठता का वर्णन किया है।[1] निर्वाण के आगमन सम्बन्धी मीरां का अन्य पद निम्नांकित है—

अंगना आये साहिब निरवान ॥ टेक ॥
ऐसे संतनका दर्शन पैहों, मिटे आवागवान ॥ १ ॥
संत चरण कमल वलि जैहों, सदगुरु कृपानिधान ॥ २ ॥
मेवाड़ के अंगना पधारे, प्रेम-भक्ति पहिचान ॥ ३ ॥
संत साहिब मीरां को पेख्या, नाम साहिब निरवान ॥ ४ ॥

(संत निर्वाण साहब, पृ० ६३२)

कमाल— काशी में कबीर साहब के मुख से कमाल ने निर्वाण साहब की महिमा सुनी थी, इसलिए अहमदाबाद आने के पश्चात् वे एक दिन उनको मिलने सूरत आये थे। वे जानते थे कि निर्वाण साहब तथा कबीर साहब का मिलन हुआ है। निर्वाण अखाड़े में देव-देवियों की मूर्तियां थीं; तथा उनकी पूजा-आरती होती थी। निर्गुण कबीर का सगुण रामभक्त निर्वाण से मिलन कैसे हुआ, यह शंका कमाल को हुई थी। उन्होने निर्वाण साहब से एतद् विषयक प्रश्न किया।[2] निर्वाण साहब ने कमाल को समझाया कि गहराई से देखने पर सगुण-निर्गुण में कोई भेद नहीं रहता। अवधूत हमेशा अभेद है। संतों का मिलन ही सुखदायक होता है।

सत्संगा सुख-दायना, निर्गुण-सिगुण कहां भेद।
बूझो गति निर्वाण की, अवधू सदा अभेद ॥

भजनानन्द तथा सत्संग में कमाल ने वहां दो दिन व्यतीत किये थे।

ज्ञानीजी—ज्ञानीजी ने कबीरवट के सामने वाले तट पर मणिपुर में निवास किया था। उनके प्रथम गुरु खोजीजी रामानन्द के शिष्य थे। निर्वाण साहब भी रामानन्दी थे। खोजीजी तथा ज्ञानीजी सूरत निर्वाण साहब को मिलने गये थे। इससे पूर्व कबीरवट में निर्वाण साहब कबीर साहब को मिलने आये थे तथा कबीर साहब सूरत भी गये थे। दूलाराम ने लिखा है, कि गुरु कबीर के साथ निर्वाण साहब का अभेद भाव देखकर ज्ञानीजी उनको गुरुवत् मानते थे।

निर्वाण-ज्ञानी सम्बन्ध—एक समस्या—ज्ञानीजी तथा निर्वाण साहब के बीच अटूट एवं अपूर्व सम्बन्ध था, किन्तु किस प्रकार का था यह एक समस्या है। सन्त कवि दूलाराम ने लिखा है, कि ज्ञानीजी निर्वाण को गुरुवद् आदर देते थे।

---

१. यह पद इस प्रबंध में मीरां के वृत्त में दिया गया है।
२. कबीर गुरु निर्गुणिया, सिगुणिया निर्वाण।
सांई मोहे अचरज भयो, कैसे होत मिलान ॥

ज्ञानीजी से पूर्व निर्वाण साहब ने समाधि ली थी। उनके पश्चात् उनकी समाधि के दिन मेले का आयोजन ज्ञानीजी करते थे, इसलिये मेले का नाम "ज्ञानीजी का मेला" पड़ गया।

ज्ञानीजी के मन्दिर के स्व० महन्त श्री रामकृष्णदास की एक पुरानी पोथी से ज्ञानीजी का जीवनवृत्त प्राप्त हुआ। उसमें ज्ञानीजी की समाधि के दिन निर्वाण साहब के उपस्थित रहने का उल्लेख है। ज्ञानीजी ने सं० १५५९ में समाधि ली और निर्वाण साहब ने सं० १५७० में ली। यदि यह सत्य हो, तो दुलाराम के उल्लेख या तो भ्रमपूर्ण हैं, या अतिशयोक्ति प्रेरित हैं। निर्वाण कबीर से प्रभावित हुये थे, तथा उन्होंने कबीर साहब के दिये हुये "निर्वाण साहब" नाम को स्वीकार किया था, इस आधार पर उनको कबीर के शिष्य तथा ज्ञानीजी के गुरुबंधु के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

पूर्व-परम्परा—निर्वाण साहब को कैसोदास का शिष्य बताया जाता है। ये कैसोदास आगरा की देवानन्द जी की परम्परा में सोलहवें महन्त हैं तथा स्वामी रामानन्द की सातवीं पीढ़ी में पड़ते हैं।[1] यदि निर्वाण साहब स्वामी रामानन्द की आठवीं पीढ़ी के शिष्य हों, तो वे कबीर, कमाल, ज्ञानीजी, रैदास आदि के समकालीन नहीं हो सकते, इसलिये यह परम्परा संदिग्ध है। उनके समय को देखते हुये लगता है कि वे स्वामीजी के किसी अन्य शिष्य से पहले दीक्षित हुए हों, और बाद में कबीर के प्रभाव में आये हों।

निर्वाण-परम्परा—सूरत में निर्वाण साहब की परम्परा आज तक चली आयी है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस परम्परा का उल्लेख "हीरादासी परंपरा" के नाम से किया था।[2] हीरादास इस परम्परा के तीसरे संत थे, जो कबीर-सम्प्रदाय में विधिवत् दीक्षित हुये थे। डा० रामकुमार गुप्त ने सन्त समर्थदास, माधवदास तथा प्यारेदास को इस परम्परा में दर्शाया है,[3] किन्तु सूरत में पद्मनाभ के शिष्य लोचनदास का आश्रम तापी के तट पर था, ये उस परम्परा के सन्त थे। इसके अलावा हीरादास का समय सं० १५५१-१६३६ नहीं है। उनका समय सं० १५६५-१६८७ है। सं० १६८७ में हीरादासजी ने जीवन्त-समाधि ली थी।[4] इस परम्परा की पन्द्रहवीं पीढ़ी के महंत श्री जानकीदास जी ने अपना उत्तराधिकार अपने शिष्य

१. संत निर्वाण साहब (किस्मत प्रकाशन, बम्बई), पृ० १३।
२. उ० भा० सं० प०, पृ० ४४२।
३. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ६५।
४. संत निर्वाण साहब, पृ० ७६२।

बावूदास को छोड़कर चार सम्प्रदाय के महंत श्री परशुराम जी को दे दिया। बावू दास जी सरभोएा-डुंगरी वाली गद्दी पर हैं।[1]

(४) शिष्य-मंडल—निर्वाण साहब का शिष्यमंडल विशाल था। खंभात के जंभाराम, सूरत के सांई सौदातखां, ढीमर जोधाजी, कसाई जाफरखां, महुआ के भील संत नथ्थुसाहब, ध्यानी संत अंबाराम, बाबा सज्जुद्दीन जैसे अनेक शिष्य थे। अनेक राजा भी उनके भक्त थे। उमराला (सौराष्ट्र) के राजा रामदास, ईडर के महाराज सूरजमल, चांपानेर के पत्तई रावल तथा उनके पुत्र पृथुराज एवं डुंगरसिंह, धरमपुर के राजा नारणशाह तथा धरमशाह, मेवाड़ के महाराजा रायमल, तथा बुन्दी के महाराज नारायण दास निर्वाण साहब के भक्त थे। कहते हैं, निर्वाण साहब भविष्य के भेद खोल देते थे। अपना भविष्य जानने के लिये इब्राहीम लोदी ने भी अपना दूत भेजा था। निर्वाण साहब ने समाधि ले ली थी, अतः उनके शिष्य सदानन्द ने मुगलों की विजय का निर्देश किया था। धरमपुर के राजा नारणशाह का समय सं० १५२६-१५५६ तथा धरमशाह का समय १५५६-१५८७ है।[2] स्त्री-संतों में सूरत की मायादेवी, वड़नगर की शोभादेवी, हयातखान की वेगम रुकसाना तथा विप्र-दुहिता उमा उनके उपदेश से विरक्त बन गई थीं। त्रिलोकनाथ, अड़वंगनाथ जैसे अनेक योगियों से भी उनका मिलन हुआ था।

(५) निर्वाण-वाणी—निर्वाण साहब ने अनेक रचनाएँ की थीं। उनमें से कुछ पद, साखी, छंद, रेख्ता तथा कुंडलिया प्राप्त होती हैं। उनकी वाणी में कबीर मत का प्रभाव दृष्टिगत होता है। उन्होंने बेहद को जानने वाले को अपना गुरु कहा है।

हद का गुरु निर्वाण है, बेहद बूझे न कोई।
बेहद जेहि बखानते, गुरु हमारे सोई॥

(सं० नि० सा०, पृ० ८६४)

जो बेहद की गम दिखाता है, उसे अलख की पहिचान है। वही घट-घट में बोलता है। निर्वाण ने पहले उनको मंदिर-मस्जिद में खोजा था। अंत में घट-घट में उनके दीदार हुए (वही, पृ० ८५८)। उस अगम्य प्रियतम की खोज में जोगन पिउ में समा गई। "जोगन पियुको खोजन निकसी, पियु में जाई समाई।" कबीर ने कहा था, "लाली देखन मैं चली, तो मैं भी हो गई लाल।" निर्वाण के प्रेम में अनन्य भाव है। मेहबूब से इश्क हुआ है। दरवेश दीदार चाहता है। निर्वाण के अन्य कोई परमेश्वर नहीं है।

लगे इश्क मेहबूब से, चहे दीदार दरवेश।
निर्वाण के तुम नाथ हो, दूजा कहाँ परमेश॥

---

१. वही, पृ० ८४७।
२. हिस्टरी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन आफ धरमपुर स्टेट, वेगगृह।

उनको नाम से स्नेह हो गया है। उसी में उनका मन मस्त रहता है। "यारी लग गई नाम से, मनवा हुए मस्तान।" निर्वाण की मस्ती कबीर साहब की मस्ती की याद दिलाती है।

निर्वाण साहब ने भी व्रत, तीर्थ आदि को निरर्थक माना है। साँई को पहचानने में ये सहायक नहीं होते। एकादशी करो या रोजा रखो, काबा का हज करो या काशी की यात्रा, ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग इससे प्रशस्त नहीं होता। अवगति का खेल न हिन्दू ने देखा है, न मुस्लिम ने। दोनों झूठी राह पर हैं। मन्दिर या मस्जिद में कोई अन्तर नहीं; दोनों में एक ही ईश्वर के दर्शन होते हैं। मंदिर मस्जिद देखिया, एक ही रब्ब दीदार।" उन्होंने वैरागियों के पाखंड का विरोध किया था। "संसार-राग छूटता नहीं, और तू वन में दौड़ता है। तेरे शरीर में वासना की अग्नि जलती है, इसे पहले बुझा ले। (सं० नि० सा०, पृ० ८६०)।

कबीर-वाणी का प्रभाव—निर्वाण साहब की वाणी पर कबीर की वाणी का प्रभाव परिलक्षित होता है। भाषा, विचार, भाव तथा अभिव्यक्ति का साम्य भी दिखाई देता है। कबीर-परम्परा के प्रायः तमाम संत कवियों ने हरि-गुरु-संत की एकता तथा भक्ति की महिमा गाई थी। निर्वाण साहब ने "सुमिरणसेवा, बंदगी, और बड़े सत्संग" का उपदेश दिया था।

कबीर तथा निर्वाण की वाणी की समानता के कुछ दृष्टांत निम्नांकित हैं।

कबीर—नारी की झाँई पड़े, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी का गति, जो नित नारी संग॥

निर्वाण—यह नारी की छांय ले, अंधे होत भुजंग।
गाफिल ! तेरी कौन गत, नित नारी के संग॥
(सं० नि० सा०, पृ० ८६०)

कबीर—जहां देखूँ तहां दुखिया दुनिया, सुखिया मिले न कोई।
निर्वाण—जहां देखूँ, तहां दुखिया दिसत, सुखिया न देखे नैन।
(वही, पृ० ८५७)

कबीर—आंखलडी झांई पड़ी, पंथ निहारी निहारी।
निर्वाण—निर्वाण नैन छारी लगे, कैसे दिखाये इश।

कबीर—कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
शीश उतारी, पग तलि धरे, तब निकटी प्रेमका स्वाद।
(क० ग्रं० शूरातन कौ अंग)

निर्वाण—सिस उतारो भुंई धरे, पिव-मिलन को दांव ।
यह गलियां हैं प्रेम की, मरजीवा होई आव ॥
(सं० नि० सा०, पृ० ८५८)

(१) संत सदानन्दजी—उनके पूर्वजीवन का वृत्त अप्राप्य है । वे निर्वाण साहब के प्रमुख शिष्य तथा उत्तराधिकारी थे । तत्कालीन सूबेदार ने उनको सताने की चेष्टा की थी । आश्रम के एक निरपराध साधु को वन्दी वनाया था । सदानन्द ने उसको मुक्त कराया । सूबेदार ने अपने एक आप्तजन द्वारा उनकी हत्या का आयोजन किया था, किन्तु भ्रम में अन्य साधु की हत्या हो गई । कहते हैं, उसी दिन उस हत्यारे की भी मृत्यु हो गई थी । अंध नवाब को सदानन्द जी की कृपा से पुनः दृष्टि-लाभ हुआ था ।[1]

उनके शिष्यों में सुमिरनदास, लीभादास, रधामाली, सुहागदास तथा संत हीरादास प्रमुख थे । सुमिरनदास कापुर (ता० व्यारा) का निवासी भील भीमा था । सुहागदास निर्वाण आश्रम में रहते थे । सदानन्दजी सं० १५७० में निर्वाण साहब की समाधि के पश्चात् गद्दी पर आये थे । सं० १५६५ में अपने उत्तराधिकारी के रूप में हीरादास को नियुक्त कर उन्होंने जीवन्त समाधि ले ली थी ।[2]

(२) संत हीरादास—संत हीरादासजी कवि थे । सूरत के लोचन-आश्रम के संत माधवदास उनके समकालीन थे । उनसे उनका समागम होता रहता था । उन्होंने संत वाणी की रचना की है । उन्होंने खिन्नी तथा दामिनी नाम की गणिकाओं का उद्धार किया था । उनके उपदेश से वराछा गाँव का एक भील संत गंगादास हो गया । नवाब पर उनका प्रभाव देखकर काजी मुल्ला जल उठते थे । वे नवाब मिरजा अली हुसेन को उनके विरुद्ध भरमाते थे । सूरत के पास खरवासा के संत तेजानन्द के साथ संतसमागम होता रहता था । एक नाविक कानमदास ने उनका उपदेश ग्रहण किया था । अपने परमप्रिय शिष्य दयालदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सं० १६८७ में उन्होंने जीवन्त समाधि ले ली ।

(३) संत दयालदास—दयालदास अपनी पूर्वावस्था में झालोरगढ़ (मारवाड़) के राठौड़ राजपूत थे । वे जयपुर राज्य की सेना में थे । अनेक युद्धों में सम्मिलित हुए थे । उनका मूल नाम दयामल था । सूरत आने से पूर्व जायल के गुरुद्वारा में विरक्त होकर रहते थे । तीर्थाटन करते हुए सूरत आये, तो हीरादासजी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया ।

---

१. सूरत सोनानी मूरत, परिशिष्ट—१०, पृ० १५२ ।
२. संत निर्वाण साहब, पृ० ७८६ ।

उनके समय में दिल्ली के तख्त पर शाहजहाँ का अधिकार था। सूरत में ग्यारह सूबेदारों के रंगराग उन्होंने देखे थे। सूबेदार जाम कुली ने उनको कष्ट दिया था, क्योंकि लाजवंती नाम की गणिका को सूबेदार से उन्होंने बचा लिया था।[1] एक बार उनके ऊपर झूठा आक्षेप लगाकर उन्हें फाँसी के तख्ते पर भी चढ़ा दिया था। किन्तु उस समय किसी मतवाले फकीर ने आकर उन्हें बचा लिया। सं० १६८७ के अकाल में उन्होंने अपना अन्नक्षेत्र सब के लिए खुला कर दिया था। सं० १६६८ में जीवणदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर उन्होंने जीवन्त समाधि ले ली।[2]

(४) संत जीवणदास—उनके समय में आश्रम की एक गाय को सूबेदार ने चुराकर छिपा लिया था। शिवाजी की लूट के समय सरदार मोरोपंत तथा शिवाजी महाराज को आश्रम की लाखों की संपत्ति दिखाकर लेने को कहा, तो शिवाजी महाराज ने मात्र आशीर्वाद ले लिये। वाराछा के एक किसान के पुत्र को मृत्यु के मुख से उन्होंने बचा लिया था।[3] मारवाड़ से तीर्थाटन पर आयी गणिका अचला तथा वारांगना सलमा को उपदेश देकर उन्होंने उद्धार किया था।

(५) नरहरिदास—उन्होंने राजपीपला विभाग के गुमानदेव के मंदिर की भैरवपूजा को हटा कर हनुमानजी की मूर्ति की स्थापना की थी।[4] सूबेदार की पुत्री अनिशा को हिन्दू विधियों से प्रेम हो गया था। उनको काजियों ने विष दे दिया। नरहरिदास ने विष उतार दिया। उन्होंने शेष जीवन विरक्तावस्था में बिताया था।

(६) जगन्नाथदास—उन्होंने अपना जीवन लोक-कल्याण में बिताया था। किसी का रोगमुक्त करना, किसी को सत्पथ पर लाना, यही उनके जीवन-कार्य थे। उनके प्रमुख शिष्यों में राणाभक्त मगीराम, कोली जाति का तुंबाजी तथा रंगदास थे। सं० १७८६ में रंगदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर वे समाधिस्थ हो गये।

(७) रंगदास—ये अत्यंत सुन्दर कांतिवाले युवा साधु थे। "रतनी" नाम की एक तेलन उन पर मोहित हो गई थी, किन्तु संत के उपदेश से वह विरक्त हो गई। सांई अफजल शाह उनके शिष्य थे। राघवदास उनके उत्तराधिकारी थे। सं० १८४८ में वे समाधिस्थ हुए थे।

(८) राघवदास—एक साधु मंडली के भोजन की व्यवस्था उन्होंने चमत्कार से की थी, ऐसा कहा गया है। आश्रम में युवती को निवास का अधिकार नहीं था।

---

१. सूरत सोनानी मूरत, परिशिष्ट—६, पृ० १४२।

२. संत निर्वाण साहब, पृ० ७६३।

३. 'किस्मत' पत्रिका, दिसम्बर, १६७०।

४. सूरत सोनानी मूरत, परिशिष्ट—१०, पृ० १५४।

मेना नाम की एक अनाथ नारी को दयावश आश्रय दिया गया, तो फल यह हुआ कि एक साधु को उसके साथ विवश होकर विवाह करना पड़ा। स्वामी सहजानंद इस स्थान में आये थे। अन्य साधुओं द्वारा उनकी अवगणना हुई थी। ज्ञात होने पर राघवदास ने उनको शाप दिया। कहते हैं, तब से वहाँ की सारी रिद्धि-सिद्धियाँ चली गईं। संत कंवलदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सं० १८६३ में वे समाधिस्थ हुए।

(९) कंवलदास—संत कवि दूलाराम उनके समकालीन थे। एक बार सूबेदार ने उनको बन्दी बनाया, तो कंवलदास जी ने उनको मुक्त कराया। अनवरखान नाम का एक पठाण संत था, उसको भी मुक्त कराया था, किन्तु उसकी हत्या हो गई। सूरत की राणा जाति के एक शायर बंसीलाल उनके शिष्य थे। बंसीलाल ने अनेक संतों के चरित्र का आलेखन किया था।

आश्रम में सीताराम मंदिर की सोने की मूर्ति की चोरी करके एक रात को कंवलदास भाग गये थे। मूर्ति में मूल्यवान हीरे थे। कहते हैं, उन्हें बेचकर व्रज में किसी मंदिर का जीर्णोद्धार उन्होंने करवाया था। वे आश्रम में लौट कर आये थे; किन्तु साधु समाज "प्रतिमा-चोर साधु" कहकर उनका अपमान करता था।

(१०) बलरामदास :—कंवलदास के पीछे रामकिसनदास हुए तथा उनके पीछे रघुनंदनदास हुए। उनका कोई शिष्य नहीं था। उनके निधन के पश्चात् उत्तराधिकारी नियुक्त करने की समस्या उपस्थित हुई। कुंभ मेले के समय साधुओं ने बलरामदास की नियुक्ति की। बलरामदासजी ध्यानयोग के बड़े अभ्यासी थे तथा वेदान्त के ज्ञाता थे। उनके समय में "ज्ञानीजी का मेला" बड़ी धूम-धाम से लगता था। रात को एक बजे तक दर्शनार्थियों को दूध का प्रसाद दिया जाता था। आज भी लोग कहते हैं, दूध कभी खाली नहीं होता था: बलरामदास जी वि० सं० १९५७ की विजयादशमी के दिन समाधिस्थ हुए थे।[1]

(११) जानकीदासजी :—जानकीदास मारवाड़ के निवासी थे। बलराम-दास के पीछे उत्तराधिकारी हुए। वे बड़े क्रोधी थे। उन्होने किसी अतिथि साधु को कष्ट दिया था। बैलगाड़ी से गिर जाने पर उनके पैर की हड्डी टूट गई थी। उनका एक शिष्य बाबूदास उनकी सेवा करता था, किन्तु जानकीदास की उग्रता से तंग आकर वह सरमोण-डुंगरी वाली गद्दी पर चला गया। जानकीदास ने चार धाम संप्रदाय के महन्त परशरामदास को अपना नया उत्तराधिकारी नियुक्त किया। आज निर्वाण अखाड़े की तमाम संपत्ति उनके अधिकार में है। परशरामदास वृंदावन के बाराघाट के गुरुद्वारा से आये थे। सूरत के चार संप्रदाय के मन्दिर के महन्त

1. संत निर्वाण साहब, पृ० ८३७।

बलदेवदास की मृत्यु के पश्चात् उस मन्दिर के महन्त हुए । उन्होंने निर्वाण-समाधि का जीर्णोद्धार कराया है ।[1]

(१२) अन्नपूर्णा :—सूरत में वि० सं० १५४० में उनका जन्म हुआ था। तेईस वर्ष की अल्पायु में सं० १५६३ में उन्होंने देहत्याग किया । सं० १५४५ में उनके पिता के निधन पर उनकी माता पुत्री को निर्वाण साहब के चरणों में छोड़कर सती हो गई थी । उनका मूल नाम तो अंबालिका था, किन्तु उनके आगमन के पश्चात् आश्रम के भंडार भरपूर रहने लगे थे, इसलिए उनका नाम अन्नपूर्णा रखा गया था ।

संतों के सान्निध्य में रहकर वह हरि-स्मरण, ध्यान, भजन सब सीख गईं । कुछ बड़ी होने पर साधना एवं उपासना भी सीख गईं । ग्यारह वर्ष की अल्पायु में दृढ़ आसन लगाकर ध्यान में बैठ जाती थीं । स्वानुभव से वह संतवाणी की रचना करने लगी थीं । अपने पूर्वजन्म का उनको ज्ञान था । पूर्वजन्म में झूठे कलंक के कारण उन्होंने आत्महत्या की थी । अंतिम समय पर निर्वाण साहब को उन्होंने वादा किया था कि दूसरे जन्म में वह उनके पास आयेंगी । इस बात को उन्होंने अपने एक पद में लिखा है ।

एक दिन निर्वाण साहब ने उनके विवाह करने की इच्छा व्यक्त की । इस पर अन्नपूर्णा ने कहा कि मेरा विवाह हो गया है, कल मैं ससुराल जाऊँगी । दूसरे दिन पूजा का थाल सजाकर आयीं तथा आँखों में आँसू के साथ उन्होंने निर्वाण साहब से विदा माँगी । उसी समय उनका शरीर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा ।[2]

अन्नपूर्णा ने अनेक भावपूर्ण भजन लिखे हैं । उनके भजनों में आत्मसमर्पण तथा अनन्य भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं । अपने आराध्य को उन्होंने "साहब" नाम से संबोधित किया है ।

साहेब ! तुम हो गरीब-निवाज, रखो अनुज की लाज ।। टेक ।।
अशरण शरण जानके आयी, द्वार खड़ी हूं आज ।। १ ।।
मैं अनाथ की बैया ग्रहो री, मेहर करो महाराज ।। २ ।।
तुम बिन जग में कोई न मेरा, सद्गुरु हो सुख साज ।। ३ ।।
'अन्नपूर्णा' को लियो उबारी, डूबत तारो जहाज ।। ४ ।।

अन्नपूर्णा की पर्याप्त वाणी अभी अप्रसिद्ध रही है ।[3] अन्नपूर्णा की कथा सर्व-प्रथम संत कवि दूलाराम ने लिखी थी ।

---

१. वही, पृ० ८४२ ।

२. 'निजानन्द' पत्रिका, अगस्त, १९७०, भावनगर ।

३. यह वाणी श्री माणेकलाल राणा के पास है ।

(१३) संत जंभाराम :—खंभात में खारवा (मल्लाह) जाति में उनका जन्म हुआ था। सफर में एक वार सूरत गये थे। वहाँ निर्वाण अखाड़े में "ज्ञानीजी का मेला" लगा था, उसे देखने वे चले गये। निर्वाण साहव के दर्शन करने पर वे उनके प्रभाव में आ गये। निर्वाण साहव का प्रभाव उन्हें इन्द्रजाल जैसा लगा; इसलिए भागकर वे सूरत छोड़ खंभात चले गये।

काले जंभाराम की पत्नी अत्यन्त स्वरूपवान थी। वे उसको वहुत प्रेम करते थे। अचानक वह वीमार हुई और परलोक चली गई। जंभाजी दीवाने से हो गये। उनको निर्वाण साहव याद आये। संसार से विरक्त हो गये। वे दुर्वल और वीमार पड़ गये। अपने साथियों से उन्होंने सूरत के वैद्य के पास ले चलने को कहा। निर्वाण साहव के पास जाकर उन्होंने क्षमा-प्रार्थना की। संत ने उनको उपदेश देकर आश्रम में रखा। स्वस्थ हो जाने पर गुरु आज्ञा से प्रेम की साधना करने वे गिरनार चले गए। वहाँ वारह वर्ष उन्होंने उपासना की। तदनंतर द्वारका, सोमनाथ, मथुरा, काशी, हरिद्वार, वद्री-केदार तथा अमरनाथ की यात्राएँ की। तीर्थाटन में चौवीस वर्ष व्यतीत हो गये। छत्तीस वर्ष वाद जव सूरत लौटे, तो देखा कि सारा आश्रम उनके सत्कार के लिये सजाया गया था। निर्वाण साहव ने समाधि ले ली थी। कुछ काल निवास कर उन्होंने भी समाधि ले ली। उन्होंने संतवाणी की रचना की है। उनका एक पद संत प्यारेदास द्वारा संगृहीत वाणी में से मिला है।

वावरे करले हरिसे प्रीत।..................टेक
विरथ आयु विगोवत काहे, जात है अवसर वीत।
वेर वेर तोहे संत पुकारे, साधू वड़ो परहित।
आया है, कुछ सौदा करले, मानो पियारे मित।
अंत वहुत पछतहो दीवाना, गइ उमरिया वीत।
प्रेमे प्रभूको सुमिरन कीय ले, 'जंभाराम' की रीत।

(१४) संत सौदातखाँ— सूरत का नवाव संत निर्वाण साहव से प्रभावित था, इसलिए सूरत के एक साईं सौदात खाँ उनसे जलते थे। एक दिन आश्रम के आतिथ्य-धाम में निवास कर रात को निर्वाण साहव को खंजर का घाव किया। निर्वाण साहव ने कहा कि तेरी ईर्ष्या की आग पूरी वुझा ले ; एक घाव से मैं मरूँगा नहीं।[1] सौदात खाँ ने पश्चात्ताप के साथ क्षमा माँगी। निर्वाण ने उन्हें राम-रहीम को एक मानकर साहेव के नाम का स्मरण करने को कहा।

---

१. तन की तपन कैसे वुझे, जखम लगाया दीन।
और ही जखम लगाइये, दिल चाहे सो गीन॥ (सं० नि० सा०, पृ० १८८)

तदनंतर वे संतों की जमात के साथ तीर्थयात्रा को निकल गये। वहाँ से अन्य संतों के साथ उन्होंने उत्तराखंड की यात्रा की। बारह वर्ष पश्चात् वापस आकर उन्होंने संतधाम में निवास किया। आश्रम में एकादशी तथा पूर्णिमा के दिन रातभर भजनानन्द की धूम मचती थी। सौदात खाँ भी सम्मिलित होते थे। उन्होंने हिन्दी में ऐसे पदों की रचना की थी। उनकी वाणी में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, ऐकेश्वर, घट में राम तथा मिथ्याचार-विरोध जैसे कबीर विचारधारा के तत्वों के दर्शन होते हैं। अपने गुरु निर्वाण की कृपा से भेदभाव मिट गया तथा अविनाशी के दर्शन हुए; ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है।

सांई निर्वाण को भेद मिटाया, मोहे दर्शाया अविनाशी।
'सौदातखाँ' मुरशिद की रहम से, मिट गई अज्ञल की फाँसी ॥

कबीरमत के अनेक तथ्यों का उपदेश देता हुआ उनका एक पद निम्नांकित है।

पद (राग त्रिलावल)

"मेरा इश्क मेहबूब से परवर का प्यारा हो।
सब घट साहिब एक है, मत बूझो न्यारा हो।
हिन्दू तीरथ बहुरि फिरै, किये व्रत अपारा हो।
अपने घरकी सुध नहीं, तुम खोजत बहारा हो।
पाँच निमाज प्यारे चहो, हज करके हाजी हो।
तेरा सांई तुझमें बसे, नहीं पेखत काजी हो।
जीक्र बनाओ सांई की, वो हरदम हजुरा हो।
यारो वे दिलदार से, मत रहियो दूरा हो।
पाक जहां में आयके, कुछ सौदा करैया हो।
'सांई सौदातखाँ' कहत है, तुम पावेंगे सैयां हो।

(संत निर्वाण साहब, पृ० १६६)

(५) कमाल तथा निर्वाण-परम्परा का महत्व—कमाल साहब के विषय में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त होती है। १९३२-३४ की काशी नागरी प्रचारिणी सभा की त्रिवार्षिक खोज-रिपोर्ट में कमाल साहब की कुछ वाणी उपलब्ध हुई है। गुजरात में यत्रतत्र उनकी कुछ वाणी मिलती है। उनका एक पद गांधीजी ने 'आश्रम-भजनावली' में संगृहीत किया था।

गुजरात के विभिन्न प्रदेशों में उनके शिष्य थे। उनके प्रतापी शिष्य दादू के एक शिष्य जगाजी का स्थान तथा उनकी आज तक की परम्परा गुजरात में है। उनके एक शिष्य दरियाखान या उनके शिष्य भूलन शा फकीर की भी परम्पराएँ होने की सम्भावना है। कमाल तथा उनकी परम्परा के संतों ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के

लिए उपदेश दिया था। वस्तुतः कमाल की वाणी में व्यक्त उनके विचार कबीर से किसी भी रूप में भिन्न नहीं थे।

निर्वाण साहब की परम्परा में प्रगतिशील संत हुए थे। संत हीरादास तथा कंवलदास कवि थे। उन्होंने विपुल संतवाणी की रचना की थी। दोनों परम्परा के कवियों पर अरबी तथा फारसी का प्रभाव है। लोक कवि दूलाराम तथा शायर बंसीलाल ने निर्वाण-परम्परा के संतों के चरित्र लिखे हैं। दूलाराम ने "निर्वाण चरित्र प्रकाश" नाम से निर्वाण साहब का विस्तृत चरित्र लिखा है।

इस परम्परा के महंतों ने सूरत के सूबेदारों से संघर्ष किया, कष्ट झेले किन्तु हिन्दू जाति पर होते अत्याचार दूर करवाये थे। अन्न, धन, दवा, आश्रय तथा उपदेश देकर अनेक दुःखी मनुष्यों की उन्होंने सेवा की थी। हिन्दू-मुस्लिम या ऊँच-नीच में ये संत भेदभाव नहीं रखते थे। उन्होंने कोई सम्प्रदाय नहीं चलाया, किन्तु एक राम के नाम का आधार देकर अनेक पथ-भ्रष्ट मानवों को सत्पथ पर ले आये। इस परम्परा का यहाँ के लोगों पर सविशेष प्रभाव था, किन्तु अब कुछ नहीं रहा निर्वाण की नवलखी गद्दी के जाहोजलाल की बातें एक स्वप्न जैसी आज लगती हैं।

अध्याय तीसरा

ज्ञानीजी तथा उनकी परम्परा के संत

ज्ञानीजी की पूर्वावस्था का नाम चतुरसिंह था। ये जेसलमीर के महाराजा मोतीसिंह के राजकुमार थे। वि० सं० १८५१ पौष शुक्ला एकादशी के दिन महारानी हेमकुंवर बापूवा की गोद से उनका जन्म हुआ था। ये भट्टीकुल के राजपूत थे।[1] ज्योतिषी ने बताया था, कि 'राजकुमार के भाल प्रदेश में राजतिलक के स्थान पर धर्मतिकल देखता हूं। ये कोई योगभ्रष्ट आत्मा हैं।'

राम-प्रेम—चतुरसिंह को राम की मूर्ति से बचपन से स्नेह था। कहते हैं, उनके मुख से पहला शब्द "राम" निकला था। शस्त्रास्त्र तथा घुड़सवारी के स्थान पर उनको संस्कृत एवं फारसी के अध्ययन में विशेष अनुराग था। कोई विद्यानंद महाराज पढ़ाने को आते थे। ग्यारह वर्ष की उम्र में वे यजुर्वेद की ऋचाओं का फारसी में भाषांतर कर समझा सकते थे। कभी शिकार खेलने जाते, तो वहां हिरनों के साथ खेलने लग जाते थे। कहते हैं, एक दिन एक शेर पर बैठकर उसे घर ले आये थे, तथा उसे मक्खन-मिसरी खिलाई थी।

बचपन से वे पद्यरचना करने लगे थे। उनकी रचनाएं इतनी लोकप्रिय हो गई थीं, कि जेसलमेर के आसपास के लोगों ने कुछ कंठस्थ भी कर ली थीं। राजकवि बृजलाल जी चतुरसिंह की कवित्वशक्ति से अति प्रसन्न थे।

वे राम की मूर्ति की नियमित पूजा करते थे। राम को भोग लगाये हुए थाल से वे खाते थे। पूजा करते-करते कभी-कभी उनको ध्यान लग जाता था। उनके पंद्रहवें जन्मदिन पर जब राजकवि बृजलाल जी प्रशस्ति-काव्य लेकर आये, तो देखा, कि रामचंद्र जी के मन्दिर में पांच दिन से वे समाधिस्थ थे।

---

१. "जेसलमीर से उतरे, भट्टी कुल राजपूत।
गुर्जर घर पावन करी, ज्ञानी ज्ञान अवधूत॥" (—ह० लि० ग्रंथ)

गोरख का अवतार—गुजरात में कबीर के नाम प्रवर्तित रामकबीर संप्रदाय तथा सत्कबीर संप्रदाय में ज्ञानीजी को गोरखनाथ का अवतार मानते हैं। रामकबीर संप्रदाय में ज्ञानीजी की परंपरा के संत जीवणजी की वाणी में ज्ञानीजी को गोरखनाथ का अवतार बताया गया है।

"गुर्जर खंड में प्रगटे ज्ञानी गोरखनाथ।
दास कबीरे जीवणा, मस्तक दीन्हों हाथ ॥"

(उ० ध० पं० र० मा० प्रमोध अंग, पृ० १७५)

कबीरपंथी साहित्य के एक ग्रन्थ 'गर्भावलि' में कबीर साहब द्वारा गोरखनाथ को आदेश मिला है; कि तुम मरु देश में जेसलमीर जाकर भट्ठीवंश में जन्म लो; वहाँ तुम्हारे एक गुरु खोजीजी होंगे। तदनंतर तुम गुजरात के कानम मण्डल में आकर ज्ञान का विस्तार करना, तुम्हारा पन्थ बहुत चलेगा।

"जेसलमेर भारु मंझारा, भाटी के घर लेहो अवतारा।
ज्ञानी होई के नाम तुम्हारा, खोजी होई है, गुरु तुम्हारा ॥ ६० ॥
फिर आओ गुजरात ठिकाना, कानुमण्डल भूमि बंधाना।
जहाँ होइहे अस्थान तुम्हारा, बहु ज्ञानका तुम करो विस्तारा ॥ ६१ ॥

(वही, गर्भावलि, पृ० १५)

नाम—आ० परशुराम चतुर्वेदी ने ज्ञानीजी की वाणी में "जक्षवंत" नाम का उल्लेख भी देखा है। ज्ञानी जी की पूर्वावस्था का नाम चतुरसिंह था। कबीर के शिष्यों में एक चतुर्भुज के नाम का उल्लेख है, किन्तु वह नाम ज्ञानीजी से सम्बन्धित है, ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। कबीरपन्थी ग्रन्थ "अनुराग सागर" में एक ऐसा उल्लेख "चतुर्भुज" के विषय में मिलता है, कि कबीर ने दृढ़ता देख कर उनको प्रेम किया। वह भ्रम छोड़कर उनको मिले थे। कबीर ने उसे दीक्षा देकर प्रेम से "चतुर्भुज" नाम ले लिया।[1]

ज्ञानीजी का पूर्वावस्था का नाम 'ज्ञानी' नहीं था। ज्ञानीजी ने लिखा है, कि गुरु ने कृपा करके मुझे मेरा नाम दिया था। "ज्ञानी गुरु कृपा करी, दिया मोहीं निज नाऊँ।" इसके कारण का उल्लेख करते हुए ज्ञानीजी ने लिखा है; "गुरु गम से ज्ञानी भया।"[2] ज्ञानीजी की कथा में एक उल्लेख ऐसा है, कि खोजीजी उनको लेकर पहले स्वामी रामानन्द के पास गये थे, तब स्वामीजी ने उस बालयोगी की मुद्रा देखकर

1. दृढ़ता देखा, ताहि पुनि चाह्या, छांड़ि भरम मिल मोहि आया।
   ताकु चूंटीहारी हम दीन्हा, "चतुर्भुज" शब्द हेत करी लीन्हा ॥
2. "ज्ञानी ग्रन्थ" ह० लि० प्रति लेखक के पास है।

उसे "ज्ञानी" कहा था। सम्भव है, कबीर साहब ने भी इसे योग्य समझकर स्वीकार कर लिया हो।

कुल—ज्ञानीजी भट्टी कुल के क्षत्रिय थे। उन्होंने इस बात का उल्लेख भी अपनी वाणी में किया है, किन्तु कबीर के उपदेश से उन्होंने कुल के महत्व का त्याग किया था। उन्होंने कुल की परम्परा के त्याग का उल्लेख किया है।

ज्ञानी सब ही मोमिया, तजे कुल को लीक।[1]

ज्ञानीजी ने विवाह के मण्डप से पत्नी का त्याग किया था।

विवाह—राजकुमार चतुरसिंह सोलह वर्ष के हुए, तब एक दिन जयपुर से दिनमणि पुरोहित कुँवरी गंगाकुँवर बा के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये थे। पूछने पर कुँवर चतुरसिंह ने इसका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया; किन्तु जयपुर जैसे बड़े राज्य के साथ सम्बन्ध बाँधने में गौरव बढ़ता था; इसलिए जेसलमेर के महाराजा के प्रस्ताव को स्वीकार कर सं० १४६७ की वसंत-पंचमी का मुहूर्त निश्चित किया। महाराजा अपने साथ ग्यारह सौ बारातियों को लेकर माघ सुदी तीज को जयपुर पहुँच गये थे।

त्याग—विवाह की वेदी से कुमार भाग खड़े हुए। वहाँ से भागकर एक पुराने मंदिर में गये। मंदिर में उनको संत खोजीजी मिले। उनके साथ वे अयोध्या गये। जयपुर में उनके पीछे की गई खोज निष्फल रही। जेसलमेर के महाराजा ने कुंवर के अंगरक्षक बाबासाहब को पांच सैनिकों के साथ अन्य प्रदेशों में कुमार की खोज के लिये भेजा। गंगाकुमारी ने बड़े आत्मविश्वास से कहा कि वह खोजकर चतुरसिंह से ही विवाह करेगी, अन्य से नहीं।

गुरु खोजीजी—जब खोजीजी अयोध्या पहुँचे, खोजीजी के गुरु स्वामी रामानन्द वहीं थे। स्वामी जी चतुरसिंह को देखकर उन्हें "ज्ञानी-अवधूत" के नाम से पुकारा। तब से वे "ज्ञानी" नाम से प्रसिद्ध हो गये।

कबीर साहब द्वारा ज्ञानी को दी गई दीक्षा के विषय में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। एक बार खोजीजी ने लघुशंका से लौटते हुये मुस्करा रहे थे; इस पर ज्ञानीजी ने प्रश्न पूछा, तो खोजीजी ने बताया कि मैंने अनेक वटवृक्षों को मूत्र के प्रवाह में बहते देखा। इस बात पर ज्ञानीजी ने शंका उठाई। खोजीजी ने कहा कि गुजरात में नर्मदातट शुक्लतीर्थ के पास एक मंगलेश्वर गाँव है। वहाँ तत्वाजीवा के घर कबीर साहब ने निवास किया है। वहाँ तुम जाओ, वे तुम्हारी शंका का समाधान करेंगे।

---

१. वही, पृ० ९१।

कबीर से दीक्षा—वहां से गुजरात में कबीरवट वाले स्थान में आकर वे कबीर साहब से मिले तथा अपनी शंका का निवेदन किया। कबीर साहब ने समझाया, कि उस बीज में अनेक वृक्ष छिपे हुये हैं। ऐसे आत्मा तथा परमात्मा में अंतर नहीं है, आत्मा ही परमात्मा है। जिस राम को तुम ढूंढ़ते हो, वह तुम्हारे अंदर ही निवास करता है। इस नये ज्ञान से ज्ञानीजी अभिभूत हुये। उन्होंने कबीर साहब से दीक्षा ली। इस प्रसंग का उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में भी किया है।

वटक बीजकी मांडमें, अटक भयो मन स्थिर।
जन ज्ञानीका शंसा मिटा, सद्‌गुरु मिले कबीर।।

स्थान—कबीर साहब से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कुछ समय उनके साथ कबीरवट में निवास कर सामने तट पर मणिपुर में ज्ञानीजी ने निवास किया। मणिपुर एक छोटी-सी रियासत थी। मणिपुर तथा निकट का अन्य नगर रत्नपुर का सं० १५७४ में मुस्लिमों द्वारा विनाश हुआ था। मणिपुर के स्थान पर सं० १७११ में वर्तमान सांझापुर गांव बसाया गया था। तत्कालीन नरेश तख्तसिंह बड़ा धर्मप्रेमी राजा था। उसने ज्ञानीजी का सत्कार किया था।

ज्ञानीजी के स्थान के विषय में डा० केदारनाथ द्विवेदी ने ससराम (बिहार) के निकट "मंझनी" नामक गांव का निर्देश किया है।[1] तथा श्री किसनसिंह चावड़ा ने भी लिखा है, कि ससराम में ज्ञानीजी ने अपनी आयु बिताई तथा संतमत का प्रचार किया।[2]

कबीर साहब के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी का स्थान मणिपुर (वर्तमान मोटा-सांझा) था, जहां आज भी उनका मन्दिर, उनकी समाधि, विशाल स्थान तथा उनकी परम्परा भी है। उनकी परम्परा के वर्तमान महन्त श्री मधुसूदनदास हैं। मंदिर में ज्ञानीजी की हस्तलिखित वाणी की अनेक प्राचीन पोथियां हैं। एक ही पोथी में ज्ञानीजी के साथ कबीर साहब की वाणी भी है। मंदिर के पुराने पत्रों में ज्ञानीजी की परम्परा के अनेक महन्तों का उल्लेख है।

"ज्ञानीजी की टेकड़ी" नाम का वहां एक टीला है। जनश्रुति है, कि ज्ञानीजी सर्वप्रथम जब गांव में आये, तो यहीं ठहरे थे। गांव के एक नाई नरोत्तम ने ज्ञानीजी के लिये कुटिया तैयार की थी। उस स्थान पर दो सौ वर्ष पर किसी संत सुदर्शनदास ने निवास किया था, उनकी परम्परा के सातवें महन्त राधेश्यामदास वर्तमान हैं। ज्ञानीजी की वाणी में जेसलमेर से गुजरात आने का उल्लेख है।

---

१. कबीर और उनका पंथ, पृ० ८४।
२. कबीर सम्प्रदाय, पृ० १३४।

योग तथा यात्रा--कबीर साहब के साथ ज्ञानीजी की कीर्ति भी सर्वत्र फैल गई थी। अनेक लोग उनके दर्शन एवं उपदेश के लिये आते थे। ज्ञानीजी बस्ती से दूर निवास कर ध्यानयोग करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने राजपीपला से पूर्व में बीस मील दूर नर्मदा तट पर शूलपाणीश्वर की झाड़ी में आसन जमाया था। वहां भी कुछ समय में वे प्रसिद्ध हो गये थे। प्रति पूर्णिमा को उनके स्थान में रात भर भजन-कीर्तन होता रहता था, जिसमें आसपास के अवधूत, त्यागी संत एवं अबुध भील भी आते थे।

ज्ञानीजी ने बारह वर्ष तक भारत भ्रमण किया था। उन्होंने अनेक स्थान की यात्राएँ की थीं। संत दूलाराम (सं १८३०-७०) ने ज्ञानीजी की बारह वर्ष की तीर्थ यात्रा का उल्लेख किया है।

बारा साल बीत गये, ज्ञानी तीर्थ से आय।
साहब निर्वाण दीदार की, अभिलाषा सुखदाय॥
('संत निर्वाण साहेब' श्री माणेक लाल राणा, पृ० ८११)

ज्ञानीजी ने अपनी वाणी में राम की खोज में देश-विदेश भ्रमण करने का उल्लेख किया है।

गिरि गेहवर सब ढूँढ़िया, ढूंढ्या देस विदेस।
ज्ञानी राम न पाइये, बिन सत् गुरु उपदेस॥
(ह० लि० 'साखी ग्रन्थ' पृ० ६५)

बाबा साहब—जेसलमेर से कुमार चतुरसिंह की खोज में निकले बाबा साहब रामेश्वर तथा नासिक त्र्यंबक के मार्ग से सूरत होकर भरूच आये। भरूच में उनको राजकुमार का पता चला। भरूच से घोड़े पर वे शूलपाणीश्वर आये। नन्दीगढ़ से आगे मार्ग में नवगाम (वर्तमान नौगामा) से सूरसिंह एवं लक्ष्मणसिंह नाम के दो क्षत्रिय भाइयों को चतुरसिंह का पता मिलने का समाचार लेकर जेसलमेर भेजा था। ये समाचार जेसलमेर में सं० १४७७ के फाल्गुन शुक्ल तृतीया को मिले थे। ज्ञानीजी के मिलने पर पुनः "निमोड़ा" के भील राजा बहादरसंग के दो कुमार वीरसिंह एवं धीरजसिंह के साथ जेसलमेर तथा जयपुर समाचार भेजे गये थे।

मणिपुर के पास एक रत्नपुर नगर था। उसकी एक पहाड़ी पर बाबाघोर का स्थान है। कहते हैं, कि यही बाबा साहब का स्थान है, किन्तु "बाबाघोर" के विषय में अन्य दो विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। उनके अनुयायी उनको सैयद नौबी मानते हैं, जो शहाबुद्दीन गोरी की खिदमत में रहते थे, तथा जिन्होंने कुछ सिपाहियों की फौज लेकर यहां की माखनिया देवी तथा तथा अनेक हिन्दुओं का कत्ल किया था।[1] बम्बई

१. 'मखबेरुल अवलिया' प्रकाशक फजल मुहम्मद प्रकाशन, सूरत।

गजेटियर का मत इससे बिल्कुल विपरीत है। उसमें लिखा है, कि ये एबीसीनिया के संत थे। रतनपुर में आज भी सीदियों की बस्ती है, जो उनके अनुयायी हैं। उन लोगों के विषय में लिखा है, कि ये लोग "नीग्रो" जाति के हैं, जो पहले सोमाली के तट पर बसते थे। गुलामों के रूप में पकड़े गये थे। जहाज द्वारा सूरत लाकर वहाँ से रतनपुर में बसाये गये थे।[1] यहाँ रत्नों की खानें थीं, उन्हें निकालने वाले सीदियों की बस्ती यहीं रतनपुर में थी।[2] बाबा घोर का स्थान उन्हीं बाबा साहब का था, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ।

दानपत्र—ज्ञानीजी की एक शाखा पणसवाणा में है। गद्दी के पत्रों में राजपीपला राज्य की ओर से ५० एकड़ भूमि ज्ञानीजी के मंदिर को दान में देने का उल्लेख है। उस समय नंदीगढ़ (राजपीपला) का राजा नाबालिग होने से राज्य के एडमीनिस्ट्रेटर गोधरा के पोलीटिकल एजन्ट पी० डब्ल्यू० टी० स्टीवन्सन के उस पर दस्तखत हैं। बड़ौदा राज्य के अधिकार में भी कुछ दान दिया गया था।

ज्ञानीजी योग पूर्ण करके मणिपुर लौटे तब राजा तत्त्वसिंह ने उनका अपूर्व स्वागत किया था। एक मकान बनवाया तथा संतसेवा के लिये धन एवं कुछ जागीर का दान किया। उस दानपत्र का लेख वि० सं० १४८२ के चैत की पूर्णिमा के दिन हुआ था।

गंगाबा—जेसलमेर तथा जयपुर में समाचार मिलने पर दोनों राजपरिवार मणिपुर आये थे। गंगाकुंवरी भी साथ आयी थीं। ज्ञानीजी ने पहले गंगाकुंवरी को स्वीकार करने से इन्कार किया, किन्तु गंगाबा ने ज्ञानीजी के हाथ में तलवार देकर कहा कि मेरी हत्या कर फिर तुम साधना करो, जिससे कि इस कठिन समय में मेरे स्त्रीत्व की रक्षा हो। कहते हैं, इस बात पर गंगाकुंवरी के स्वीकार का आदेश कबीर साहब से मिला था। ज्ञानीजी ने गंगाबा को स्वीकार किया, किन्तु घर वापस आने का दृढ़ता से इन्कार किया। दोनों राज-परिवारों ने इस समाधान का स्वीकार कर लिया। तदनंतर गंगाबा ज्ञानीजी के साथ रहकर संत-सेवा करती रहीं।

सर्व-धर्म-सम्मेलन—उस समय मणिपुर के राजा तत्त्वसिंह की विनती से एक सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया। आयोजकों में महाराजा तत्त्वसिंह के साथ कबीर साहब, ज्ञानीजी तथा बाबासाहब थे। दूर-दूर से विभिन्न धर्म एवं संप्रदायों के प्रवर्तकों को निमंत्रित किया गया था। पौष शुक्ला एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक पाँच दिन सम्मेलन चला था। इस सम्मेलन में सिद्धपुर से रामशंकर शास्त्री तथा नीलकंठदास, सोमनाथ से त्रिलोचन, बंबई (मम्मा देवी) से हाजी मलंग, कच्छ से

---

१. 'बम्बई गजेटियर' वोल्यूम ९ भाग २, पृ० ११-१२।
२. ट्रान्स० बम्बई ज्योग्राफिकल सोसाइटी—२, पृ० ७६।

जीवणजी के पश्चात् यादुनाथदास तक की दस महंतों की संख्या के आधार पर जीवणजी को सं० १७५० तथा ज्ञानीजी को सं० १७०० में रखा गया है।[1] इसके आधार पर ज्ञानीजी कबीर के समकालीन नहीं ठहरते।

समाधान—(१) जीवणजी का समय २५ वर्ष के औसत काल से निश्चित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनके शिष्य कृष्णदास के पुत्र श्यामदास ने जीवणजी के जन्म तथा मृत्यु के निश्चित दिन का उल्लेख किया है।[2] तदनुसार उनका समय (सं० १६४६ से १७३७) निश्चित है।

(२) ज्ञानीजी के जन्म तथा समाधि के वर्ष निश्चित हैं। उनका जन्म सं० १४५१ तथा समाधि का वर्ष सं० १५५६ है। ज्ञानीजी तथा जीवणजी के मध्य अस्सी वर्ष का अंतर है, तथा दो पीढ़ियाँ बीच में आती हैं। बीच में भगवानदास तथा गोपालदास दो महंत हुए हैं; यह कोई अस्वाभाविक नहीं लगता। जीवणजी की परंपरा का औसत काल ३५ वर्ष का आता है। जीवणजी की परंपरा प्रामाणिक है।

(३) गुजरात में कबीर के दो शिष्यों—(ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ) की परंपराएं चली हैं। प्रायः उन सभी परंपराओं में संतों की १४ या १५ पीढ़ियाँ हुई हैं। ज्ञानीजी की गद्दी पर, सूरत निर्वाण गद्दी पर, पद्मनाभ की रविभाण परंपरा में १५ या १६ पीढ़ियाँ हुई हैं। तदनुसार उनका औसत काल प्रायः १५ वर्ष का आता है। इसके आधार पर जीवणजी, ज्ञानीजी, पद्मनाभदास तथा पद्मनाभ के समय का मेल बैठता है। ज्ञानीजी के प्राप्त जीवनवृत्त में अनेक प्रसंगों के वर्ष भी मिलते हैं। अन्य प्रसंगों के वर्षों का निर्णय इनके संदर्भ में किया जा सकता है।

१.	वि० सं०	१४५१	पौष शुक्ला एकादशी—ज्ञानीजी का जन्म
२.	,,	१४६२	यजुर्वेद की ऋचाओं का फारसी में भाषांतर
३.	,,	१४६६	रामचन्द्रजी के मन्दिर में पांच दिन की समाधि
४.	,,	१४६७	वसंत पंचमी—विवाह-मण्डप का त्याग
५.	,,	१४६८	दीक्षा तथा मणिपुर में निवास
६.	,,	१४६९	शूलपाणीश्वर में योग-साधना का आरम्भ
७.	,,	१४७७	फाल्गुन शुक्ला तृतीया को जेसलमेर में राजकुमार चतुरसिंह के प्राप्त होने के समाचार मिले
८.	,,	१४८०	बारह वर्ष का तप पूर्ण कर मणिपुर लौटे
९.	,,	१४८२	चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को दानपत्र का लेख हुआ

१. गु० भा० सं० प०, पृ० २६५।

२. संवत् सत्तरसे सात तीस, सुद पञ्चमी भादो मास।
ता दिन जीवण दास जी, लियो स्वधाम निवास॥

१०.	,,	१४८५	सर्वधर्म सम्मेलन, गंगाबा का आगमन
११.	,,	१५५१	पौष शुक्ला एकादशी गंगाबा की मृत्यु
१२.	,,	१५५९	पौष शुक्ला एकादशी को ज्ञानीजी ने जीवन्त समाधि ली।

स्थान की महिमा—ज्ञानीजी के इस स्थान की महिमा अतीत में सर्वाधिक थी। सन्तों की तथा रुग्ण मनुष्यों की सेवा होती थी। ज्ञानीजी को कभी-कभी महीने तक की समाधि लग जाती थी। गंगाकुँवरी तथा बाबा साहब हमेशा उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। वर्षा में बिजली गिरने से आंगन का नीम का वृक्ष फट गया; ज्ञानीजी ने उसे खड़ा करवाकर एक आम के थम्भे को गाड़कर बांध दिया। नीम का वह वृक्ष पुनः जीवन्त हो गया था। सं० १८९२ की बाढ़ में इसका कुछ हिस्सा टूट गया था, वह पुनः नवपल्लवित हुआ है। आम के थम्भे की लकड़ी दीख पड़ती है। उसके पत्तों में कड़ुआहट नहीं है।

स्थान में उन दिनों सन्त-साधुओं का डेरा लगा रहता था। बड़े-बड़े रोगों के दर्दी आते थे और रोगमुक्त होकर चले जाते थे। शिनोर के एक पक्षाघात के रोगी शुकदेव को ज्ञानीजी ने चलता बनाकर लौटाया था। मेले के दिनों में मानता वाले अपने बच्चों को गुड़ या शक्कर से तौला करते थे।

पन्थ-प्रवर्तन—कबीर साहब व्यवहार को मानते थे। जिस प्रकार प्रारम्भ में गुरु की आवश्यकता को स्वीकार कर स्वामी रामानन्द को गुरु बनाया, इस प्रकार अपने मत के प्रचारार्थ योग्य शिष्यों को दीक्षा भी दी थी। कबीर साहब ने ज्ञानीजी को कबीरवट में विहंगम-मार्ग का ज्ञान दिया था। ज्ञानीजी ने अपने एक पद में विहंगम-मार्ग का उल्लेख किया है।[1]

ज्ञानीजी ने रामकबीर सम्प्रदाय की गुजरात में स्थापना की, इसमें कबीर साहब की प्रेरणा एवं आशीर्वाद उनको मिले थे। ज्ञानीजी ने लिखा है, कि कबीर साहब "अलख दरबार" की शोभा थे; पर्दा दूर करके पुराना पन्थ खोज लिया।

शोभा है दरबार की, प्रताप दास कबीर।
पन्थ पुरातन खोजके, दूर किया पट चीर॥

रामकबीर सम्प्रदाय में कबीर को राम का अवतार मानते हैं, इसका [illegible] ज्ञानीजी हैं। ज्ञानीजी ने भी अपने गुरु कबीर को राम का अवतार माना है। [illegible] के उद्धार के प्रयोजन से उन्होंने "दास" नाम धारण किया था।

---

१. 'गर्भावलि', पृ० १६।

राम कबीरा हो रहा, कलजुग में प्रकाश।
सब संतनकु तारवा, नाम धरिया दास ॥

कबीर साहब द्वारा भक्ति के नवखण्ड में प्रचार वाली प्रसिद्ध उक्ति "भक्ति द्रविड़ उपजी, लाये रामानन्द" ज्ञानीजी की वाणी में है। सम्भव है, यह उन्हीं की लिखी हो।

ज्ञानीजी के जीवनवृत्त के स्रोत—ज्ञानीजी के जीवन की विस्तृत कथा उनकी परम्परा के स्व० महन्त श्री गोरधनदासजी के पास एक पुरानी पोथी में लिखी हुई थी। ज्ञानीजी के "रामकबीर सम्प्रदाय" पर सूरत के श्री मूलाभाई भक्त अनुसंधान कर रहे हैं, उनसे भी कथा प्राप्त हुई थी। ज्ञानीजी के जीवन का परिचय दे सके, ऐसी "श्री ज्ञानीजी महाराज की परिचरी" का उल्लेख "विवेक समुद्र" में है,[1] किन्तु ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सका।

ज्ञानीजी की रचनाएँ

		प्राप्ति स्थान
१ "साखी ग्रन्थ"	ह० लि० प्र०	लेखक के पास
२ "ब्रह्मस्तुति"	ह० लि० प्र०	का० न० प्र० सभा की रिपोर्ट (१६३८-४०)
३ "ज्ञानपाति"	ह० लि० प्र०	वही (१६३२-३४)
४ "शब्द पारखमणि"	(ज्ञानवत्रिसी) प्रकाशित	—
५ "रामसार ग्रन्थ	ह० लि० प्र०	रामकबीर मन्दिर, पुनियाद
६ "ज्ञानदीपक चन्द्रायन"	प्रकाशित	मि० ता० संग्रह, किशोर प्रेस, बोडेली
७ "नाम महिमा"	ह० लि० पदसंग्रह	नं० १०६६ भो० जे० विद्याभवन, अहमदाबाद

रा० क० सम्प्रदाय के एक भजन संग्रह "त्रिकम तारण संग्रह" में "कबीर-ज्ञानीजी संवाद" प्रकाशित है। सम्भव है, परम्परा के किसी सन्त कवि ने इसकी रचना की हो।

ज्ञानीजी के अन्य कितने ही पद तथा कवित्त विभिन्न संग्रहों में प्राप्त होते हैं।

ज्ञानीजी की वाणी—आ० परशुराम चतुर्वेदी जी को प्राप्त हुए ज्ञानीजी के दो ग्रन्थ "साखी ग्रन्थ" तथा "शब्द-पारखी" के आधार पर उन्होंने लिखा है: कि

1. 'विवेक समुद्र', पृ० ४० ।

उनका निर्माता (ज्ञानीजी) प्रायः इन्हीं वातों का वर्णन करता है, जो कबीर साहब आदि सन्तों के यहां पाई जाती है; तथा उसकी कथन शैली भी उनसे किसी प्रकार भिन्न नहीं ठहराई जा सकती।[1]

ज्ञानीजी ग्यारह वर्ष की अल्पायु में रचना करने लगे थे। बारह वर्ष की उम्र में यजुर्वेद की ऋचाओं की भाषान्तर करते थे। ज्ञानीजी में जन्म से ही मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। बचपन में उन्हें संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का ज्ञान दिया गया था।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में उनके ब्रह्म-स्तुति, ज्ञानपाति तथा शब्द-पारखी ग्रंथों के उल्लेख मिलते हैं।[2]

(१) साखा ग्रन्थ—कबीर की वाणी के साथ ज्ञानीजी की साखियों का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है,[3] जिसमें ज्ञानीजी की साखियां भी निम्नांकित विभिन्न अंगों में विभक्त की गई हैं। इसके लिपिकर्ता तथा काल अज्ञात हैं। गुरुदेव, सन्त, सुमिरण, नाम-माहात्म्य, पिऊ-परचा, उनदेश, अवर्ण, सत्नीर वाणी, नीकलंक, दुलभ, शिरोमणि, समरथाई, चिंतामणि, सहज, हेत, कामधेनु, मृग, भेदी, वाजीगर, माया, राजस, तामस, सात्विक, अनहद, विरह, लाग, प्रीत, परमार्थ, स्वार्थ, व्यभिचारिणी, पतिव्रता, कठोर, प्रमोध, विनति, कृपा, भेंट, माया तथा काल के अंगों में कुल ६९९ साखियां लिखी हुई हैं।

(२) "शब्द-पारखी" (ज्ञान वत्रिसी)—शब्द-पारखमणि के नाम से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।[4] उसमें ज्ञानीजी के ३२ छप्पय संकलित हैं। गुजराती कवि मांडण की "प्रबोध-वत्रिसी", ज्ञानीजी की "ज्ञान वत्रिसी" की परम्परा में लिखी हुई लगती है, क्योंकि ज्ञानीजी की वाणी का अनुकरण उसमें परिलक्षित होता है। ज्ञानीजी ने इसमें गुरु, योगी, संन्यासी, मुनि, पण्डित, ब्राह्मण, जैन, हिन्दू, मुसलमान, काजी, शेख, सैयद, गृहस्थ, भगत, दास, वैरागी, स्वामी-सेवक इत्यादि के लक्षणों का वर्णन किया है।

(३) रामसार ग्रन्थ—यह ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में है।[5] इस ग्रन्थ में रामनाम की महिमा गाई गई है। ग्रन्थ शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है।

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २७६।
२. कबीर और उनका पन्थ, ८४।
३. यह ग्रन्थ लेखक के पास है।
४. त्रिकम तारण संग्रह, पृ० १८९।
५. ह० लि० ग्रन्थ (क्रम २४) राम पुस्तकालय, रामकबीर मन्दिर, पुनियाद।

ग्रन्थ के अन्त में कबीर साहब द्वारा दिखाये गये भेद को एकमात्र ज्ञानीजी समझे थे, ऐसा उल्लेख किया गया है।

सद्गुरु रामानन्द प्रताप, हरजी अन्तर प्रगट्या आप।
कहे कबीर ए भेद अगाध, ज्ञानी विरला बूझे साध ॥

ज्ञानीजी को रामनाम में विश्वास कबीर साहब द्वारा उत्पन्न हुआ था।

रामनाम सु राखो मन धीरा, ज्ञानी का सद्गुरु कहे कबीरा।

(४) ज्ञानदीपक चन्द्रायन—यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।[1] उसमें निम्नांकित विचार व्यक्त हुए हैं। "भक्त-भगवान्, स्वामी-सेवक एक हैं। सत्युग में सत्य का, त्रेता में तप का, द्वापर में पूजा का तथा कलि में नाम का आधार है। ब्रह्म ने एक बार संसार में प्रलय किया था, तब संसार की सारी आत्माएँ परमात्मा में मिल गई थीं। संसार नष्ट हो गया, एक परब्रह्म थे। तदनन्तर संसार की उत्पत्ति हुई थी, इसका वर्णन है। संसार उस बाजीगर की बाजी है, एक स्वप्न है। मैं आत्मा हूँ।"

(५) नाम-महिमा—यह एक दीर्घ पद (काव्य) है।[2] इसमें नाम की महिमा का वर्णन है। नाम का आधार लेकर जिनका उद्धार हुआ, उन भक्तों की नामावली है। उनमें कबीर, रैदास, सेना, नामदेव, धना तथा पीपा आदि भक्तों के नाम हैं।

(६) कबीर-ज्ञानी संवाद—'त्रिकम तारण संग्रह' में यह संवाद प्रकाशित हुआ है। यह संवाद ज्ञानीजी का लिखा नहीं लगता। उनकी परम्परा के किसी सन्त ने लिखा हो, यह सम्भव है। इसमें ज्ञानीजी आत्मबोध के विषय में प्रश्न करते हैं। इसके उत्तर में कबीर ज्ञानीजी को समझाते हैं कि ब्रह्म अलख, निरंजन, निराकार है। अनुभव से गम्य है। पांच तत्व की उत्पत्ति, स्वर्ग इत्यादि का वर्णन है। अन्त में राम की भक्ति का उपदेश है।

शून्य सहज एक राम है, ताहो थे सब होय।
कहे कबीर ज्ञानी सुनो, और न दूजा कोय ॥

(७) फुटकल पद—ज्ञानीजी के कई फुटकल पद यत्र-तत्र मिलते हैं। "राम-कबीर भक्त भजन संग्रह" में पद २८, ३६, ३१३, ३१४ तथा ३६८ "उदाधर्म पंथना माला" में ३५ तथा ३६ पद ज्ञानीजी के नाम हैं।

---

१. त्रिकम तारण संग्रह, पृ० २२३।

२. भो० जे० विद्याभवन, अहमदाबाद, 'पद संग्रह : (क्रम १०६६)।

ज्ञानीजी के मत

(१) संसार—ज्ञानीजी संसार को असार तथा बाजीगर का खेल मानते हैं। लोग इस बाजी में ऐसे भूल जाते हैं, कि बाजीगर को ही नहीं देख पाते। गुरु द्वारा ही परब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। ज्ञानी ने गुरु के शब्द को स्वीकार कर लिया। गुरु ने बता दिया कि राम-नाम सार है, अन्य सब भ्रम है। अमली को जितना अमल प्रिय है, यौवन को काम प्यारा है, वन्ध्या को पुत्र की कामना है, ऐसे ज्ञानी को राम प्यारा है।[1]

(२) राम-नाम—ज्ञानीजी हरि के नाम का स्मरण करते हैं; क्षणभर का भी विस्मरण नहीं है। राम सब के कर्त्ता एवं भर्त्ता हैं। भ्रम छोड़ उनका नाम लेना चाहिये। ज्ञानीजी के राम अविनाशी हैं। राम के नाम के अविरत जाप होने चाहिये। ज्ञानीजी अजपाजाप मानते हैं। हरि-गुरु-सन्त की एकता का उपदेश है।

सद्गुरु-साधु-रामजी, नाम तीन, अंग एक।
ज्ञानी जिन ए अङ्ग लह्या, तिन पाया बड़ा विवेक॥

(३) सन्त – सारे तीर्थ सन्तों के चरण में हैं। सारे देव उनके प्रतिहारी हैं, क्योंकि वहाँ निश्चय ही आद्य पुरुष का निवास है।[1] भक्त-भगवान् का सम्बन्ध ऐसा है, कि स्वामी सेवक में बसता है, तथा सेवक स्वामी में।

(४) अगम्य देश—कबीर के अगम्य देश का परिचय ज्ञानीजी ने भी दिया है। उन्होंने लिखा है, कि उस देश में माता नहीं, पिता नहीं, कुल की मर्यादा नहीं, छुआछूत नहीं; ज्ञानी उस देश के निवासी हैं, जहां झलमल-झलमल ज्योति जलती है।

मात नहीं, जहाँ तात नहीं, कुल करणी नहीं छोत।
हम ज्ञानी उस देसके, जहां झलमल-झलमल ज्योत॥[2]

(५) सहज समाधि—ज्ञानीजी सहज ज्ञान तथा सहज समाधि को मानते हैं। सहज में धुन लग जाती है तब "सोऽम्" की ध्वनि होने लगती है। सद्गुरु की सहाय बिना मनुष्य उसे प्राप्त नहीं कर सकता।[3]

(६) पक्षापक्ष—तत्कालीन समाज में विद्वानों में प्रवर्तित पक्षापक्ष का विरोध करते हुए ज्ञानीजी ने आत्मतत्व का विचार करने वाले को ही अपना गुरु माना है।[4]

---

१. 'सांखी ग्रन्थ' ह० लि० प्रति-६२।
२. वही, पृ० ७९।
३. वही, साखी—१३।
४. पक्षापक्षी को मत नहीं झाले, लोकवेद से उल्टा चाले।
आत्मतत्व का करे विचारा, कहे ज्ञानी सो गुरु हमारा॥

(७) आपा (अभिमान) त्याग—ज्ञानीजी स्वयं पूरे निरभिमान थे। उन्होंने अपनी वाणी में अभिमान के त्याग का उपदेश दिया है। अभिमान छोड़ जो राम की भक्ति नहीं करेगा, उसका एक भी काम नहीं होगा।

आपा तजी भजे नहीं राम, ताते सरै न एकै काम।

(८) वेद-विरोध—कबीर के वेद-विरोध के दर्शन ज्ञानी की वाणी में भी होते हैं। जहाँ वेद न पहुँच सके, उस अगम्य को मेरे गुरु (कबीर) ने गम्य बनाया था। चार वेद चार "खाण" हैं, जो जीव को चार युग में पार करा सकते हैं। इनको जाननेवाले पंडित थक गये, किन्तु उनको इसका सार मिला नहीं।[1]

(९) दम्भ विरोध—ज्ञानीजी ने साधुओं का स्वांग बनानेवाले दम्भी साधुओं के विषय में कहा, कि ये लोगों को दिखाने के लिए माला फिराते हैं, सच्चा स्मरण तो मन में होता है।

लोक देखावन जे करैं, सो हरि-सुमिरन नाहीं। तथा
माला सुमिरन जगत का, आत्म सुमिरन सार॥[2]

(१०) अमूर्त भाव—ज्ञानी ने कबीर साहब जैसे मूर्ति का खुल कर विरोध नहीं किया। उन्होंने मूर्ति में जो अमूर्त भाव है, उसे पहचानने की चेतावनी दी है।

देख मूरत देखिये, मांही अमूरत भाव।
ज्ञानी सद्गुरु सो कही, ताहीसू मन लाव॥[3]

कबीर वाणी का प्रभाव

ज्ञानीजी की वाणी पर कबीर का प्रभाव सर्वाधिक है, किन्तु कबीर के समकालीन होने से उनकी वाणी का प्रभाव कुछ कम दिखाई देता है। ज्ञानीजी ने भी अपनी वाणी विभिन्न अंगों में विभक्त कर लिखी है। ज्ञानीजी विद्वान् थे। सोलह वर्ष से पूर्व काव्य-रचना करने लगे थे। संस्कृत के साथ फारसी पर भी उनका अधिकार था।

कबीर साहब ने नम्रतासूचक जैसे "दास" शब्द अपनाया था, तथा अपनी वाणी में "जन-कबीर" का प्रयोग किया था। ज्ञानीजी की वाणी में अनेक स्थान पर ऐसा "जन-ज्ञानी" शब्द का प्रयोग आता है। कबीर साहब के अनुकरण में ज्ञानीजी ने उलटवासी का प्रयोग भी किया था।

१. 'साखी ग्रन्थ' साखी—१८।
२. वही, साखी—१७।
३. वही, साखी—६१।

तरवर देखा मूल बिन, अधर रह्या निरधार ।
आद्य, अन्त, मध्य नहीं, साखा पान अपार ।। २७ ।।

विषय, भाव, शब्द एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी ज्ञानीजी की कुछेक पंक्तियों पर कबीर की वाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है ।

कबीर—सो ब्रह्मा जो कथे ब्रह्मज्ञान ।[1]
ज्ञानी—ब्राह्मण सोई, जो चीने ब्रह्म ।
कबीर—काजी सो जाने रहमान ।[2]
ज्ञानी—आगे अल्ला त्यागे वाजी, कहे ज्ञानी सो सच्चा काजी ।
कबीर—सो मुल्ला जो मनसु लरै, अहर्निश काल चक्र सुमिरै ।[3]
सो सुलतान, जुद्धे सुरताने, बाहरि जाता, भितरि आनै ।।
ज्ञानी—मुल्ला सो मनकी जानै, बाहरि जाता, भितरि आनै ।।[4]
कबीर—जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप ।
पुहुप बाससे पातरो, यही तत्त अनूप ।।
ज्ञानी—सुरनर मुनि सब खोजके, ज्ञानी चले सबहार ।
पुहुप बाससे पातला, ऐसा तत्त अपार ।।[5]

ज्ञानीजी की परंपरा—ज्ञानीजी की अपनी पुत्र-परंपरा "मोटा सांभा" में है । इसके वर्तमान महंत श्री मधुसूदनदास हैं । यह स्थान अंकलेश्वर-राजपीपला मार्ग में झगड़िया के पास है । यहाँ ज्ञानीजी के समय में राजा तख्तसिंह की मणिपुर-राजधानी थी । गाँव में ज्ञानीजी का मन्दिर, समाधि तथा स्थान है । पास में एक टीला है, जो "ज्ञानीजी की टेकड़ी" के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ दो सौ वर्ष पर किन्हीं सन्त ने निवास किया था, उनकी परंपरा के महंत राधेश्यामदास हैं । इस परंपरा के शिष्यों की कबीरवट, सूरत, शाहपुर, पुनियाद, पणसवाड़ा इत्यादि स्थानों में गद्दियाँ चलती हैं ।

मन्दिर में अनेक हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ हैं । इसमें ज्ञानीजी की वाणी के ग्रन्थ भी हैं । इसके अलावा ज्ञानीजी के स्थान सम्बन्धी कुछेक पत्र भी हैं । सं०

१. क० ग्रं० (पञ्चमावृत्ति) पृ० २०७ ।
२. वही, पृ० २०० ।
३. वही, पृ० २०७ ।
४. ज्ञानी जी का छप्पा—१४ ।
५. 'साखी ग्रन्थ' ह० लि० ग्रन्थ लेखक के पास है ।

१८१० के एक पत्र में ज्ञानीजी की परंपरा के महंत दयाराम वैरागी के नाम तत्कालीन शासक दामाजीराव गायकवाड़ का दिया अधिकार-पत्र है। सं० १८२२ के एक पत्र में पीलाजीराव गायकवाड़ ने रक्षा करने का वचन दिया है। दि० २८-१-१८८७ के पत्र क्रमांक १४७ तालुका नं० ६६१/५ द्वारा सरकार ने मेले में दूकान वालों से किराया वसूल करने का अधिकार दिया है।

ज्ञानीजी के मुख्य मन्दिर, मोटासांभा की प्रणालिका :—"ज्ञानीजी ज्ञानदेव-स्यामदेव-रामदेव-वासुदेव-नरभेराम—अभेराम—दयाराम वैरागी (सं० १८२२)—रघुनाथदास-रामदास हरगोविंददास (सं० १६२७)—गोपालदास—गोरधनदास (सं० १६६८)—रामकृष्णदास-मधुसूदनदास (वर्तमान)।

"कबीरवट" में ज्ञानीजी की परंपरा—"कबीरवट" का स्थान मूल तत्वाजीवा का स्थान है। तत्वाजीवा गुरु आज्ञा से विहार में फतुहा चले गये। कबीरवट वाले स्थान का अधिकार कबीर साहब ने अपने शिष्य नीरदास को दिया था। नीरदास के पीछे ज्ञानी ने अपने एक शिष्य देवदास को नीरदास का उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

पुनियाद के उदापंच के एक ट्रस्ट में कबीरवट की गद्दी की प्रथम दस पीढ़ी का उल्लेख किया गया है।[1] महंतों का क्रम निम्न प्रकार है :—

नीरदास-देवदास--मुकुंददास-हरिदास--गोकुलदास--कृष्णदास--जगन्नाथदास-रामरतनदास-रामदास-विष्णुदास।

उस दस्तावेज में कुछ अन्य बातें भी हैं। "जीवणजी की पुनियाद की गद्दी का सम्बन्ध ज्ञानीजी से है। सांभापुर की गद्दी ज्ञानीजी का मूल स्थान है। कबीरवट में कबीर ने निवास किया था, तब ज्ञानीजी ने उनको गुरु किया था।

अम्बाराव (धनराज पंड्या) पद्मनाभ के शिष्य तथा मित्र थे। उनके कीर्तनों में पद्मनाभ की स्तुति है। कबीरवट के स्थान को काशी की उपमा दी गई है।"

कबीरवट में कार्तिकी पूर्णिमा को मेला लगता है, उसका तथा ज्ञानीजी के मेले का उल्लेख है। रामस्वरूप कबीरजी तथा सद्गुरु ज्ञानीजी के निर्वाण दिन पर इस दस्तावेज में दान की व्यवस्था की गई है।

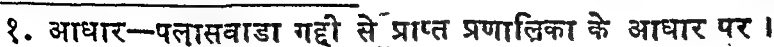
इस प्रणालिका के संत रामरतनदास ने शुक्लतीर्थ में मन्दिर बनाकर इसकी एक शाखा की स्थापना की। उनके पीछे कबीरवट की परंपरा भक्त पाटीदारों के अधिकार में है।

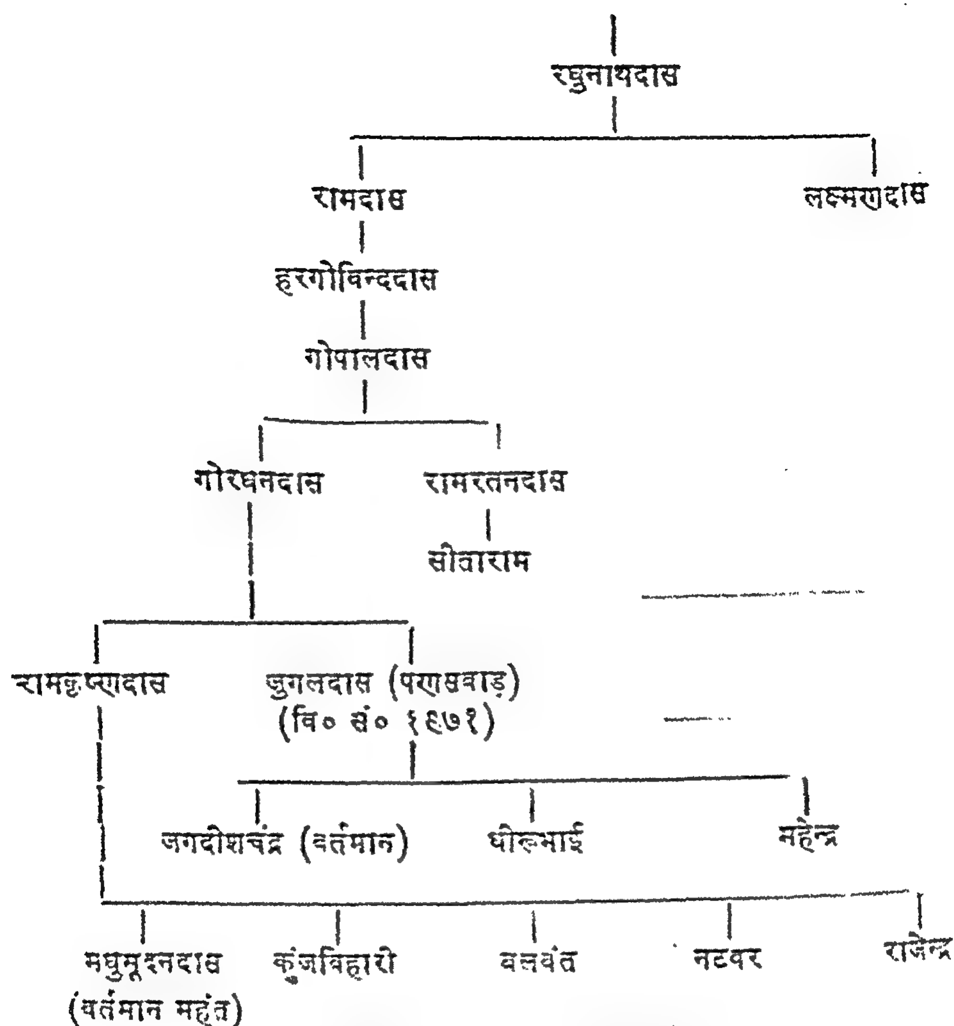
---

१. दस्तावेज नम्बर ११०५ [illegible] दिनांक १६-५-१६१२ ।

ज्ञानीजी की परम्परा का वृक्ष

- पुत्र ज्ञानदेव
  - सामदेव
    - रामदेव
      - वासुदेव
        - नरभेराम
          - अभेराम
            - दयाराम
              - अजबराम (मोटाबाबा)
                - नरोत्तमदास
                - भगवानदास
                  - तुलसीदास
              - भाईबाबा
                - दुर्बमराम
                  - मनोरदास
                    - हीरादास
                    - जगन्नाथ
                      - त्रीकमदास
                        - जानकीदास
                          - चतुरदास
                            - छोटालाल
                            - राधेस्याम
                            - रमणलाल
                    - फरसुराम
                    - जैरामदास
                - करसनदास
                - हरिदास
                  - गुलाबदास
                    - रणछोड़दास
                      - चतुरदास
                      - मोतीराम
                    - नारणदास
                    - मंछाराम
                - केशवदास
              - रघुनाथदास (आगे का पृष्ठ देखिये)
            - कृपाराम
          - उदेराम
        - आशाराम
        - ईश्वरदास
        - प्रेमदास
        - दीढवदास
        - कल्याणदास
- पुत्र सामदेव
- शिष्य देवदास (कबीरवट)
- शिष्य भगवानदास
  - गोपालदास
    - जीवणजी (पुनियाद)


१. आधार—पलासवाडा गद्दी से प्राप्त प्रणालिका के आधार पर।



ज्ञानीजी की परम्परा के शिष्य

(१) गोपालदास—ये कबीर साहब के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी के एक शिष्य भगवानदास जी के शिष्य थे। यद्यपि पुनियाद गद्दी की प्रणालिका में गोपालदास को ज्ञानीजी का शिष्य बताया है, किन्तु "पणसवाड़ा" गद्दी से प्राप्त प्रणालिका सम्पूर्ण है, तथा प्रामाणिक भी है।[1] इसमें उनको भगवानदास का शिष्य दिखाया है।

उनको बड़े गोपालदास कहते थे, क्योंकि उनके शिष्य जोधराजी के एक शिष्य का नाम भी गोपालदास था। उनको छोटे गोपालदास कहते थे। उनके शिष्य जोधराजी प्रतापी सन्त थे, जिन्होंने अपने अनुयायियों को "ठडा-पन्थी" कहा था। गोपालदास ने शाहपुरा में निवास किया था, जहाँ उनकी गद्दी है।

---

१. प्रणालिका की प्राचीन हस्तलिखित प्रति तथा इसकी फोटोस्टेट कापी लेखक के पास है।

गोपालदास मूल चोरन्दा (जि० बड़ौदा) के निवासी थे। जाति के वणिक थे। जीवणजी ने उनको जनकवंशी कहा है। चोरन्दा में 'रामकबीर' के दो घर थे, किन्तु कुछ वर्ष पहले ये लोग गाँव छोड़ कहीं चले गये। गोपालदास की कुछ वाणी प्राप्त नहीं होती। जीवणजी की वाणी में गुरु रूप में उनका उल्लेख है।[1] कहते हैं, उनके चार शिष्य थे, जीवणजी, पण्ड्याजी (कण्डारी), रूपाभक्त तथा देवा शाही।

जीवणजी ने लिखा है, कि जिस प्रकार चिड़िया अपने बच्चे को चून देती है, ऐसे मेरे गुरु ने गा-गा कर मुझे ज्ञान समझाया।[2]

वि०सं० १६८३ के आश्विन शुक्ला १३ को जीवणजी का गुरु से प्रथम मिलन हुआ था।

गुरु गोपालदास शिष्य जीवणजी को लेकर धर्म प्रचारार्थ मारवाड़ गये थे। जीवणजी ने गुरु को कुछ माया (धन) साथ ले लेने को कहा, किन्तु गोपालदास ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। वहाँ पर धन की आवश्यकता पड़ने पर जीवणजी वापस चले आये थे। माया के प्रति गुरु गोपालदास की निस्पृहता के कारण ही शायद उन्हें "जनकवंशी" कहा गया है।

(२) जीवणदास—जीवणदास जी अपने भक्तों में "जीवणजी महाराज" के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म सौराष्ट्र के पोरबन्दर में वि० सं० १६४९ के वैशाख सुदी ९ को हुआ था। जीवणजी के एक सेवक हरिदास नड़ियादी ने जीवणजी के 'समागम' लिखे हैं, उसमें जीवणजी मोरियाद महाल आये थे, उसकी तिथि सं० १६६० की श्रावण शुक्ला अष्टमी लिखी है तथा उस समय जीवणजी की उम्र ग्यारह वर्ष की बताई है।[3] इससे जीवणजी का जन्म का वर्ष सं० १६४९ निकलता है।

सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने चोरन्दा (जि० बड़ौदा) जाकर गुरु गोपालदास से दीक्षा ली। शरद पूर्णिमा के दिन वहाँ जाकर भजन-कीर्तन करने का उल्लेख "समागम" में है। पोरबन्दर में उनके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। पोरबन्दर की एक पानबाई नाम की ब्राह्मण स्त्री ने उनके चाचा को बुलाकर लड़का उनको सौंप दिया। जीवणजी के चाचा उनको लेकर "मोटासांझा" ज्ञानीजी के स्थान में आये। ग्यारह वर्ष की उम्र तक जीवणजी ने वहाँ रहकर विद्या सम्पादन की। वहाँ उनको कबीर एवं ज्ञानीजी की वाणी का अध्ययन करने का अवसर मिला।

---

१. नाम हमारो जीवणा, कणबी कुल अवतार।
साांई हमारा रामजी, सद्गुरु दास गोपाल॥

२. उ० ध० पं० र० मा०, साखी—८६।

३. 'समागम' हस्तलिखित प्रति पुनियाद, रामकबीर मन्दिर।

ज्ञानीजी के स्थान में एक कहानदास नाम के भक्त निवास करते थे। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह जीवणजी से करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। जीवणजी के चाचा ने अपनी सहमति प्रकट की, किन्तु जीवणजी ने इसका विरोध किया। जीवणजी ने कहा कि मैं आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता हूँ। कहते हैं, इससे क्रोध में आकर कहानदास ने शाप दिया कि तुमको उत्तरावस्था में दो विवाह करने पड़ेंगे। इसमें इतना तो सत्य है कि जीवणजी ने दो विवाह किये थे।

वहाँ से भागकर जीवणजी गोहज-गोरियाद नामक गाँव में गये। तब उनकी उम्र ग्यारह वर्ष की थी। तदनन्तर वे गुरु गोपालदास के पास शाहपुर आकर रहने लगे। सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने कबीर विचारधारा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था।[1] जीवणजी जाति के कुणबी थे। उन्होंने अपनी वाणी में अपनी जाति, स्थान तथा गुरु के नाम का उल्लेख किया है।

नाम हमारो जीवणा, कणबी कुल अवतार।
सांई हमारा रामजी, सत्गुरु दास गोपाल ॥
(उ० ध० प० र० मा० साखी—१, पृ० ६३)

कहा गया है, कि जीवणजी पूर्वजन्म में कृष्ण के सखा थे। भोजा गुज्जर की पुत्री धनाई को उन्होंने चुम्बन किया था। भोजा गूजर ने पुत्री पर क्रोध किया, अतः श्रीकृष्ण ने उनको भूत योनि प्रदान की। मंगलेश्वर के पास झाड़ेश्वर गाँव में केशवदास की पत्नी रामबाई में उनका निवास था। जीवणजी ने रामबाई को भूत से मुक्त कराकर भोजागुजर का दही पिलाकर उद्धार किया।[2] इस प्रसंग का उल्लेख नरसिंह मेहता के नाम लिखे एक गीत में है।

भोजा गूजर तणी हूं बेटी मारुं नाम धनाई रे।
मारा कुलमां कायल न्होतुं, मारी रतन सी देह वणसाई रे।
गरसैया चा स्वामिनी संगे रमता, संसार वात जणाई रे ॥

जीवणजी ने अपनी वाणी में मंगलेश्वर जाने का उल्लेख किया है।

एक समे मंगलेश्वर गामा, भयो परचो, सरो सब कामा ॥ २२ ॥

इसमें मंगलेश्वर में हुए चमत्कार का उल्लेख है।

जीवणजी के जीवन के अनेक प्रसंगों के उल्लेख मिलते हैं। जीवणजी करजणी से शाहपुरा आकर रहे थे। मार्ग में पुनियाद के पास एक नीम के वृक्ष के दाग हुए

१. 'विवेक समुद्र' सरदारपुर, पृ० २।
२. सं० १८७२ में लिखी एक ह० लि० प्र० के आधार पर पुनियाद मन्दिर।

लोग कुआँ बनाते थे। जीवणजी ने कहा, कि यह मिट्टी से भर जायगा। वही हुआ, तब सब लोगों ने जाकर जीवणजी को अपने स्थान में आकर निवास करने की विज्ञप्ति की। तदनन्तर वे पुनियाद आकर रहे, जहाँ आज भी उनकी गद्दी एवं परम्परा है।

एक बार पुनियाद से चोरन्दा जाते मार्ग में धनोरा गांव के बाहर तालाब के पास एक सूखे पीपल के वृक्ष के नीचे कुछ ठहर गये थे। उस दिन उसे काटने के लिए कुछ मजदूर भेजे गये थे। मजदूरों ने देखा, तो पीपल का वृक्ष हरा था। वृक्ष के मालिक रतनसिंह ने आकर जब देखा, तो चकित हो गया। उसके नीचे बैठे सन्त जीवणजी के प्रभाव को देख उसने अपनी अपंग पुत्री हरमाबाई के कष्ट को दूर करने की प्रार्थना की। कहते हैं, जीवणजी ने उसको कष्टमुक्त कर दिया। रतनसिंह ने जीवणजी को पुत्री अर्पण कर दी। जीवणजी के इंकार करने पर हरमाबाई ने कहा था।

ज्ञान प्रकाशी गुरु मिल्या, सो केम विसर्यो जाय।
जो गोविन्द कृपा करे, गुरु मिलेंगे आय ॥[1]

जीवणजी ने उसको स्वीकार किया।

जीवणजी की मृत्यु सं० १७३७ में हुई थी। जीवणजी के शिष्य कृष्णदास की परिचरी उनके पुत्र स्यामदास ने लिखी थी; उसमें इसका उल्लेख किया है।

संवत् सत्तर से सात त्रीस, सुद पंचमी भादो मास।
ता दिन जीवणदास जी, लियो स्वधाम निवास ॥[2]

मृत्यु से पूर्व उन्होंने सूचना दी थी, कि उनकी समाधि शाहपुरा की वाड़ी में गुरु के साथ की जाय। स्यामदास ने मृत्यु के प्रसंग का विस्तृत वर्णन किया है।

जीवणजी ने सं० १७२८ में अपने शिष्य कृष्णदास के साथ बद्रीनारायण की यात्रा की थी।[3]

लालदास, गोपालदास (छोटे), हरिदास (नड़ियादी) तथा रूपाभक्त ये चार जीवणजी के सेवक (टहेलिया) थे। अपने पुत्र स्यामदास को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्ति किया। शिष्यों में वसन्तदास, स्यामदास, सुखसागर, बाबा गोविंददास तथा अखेजी के नाम हैं।[4] गुजराती साहित्य से सन्त कवि अखाजी समकालीन थे, किन्तु ये ही उनके शिष्य थे, यह कहने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

---

१. ह० लि० ग्रन्थ (मालवा से प्राप्त) स्थान—राम पुस्तकालय, पुनियाद।
२. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० ३३३।
३. विवेक समुद्र, सरदारपुर।
४. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० २४०।

गुरु एवं परम्परा—जीवणजी ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने शिष्यों को बताया था, कि यह नामदेव-कबीर का स्थान (परधारा) है। हरिदास नड़ियादी ने इस सम्प्रदाय के लिए "नामदेव-कबीर नो धरम" लिखा है।[1] गुरु एवं परम्परा का उल्लेख जीवणजी ने अपनी वाणी में किया है। जीवणजी ने गुरु के रूप में गोपालदासजी का, परम्परा के प्रवर्तक के रूप में ज्ञानीजी का तथा सब के सद्गुरु के रूप में कबीरजी का नाम दिया है। अपने गुरु के बारे में लिखा, कि वे जनक के अवतार थे।

सद्गुरु दास गोपालजी, जे जनक वंश अवतार।

ज्ञानीजी की परम्परा का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उन्होंने अपने आपको "ज्ञानी के परमोध में उदा जीवणदास" बताया। कबीर साहब को तो उन्होंने सब के सद्गुरु के रूप में घोषित किया था।

सब के सदगुरु कबीर जी, मनत करो जन कोई।[2]

कबीर का प्रभाव—जीवणजी ने अपनी वाणी में कबीर साहब का उल्लेख अनेक बार तथा बड़े आदर के साथ किया है। जीवणजी कहते हैं, जहाँ कबीरजी की छाया पड़ती है, वहां राम का निवास है। उनका दास 'जीवण' उनको कभी भूलता नहीं।[3] जीवणजी ने कबीर साहब की प्रशस्ति करते हुए लिखा, कि जैसे कबीर साहब हुए, ऐसा कोई हुआ नहीं, न कोई होगा।

हुआ न होसी जीवणा, जैसा दास कबीर।[4]

जीवणजी प्रवर्तित उदापन्थ के विषय में आ० क्षिति मोहन सेन ने इसके ऊपर कबीर का प्रभाव होगा या नहीं इसकी शंका व्यक्त की थी। जीवणजी ने अपनी वाणी में मात्र कबीर की प्रशस्ति ही नहीं की। उन्होंने लिखा है, कि स्वामी रामानन्द ने जो उपदेश कबीर को दिया था, वही उपदेश मेरे गुरु ने मुझे दिया था।

रामानन्द जे कही, सो सुनी दास कबीर।
सो सद्गुरु कही जीवणा, मन सीतापति रघुवीर ।।[5]

मेरे गुरु ने भी कहा था कि हम सब के सद्गुरु कबीर साहब हैं।

श्रीगुरु कहे सुन जीवणा, सद्गुरु दास कबीर ।। २५ ।।

---

१. 'समागम' ह० लि० प्रति (पृ० २४) राम पुस्तकालय, पुनियार।
२. उ० प० प० र० मा०, पृ० १०६।
३. वही, पृ० ११५।
४. वही, पृ० १२०।
५. वही, पृ० ६४।

गुरु के उपदेश से जीवणजी ने कर्मकांड का त्याग किया। जीवणजी कहते हैं, यह उपदेश भी मूल कबीर साहब का दिया हुआ है।[1] जीवणजी ने विधि तथा आचारों का जो विरोध किया था, उनके संप्रदाय में आज भी चुस्ती से इसका पालन होता है। विवाह तथा मृत्यु के समय किसी भी विधि को स्थान नहीं है। विधि करानेवाला ब्राह्मण नहीं है। समय के अनुरूप विविध भजन गाये जाते हैं।

जीवणजी ने दंभी गुरु का विरोध किया है। गुरु अज्ञानी होता है, तो शिष्यरूपी गधे को गुरु रूपी राख में लोटने से क्या प्राप्त होगा ? जिसको सच्चा गुरु नहीं मिला, ऐसा पंडित राहुग्रस्त चन्द्र जैसा है।[2]

माला तथा तिलक धारण करके तू अपने को बड़ा साधु मानता है, किन्तु गुरु की सेवा किये बिना तू ऊँट के पाँव जैसा है। सद्‌गुरु बड़े हठीले हैं, किन्तु गुरु की सेवा किये बिना तू ऊँट के पाँव जैसा है। सद्‌गुरु बड़े हठीले हैं, वे अपना दाँव खेलते हैं, जहाँ जीव में अभिमान देखा, उस पर अपना पाँव रखते हैं।[3] जीवणजी ने कहा, कि सूरदास ने घनश्याम की भक्ति की, मीराँ ने गिरधरलाल की तथा कबीर ने जीवण के प्राणाधार भगवान् राम की भक्ति की।[4]

जीवणजी कहते हैं, कि ब्रह्म के निर्गुण होने पर भी अंदर गुण हैं। वह सुवर्ण के समान है, जो ऊपर से ठंडा दिखाई देता है, किन्तु सारे संसार को जलाता है।

> बाहर निर्गुण देखिये, भीतर गुण भंडार।
> हेम ठाढुँ जीवणा, जलावे सब संसार ।।

जीवणजी ने नाम को महत्व देते हुए लिखा, कि नाम ही सेवा है, नाम ही पूजा है, नाम बिना "दूजा" कोई नहीं।

कबीर-वाणी का प्रभाव :---जीवणजी ज्ञानीजी के आश्रम में रहते थे तब बचपन में ही उनको कबीर तथा ज्ञानीजी की वाणी का अध्ययन कराया गया था। सोलह वर्ष की उम्र में दीक्षा से पूर्व वे कबीरमत के ज्ञाता हो गये थे। इसलिए यह स्वाभाविक है, कि उनकी वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव पड़ेगा। जीवणजी की वाणी पर कबीर-वाणी के प्रभाव के कुछ दृष्टांत निम्नलिखित हैं।

---

१. कर्म कुहाडे कापियो, जग में जीवणदास।
   सद्‌गुरु समझाइयो, जे कही कबीरदास ।। ११२ ।।
   (उ० ध० पं० र० मा०)

२. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० १०८।

३. वही, पृ० ६५।

४. वही, पृ० २२४।

कबीर—लाली मेरे लालकी, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं चली, तो मैं भी हो गई लाल ।।
जीवणजी—नूरी मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, जिवण भये गुलाल ।।[1]
कबीर—केशन कहा बगारिया, जो मूंडे शत बार ।
मनको क्यों न मुंडिये, जामें विकार अपार ।।
जीवणजी—मन मूंडयो नहीं जीवणा, तो शिर मूंडे का होय ।
गतरांडा सा देखिये, नहीं पुरुष नहीं जोय ।।[2]
कबीर—जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप ।
पुहुप वाससे पातरो, यही तत्त अनूप ।।
जीवणजी—रूपरेख नहीं जीवणा, ऐसो है रघुवीर ।
सीतापति तो आदि थे, अब भये दास कबीर ।।[3]

(३) कृष्णदास—कृष्णदास जीवणजी के शिष्य थे । उन्होंने जीवणजी की आज्ञा से उत्तर गुजरात में जाकर सरदारपुर में गद्दी की स्थापना की थी । गुजरात में एकाधिक कृष्णदास हुए हैं, किन्तु उक्त कृष्णदास मेवाड़ा द्विज ब्राह्मण थे । पिता दामोदर दवे अच्छे ज्योतिषी थे । माता का नाम तेजबाई था । ये मूल गुजरात के निवासी थे, किन्तु ईडर जाकर बसे थे । मुसलमानों के आक्रमण तथा अत्याचार से लोगों ने अपने घरों को छोड़कर सामूहिक पलायन किया था । १७१२ वि० में उन्होंने हीदोवर में निवास किया । यहाँ कृष्णदास का जन्म सं० १७०० के कार्तिक सुदी द्वितीया बृहस्पतिवार को हुआ था ।[4]

एक पंडित के पास संस्कृत के साथ वैदकी का भी अध्ययन किया था । गणपति को वे इष्टदेव मानते थे । गुरु करने की इच्छा से वे पुनियाद जीवणजी के पास आये । जीवणजी के साथ उन्होंने विवाद किया । मन का समाधान होने पर उन्होंने जीवणजी से दीक्षा ली । जीवणजी ने उन्हें "रामकबीर" मंत्र दिया ।[5]

जीवणजी ने उन्हें नामजप की महिमा समझाते हुए कहा कि सतयुग में भक्ति का, त्रेता में तप का, द्वापर में पूजा का महत्त्व था, किन्तु कलियुग में एक नाम ही आधार है ।[6]

---

१. उ० भ० पं० र० मा०, पृ० १७६ ।

२. वही, पृ० १४५ ।

३. वही, पृ० १६८ ।

४. उ० भ० पं० र० मा०, पृ० २०६ ।

५. रामकबीर सो मन्त्र ही दीन्हो, कृष्णदास अपनो कर लीन्हो ।

६. उ० भ० पं० र० मा०, पृ० २०३ ।

गुरु की आज्ञा पाकर कृष्णदास उत्तर गुजरात की ओर चले। मार्ग में धना भगत नाम के एक भक्त मिले। कृष्णदास को वाणी तथा उपदेश से वे प्रभावित हुए थे। कृष्णदास उनको जीवणजी के पास ले गये। जीवणजी ने कहा कि तुम भी शिष्य बना सकते हो। धना भगत को लेकर कृष्णदास पाटण आये; फिर सरदारपुर में जाकर गद्दी की स्थापना की। गुजरात से कांठाविभाग के गांवों में आज भी इस गद्दी का प्रभाव है। कृष्णदास की परंपरा में वर्तमान महंत श्री रामप्रसादजी हैं।

कृष्णदास के विषय में उनके पुत्र स्यामदास ने "कृष्णदास की परिचरी" लिखी है। 'उदा-धर्म पंचरत्न-माला' में वह संगृहीत है।

(४) धनदास:—धनदास गुजरात में धना भगत के नाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। गुजराती साहित्य में एक धना भगत का नाम है, जिन्होंने भक्त-गीता की रचना की थी।[1] वि० वा० श्री० के० के० का० शास्त्री को सं० १७२९ की लिखी अर्जुनगीता की हस्तलिखित प्रति देखने को मिली, इसके आधार पर उन्होंने वृहद् काव्यदोहन के वर्ष (१७८३) को स्वीकार नहीं किया तथा धनदास को सं० १७०० के आसपास जीवित माना।[2] गुजराती साहित्य में उनके विषय में कोई विशेष सूचना नहीं मिलती।

स्यामदास की लिखी "कृष्णदास की परिचरी" में कृष्णदास के शिष्य के रूप में धनदास का नाम आता है। वे आगलोड गांव के निवासी थे तथा देवी भक्त थे। कृष्णदास उनके घर गये, किन्तु शाक्त होने के कारण उन्होंने भोजन करने से इन्कार कर दिया। तब धना भगत ने रामकबीर-संप्रदाय में दीक्षित होने की स्वीकृति दे दी। उनको लेकर कृष्णदास जीवणजी के पास गये। जीवणजी ने उनको दीक्षा दी थी।[3]

धना भगत ने अपने को कुनबी (कड़वा पाटीदार) जाति का कहा है। अर्जुन-गीता की रचना दीक्षा के पश्चात् हुई होगी। दीक्षा के समय कृष्णदास की आयु यदि २५ वर्ष की मानी जाय तो वह वर्ष सं० १७२५ होगा। जीवणदास का निधन सं० १७३७ में हुआ था। धनदास की दीक्षा भी उसी समय हुई थी। धनदास ने गीता की रचना सं० १७२९ में की थी। उनकी उम्र यदि कृष्णदास से कुछ अधिक हो, तो भी पाँच-सात वर्ष से अधिक न होगी। इससे लगता है कि सं० १७८३ का वर्ष संभवत: उनकी मृत्यु का वर्ष हो।

१. गु० सा० भा० सू० स्तं० पृ० १५५।
२. कवि चरित भा० १ तथा २, पृ० ५१८।
३. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० २३१।

भक्ति-गीता में धनदास ने आत्मा को कृष्ण तथा मन को अर्जुन कहकर गुरुकृपा से भक्ति-गीता लिखी है, ऐसा कहा है।[1]

इसमें महत्व की बात यह है, कि ब्रह्म अपने अवतार कार्य का विवरण देता है, जिसमें कृष्ण के साथ रामावतार के प्रसंग भी हैं। राम के वन-गमन, रावण-संहार, विभीषण पर कृपा, शबरी के बेर इत्यादि प्रसंगों की सूचना मिलती है।[2]

(५) गणपतराम:—वि० सं० १९०० में साबरमती के तट पर बरसापुरी (बरसोड़ा) में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता जीवतराम त्रिपाठी औदीच्य ब्राह्मण थे।

विप्र उदीच बरसापुरी, साबर तीर मुकाम।
हरिगुरु संत कृपा थकी, गावे गणपतराम॥[3]

संत कवि ऋषीराय उनके चचेरे बड़े भाई होते थे। गणपतराम अपने पद में ऋषिराय के संस्कार को स्वीकार किया है। उनको कोई संतान न थी। वे कीर्तनकार थे। नांदोल, दहेगाम, नरोड़ा आदि में उनके अनेक शिष्य हैं। एक बार वे राजपीपला के पास राजपारडी गांव गये थे, वहाँ ज्वरग्रस्त हो गये। घर लौटते हुए भरूच में सं० १९५३ में उनका देहावसान हो गया।[4] हिन्दी तथा गुजराती में उन्होंने पद रचना की है। "श्री भजन सागर" के कुल ९९१ पदों में गणपतराम के ३२८ पद हैं। उनको संगीत का ज्ञान था। विभिन्न रागों में भी पद लिखे हैं। सं० १९३६ में उन्होंने "बारमास" लिखा था।

कबीर-विचारधारा का प्रभाव :—यद्यपि उन्होंने गुरु का नाम नहीं दिया, ज्ञानीजी का सद्गुरु रूप में किया गया उल्लेख तथा काव्य में व्यक्त विचारों के आधार पर लगता है, कि किसी राम-कबीर संप्रदाय के महंत के पास उन्होंने दीक्षा ले ली होगी। उनकी वाणी पर मात्र कबीर-विचारधारा का ही प्रभाव नहीं है, कबीर-वाणी का सीधा प्रभाव भी है। गणपतराम ने "गुरु-शिष्य संवाद" लिखा है, जो "कबीर ज्ञानी संवाद" की पुनरुक्ति जैसा लगता है। उन्होंने अपने एक पद में भाणसाहब का भी गुरु रूप में उल्लेख किया है, किन्तु दोनों के मध्य लगभग सौ वर्ष का अन्तर है। और

---

१. श्री गुरु प्रतापे गाइये, शिष्य ते साधु जन।
परब्रह्म मानो आतमा, मानो मन ते अर्जुन॥
(श्री भजनसागर—भाग १, पृ० ४५७)

२. भजन सागर, पृ० ४५९।

३. श्री भजनसागर सं० सा० व० बा० अहमदाबाद, पद—२१५।

४. 'विश्वमंगल' मकरांक, १९४५।

उल्लेख मात्र आदरसूचक है। वटवृक्ष तथा उसके बीज का दृष्टांत देकर कबीर ने ज्ञानी की शंका का निवारण किया था, इसका उल्लेख गणपतराम ने किया है।

एक बीजमां वडलो रे, वडलामां बीज अनेक।
एम ज्ञानी ने समजाववारे, सदगुरु ए कर्यो विवेक ॥[1]

संसार नामरूप है। ब्रह्ममय जगत् है और जगत् में ब्रह्म व्याप्त है।

नामरूप गुण नहीं नामकु, नाम गुण अगणित।
सब साहेब में, साहेब सब में, पोते सर्वातीत ॥[2]

संत 'मरजीवा' होना चाहिये। गणपतराम कहते हैं, कि "मन मारे ते मरजीवा"। हरिजन हरि-रस पीना चाहते हैं, सो वे मरजीवा बनके शिरके बदले में इसे पीते हैं।[3]

हरि-गुरु-संत एक हैं। संसार का सुख सच्चा नहीं, वह अंत में दुःखदायक है, अतः हरि-गुरु-संत की सेवा करो।[4]

नाम का प्रताप सर्वाधिक है, इससे दुःख का नाश होता है। "नाम परताप थी दुख नाशे।" राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं है, क्योंकि ये ब्रह्म के रूप हैं। किसी के भी नाम की भक्ति करो।

कृष्ण भजन विना काया सा कामनी।
भावे भक्ति करी ले रुड़ा रामनी ॥[5]

गणपतराम के राम अविनाशी राम हैं। अविनाशी पर एक चित्त होने से समाधि लग जाती है। ईश्वर गुणातीत है। विश्वंभर पढ़ने में नहीं आता, क्योंकि अलख पहचान में नहीं आता। वह निराकार, निरंजन एवं निर्गुण है। उसे केवल गुरु ही दिखा सकते हैं।[6]

ब्रह्म आत्मरूप है। अखंड पुरुष की आराधना करने से ब्रह्म की आत्मरूप में पहचान होती है। गणपतराम ने "सुमति विवाह" लिखा है। उसमें सुमति का विवाह आतमराम से किया है। इस रूपक-काव्य में पिंड तथा ब्रह्मांड का योग है। "परि-

---

१. प० प० सं०, पृ० १०७।
२. वही, पृ० १०८।
३. 'श्री भजन सागर' भाग १ स० सा० व० का० अहमदाबाद, पृ० ८२।
४. वही, पद—३६।
५. वही, पद—२०।
६. श्री भजन सागर भाग १, स० सा० व० का० अहमदाबाद, पद—४८।

ब्रह्म संगाथे प्रीत" करने का उपदेश है। राम को स्वामी बनाकर मन को कुचल देने का आदेश है। घणी एक रामने धारी, मनने नाखवं मारी।[1]

चित्तशुद्धि को उन्होने विशेष महत्व दिया है। सत्संग से ज्ञान होता है, सद्गुरु मार्ग दिखाते हैं। योगी वह है, जो भक्ति को महत्व देता है। बगध्यानी की प्रताड़ना करते हुये उन्होंने लिखा है, कि तू धूनी धखावे या नैन मूंद माला फिरावे, तू सैन से समझावे या कानफाड़ मुद्रा पहने, तू मात्र लंगोटी लगावे, या तंबूरा बजावे, भजन गाकर भ्रम फैलावे या अड़सठ तीर्थों में जाकर स्नान करे, तो भी एक भक्ति के बराबर नहीं होगा, न इससे तेरा पाप भी नष्ट होगा।"[2]

कबीरवाणी का प्रभाव

कबीर—साध कहावन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चखे प्रेमरस, पड़े तो चकनाचूर॥

गणपतराम—अविनाशीनुं घर छे अलगुं, जेवी लम्बी खजूर।
चडे तो चाखे प्रेमरस, पड़े तो चकनाचूर॥[3]

कबीर—कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढ़े बनमांही।
ऐसे घट में पिव है, दुनिया जाने नाहीं॥

गणपतराम—कस्तुरी की वास देखने, मृग वनमांही फिरता रे।
आपके पास ओही वस्तु, नहीं लगी है सूरता रे।[4]

कबीर—जाके मुंह माया नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास से पातरो, यही तत्व अनूप॥

गणपतराम—पुष्पमां वास वसे छे जेवो।
काष्टमां वह्नि वसे छे एवो॥[5]

कबीर—पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
गणपतराम—परवानुं छे तनडुं पलमां, जेवो परपोटो छे जलमां॥[6]

---

१. वही, पद—१७।
२. वही, पद—७।
३. वही, पद—२३२।
४. वही, पद—२४५।
५. वही, पद—२२५।
६. वही, पद—२४।

कबीर—गगन घटा गहराई संतो। गगन घटा गहराई।
गणपतराम—गगन घटा त्यो गोती, मारा संतो। गगन घटा त्यो गोती।[1]

(६) ज्ञानीजी के जीवनवृत्त का महत्व—ज्ञानीजी कबीर के समकालीन थे, शिरोमणि शिष्य थे, इसलिए ज्ञानीजी के जीवन का वृत्त विशेष महत्व रखता है। कबीर की गुजरात-यात्रा के उल्लेख मिलते थे, किन्तु कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया गया था, ज्ञानीजी ने अपनी वाणी में कबीर के आगमन, उनकी सेवा तथा अपने भ्रम के निवारण का उल्लेख किया है।

कबीरवट में कबीर के आगमन का वर्ष शिलालेख पर सं० १४६५ लिखा है, किन्तु भ्रमवश विद्वानों ने सं०१५६४ लिखा था। ज्ञानीजी का विवाह सं० १४६७ की वसंत पंचमी को हो रहा था। वहाँ से वे भाग कर कबीरवट में आये तथा कबीर द्वारा दीक्षित हुए। कबीरवट के सामने तट पर स्थित मणिपुर में ज्ञानीजी के आगमन का वर्ष सं०१४६८ दिया गया है। इससे कबीरवट में आगमन के वर्ष सं० १४६५ को पुष्टि मिलती है। सं० १४६७ में स्वामीजी की मृत्यु पर वे काशी गये हों, यह भी संभव है।

मणिपुर के राजा तख्तसिंह की विनती से वहाँ एक सर्वधर्म परिषद् का आयोजन हुआ था। इसके आयोजकों में राजा तख्तसिंह के साथ कबीर साहब, ज्ञानीजी तथा बाबा साहब थे। मणिपुर के पास अनेक छोटी-बड़ी नावें तट पर होने का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है, कि नर्मदा वहाँ से हट नहीं गई थीं। नर्मदा का वहाँ से हटना सं० १४९१ की बाढ़ के पश्चात् प्रारंभ हुआ। सं० १४८० में ज्ञानीजी शूलपाणीश्वर से लौट आये। सं० १४८२ में मकान बना तथा दानपत्र का लेख हुआ। प्रायः सं० १४८५ के आसपास किसी वर्ष यह परिषद् हुई। इन वर्षों में कबीर साहब यहीं रहे होंगे।

सर्वाधिक महत्व गंगाबा की मृत्यु के निश्चित वर्ष को देना चाहिये। इसी वर्ष काशी में कबीर साहब ने गोपालदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। सं० १५५१ में गंगाबा के निधन के अवसर पर इस कारण से चाहने पर भी वे आ न सके। उन्होंने एक भक्त के साथ कुछ पुष्प तथा श्रीफल भेजे थे। इससे फलित होता है, कि कबीर सं० १५५१ तक जीवित थे। सं० १५५१ में उत्तराधिकारी की नियुक्ति उनकी संसार छोड़ने की तैयारी की भी सूचना देती है। सं० १५५६ में ज्ञानीजी की समाधि के समय कबीर का कोई उल्लेख नहीं है। सं० १५५१ में सिकन्दर ने भी उनको कष्ट दिया था। इसलिए सं० १५५२ में काशी छोड़ मगहर जाकर उन्होंने देहत्याग किया हो, ऐसी संभावना दीख पड़ती है।

---

१. वही, पद—१५७।

चौथा अध्याय

पद्मनाभ की परंपरा

पद्मनाभ का जीवनवृत्त

कबीर के शिष्य पद्मनाभ ने पाटण की प्रजापति जाति में करण प्रजापति के घर जन्म लिया था। उनकी माता का नाम लक्ष्मी तथा पत्नी का नाम पातालदे था।[1] पद्मनाभ की कोई रचना नहीं मिलती। वे प्रजापति जैसी मात्र श्रम पर जीने वाली जाति में जन्मे थे। इससे लगता है, कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। उनकी पांच संतानें थीं, चार पुत्र तथा एक पुत्री। पुत्रों के नाम हरिदास, माधवदास, विष्णुदास तथा हरदेव तथा पुत्री की नाम मचानबाई था।

जब पद्मनाभ छोटे थे, पाटण में एक तालाब की खुदाई हो रही थी। गुजरात का सूबा ज़फरखान इसे खुदवा रहा था, ऐसा कहा जाता है, किन्तु श्रीवास्तव ने महमद कोका का नाम दिया है। वि० सं० १५५३ के अनन्तर उनकी नियुक्ति हुई थी[2]। अतः सम्भव है, उन्होंने इसे पुनः खुदवाया हो। ये पद्मनाभ के समकालीन नहीं थे।

ज़फरखान को पीठ का कोई दर्द हुआ था। अनेक उपचार करने पर भी वह मिटता न था। पुण्य कार्य समझकर यह तालाब खुदवा रहा था। प्रजापति जाति के तमाम लोगों को मजदूरी के लिये अनिवार्य रूप से इसमें आना पड़ता था। हरि-स्मरण की मस्ती में पद्मनाभ आता नहीं था। जब बुलाया गया, तो उसने कहा कि मैं एक दिन काम करूँगा, किन्तु तुम्हारा सात दिन का काम एक दिन में कर दूँगा। तदनन्तर कहा जाता है कि उनके सिर पर मिट्टी की सात टोकरियाँ अपार

---

१. शारदाने सीरे नामो, वेगे न नामो पार।
पाटण मध्ये पद्म कहीए, जातीए कुंभकार।
करण भगत पिता जेनो लक्ष्मी जेनी मात।
पातालदे पत्नी जेनी, जई लागु हरिने पाय॥

२. 'दिल्ली सल्तनत' श्रीवास्तव, पृ० ५८।

रहती थीं। इससे खान बड़ा प्रभावित हुआ और अपने पुराने दर्द को मिटा देने को विनती की। कहते हैं, वहां की मिट्टी के प्रयोग से पद्मनाभ ने उनको दर्दमुक्त किया। इससे प्रसन्न होकर झफरखान ने उनको सरस्वती नदी के तट की कुछ भूमि भेंट की। खान का एक अधिकारी धनराज पंड्या ने पद्मनाभ से प्रभावित होकर अपने पद का त्याग कर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। तदनन्तर धनराज पद्मनाभ का मित्र जैसा बन गया। राम-कबीर सम्प्रदाय में वह "अध्यारुजी" के नाम से प्रसिद्ध है। यह घटना संभवतः सं० १८७० की होनी चाहिये, क्योंकि वाड़ी की स्थापना का वर्ष सं० १४७१ दिया गया है।

पद्मनाभ तथा धनराज ने मिलकर वाड़ी का आयोजन किया था। यह वाड़ी आज भी है, उसमें वृक्षों की झाड़ी है। पिता से मतभेद होने पर कृष्णदास तथा मचकनबाई ने निकट में दूसरी वाड़ी बनाई थी, इसे जादववाड़ी कहते हैं। मतभेद के दो विभिन्न कारण दिये गये हैं। किसी की मृत्यु हो जाने पर भाई-बहन ने पिता से विनती की, कि उसको पुनः जीवित किया जाय। पिता के इन्कार करने पर दोनों ने अपनी शक्ति से उसे पुनर्जीवित किया। शक्ति के ऐसे दुरुपयोग से नाराज होकर पिता ने उनको अलग किया था। अन्य कथा यह है कि एक वनझारा शक्कर की बोरियाँ ले जा रहा था। कृष्णदास के पूछने पर उसने कहा कि यह धूल है। नगर में बेचने गया तो धूल निकली। कहते हैं, इस बात पर पद्मनाभ नाराज हुये थे।

पद्मनाभ के पुरोहित का नाम कुंमठराम था, तथा मचकनबाई के पति का नाम रामदास था। गोमती कूप के सामने नकलंक की गद्दी है, इसकी स्थापना इसी रामदास के द्वारा हुई थी, ऐसा मानते हैं।

वि० सं० १५६५ में पद्मनाभ ने समाधि ली। कहते हैं, मीरा-दरवाजा के बाहर पद्मवाड़ी में संतों के साथ ज्ञानचर्चा करते-करते पद्मनाभ ने देहत्याग किया था।

(१) पद्मवाड़ी :—पाटण की यह वाड़ी पद्मनाभ के नाम से प्रसिद्ध है। राम-कबीर-सम्प्रदाय के ग्रंथों में इसका उल्लेख है। इस परम्परा के संत जीवणजी ने वाड़ी की झाड़ी के मध्य निवास करने पर पद्मनाभ को धन्यवाद दिये हैं[1]।

वाड़ी की रूपरेखा चरण-चिह्न जैसी है। पहले वहाँ जाने का मार्ग विशाल होगा, ऐसा दरवाजे के खंडहर से लगता है। सरस्वती नदी इसके निकट से बहती थी, किन्तु अब वहां से दूर हट गई है।

(२) खान सरोवर :—वर्तमान नगर से बाहर पद्मवाड़ी के निकट में एक खान सरोवर है। कहते हैं, यही सरोवर झफरखान ने खुदवाया था। पुराने खंडहर के

१. उ० ध० पं० र० मा० (प्रारम्भ)।

पत्थरों का उपयोग किया गया है। सं० १४६३ में नया पाटण बन चुका था, उस समय भफरखान गुजरात का सूबा था[1]। यह सरोवर तदनन्तर बना होगा, क्योंकि उसमें पुरानी नगरी के खंडहर के पत्थरों का उपयोग हुआ था। डा० बर्जेस का भी मत है, कि इस सरोवर के स्थान पर पहले किसी हिन्दू राजा का बनाया सरोवर था। भफभलखान ने इसका नाम "खान-सरोवर" दिया था[2]।

उसकी खुदाई के समय पद्मनाभ की अलौकिक शक्ति का दर्शन हुआ था। मात्र मिट्टी लगाकर पद्मनाभ ने खान का दर्द मिटा दिया था। इसके बदले में भफरखान ने वाड़ीवाला स्थान भेंट कर दिया था। धनराज पंड्या उच्च अधिकारी थे। अपने स्थान का त्याग कर वे भी संत-सेवा में लग गये थे।

पद्मनाभ के शिष्य :—पद्मनाभ के तीन प्रमुख शिष्य थे—धनराज पंड्या (अध्यारुजी), नीलकंठदास तथा लोचनदास। धनराज पंड्या उनके साथ रहे। पद्मनाभ की आज्ञा से लोचनदास ने सूरत में तथा नीलकंठदास ने सौराष्ट्र के दूधरेज में आश्रम की स्थापना की थी।

(१) धनराज पंड्या (अध्यारुजी) :—धनराज पंड्या रामकबीर सम्प्रदाय में अध्यारुजी के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उनके रचित २८ कीर्तनों का पाठ इस सम्प्रदाय के तमाम लोग करते हैं। धनराज पंड्या गुजराती साहित्य में भी प्रसिद्ध हैं। वि० वा० श्री के० का० शास्त्री ने अपने ग्रन्थ "कवि-चरित" में धनराज पंड्या के पदों का मूल्यांकन करते हुये लिखा है, कि ज्ञान की कठिन बातों को उन्होंने सरलता से समझाया है[3]। यद्यपि यह तथ्य अज्ञात रहा था कि गुजराती के प्राचीन कवि धनराज पंड्या ही रामकबीर सम्प्रदाय के पद्मनाभ का शिष्य एवं मित्र अध्यारुजी है तथा धनराज के जिन पदों का उल्लेख हुआ है, वे इस सम्प्रदाय के भक्तों को कंठस्थ हैं। सम्प्रदाय के तमाम संग्रहों में उसका पाठ है। उन भक्तों के लिये ये पद कीर्तन ही नहीं हैं, गीता या "देववाणी" हैं, जिसके परायण से साँप या बिच्छू का जहर उतर जाता है, तथा भूत या प्रेत का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

गुजरात विद्यासभा में धनराज पंड्या के पदों की पांडुलिपि का ग्रन्थ (क्रमांक १७०७) है। इसके प्रारम्भ में लिखा है, "रामकबीर जी सत्य छे, अथ कीर्तन अध्यारुजी ना लिख्यते।[4] इससे प्रतीत होता है, कि धनराज पंड्या ही सम्प्रदाय के अध्यारुजी हैं। अध्यारुजी ने अपने उन पदों में अपने नाम "धनराज पंड्या" का उल्लेख भी किया है।

१. रजत महोत्सव ग्रन्थ, पृ० १३६।
२. 'उत्तर गुजरातमां पुरातन स्थापत्यो' वही, पृ० १३७।
३. कवि चरित, पृ० ४०७।
४. 'ज्ञान-मार्गीय पद संग्रह' (लिपिक्रमांक सं० १८३४)।

वैष्णव-भक्ति मुक्ति फल-काजि।
रास कीधु पंडित धनराजि॥

(कवि चरित भाग १-२, पृ० ४०६)

सम्प्रदाय के ग्रन्थों में "रास कर्यो पंडे धनराजे" छपा है।[1]

(२) नीलकंठदास :—पद्मनाभ के तीन शिष्यों में नीलकंठ के नाम का उल्लेख अनेक स्थान पर मिलता है। सम्भवतः इसके कारण ये हैं, कि धनराज पद्मनाभ के साथ रहे। उनकी कोई परम्परा नहीं चली। लोचनदास की परम्परा तथा आश्रम जोगाहरि के समय (सं० १७५५) में नष्ट हो गये। यह भी सम्भव लगता है, कि नीलकंठ उनके उत्तराधिकारी शिरोमणि शिष्य थे। नीलकंठ की दो प्रमुख परम्परायें आजतक चलती रही हैं। भाण साहब वाली परम्परा शेरखी, तथा वाराही में तथा लब्बराम वाली परम्परा दूधरेज में प्रवर्तमान है।

नीलकंठदास ने अपने शिष्य रघुनाथदास के साथ सौराष्ट्र में वढवाण के पास दूधरेज में आश्रम की स्थापना वि० सं० १५६५ में की थी।[2] इस परम्परा के संत षष्टमदास के शिष्य भाणसाहब ने "शेरखी" में गद्दी की स्थापना की थी।

(३) लोचनदास :—ये भरूच के भार्गव ब्राह्मण थे। गृहत्याग कर भ्रमण करते हुये काशी गये थे, वहां पद्मनाभ मिले। उनके शिष्य हो गये। उनकी परम्परा के चौथे संत प्यारेदासजी ने उनके जीवनवृत्त का परिचय दिया है।

बम्भन वैरागी हुए, छोड़ चले भृगुपुर।
तीर्थ वहाना पाय के, लोचन हरि से हजुर।
काशी नग्र में भेटिया, पद्मनाभ गुरु-पीर।
सदगुरु शब्द घायल हुए, वेधे सकल शरीर॥

(श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से)

कबीर के आत्मतत्व का ही पद्मनाभ ने उनको उपदेश दिया था। कबीर की एक पंक्ति "तेरा सांई तुझ में" का आवर्तन प्यारेदास ने पद्मनाभ के नाम से किया है। "लोचन! क्यों खोजत फिरै, तुझ में है तेरा सांई।" कबीर मत के दो प्रमुख तत्व "परमार्थ एवं प्रार्थना" का उल्लेख भी पद्मनाभ के उपदेश में है।

पद्मनाभ लिखाइया, संप्रदाय की टेक।
परमारथ और बन्दगी, लोचन यही विवेक॥

---

१. उ० ध० पं० २० मा० (तृतीय संस्करण), पृ० ६।

२. 'कल्याण' संत अंक, पृ० ६२३।

पद्मनाभ की परम्परायें :—पद्मनाभ की दो प्रकार की परम्परायें गुजरात में चलती हैं। नाद (शिष्य) परम्परा तथा बूंद (पुत्र) परम्परा। पद्मनाभ के चार पुत्र थे। उनके दो पुत्रों की परंपरा पाटण के प्रजापतियों में प्रवर्तमान है। एक पुत्र माधव-दास की परम्परा अहमदाबाद में है। वहाँ चंडोला-तालाब पर पद्मवाड़ी का स्थान है। उनका चौथा पुत्र किसी हलवाई के पुत्र की मृत्यु पर उसे दे दिया गया था।

पद्मनाभ के तीन शिष्यों में धनराज पंड्या पद्मनाभ के साथ पाटण में पद्मवाड़ी में रहते थे। उनकी कोई परम्परा प्राप्त नहीं हुई। एक शिष्य नीलकंठ ने सं० १५६५ में सौराष्ट्र में दूरखेज में आश्रम की स्थापना की थी। वहाँ उनकी एक परम्परा है। उनकी एक अन्य परम्परा भाण साहब ने शेरखी में चलाई थी। तीसरे शिष्य लोचन-दास ने सूरत में तापी के तट पर अश्विनीकुमार के पास आश्रम बनाया था। वहाँ उनकी परम्परा सं० १७४५ तक चली। अन्तिम महन्त जोगाहरि से वह समाप्त हो गई।

पद्मवाड़ी पाटण—पाटण की पद्मवाड़ी में पद्मनाभ का स्थान है। कार्तिक मास की कृष्णपंचमी के दिन प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है। वाड़ी में कबीर एवं कमाल के स्थान हैं। पद्मनाभ के निकट में एक "नकलंक" का स्थान है। यह स्थान मिट्टी का ढेर होता है, जिसे "वधारा" कहा जाता है। पद्मवाड़ी के साथ आठ वाड़ी हैं, जिसमें पद्मनाभ के पुत्रों के वधारे हैं। ये पहले संभवतः समाधि के रूप में बने होंगे, किन्तु उनके अनुयायी इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। इसके ऊपर पहले तुलसी-क्यारा बनाया जाता था। संभवतः इसलिए इसका नाम "वधारा" पड़ गया है।

सरकार में "पद्मवाड़ी" की भूमि पद्मनाभ महाराज के नाम पर चलती है। इसका कोई किराया नहीं लिया जाता। वाड़ी में एक "गोमती कुण्ड" है। आठ-नौ पत्थर की पानी भरने की कुंडियाँ हैं, जो बड़ी पुरानी दीख पड़ती हैं। पद्मनाभ के स्थान की व्यवस्था प्रजापतियों के हाथ है। चार कोने के बहुमूल्य [illegible] एवं [illegible] हैं, जो पूर्व समृद्धि का निर्देश देते हैं।

माधवदास की परंपरा, अहमदाबाद—इसका स्थान अहमदाबाद में चंडोला तालाब पर है। नरसिंहजी मन्दिर के स्थान में पद्मनाभ का चबूतरा है। [illegible] मिट्टी का ही है, [illegible] के समय [illegible] हुये थे। [illegible] में [illegible] विश्वनाथ स्वामी माधवदास की परम्परा के वर्तमान महन्त हैं। वे [illegible] निवास करते हैं।[1] माधवदास की पाटली [illegible] है।

1. नृसिंह मन्दिर, चंडोलातालाब, [illegible], अहमदाबाद।

परम्परा

माधवदास—पद्माभाई—हापाभाई—गंगाराम—घनाभाई—भोजुभाई—हरजी-भाई—ज्ञीलाभाई—भूलाभाई—रामजीभाई-देवकरणभाई-नरसिंहभाई—मोरारदास—भगवानदास—मनोरदास—खेमाभाई—वेणीभाई—परसोत्तम—वेचरभाई—हरिभाई—हरगोविन्ददास-चीमनलाल (वर्तमान)

वटपत्याश्रम, दूधरेज (सौराष्ट्र) :—पद्मनाभ के एक शिष्य नीलकंठदास ने सौराष्ट्र में वढवाण के पास दुग्धसर (दूधरेज) में आश्रम की स्थापना की थी। इस परम्परा के संत षट्प्रज्ञदास ने एक वट का वृक्ष लगाया था, वह एक विशाल वृक्ष बन गया है। आश्रम का नाम वटपत्याश्रम रखा गया है। नीलकंठ ने आश्रम की स्थापना सं० १५९५ में की थी।[1] षष्टमदास का समय सं० १६६८ से १७८६ तक है। रघुनाथ तथा यादवदास का समय अज्ञात है। आगे-पीछे के महन्तों के निश्चित वर्ष प्राप्त होने पर ३० वर्ष के औसत गद्दी काल के अनुसार उनके समय का अनुमान किया जा सकता है।

१	नीलकंठदास	सं० १५९५-१६२५
२	रघुनाथदास	सं० १६२५-१६५५
३	यादवदास	सं० १६५५-१६८५
४	षष्टमदास	सं० १६८५-१७८६
५	लव्वरामदास	सं० १७८६ से आगे

लोचनदासी परम्परा

भ्रम :—संत लोचनदास की परम्परा अज्ञात होने से इस परम्परा के प्रतापी संतों का उल्लेख निर्वाण साहब की परम्परा में हुआ है। सं० १७४५ में जोगाहरि के समय में संत लोचनदास का आश्रम नष्ट हो गया। तदनन्तर उनकी परम्परा नहीं रही, इसलिये लोचनदास की परम्परा आज अज्ञात हो गई है।

गुजराती लेखक श्री जनक दवे ने इस परम्परा के संत समर्थदास तथा माधव दास को निर्वाण-परम्परा में दिखाया है, निर्वाण साहब की परम्परा को भी उन्होंने "हीरादासी-परम्परा" कहा है।[2] आचार्य परशुराम-चतुर्वेदी ने हीरादास का समय सं० १५५१-१६३६ दिया है तथा उनके साथ समर्थदास तथा माधवदास की चर्चा की है।[3] डॉ० रामकुमार गुप्त ने भी यही समय दिया है। उन्होंने इस परम्परा को इसके मूल प्रवर्तक निर्वाण साहब के नाम पर "निर्वाण-परम्परा" कहा, किन्तु लोचनदासी

---

१. 'कल्याण' संत अंक, पृ० ६२३।

२. हिं० वि० गु० फा०, पृ० १६५।

३. उ० भा० सं० प०, पृ० ४४२।

परम्परा के संत समर्थदास, माधवदास तथा प्यारेदास को निर्वाण-परम्परा में दिखाया गया है।[1]

संत हीरादास निर्वाण-परम्परा के तीसरे संत थे, तथा उनका समय सं० १५६५-१६८७ है। लोचनदास की परम्परा इससे भिन्न है। दोनों परम्परायें सूरत में होने से तथा लोचनदासी परम्परा के नष्ट हो जाने से यह भ्रम हुआ था।

सूरत में अश्विनीकुमार के निकट में संत लोचनदास का आश्रम था। संत लोचनदास ने काशी में पद्मनाभ के पास दीक्षा ली थी। सं० १६१६ में उन्होंने जीवन्त समाधि ले ली थी। सं० १६०० में लोचनदास के सूरत में होने का प्रमाण मिलता है। उनकी वाणी में चंगीसखान का उल्लेख है। चंगीसखान ने अपने पिता इमादुल मुल्क रूमी की हत्या करने वाले सूबा खुदावन्तखान को कत्ल किया था। सूरत इमादुल मुल्क रूमी के अधिकार में ई० स० १५४३ (सं० १५९९) में था। सं० १६१६ में लोचनदास के पश्चात् समर्थदास उत्तराधिकारी हुये थे। उन्होंने गुरु के पीछे मात्र चार वर्ष पीछे सं० १६२० में जीवन्त समाधि ले ली। उनके पीछे उन्होंने संत माधवदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। संत माधवदास एक प्रतापी संत थे। उन्होंने विपुल संतवाणी की रचना की थी। अपनी एक रचना में उन्होंने अपने गुरु समर्थदास का उल्लेख किया है।

समर्थ साहिब पायो मैंने, समर्थ साहिब पायो।
अरस-परस पहचान भई, परमव की प्रीत नर धारो।
'माधवदास' भये मतवाला, मिल गये 'बावन बाहिरो'॥[2]

संत माधवदास बहुधा तीर्थ-यात्रा में रहते थे। उनके समय में अकबर ने सूरत पर अधिकार स्थापित किया था। माधवदास बत्तीस वर्ष अधिकार में रहे, उनमें से चौबीस वर्ष तीर्थाटन में व्यतीत किये थे। काशी से एक वणिक युवक प्यारेदास उनका शिष्य हुआ था। उनको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके सं० १६५२ के आषाढ़ की अमावस के दिन माधवदास ने जीवन्त समाधि ले ली, तब प्यारेदास की उम्र [illegible] वर्ष की थी। प्यारेदास जी ६३ वर्ष तक महन्त पद पर रहे। प्यारेदास जी ने आश्रम के एक जीवाहरि नाम के भंगी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर समाधि ले ली। उनके पीछे सं० १७४५ में अन्य साधुओं ने तथा कुछ आततायियों ने मिलकर आश्रम को लूटा तथा नष्ट किया। संयोग से दूसरे ही दिन तापी की बाढ़ में सब कुछ बह गया।

---

१. हि० सा० गु० सं० का० ई०, पृ० ६५।
२. 'संत माधवदास' श्री [illegible], पृ० ३५।

लोचनदासी परम्परा—जन्म संवत्		गद्दीकाल		समाधि वर्ष
१ संत लोचनदास	अज्ञात	सं० १५६०	—	१६१६
२ संत समर्थदास	१५५०	सं० १६०३	—	१६२०
३ संत माधवदास	१६०१	सं० १६२०	—	१६५२
४ संत प्यारेदास	१६२५	सं० १६५२	—	१७४५
५ संत जोगाहरि	अज्ञात	सं० १७४५	—	समाप्त

लोचनदासी परम्परा के संत

(१) संत लोचनदास :—सूरत में लोचन-आश्रम की स्थापना उन्होंने की थी। वे कबीर के शिष्य पद्मनाभ के शिष्य थे। उनका जन्म भरूच के भार्गव ब्राह्मण के परिवार में हुआ था। बहुत कम उम्र में गृहत्याग कर विरक्त होकर वे तीर्थ-यात्रा को निकल पड़े थे। काशी में पद्मनाभ के पास उन्होंने दीक्षा ली थी। पद्मनाभ ने उनको आत्म-ज्ञान का बोध दिया था। "लोचन ! क्यों खोजत फिरै, तुझमें तेरा सांई।" तदनंतर उन्होंने मणिकूट के घाट पर निवास कर ध्यान-योग का अभ्यास किया। गुरु की आज्ञा से गुजरात में आकर सूरत में आश्रम की स्थापना की। वहां उनकी परम्परा अंत्यज-महन्त जोगाहरि तक चलकर समाप्त हो गई।

सूरत के सूबेदार ख्वाजा सफरे-सुलेमानी ने उनकी कसौटी की थी। सं० १५६७ में सूरत में इमादुल मुल्क-रूमी का अधिकार था। सूबेदार खुदावंतखान द्वारा उनकी हत्या होने पर रूमी के पुत्र चंगीसखान ने पिता की हत्या का बदला खुदावंतखान की कत्ल करके लिया। संत लोचनदास ने उनको उपदेश देते हुए कहा था।

मन्दिर और मस्जिद के गुंजत वही आवाज।
वो साहेब के नामकी, चांगा ! रखो कुछ लाज।
पाक जहांना सांई की, हम आये मिजवान।
दो फरजंद साहिब के, हिन्दू - मुसलमान।
कुफ्र राह में मत डूबो, हक चलो पतशाह।
कयामत साहिब मान दे, आइये चांगा शाह ॥[1]

चंगीसखान उनसे बड़ा प्रभावित हुआ था। उन्होंने संत को कुछ मांगने को कहा, किन्तु लोचनदास ने कुछ भी न मांगा। तदनंतर कुछ ही समय पश्चात् सं० १६१६ में सन्त समर्थदास को अपना उत्तराधिकारी बनाकर उन्होंने जीवन्त-समाधि ले

---

१. 'संत माधवदास' श्री माणेकलाल राणा, पृ०

ली। उन्होंने हिन्दी में संतवाणी की रचना की थी, किन्तु उनकी रचनाओं में से अल्प संख्यक रचनाएँ ही प्राप्त होती हैं।

सन्त लोचनदास के अनेक शिष्य थे। उनमें से अधिकांश निम्न जाति के या पतित थे। उनके शिष्यों में हिमाराम, पंजुदास, अकलदास, नथ्थुदास, नेजादास, तेजुदास, महिपाल तथा दुलारी प्रमुख थे। उन्होंने दया, गरीबी तथा वन्दगी का उपदेश दिया था।[1]

(२) समर्थदास :--बावा समर्थदास अपनी पूर्वावस्था में सिद्धपुर के एक वणिक युवक वंकाजी थे। पाटण में वंकाजी एक स्वरूपवान, गुणवान तथा साहसिक सिपाही थे। मुस्लिम अधिकारी की युवान पुत्री हुर्रा उनके ऊपर आसक्त हो गई। उन्होंने एक दिन वंकाजी से कहा कि तुमको देखे विना मुझे चैन नहीं होता।[2] इस प्रकार के सम्बन्ध को नमकहरामी समझकर वंकाजी ने उनको समझाने के प्रयास किये, किन्तु उन्होंने आत्महत्या करने की धमकी दी। इस उलझन से मुक्ति पाने के लिए पाटण छोड़ कर वे भ्रमण को निकल पड़े। भ्रमण करते हुए वे सूरत आये। संत लोचनदास के दर्शन से उनको शांति मिली।[3] संत लोचनदास ने उनकी विरक्ति देखकर दीक्षा दे कर "समर्थदास" नाम दिया। सं० १६२० में उन्होंने जीवन्त समाधि ले ली थी।

संत माधवदास, केशवदास, विमलदास, जुहारीदास तथा विध्यलदास उनके प्रमुख शिष्यों में थे। तदुपरान्त अगमदास, अभयदास, किरणदास, सुगमदास, चतुरदास, नूरतदास, खगदास, रहादास, मालवदास, विरहदास तथा छैलादास जैसे अन्य साधारण शिष्य थे।[4] समर्थदास ने संतवाणी की रचना की है, इनमें से दो झूलना छंद यहां उद्धृत हैं।

देखत ही संग विला गये, गुलशन की मौज को नहीं पाया।
अरमान नीके अधूरे रहे, सुहागीन गीत को नहीं गाया।

---

१. लोचन कहे पुकारके रखो, साहिब से प्रीत।
दया गरीबी वंदगी, जैहो भवजल जीत।।
२. वंकाजी को देखके, हूर्रा हुई वेचैन।
वांको सूरत देखे विना, कबहु न पावै चैन।।
३. सूरत नग्र में आय के, पाया परम सोहाग।
लोचन सदगुरु भेटिया, जगे पूरब के भाग।।
४. 'संत माधवदास' श्री माणेकलाल राणा, पृ० ३६।

फूलनकी सांस मिल गई लहरमें, गुंजत भंवरा अव नहीं आया।
'समर्थ' गुलझार वेरान देखे, वुलवुल वहां उड़त ही पछताया॥

चेत वे चेत गाफिल क्यों रहा, रैन वसेरा, काही सोवे।
वहुतरी यहां की लुटाय गये, परदेशी तूं भौर ही नैन रोवे।
ठगन के वासमें आये ठाढ़े, तेरे गांठकी गठरियां मांही खोवे।
सांई समर्थ तोहे कहे पुकार के शाने सावधान क्यों नांही होवे॥

(३)सत माधवदास—उनके पिता करवतसिंह तथा माता हीरलदेवी ने मेवाड़ छोड़कर गुजरात में सूरत में निवास किया था। किसी महात्मा के आशीर्वाद से उनका यह पुत्र हुआ था। उसी महात्मा ने "माधव" नाम देते हुए इसके महत्व को समझाया था।

मम्मा माया मारके धर्म-धुरंधर वीर।
वठवा वेरी संसार को, माधव डाले चीर॥[1]

उनके वचपन से उनमें असाधारण तत्व के दर्शन होने लगे थे। एक वार वड़े नाग से वे खेलते पाये गये थे। एक भिखारी को उन्होंने अपनी सोने की वहुमूल्य अंगूठी दे दी। पिता से आगम-निगम की वातें करते थे। मौलवी ने उसे उर्दू पढ़ाने से इन्कार करते हुए कहा, कि यह वालक तो मुझे पढ़ावे ऐसा है।

वड़े होने पर सूरत के एक जेठाशाह नाम के वणिक की "सजना" नाम की पुत्री से उनको प्रेम हो गया। उनका विवाह अन्यत्र कर दिया था। जव ये लोग सजना के साथ जा रहे थे, तो उन्होंने मार्ग में उन लोगों की हत्या की; किन्तु जव सजना को देखा, तो सर्पदंश से उसकी मृत्यु हो गई थी। इस आघात से वे विरक्त हो गये। सूरत में यत्रतत्र भटकते थे। सन्त समर्थदास की दृष्टि उन पर पड़ी। उनको उपदेश देकर शान्त किया। तदनन्तर उन्होंने दीक्षा ले ली।

माधवदास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके सं० १६२० में समर्थदास ने जीवन्त समाधि ली, तव कहा था, कि तुम संसार में "मस्त माधव" के नाम से प्रसिद्ध होगे।

समर्थ सद्‌गुरु यूं कहे, तुम हो वड़े वड़भाग।
जगमें 'मस्त' कहायेंगे, माधव मेरस लाग॥

माधवदास का जन्म सं० १६०१ की कार्तिकी पूर्णिमा के दिन हुआ था। सं० १६२० से वे गद्दी से अधिकारी के रूप में नियुक्त हुए। सं० १६५२ के आषाढ़

---

१. 'संत माधवदास' श्री माणेकलाल राणा, पृ० १५।

की अमावस के दिन उन्होंने जीवन्त-समाधि ले ली। अपने ३२ वर्ष के अधिकार में २४ वर्ष उन्होंने तीर्थयात्रा तथा भ्रमण में व्यतीत किये थे। स्वभाव से ही वे विरक्त थे। सं० १६२२ में वे प्रथम तीर्थाटन को निकले थे।

सन्त माधवदास "आतमराम" का ज्ञान तथा राम की भक्ति का उपदेश देते थे। पाटण में जब थे, वहाँ के सूबा शेरखान की पुत्रवधू उन पर आसक्त हुई, जिसके कारण उनको अनेक कष्ट दिये गये थे। वे दिल्ली भी गये थे, जहां बीरबल तथा कवि गंग की मुलाकात हुई थी। प्रथम तीर्थाटन में सुमन भट्ट (डाकोर), भावजी, बोधा तथा सम्मद शेख उनके शिष्य हुए थे।[1]

बारह वर्ष पश्चात् सं० १६३४ में वे सूरत लौटे थे। सं० १६३० से सूरत पर अकबर का अधिकार हो गया था। माधवदास हिन्दुओं के साथ मुस्लिमों के आचारों का भी विरोध करते थे, इसलिये अकबर का सूबा खलिजखान क्रोध में आकर उनके ऊपर सख्ती करने गया, किन्तु उनकी वाणी सुनकर उनका नम्र सेवक बन गया। माधवदास ने उनको उपदेश दिया था।

मजहब दिखावे सांई को, सबकी एक निगाह।
राम कहो, रहीम कहो, वो शाहन के शाह॥

सं० १६३७ में वे पुनः तीर्थाटन को निकले थे तथा सात वर्ष पीछे सं० १६४४ में लौट आये। तीसरी यात्रा सं० १६४६ में प्रारम्भ की थी तथा सं० १६५१ में पूर्ण करके वे आ गये थे। इस समय वे मुलतान तक गये थे।

तीर्थाटन से लौटने के पश्चात् आश्रम में भजन-कीर्तन की धूम मच जाती थी। रात को अलख-दरबार लगता था। इसमें निर्वाण-अखाड़े के तीसरे सन्त हीरादासजी भी आते थे। केशवदास, विरहानन्द, छेलाराम आदि सन्त भी थे। वन्ना नाम का एक भील माधवदास के उपदेश से सन्त बन गया था।

आश्रम में एक वर्ष का निवास कर उन्होंने सं० १६५२ की आषाढ़ी कृष्ण-पूर्णिमा को समाधि ले ली।[2] हिन्दी में उन्होंने विपुल सन्तवाणी की रचना की थी।

(४) संत प्यारेदास—उनका जन्म काशी में सं० १६२५ में हुआ था। युवक होने पर वह वीरमति नाम की वारांगना के प्रेम में पड़ गया। संत माधवदास ने उसे चेताया था। विरक्त होकर वह उनका शिष्य हो गया।

---

१. सुमन भट्ट और भावजी, बोधा, सम्मद शेख।
माधव सद्गुरु संग में, लीन्हो अवधू भेख॥
२. संवत् सोलह से बावना, सुरसरि तापी तीर।
आषाढ़ कृष्णा पूर्णिमा, माधव तज्यो शरीर॥

विषय कीट में पामर राच्यो, विरथा जगत विगोया ।
'माधवदास' वहु वेर जगायो, अंधे जाग न जोया ॥
प्यारे ! जीवन पाप में खोया ।

प्यारेदास को गुरु पर बेहद प्यार था, इसलिए समाधि के समय माधवदास ने उनको युक्ति से तीर्थाटन को भेज दिया था । प्यारेदास अत्यन्त स्वरूपवान थे । सूरत के एक धनी सेठ की पुत्री उनके ऊपर आसक्त हो गई थी । जब तत्यन्त उसका विवाह हुआ, तो उसने शरीर छोड़ दिया । "सोमी" नाम की एक अंत्यज स्त्री भी आसक्त हुई थी, किन्तु उनको उपदेश देकर उन्होंने विरक्त किया था ।

उनके शिष्यों में द्रुपद स्वामी, रहमतखान, सोहनदास, माणेकदास, कुरंग स्वामी आदि प्रमुख हैं, जिनके चरित्र तथा वाणी भी उपलब्ध होती है । अहमदाबाद की एक वारांगना रेहाना के द्वारा उनकी कसौटी की गई थी । उनके समय में शिवाजी ने दो बार सूरत लूटा था । सं० १७४५ में उन्होंने जीवन्त-समाधि ले ली । प्यारेदास ने स्वयं अपनी वाणी में अपनी एक सौ उन्नीस वर्ष की आयु का उल्लेख किया है ।

प्यारे वहुत ठाढ़े यहां, आयु शत उनवीस ।
अब हम वहां चली जायेंगे, जहां माधव-गुरु ईश ॥

प्यारेदास एक सुकवि थे । उन्होंने विपुल सन्तवाणी की रचना की है । उनमें एक पद उद्धृत है ।

तोहे वहुरि संदेश पठायो, साजन मोहे आन मिलो ।
आन मिले सैंयां मोरे, अब तो रहा न जाय ।
यह विरहा दुख देते हैं, वालम ! पीर सही न जाय ।
जल विन मछली तलप मरोरी, तुम विन यों गति मोरी ।
सजनी मोरे पिया घर आवे, वेर वेर वलि जाऊं ।
'प्यारेदास' की यह विनति, मैं पिवजी को पाऊं ॥

(५) जोगाहरि—प्यारेदास के समय में तापी में बाढ़ आयी थी । वृक्ष के साथ वहते हुए एक मनुष्य को प्यारेदासजी ने बचा लिया । वह "जोगा" नाम का भंगी था, उसके पिता का नाम लगाकर उसे जोगाहरि कहते थे । आश्रम में भेदभाव नहीं था । प्यारेदास ने उसको पहले आश्रम में रख लिया । वह आश्रम की सफाई, गोशाला की सफाई तथा सन्तों की सेवा करता था । सं० १७४५ में समाधि लेने से पूर्व

प्यारेदास ने जोगाहरि को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।[1] जोगाजी ने विरोध का भय व्यक्त किया था, किन्तु प्यारेदास ने उनकी एक न सुनी।

कहा गया है, कि प्यारेदास ने आश्रम के नष्ट होने का सारा भेद जोगाजी को बता दिया था तथा उस दिन आश्रम को छोड़ चले जाने का आदेश भी दिया था।

गोधन साधु संपत्ति, जा दिन होयगी लूट।
ता दिन छांडि जाव हो, यहां न रहो अवधूत।
तापी मैया रूठ जायेगी, देखत आयेगी धाय।
संत-धाम सुहावना, अपने उर में सुहाय।

सं० १७४५ में प्यारेदास के समाधिस्थ हो जाने के पश्चात् जोगाजी पर बहुत बीती। आश्रम के कुछ साधु तथा अन्य ब्राह्मणों ने मिलकर जोगाजी को बहुत मारा तथा आश्रम को लूट लिया। गोशाला की गायें भगाकर अपने-अपने घर ले गये। आश्रम को तोड़-फोड़ नष्ट कर दिया।

रात को जोगाजी शुद्धि में आये। उन्होंने देखा, चारों ओर शून्याकार था। गुरु के आदेश को याद कर आश्रम के त्याग का उन्होंने निर्णय किया। सारी रात जागकर उसने सन्त-कवि प्यारेदास की वाणी के ग्रन्थों को इकट्ठा करके गठरी बांधी। आश्रम को नमस्कार कर भोर से पहले वे चले गये।[2]

संयोग से दूसरे ही दिन तापी नदी में भयंकर बाढ़ आयी थी तथा सारे आश्रम को जड़मूल से बहाकर ले गई थी।

सूरत से जोगाजी पहले "बहुधान" गये। वहाँ मांडवी की छोटी-सी रियासत थी। मांडवी के राजा ने जोगाजी का प्रेम से आदर-सत्कार किया था।[3] राजा ने उनको अपना गुरु माना। बहुधान में जोगाजी ने कुछ समय निवास किया था। तदनन्तर जोगाजी पुनः सूरत आये। आश्रम के स्थान पर जाकर देखा, तो आश्रम का कोई अवशेष बचने नहीं पाया था। प्यारेदास का भविष्य-कथन सत्य सिद्ध हुआ था।

जोगाजी निर्वाण-अखाड़े में गये। वहाँ उस समय निर्वाण-परम्परा के सातवें महन्त जगन्नाथदासजी थे। उन्होंने जोगाजी को हृदय से लगा लिया। जोगाजी के

---

१. 'गीता' पत्रिका, अहमदाबाद, अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, १९४२।

२. संत वानी हियरा बसी, खोजत लिये उठाय।
आश्रमसे बींदा हुए, बहुरि सिर झूकाय।

३. नग्र मांडवी भूपति, आये सिर झूकाय।
जोगा को अपना लिये, बहुरि प्रीत लगाय।

अपने पास सन्त प्यारेदास की वाणी तथा सन्त समर्थदास, माधवदास आदि अनेक सन्तों की वाणी की जो पोथियां थीं वे सब जगन्नाथदास को देकर वे चले गये।

तदनन्तर जोगाजी नर्मदा की परिक्रमा को निकल पड़े। वहाँ अमरकंटक की झाड़ी में बैठकर जोगाजी ने अपने जीवन का शेष काल हरिस्मरण में बिता दिया। वहाँ वे समाधिस्थ हो गये।[1]

लोचनदास की परंपरा के अनेक संतों की वाणी की रक्षा करने के श्रेय के अधिकारी जोगाजी थे। उन्होंने भी कुछ रचनाएँ की थीं। संसार की असारता की चेतावनी देते हुए उन्होंने लिखा था।

देखत दीप बुझ जायेंगे, चहुदिश में अंधियार।
अजहु चेतरे बावरे, जोगा कहत पुकार॥

(६) संत कवि रूखड़जी—रूखड़जी उत्तर गुजरात के "मेहसाना" के पास में सन्त समर्थदास को मिले थे। सन्त के उपदेश से वे विरक्त हो गये। गुरु समर्थदास ने कहा था, कि यह संसार मृगजल के समान है, इसमें एक साहब का नाम सत्य है। माया से दूर रहकर हरिस्मरण करना चाहिए। जो हरिस्मरण करता है, वही शूर है।

कुछ समय पश्चात् रूखड़जी गुरु को मिलने सूरत आये थे। आश्रम में गुरु के सत्संग में कुछ दिन रहे। साधु तथा भजनिकों के संग में वे भी एक मस्त भजनीक बन गये। वहाँ से घर जाकर सब से विदा मांग कर भ्रमण के लिये निकल पड़े। व्रज-मंडल से एक संत-मंडली के साथ हरद्वार पहुँचे। हरद्वार में मण्डली के महन्त ने हिमालय पर जाने की तैयारी की। रूखड़जी उनके साथ हिमालय चले गये। जिस प्रकार पारस-स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार यह एक साधारण अनपढ़ भील साधु संतों के सत्संग में संत-कवि बन गया। उन्होंने अनेक पदों की रचना की है, इनमें से दो पद उद्धृत हैं। निम्नलिखित पद पर कबीर के "घूंघट का पट खोल रे" पद का प्रभाव द्रष्टव्य हैं।

पट खोल दियो रे घूंघटरो..........टेक०

मूरख को महामंत्र पढ़ायो, भावे बनायो भगत रो।
पतित-उवारन पारस अवधू, मानो मिले अविगत रो।

भव डूबत उवार लियो, वो खेवनहार प्रगट रो।
'दास-रूखड़' को दरस दिखायो, खोल के पट घूंघट रो।

---

१. अमरकंटक में जायके, जोगा बैठे लुभाय।
हरि से प्रीत लगाय के, जोगाहरि को पाय॥

हरि से लागन दे मन मोर !

माया मृगजल कौन फंसे, मेरो मन चाहत कछू ओर।
अविद्याकी मिट गई रैनी, ज्ञानोदय भये भोर।
सद्गुरु भेट्या, भर्म सब भागा, लग गये नामकी दोर।
हरि को भजे, सो हरिका होवे, अब कहां कालका जोर।
'दास-रूखड़' को अपनो जानो, समर्थ सद्गुरु मोर ॥[1]

(७) जुहारीदास—जुहारीदास भट्टीवंश के राजपूत थे, तथा जेसलमेर ने सूरत आये थे। जेसलमेर पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ था। सारे राजपूत युद्ध-भूमि में गये थे, तब ये रागरंग में डूबे हुए थे; इसलिए उनको जेसलमेर से निकाल दिया गया था।

सूरत आने पर संत समर्थदास के प्रभाव में आकर वे साधु बन गये। एक दिन भिक्षा मांगने किसी गांव में गये थे; वहाँ किसी स्वरूपवान नारी में आसक्त हो गये। उस नारी की विनती से समर्थदास ने उसे वहीं छोड़ दिया। कुछ वर्ष पीछे स्त्री की मृत्यु हुई, तब वे पुनः विरक्त होकर सूरत-आश्रम में आये। समर्थदास ने उपदेश देकर उनको शिष्य बनाया।

संत माधवदास समर्थदास के उत्तराधिकारी हुए, इससे जुहारीदास के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई थी। किन्तु माधवदास सच्चे विरक्त संत थे। अपने ३२ वर्ष के अधिकार में २४ वर्ष उन्होंने तीर्थाटन में काट दिये थे। आश्रम का सारा संचालन उनको सौंपकर सन्त माधवदास ने जब यात्रा की तैयारी की, तब उनकी आँखें खुल गई थीं।

उन्होंने सन्तवाणी की रचना की है। इनमें से एक कुण्डलिया उद्धृत है, जिसमें गुरु-कृपा का उल्लेख है।

सद्गुरु मोरे दयानिधि, कर ग्रही लियो उवार।
समर्थ साहब के बिना, बहत रहे मंझधार।
बहत रहे मंझधार, खेपकर खाविंद आया।
खेवनहार दयाल, दीन पें कीन्हा दाया।
'दास-जुहारी' दरस बिन, चाहत नहीं कुछ और।
कर ग्रही लियो उवार, दयानिधि गुरु मोर ॥[2]

---

१. 'भील संदेश' प्रतापनगर मई-जून, १९४९।

२. भटकत आयु बह गई, खोज्या नहीं निज देश।
जुहारी अज्ञ न मेटिया, यह कठिन कलेश।

(८) बाबा पिप्पल—विक्रमसिंह सोगा के हाडा जाति के राजपूत थे। एक बार मृग का शिकार करके आ रहे थे, तो मार्ग में सन्त समर्थदास के दर्शन हुए। सन्त ने उपदेश देते हुए कहा।

पाप गठड़िया बांध के, पिप्पल चले किस ओर।
दोनों जहां बिगोइया, कबहु न पावत ठोर।[1]

समर्थदास के शब्दों से राजपूत के हृदय में परिवर्तन हुआ। अनुग्रह के लिए उन्होंने प्रार्थना की। समर्थदास उनको अपने साथ सूरत ले आये। यात्रा से लौटने के कुछ ही समय पश्चात् समर्थदास ने समाधि ले ली थी। गुरु की आज्ञा के अनुसार पिप्पलदास माधवदास को गुरु रूप में देखते थे।[2] तदनन्तर वे इन्द्रकील शिखर पर तप करने चले गये।

इक्कीस वर्ष पश्चात् बाबा पिप्पल हिमालय से लौटकर सूरत आये। माधवदास ने उनको पुनः जाने से रोका तथा तीसरी बार तीर्थाटन को जाने से पूर्व आश्रम का अधिकार उनको सौंप दिया। सूरत के सूबेदार ने उनको कष्ट देने के प्रयास किये थे, किन्तु उनकी यौगिक शक्ति के सामने उसको झुकना पड़ा था।

कहते हैं, उनको अक्षय-पात्र प्राप्त हुआ था। एक बार असाध्य रोग में बीमार पड़े थे, तब किसी योगी ने आकर उनको रोगमुक्त किया था। नये सूबेदार ने भी उनको बन्दीखाने में डाला था, किन्तु किसी दैवी शक्ति से प्रभावित हो कर उनको मुक्त कर देना पड़ा था।

माधवदास ने सं० १६५२ में जीवन्त-समाधि ली, तब वे विह्वल हो गये थे। उन्होंने भी दूसरे वर्ष सं० १६५३ में समाधि ले ली। कहते हैं, वे गुरु की समाधि को दो बाँहों में पकड़े हुए थे, और उनकी आत्मा शरीर को छोड़ चली गई थी। उनके चरित्र के अन्त में प्यारेदास जी ने लिखा है—

प्यारे अजहू न आइया, चल गये पप्पल मोर।

(९) प्रेमाबाई—पाटण में दो सन्त स्त्रियां हुई थीं, एक प्रेमाबाई तथा दूसरी पानबाई। सं० ६३१ में भट्टी वंश की क्षत्रियाणी पानबाई प्रेम-भक्ति से द्वारकानाथ को वश कर पाटण में ले आई थी, ऐसी एक मान्यता है। वही रणछोड़राय पाटण में "पानस्याम" के नाम से प्रसिद्ध हुए।[3] प्रेमाबाई का समय सं० १६०० से १६५०

---

१. क्षत्रिय-मित्र (भावनगर), जून से अगस्त, १९६०।

२. साच बानी गुरुदेवकी, समर्थ गुरु को रूप।
माधव की छवी देखिया, सद्गुरु आप अनूप॥

३. संवत् छः सौ इकतीस में, सब के पूरन काम।
पट्टन में प्रगट भये, पान बाई के स्याम॥ पाटणनो मोमियो

तक का है। उनका पति सँगाजी राठौर बूंदी राज्य में नौकरी करने गया था। वहाँ किसी अन्य नारी में आसक्त हो गया था। वह पाटण नहीं लौटा। वहाँ उन्होंने स्थिर निवास कर दिया। इससे प्रेमाबाई अत्यन्त दुःखी थी। उनके पिता शेषमल परमार भी बड़े दुःखी थे। प्रेमाबाई घनस्याम के मन्दिर में पूजा करने जाया करती थीं, वहाँ उनको एक बार संत समर्थदास के दर्शन हुए। समर्थदास के उपदेश से उनको शांति मिली। पति के स्थान पर उन्होंने प्रभु से लगन लगा ली। समर्थदास से दीक्षा लेकर वह हरि के स्मरण में मस्त रहने लगीं। प्रेमाबाई ने पदों की रचना की है। अनेक पदों में उन्होंने अपने जीवन-प्रसंग भी लिखे हैं। १६५२ में माधवदास की समाधि के समाचार सुनते ही उन्होंने देह-त्याग किया। अपने जीवन की कथा विषयक एक पद द्रष्टव्य है।

प्रेमा को प्रभू भजनरंग लागे, सद्‌गुरु समर्थ मिले सुहागे।
शेवमल परमार की लाड़ली, प्रेमाबाई शुभ नामे।
रूपगुण चातुरी देखके, कुल में होत बखाने॥ १॥
भांवर किये राठौड़ वंश में, संगाजी वड़भागे।
बूंदी जाय बेवफा हो गये, आनसे जगे अनुरागे॥ २॥
'प्रेमा' प्रभूको नाम बखानो, यह संसार अभागे।
सद्‌गुरु समर्थदास चेताये, 'प्रेमा' नींद से जागे॥ ३॥

पाटण का सूबेदार प्रेमाबाई पर आसक्त हो गया था, किन्तु प्रेमाबाई की शुद्ध भक्ति-भावना के आगे उनकी एक न चली थी। प्रेमाबाई के अनेक पद उपलब्ध होते हैं, जिनमें गुरु-गोविंद की भक्ति है।

(१०) केशवदास—उनका जन्म उत्तर गुजरात के पाटण नगर में हुआ था। पूर्वजन्म के संस्कार से वे अल्पायु में विरक्त हो गये। गृहत्याग कर भ्रमण करते हुए वे सूरत आये। वहाँ समर्थदास के शिष्य हुए। सूरत में केशवदास ने अपना अलग स्थान बनाया था। कई दिन से उनको गुरु के दर्शन नहीं हुए थे। उनको दुःख हुआ कि गुरु ने उनकी सुध नहीं ली; किन्तु गुरु आते थे, तब वे समाधिस्थ होते थे। उस दिन आँखें खुलते ही गुरु के दर्शन हुए। गुरु ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा।

सुमिरन, संत-समागमा, दोनों निशाना एक।
केशो नीने खड़ा रहा, पड़ गये संत अनेक॥

सं० १६२८ में समाधि के समय समर्थदास ने विह्वल एवं दुःखी केशवदास को समझाया कि मृत्यु दुःख करने योग्य नहीं है, वह तो प्रभु-मिलन का अवसर है।

केशो यह दुर्लभ घड़ी, जागत जब मत रोक।
जावे हरिको भेटिये, स्याना कीजै न शोक॥

तदनंतर माधवदास भी तीर्थयात्रा को चले गये। गुरु की स्मृति में केशवदास उदासीन रहने लगे। एकलता अखरने लगी। वे व्याकुल हो गये। गुरु की समाधि पर सिर को जोर से टकराया। इनकी आत्मा देह छोड़ गुरु से जा मिली।

बाबा बैन मुख ते कह्यो, केशो रहे हमार।
बिलखत आयो तुम बिना, साहिब खोलो द्वार।

उनके विषय में प्यारेदास जी ने अन्त में लिखा है।

हरि बिन बिलखत बावरा, नैन नीर बहाय।
हंस हंस पिया के हृदय में, केशो गये समाय॥[1]

(११) हुर्रा—संत कवयित्री हुर्रा पाटण के सूबेदार की पुत्री थी। सूबेदार का एक सिपाही बंकाजी अत्यन्त स्वरूपवान था।[2] हुर्रा के हृदय में उसके प्रति प्रेम-भावना जाग उठी थी। निमकहलाल सिपाही उसके अधीन नहीं हुआ। साधु के वेश में नगर का त्याग कर चला गया। बंकाजी के चले जाने के समाचार मिलने पर हुर्रा ने भी गृहत्याग किया तथा बंकाजी की खोज में निकल पड़ी। बहुत समय बाद साधुओं से पता चला, कि बंकाजी संत लोचनदास से दीक्षा लेकर "समर्थदास" हो गये हैं, तथा सूरत में लोचनदास के आश्रम में निवास करते हैं। हुर्रा अपने प्रियतम की खोज में सूरत आयी; यहीं अवधू वेश में प्रियतम के दर्शन हुए।[3] उन्होंने हिन्दी में संतवाणी की रचना की है।

हुर्रा ने समर्थदास से कहा कि उस दिन मैंने तुम्हें बंकाजी के रूप में देखा था; आज समर्थदास के रूप में देखती हूँ। तुम्हारे दर्शन से मेरी आशाएँ पूर्ण हुई हैं।

समर्थदास ने हुर्रा को संसार की असारता तथा नामस्मरण का उपदेश दिया। हुर्रा ने कहा कि मैं तो आपके चरणों में आयी हूँ; आप जो भी आदेश देंगे, उसका पालन करूँगी। तदनंतर समर्थदास की आज्ञा पाकर हुर्रा नर्मदा तट पर किसी एकांत स्थान में निवास कर हरि स्मरण करने लगी। कुछ काल में वह भी एक ध्यानी संत बन गई। अनेक वर्ष पीछे एक बार समर्थदास के दर्शन के लिये गई थी; तब उसने समर्थदास से कहा था; आपके पवित्र दर्शन से मैं निहाल हो गई। आपकी दया न होती तो मेरा क्या हाल होता।

१. यह चरित्र मूल प्यारेदास का लिखा हुआ है।
२. 'मुंबई समाचार' साप्ताहिक, (बम्बई) दिनांक ६-२-१९४९।
३. बांका तेरे इश्क में लियो जोगन वेश।
प्यारी तेरे दिदारकी, दर दर भिरे दरवेश॥
खोजत खोजत आयरी, पियरा तिहारे देश।
हुर्रा विरहीन को मिले, पियरा अवधू वेश॥—संत माधवदास।

मुरशिद पाक दिदारसे, हुरा हो गई न्याल।
समर्थ तुम्हारी रहम बिना, मेरा कौन हवाल ॥

(१२) बोधानन्द—ये जाति के ब्राह्मण थे। यमुना में स्नान कर रहे थे। संत माधवदास निकट में स्नान करते थे। जल के कुछ छींटे ब्राह्मण देवता को लग गये, तो वे आगबबूला हो गये तथा क्रोध के आवेश में संत माधवदास को मारने लगे, किन्तु संत माधवदास निश्चल खड़े रहे। माधवदास ने कहा, हे विप्र! तुम मंद-मति हो। इतने तीर्थ-भ्रमण करने के पश्चात् भी तुम्हारी आँखें अब तक नहीं खुलीं। तुम ब्राह्मण हो किन्तु तुम्हारे में ब्रह्म-ज्ञान नहीं है। अभी कुछ बीत नहीं गया; अपनी आंखें खोलो, अन्यथा पछताओगे।

संत के इन शब्दों से वे घायल हुए। संत-चरण में झुक गये तथा पश्चात्ताप के अश्रु बहाने लगे। माधवदास उनको अपने साथ सूरत ले आये। वहां दीक्षा देकर उनको अपना शिष्य बनाया; फिर वे व्रजमण्डल गये। बारह वर्ष ध्यान तथा हरि-स्मरण में बिता कर वे सूरत लौट आये थे।[1]

बोधानन्द ने संतवाणी की रचना की है, किन्तु इनमें से बहुत कम पद प्राप्त होते हैं। निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है।

पद

हरि मोहे अपनो जान उबारे ॥
बिलखत ब्रज में बहुत बिगोया, पाया नहीं पिव प्यारे।
यह मायिक प्रपंच देखते, सदगुरु कीन्हे न्यारे ॥ १ ॥

विकट भाव औगाह बह्यो री, डूबत थे मंझधारे।
नाव खेवैया निकट हमारे, कर ग्रही किंकर तारे ॥ २ ॥

खोजमें बलमा खोजन निकली, विरहिन हुई ब्रजनारे।
रोवत सारी उमर गंवाई, दरसत नहीं दीदारे ॥ ३ ॥

सदगुरु भेद बताया सजनी, दया किन्ही दातारे।
पट खोल साहिब पेखाये, बेर बेर बलि हारे ॥ ४ ॥

नैन सैन मिल गये हरि से, हो गये पिव हमारे।
'बोधानन्द' भव भटकत नाहीं, गुरु चरनन चित धारे ॥ ५ ॥

(१३) बंकदास—बंकाजी गटोरण के खानाजी के वंश में हुए थे। बड़े होने पर विवाह की बात चली, तो उन्होंने बताया कि मैं अपने अगले जन्म की

1. 'विश्व कल्याण' धागंध्रा, १९५५।

पत्नी को ढूँढ़कर उससे विवाह करूँगा। वंकाजी के पूर्वजन्म की कथा दूलाराम ने लिखी थी। पूर्वजन्म में वे पाटण के जैतसिंह परमार थे। उनकी पत्नी का नाम सजना था। जैतसिंह पाटण छोड़ कर मरुभूमि में नौकरी करने गया था। पति के विरह में सजना बड़ी दुःखी थी। सच्ची सती पति के बिना जी नहीं सकती; ऐसा एक सहेली का व्यंग्य सुनकर सजना ने अपना शरीर छोड़ दिया।

समाचार मिलने पर जैतसिंह अत्यन्त शोकमग्न हो गये। सात वर्ष तक उन्होंने किसी आनन्द के प्रसंग में हिस्सा न लिया। आठवें वर्ष उनके साथी उनको होली के उत्सव में ले गये, संत माधवदास के एक गीत ने उनको सावधान कर दिया। विरक्त होकर वे माधवदास के शिष्य बन गये—वृन्दावन में उनका निधन हो गया था।[1]

यही जैतसिंह परमार दूसरे जन्म में वंकाजी हुए थे। सजना ने धरमपुर के राजा जयदेव के कुल में चन्द्रावती के रूप में जन्म लिया था। चन्द्रावती ने सात वर्ष की अवस्था में अपने माता-पिता को अपने पूर्वजन्म की कथा कही थी। बड़ी होने पर अपने विवाह के विषय में उसने कहा कि मैं अपने पति को ढूँढ उनसे विवाह करूँगी।

सूवेदार कुलीखान उससे विवाह करना चाहता था। इस समाचार को सुनते ही वह गृहत्याग कर भाग खड़ी हुई। खरवासा के संत तेजानन्द स्वामी से निर्देश पाकर वह सिद्धपुर के मेले में गई; वहां पति-पत्नी का मिलन हुआ। दोनों एक दूसरे को देखते ही पहचान गये। विवाह सम्पन्न हुआ तथा चन्द्रावती दूल्हन बनकर कटोसण के राजमहल में चली गई।

एक दिन माधवदास का एक शिष्य सुमनदास[2] मार्ग में चलते-चलते गा रहा था; "रही मेरी उमरियां थोरी, सांवरासु ना खेलूँ होरी।" इसको सुनकर वंकाजी के हृदय में पूर्वजन्म के संस्कार जागृत हुए। माधवदास ने यही गीत गाकर उनको पूर्वजन्म में चेताया था।

पति-पत्नी दोनों विरक्त होकर सूरत आकर आश्रम में रहने लगे; किन्तु साधुओं के मध्य में संसारी का निवास अनुचित समझकर वंकाजी पत्नी को स्वामी तेजानन्द के आश्रम में छोड़ आये।

आश्रम के एक बार सूरत के सूवेदार झूल्फीकार ने उसको देखा; वह मोहित हो गया। स्वामी तेजानन्द ने अपनी शक्ति से उसे समझा लिया। आश्रम का एक

---

१. 'गुजरातना भक्तो' ले० श्री माणेकलाल राणा, पृ० ७६।
२. यह शिष्य डाकोर के पुजारी का पुत्र था।

साधु भी उनके रूप के पीछे दीवाना हो गया था। स्वामीजी ने उसको चेताया; किन्तु चन्द्रावती ने अनुभव किया कि उसका रूप ही उसका दुश्मन बना है। उसने अन्न-जल का त्याग किया तथा रामनाम के जाप करने लगी। शरीर कृश हो गया। बंकाजी भी कठिन साधना में लगे थे।

एक दिन उसने सुना कि बंकाजी अब समाधि की तैयारी कर रहे हैं, वह उनके पास चली गई तथा स्वर्ग में सहगमन की इच्छा व्यक्त की; बंकाजी ने इसको स्वीकार किया। दोनों ने एक साथ "जीवन्त-समाधि" ले ली।

चन्द्रावती तथा बंकाजी दोनों कवि थे। बंकाजी ने "बंकादास" के नाम से संतवाणी की रचना की थी। अपनी साधना में पत्नी की सुध लेना भी बंकाजी भूल गये थे, इस बात पर चन्द्रावती ने उनको एक पद लिखा था। बंकाजी ने निम्नलिखित पद में इसका जवाब दिया है।

पद

प्रेम नगर में भूल गये हम पूरब प्रेम सगाई रे।
पियरा मैं दरसन की प्यासी, हरि से प्रीत लगाई रे।
जन्म जन्म को नेह विसारे, मुझमें बड़ी निठुराई रे।
बैंया पकड़ बन खंड में छाँड़े, प्रीतको रीत लजाई रे।
प्रेमरंग मत होवत फीको, चाहे युग बीत जाई रे।
आतम छूटे नेह न छूटे, बेर बेर मिल आई रे।
सदगुरु मोहे दिया उपदेशा, माया विष तजाई रे।
अगले भव हम हार गये थे, यह भव करहु कमाई रे।
चंद्रावती मेरी गत बूझो, अवधू असंग रहाई रे।
सदगुरु माधवदास चरणमें, 'बंकादास' बलि जाई रे॥

(१४) मन्नत खान—सूरत का सूबेदार खलीज खान संत माधवदास को बहुत मानता था। उनके एक अंगरक्षक कुव्वतखान को कोई सन्तान न थी। माधवदास की मन्नत रखने से उनके घर पुत्र का जन्म हुआ; उसका नाम मन्नत खान रखा गया। बड़ा होने पर वह संत के आश्रम में रहने लगा। माधवदास ने उसको उपदेश दिया। "वेद या पुराण गुरु के उपदेश से अधिक नहीं हैं। माया का निवास हमारे मन में है। कुरान में कुछ मत ढूंढो। संसार में पाक एक खुदा की बंदगी है। मन्नतखान! साहब के जाप को कभी मत भूलना।"[१] गुरु माधवदास की समाधि के बाद वे अति विह्वल

१. पाक खुदा की बन्दगी, हरदम करानो जाप।
मन्नत कबहू न भूलिए, वो साहब को जाप॥—प्यारेदास।

रहने लगे, तब माधवदास ने उनको सांत्वना दी थी। तदनंतर वे ध्यान में रहने लगे। कहते हैं, उनको परमशक्ति का साक्षात्कार हुआ था।

उनका जन्म सं० १६३३ में हुआ था। सं० १६७६ में उनका निधन हो गया। उनकी मृत्यु के समय के विषय में प्यारेदास ने लिखा है।

तेत्रीसा में आइया, हक्क बखाना दीन।
छहुत्तेर माया झांड़ के, मन्नत हो गये लीन॥
(गुजरात टाइम्स (दीपोत्सवी अंक), सं० २०१३)

संत मन्नतखान कवि भी हैं, उन्होंने अनेक पदों की रचना की है। उनका एक पद यहाँ उद्धृत है।

बंदे क्यों गफलत मन भायो।
बंदगी कारण सांई पठायो॥

गर्भ-बसेरा विलखत प्यारे, बहुरि जिक्र बनायो।
बंदी छोड़ ने बंद छुड़ाया, पाक जहां में आयो॥ १॥

बचपन बीते, आय जवानी, अब क्यों फिरें इतरायो।
पाक खुदा को भूल के अंधे, काहे हवस मन भायो॥ २॥

कायम कुफ्र की राह बखानो, दीन कहां दिल ठहरायो।
एक पिता के फरजंद दोनों, हक्क की खोज लगायो॥ ३॥

रहमेसमन्दर न्यारा मत पेखो, सब घट मेरो सांचो।
बहुनामी बूझ पियारे, जिसने जहाँ न उपायो॥ ४॥

नेक नफा कछु सौदा कीजै, हक्क पिया मन भायो।
'मन्नतखान' मत भूल बावरे, अन्त बहुत पछतायो॥ ५॥

(१५) सोहनदास—संत माधवदास की समाधि का जीर्णोद्धार करने के लिए सोहन नाम के एक राज को बुलाया गया था। वह लोहे की छलनी से पत्थर को तोड़ रहा था, इसे देख कर प्यारेदास की आँखों में अश्रु बहने लगे। कारण पूछने पर उन्होंने बताया, कि इन पत्थरों के अन्दर कितनी बड़ी महानता छिपी है, इसे तुम क्या जानो।[1]

सोहन को समाधि के पत्थरों से खून की बूंदें आती दिखाई देने लगीं; सोहन अवाक् रह गया। उनके अंतःचक्षु खुल गये। उनकी आँखों से भी अश्रुधारा बहने लगी। प्यारेदास ने गुरु के अन्तिम मिलन-प्रसंग का वर्णन किया। गुरु ने प्यारेदास को जान-बूझकर समाधि के समय तीर्थाटन को भेज दिया था। लौटने पर गुरु के

१. 'राणा प्रगति' (दीपोत्सवी अंक), सं० २००६।

समाधि लेने के समाचार से उनको बड़ा आघात हुआ था। रोते-रोते उनकी आँखों में झांई पड़ गई थी।

प्यारेदास ने सोहन को संसार की निस्सारता की चेतावनी दी तथा समय का उपयोग हरिस्मरण में करने का उपदेश दिया। सन्त के शब्द-प्रहार से सोहन में परिवर्तन हो गया। वह विरक्त हो गया। सन्त माधवदास की समाधि के पास बैठ कर ध्यान में रहने लगा।[1] परमतत्व की अनुभूति सोहन को हुई थी, इस पर धन्य-वाद देते हुए प्यारेदास ने लिखा था।

सोहन तोहे रंग है, पियरा वश कर लीन।
दोनों जहां तुम जीत गये, हम हारे पल छीन॥

गृह का त्याग कर सोहनदास आश्रम में रहने लगे। वे दिन भर ध्यान में रहते थे।

प्यारेदास के समाधि ले लेने के पश्चात् उन्होंने प्यारेदासजी की संगमरमर की प्रतिमा बनाई थी। वे उसके सामने बैठ कर ध्यान करते थे। एक बार किसी दुष्ट व्यक्ति ने इसे तोड़ दिया। सोहनदास को गहरी चोट लगी। उनका दिल टूट गया। इसी दुःख में उसने शरीर छोड़ दिया।

प्रतिमा टूटी, दिल टूटा, टूट गई जीवन दोर।
'सोहन' किसी का ना रहा, रूठ चले किस ओर॥

(१६) माणेकदास—उत्तर गुजरात में "लाखणका" गाँव में एक राजपूत दंपति के घर सन्त प्यारेदास के आशीर्वाद से पुत्रजन्म हुआ। आश्विन मास की शुक्ल-पूर्णिमा को गुजरात में "माणेकठारी पूर्णिमा" कहते हैं, उस दिन उनका जन्म होने से "माणेक" नाम रखा गया था। पांच वर्ष की अल्पायु में उन्हें ध्यान लग जाता था। ग्यारह वर्ष के होने पर उन्होंने प्यारेदास के आश्रम में जाने का हठ किया। माता-पिता उनको लेकर सूरत लोचनदास के आश्रम में आये। प्यारेदास ने संसार की निस्सारता तथा परमतत्व की प्राप्ति का उपदेश दिया। माणेक पूर्णरूपेण विरक्त हो गया। माता-पिता रोते-कलपते लौट गये।

प्यारेदास ने उनको पुत्रवत् पाला था। एक संत मण्डली के साथ, उसे तीर्थ-यात्रा के अनुभव के लिए भेजा गया। उनके माता-पिता तीन बार उनको मिलने आ गये, किन्तु माणेकदास तीर्थाटन में होने से लाचार होकर लौट गये थे। पूरे बारह वर्ष

---

1. सोहन लगन लगादिया, बिसर गये सुख चैन।
जग सपना बिसारके, हरि से मिलाया नैन॥

पश्चात् वह संत-मण्डली वापिस आयी। उसने प्यारेदासजी को माणेक सौंप दिया। प्यारेदास ने उनको तुरन्त उनके माता-पिता के पास भेजा। घर पहुँचने पर देखा कि पिता का निधन हो गया था। माता अन्तिम सांस ले रही थी। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा कि तू सन्त बन गया है, तो हम दोनों का भी उद्धार करना। माता के अन्तिम संस्कार कर उदास होकर वे आश्रम में आये। प्यारेदास ने उपदेश देकर उनको शांत किया।[1]

गुरु के प्रति उनके दिल में अनन्य प्रेम था। सन्त माधवदास ने अपनी समाधि के समय जिस प्रकार तीर्थाटन के बहाने दूर किया था, इस प्रकार प्यारेदास ने अपनी समाधि के समय माणेकदास को व्रजभूमि की यात्रा के लिए भेज दिया था। व्रज-मण्डल में वे ध्यान-योग करते थे। कहते हैं, वे कृष्ण के नाम के जप करते थे। अपनी प्रेमसाधना की सफलता का उल्लेख उन्होंने किया है।

अपनो विरुद बिसारके, आप खड़े व्रिजनाथ।
जनम जनम विसरे नहीं, माणिक तुम संगाथ ॥[2]

(१७) रहमत खान—सन्तकवि रहमत खान का जन्म सं० १७०२ तथा निधन १७४२ में हुआ था।[3] मुगल सम्राट् औरंगजेब के समय में एतमेलखान दिल्ली से सूबेदार के रूप में सूरत आया। सं० १७३१ में उसका चचेरा भाई रहमतखान भी उसके साथ आया था। वह एक उच्च अधिकारी था, किन्तु स्वभाव से धुनी था, हमेशा साधु-फकीरों में पड़ा रहता था। एक दिन प्यारेदास के उपदेश से बहुत प्रभावित हुआ। समाचार मिलने पर सूबेदार ने प्यारेदास को बन्दी बनाया। रहमतखान जब उनको मिलने बन्दीखाने में गया, तो उसकी आँखों में अश्रु थे। उसे देख प्यारेदास ने कहा था।

होनहार वे सांइयां, रोवत काहे पठान।
परवर चाहे सो करे, सोचत क्यों इन्सान ॥

उस समय सूबेदार आकर यह सुन रहे थे। उसके हृदय में भी प्रकाश हुआ। उसने प्यारेदास को तुरन्त बन्धनमुक्त किया। कुछ ही समय पश्चात् सूबेदार को दिल्ली बुला लिया गया, किन्तु रहमतखान ने सूरत छोड़ने से इन्कार कर दिया।[4]

---

१. माणिक क्यों भये बावरे, हरि बिन अपना न कोई।
माततरत सूत बांधवा, झूठे जगत विगोई ॥
२. 'क्षत्रिय मित्र' फरवरी-अप्रैल, १९६१।
३. 'किस्मत' पत्रिका, बम्बई, मार्च, १९५७।
४. सूरत नूरानी देखके, लगे परवर से नैन।
अब यहाँ से कैसे चलूं, दिल्ही वड़े दुःखदैन ॥

मृत्यु से पूर्व उन्होंने प्यारेदास को वन्दन करके विदा माँगी थी। रहमतखान कवि थे। अपने एक छन्द में उन्होंने इसका उल्लेख किया है।

बावा ! मोहे विदा दीजो, बुलवा भेज्या सांई।
मिलन चले साहिबसे, रहमत यहाँ न रहाई।
बिलखत देख पठानको, अपनो लिखे दिलदार।
बावा ! कबूल कर लीजिये, 'रहमतखां' के जुहार॥

उनकी वाणी में संसार की असारता तथा चेतावनी है।

झूलना

यार अजीज यही कुफ्र की राह में काहे मगरूर तू होत पाजी।
एक बातें तोहे अंध सुझत नहीं, हवश नादान क्यों रहत राजी।
कैद कर आपमें नफस सैतानको, देख वे अक्लकी फौज गाजी।
इश्क लवलीन हो जीक्र मैदान, 'रहमत' के सांई तब रहत राजी॥

नीलकंठ की परम्परा

नीलकंठदास—उनके विषय में आ० परशुराम चतुर्वेदी ने पद्मनाभ द्वारा दीक्षित होने का उल्लेख किया है। काशी में पद्मनाभ से दीक्षा प्राप्त कर वे भ्रमण करते हुए गुजरात आये थे।[1] पाटण के निकट सिद्धपुर के एक ब्राह्मण रघुनाथ को उन्होंने दीक्षा देकर शिष्य बनाया था। सिद्धपुर कुछ समय निवास कर उन्होंने रघुनाथ को उपदेश दिया था। "सत्पुरुष चरित्र प्रकाश" में इसका विस्तृत वर्णन है।[2]

नीलकंठदास ने अनेक यात्राएं की थीं। उनका शिष्य रघुनाथदास उनके साथ था। सौराष्ट्र में कबीरमत का प्रचार करते हुए वे वढवाण पहुँचे। इसके निकट में दुधसर के रमणीय स्थान को देखकर सं० १५९५ में वहाँ उन्होंने आश्रम की स्थापना की थी। वह स्थान आज भी वहाँ है। पद्मनाभदास के शिष्य लखरामदास चारण जाति के सन्त थे। इस गद्दी का प्रचार चारण जाति में अधिक रहा है। नीलकंठ ने काशी जाकर समाधि ली।

पाटण की पद्मवाड़ी में पद्मनाभ के स्थान के निकट में जो "नकलंक" का स्थान है, वह "नीलकंठ" का होने का अनुमान किया जा सकता है, किन्तु आज कोई इसको स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा। मेले के दिन जो ज्योत निकलती है,

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २६८।
२. सत्पुरुष चरित्र प्रकाश, पृ० १७७।

उसमें निकलंक की ज्योत (खाड़ी) लेकर चलनेवाला व्यक्ति पद्मनाभ की ज्योत को अपनी पीठ नहीं दिखाता। वह उल्टे कदम चलता है। यदि यह गुरु के प्रति आदर की सूचना है, तो "नीलकंठ" का "नकलंक" होने की सम्भावना रहती है। उस ज्योत के पाटण के खत्री लोग उठाते हैं, इससे नीलकंठ के खत्री जाति के होने की सम्भावना उपस्थित होती है। पद्मनाभ का मेला सात दिन का होता है, उसमें एक दिन "नकलंक" का होता है। "पद्मनाभ" का "पद्मनाथ" (विश्नु) हो गया है, इस प्रकार "नीलकंठ" का "नकलंक" हुआ हो, तो यह असंभव नहीं है।

रघुनाथदास—गुरु नीलकंठदास द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् रघुनाथदास गुरु के साथ यात्रा के लिए गये थे। पुष्कर से लौटते वक्त वे आबू होकर सिद्धपुर आये थे। वहां सिद्धपुर में गुरु ने उनको उपदेश दिया था।

उनकी सौराष्ट्र-यात्रा में झाला राजपूत उनके भक्त हुए थे। मन्द्राचल पर्वत के पास भोगावा नदी के तट पर गुफा बनाकर गुरु-शिष्य ने कुछ समय निवास किया था। वह गुफा आज भी विद्यमान है। उमा नदी के पास दुग्धसर नाम के एक सुन्दर सरोवर को देखकर वहाँ आश्रम बनाने का निर्णय हुआ था। आसपास के चारण लोग उनके भक्त हुए। दोनों ने द्वारिका की यात्रा की थी। वहाँ से लौटते हुए वे गोपीसर, शंखोद्धार, सुदामापुरी, मधुपुरी, तथा प्रभास पाटण होते हुए गिरनार पहुँचे थे। समाधि लेने की इच्छा से नीलकंठदास अपने शिष्य के साथ काशी गये, जहाँ उन्होंने समाधि ले ली थी।

यादवदास—यादवदास झंझावाट (झींझूवाड़ा) के निवासी थे। रघुनाथदास अपने गुरु के साथ जब उस गांव में गये थे, तब यादवदास बालक थे, किन्तु मन पर जो संस्कार पड़े थे, बड़े होने पर वे पल्लवित हुए। उन्होंने रघुनाथ के पास जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। रघुनाथदास ने उनको योग्य समझकर दिक्षा दी। गुरु की समाधि के पश्चात् कुछ समय वे नलेश्वर में ठहरे थे। वहाँ के राजकुमार आंबाजी तथा सामंतसिंह ने मृग का शिकार किया था, इससे उनके हृदय को बड़ा दुःख हुआ। उनके उपदेश से राजकुमार सामन्तसिंह विरक्त हो गये। तदनंतर वे यादव-दास के शिष्य हुए। दूधरेज से झंझावाट आये तथा वहाँ उन्होंने समाधि ले ली। झिलका नदी के पश्चिम किनारे पर उनकी समाधि बनी है, जो आज भी "गुरु समाधि" के नाम प्रसिद्ध है।

यादवदास जाति के मोढ़ त्रीवेदी ब्रह्मण थे।[1]

षष्टमदास (छट्ठा बावा)—षष्टमदास जी पूर्वावस्था में झींझूंवाड़ा के राजकुमार थे। इस परम्परा के मूलपुरुष कैसर मकवाणा झालावाड़ से आये थे।

---

१. सत्पुरुष चरित्र प्रकाश, भाग १, पृ० १७९।

हरपालदेव की सोलहवीं पीढ़ी के राव रणमलजी के पुत्र सोढ़मलजी इस गद्दी पर आये थे। उनके छोटे पुत्र कुंभाजी के पुत्र योगराज की छः सन्तानें थीं। उनमें एक सामंतसिंह थे, जो दीक्षा के पश्चात् षष्टमदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। वहां की अज्ञात जनता उनको "छट्ठा बाबा" के प्यारे नाम से बुलाती थी। सं० १६८६ के भाद्रपद की शुक्ल पंचमी को उन्होंने राम-कबीर संप्रदाय में विधिवत् दीक्षा ग्रहण की थी। उनका जन्म गंगादेवी से सं० १६६८ में हुआ था। सं० १६९० में गुरु के साथ उन्होंने तीर्थयात्रा की थी।

षष्टमदास ने वटवृक्ष की एक शाखा जमीन में गाड़ी थी। प्रातःकाल आयरकन्यायें जो दूध लाती थीं, वह इसी में डाला जाता था। फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा को इसको अंकुर फूटे थे, अतः इसी दिन प्रतिवर्ष वहां मेला लगता है, तथा ध्वजा चढ़ाई जाती है। कबीरवट की परम्परा में यह वटवृक्ष बोया गया था, ऐसा लगता है। वि०सं० १७८६ के चैत की अमावस को षष्टमदास सत्लोकनिवासी हुए।

षष्टमदास नामजप में अधिक विश्वास रखते थे। उनकी माला का बेरखा है, जिसे घिसकर पागल कुत्ते के काटने पर दवा के रूप में पिलाया जाता है। इससे जहर उतर जाता है।

षष्टमदास के दो शिष्य थे, एक लक्ष्मरामदास और दूसरे भाणसाहब। लक्ष्मराम दूधरेज की गद्दी पर रहे और भाणसाहब ने शेरखी में गद्दी की स्थापना की थी।

षष्टमदास के अन्य शिष्यों में मेंआण में रामदास, विरमगांव में ध्यानदास, कंकावटी में रणधीरदास तथा रूड़ाराम थे। चूली में चांपबाई तथा दूधरेज में हीराबाई तथा जसोदाबाई थीं। दूधरेज की हीराबाई तथा जसोदाबाई की समाधियां षट्प्रमदास की समाधि के निकट वर्तमान हैं।[1]

---

१. सद्गुरु चरित्र प्रकाश, पृ० ६१८ ।

पाचवाँ अध्याय

रविभाण-परम्परा

रविभाण-परम्परा का मूल कबीर के शिष्य पद्मनाभ की नीलकंठदास की परम्परा है; किन्तु मोरार साहब के एक शिष्य दलुराम की लिखी एक वंशावली के कारण इस विषय पर शंका उठाई गई थी। दलुराम की वह वंशावली इस प्रकार है।

"स्वामी रामानन्द---रामकबीर---नीरदास---क्षीरदास---परदास---तुलादास--रामदास---धीरदास---नीलकंठदास"[1] यद्यपि पद्मनाभ को भी "रामकबीर" कहते थे, किन्तु इस परम्परा के "रामकबीर" पद्मनाभ नहीं हैं। कबीर के एक शिष्य नीरदास की परम्परा कबीरवट में चली है, किन्तु वह परम्परा इससे भिन्न है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस परम्परा के आधार पर शंका उठाई थी, तथा षण्टमूदास के समय (सं० १६६८-१७८६) के आधार पर इसका समर्थन किया था, कि नीलकंठ पद्मनाभ का समकालीन सिद्ध नहीं हो सकता।[2] रामकबीर-संप्रदाय के साथ इस परम्परा का सम्बन्ध स्थापित करने वाले प्रमाण के अभाव में आचार्य चतुर्वेदी ने अनुमान किया था, कि "इसका आरम्भ स्वतन्त्र रूप से हुआ हो; तदनन्तर इसका साम्य अन्य पंथों वा संप्रदायों के साथ पाकर इसके अनुयायियों ने इसका सम्बन्ध उसके साथ जोड़ने का यत्न किया हो।"

डॉ० रामकुमार गुप्त ने अपने प्रबन्ध में आ० चतुर्वेदी की शंका का उल्लेख किया है। यद्यपि उन्होंने भाण साहब को पद्मनाभ-परम्परा में दर्शाया है, किन्तु उक्त शंका का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया। डॉ० गुप्त ने गुजरात की पद्मनाभ की नीलकंठ वाली एकमात्र परम्परा को रामकबीर-संप्रदाय माना है।[3]

---

१. "र० भा० सं० वा० (पूना) सं० १९८९, पृ० २८६

२. उ० भा० सं० प०, पृ० २९२

३ हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ६२

इस प्रकार की शंका का प्रमुख कारण वर्तमान गद्दीपति महंतों की गुरु-गद्दी से सम्बन्ध-विच्छेद की भावना है। रवि तथा भाण साहब के स्थान शेरखी, खपर, कमीजड़ा आदि के महंत दूधरेज की गुरु-गद्दी से स्वतन्त्र हो गये हैं। "सत्पुरुष-चरित्र-प्रकाश" के कुछ उल्लेखों का इसलिए उन्होंने विरोध किया था।[1]

रामकबीर-परम्परा के प्रमाण

१. षष्टमदास से दीक्षा—रविभाण-संप्रदाय के मूल पुरुष भाण साहब ने दूधरेज में नीलकंठी परम्परा के महंत षष्टमदास (छट्ठा बाबा) से दीक्षा ली थी। दीक्षा के समय गुरु ने उनसे कहा था, कि तुम्हारे ऊपर "साहब" की कृपा है। अब से तुम भी "साहब" कहलाओगे।

साहब की करुणा जो पाई, अबसे तुम 'साहब' कहलाई।[2]

२. दीक्षा मन्त्र—दीक्षा का मन्त्र "रामकबीर" था। रवि को दीक्षा देते समय भाण साहब ने भी कहा था। "रवि ! मैं निज धाम जा रहा हूँ। तुम "कबीर-भेष" का प्रचार करना। रामकबीर-साहब को वंदन कर कबीर की टोपी धारण करना। "रामनाम" का उपदेश देना।"[3] यही उपदेश रवि साहब ने परम्परा में मोरार साहब को भी दिया था।[4]

३. प्रखर व्यक्तित्व—इस परम्परा के संत भाण साहब तथा रविसाहब महाप्रतापी संत थे। दोनो ने गुजरात में भ्रमण कर अनेक शिष्य तथा अनुयायी बनाये थे। चालीस शिष्य भाण के साथ तथा उन्नीस शिष्य रविसाहब के साथ हमेशा रहते थे। दूधरेज की गुरु-गद्दी लब्धरामदास के अनन्तर प्रभावहीन होती चली गई। इस स्थिति में रवि-भाण के अनुयायियों ने अलग नाम दे दिया।[5]

४. दलुराम की अन्य वंशावली—दलुराम की ही एक अन्य वंशावली में स्वामी रामानन्द से भाण तथा रवि साहब तक की पूरी परम्परा दी गई है।

रस राम लोलीन ना आन आश, भये राम पूर्ण, कबीर सुदास।
शिष्य नाम ताका पद्मनाभ कहीजे, मन, क्रम, वैराग अंग वदीजे ॥ १४ ॥

---

१. "रवि विजय" ले० मोहनदास रामकबीर, गोंडल
२. भाण लीलामृत, पृ० ५१।
३. 'संत भाण साहब' श्री माणेकलाल राणा, पृ० १०६।
४. 'सौराष्ट्रना संतो' श्री देवेन्द्र पण्डित, पृ० १३२।
५. 'कबीर महाप्रकाश' ले० तपस्वीजी, पृ० १४२।

तनय नाम ता नीलकंठ कहायें, बुद्धिवंत महंत सो संत गावे ।
शिष्य नाम ताके कहुँ रघुनाथ, प्रिय प्रेमपुरो हरिध्याम साथ ॥ १५ ॥

तनय नाम जादवदास ताही संत चाकमील हरि पीर शाही ।
शिष्य नाम पद्म् जगत विदितं, प्रकाश रस भक्ति वंश अदितं ॥ १६ ॥

तनय नाम तास उजागर भाण, प्रवीणे प्रमाणे, वदिजे सुजाण ।
यह भाण के वंश उभय प्रकाश, भये नाद-बुन्द सुजोगी सुभास ॥ १७ ॥[1]

५. खीम चिंतामणि—संत भाण साहब के सुपुत्र खीम साहब की लिखी "खीम-चिंतामणि" में कबीर साहब से खीम साहब तक की परम्परा का उल्लेख है । "सत्पुरुष-चरित्र-प्रकाश" में अंक ५.१ से आगे से उद्धृत है ।

सत्गुरु सत् कबीर है सिरतार, ताका पद्मनाभ अवतार ।
ताका नीलकंठ भरपूर, ताका रघुराम निरमल नूर ।

तहाँ जदुराम जगदीश, ताका छट्ठा (पद्मम्) पूरण प्रीत ।
ताका भाण साहब सोय, ताका रविराम-खेम दोय ॥[2]

६. रामगुंजार चिंतामणि—भाण साहब के शिष्य रविसाहब ने इसे सं० १८३८ में लिखा था । रवि ने रामानन्द से भाण तक की परम्परा का उल्लेख किया है । इसमें भी रवि-भाण को पद्मनाभ-परम्परा में दिखाया है ।

रामानन्द का है कबीर, ताका पद्मनाभ सधीर ।
सुमिरण नाम की समाध, मेटी व्रण तन की बाध ।

ताका शिष्य है नीलकंठ, जाकी आश करे वैकुंठ ।
ताका रघुराम असंग, ताका जादवदास अलंग ।

ताका शिष्य पद्मम्दास, एक नाम बिना नहि आस ।
ताका शिष्य उजागर भाण, जावर नाम वस्त निशान ॥[3]

७. अमरवेल—टंकारी के क्षत्री जीवा भगत कृत "अमरवेल" में भी यही परम्परा दी गई है ।[4]

---

१. दलुराम कृत वंशावली (अंक १३ से १७) कबीर-ब्रह्म प्रकाश, पृ० १४१ ।
२. 'सत्पुरुष-चरित्र-प्रकाश' पृ० ७०४ ।
३. कबीर ब्रह्म प्रकाश, पृ० १४० ।
४. संत भाण साहेब, पृ० ६६ ।

रवि साहब की वाणी

सतगुरु भेटया मुझे भाण, तासे मिटे तागाताण ।
सत्साहब का अवतार, करुणा कबीर है किरतार ॥

परंपरा के संतों की वाणी में कबीर का उल्लेख

रवि—रविदास उहाँ पहोंचिया, ज्यां रामानन्द कबीर ।[1]

खीम—सन्मुख दरिया, सुतर भरिया, अबर तखत निशाना ।
भाण-कबीर-रवि-खीमदास, मगन भया गुलताना ॥[2]

लालदास—लाल कहे, मैं कछु ना जानूं, राम-भाण-कबीर गाय ।[3]

मोरार—रमता रविगुरु राम-कबीरा, पल पल में पाये पड़ना ।[4]

गुजरात के संत साहित्य के विद्वानों का मत—गुजरात के संत साहित्य के विद्वान् श्री कालीदास महाराज, श्री देवेन्द्र पंडित, श्री माणेकलाल राणा तथा श्री अनवर आगेवान आदि ने इस परम्परा के संतों को रामकबीर-परम्परा में माना है ।

संत भाणसाहब का जीवनवृत्त

उनका जन्म कनखिलोड़ गाँव में सं० १६५४ की माघ पूर्णिमा के दिन कल्याण भगत के घर हुआ था । उनके पिता ने लुटेरों के डर से इस गाँव को छोड़ वाराही में निवास किया, तब भाण की उम्र आठ वर्ष की थी । उनका विवाह इसी गाँव में मेघजी ठक्कर की सुपुत्री भाणबाई से हुआ था । भाण जाति के लोहाना थे ।[5]

रवि साहब ने गुरु का चरित्र "भाण परिचई" नाम से लिखा है । भाण साहब ने दूधरेज-के-संत षट्मदास से दीक्षा ली थी; तब से वे "भाण साहब" कहलाये । उस समय भुज के राव देशलजी ने एक विशाल संत-मेले का आयोजन किया था । दूधरेज के संत षट्मदास वृद्धत्व के कारण जाने की स्थिति में नहीं थे । उन्होंने महाप्रतापी भाण भगत को दीक्षा देकर अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा था ।

भाण साहब का शिष्य-मंडल बड़ा विशाल था । लोगों ने इसे "भाण-फौज" का नाम दिया था ।

---

१. र० मा० सं० वा० भा० २, पृ० २३४ ।

२. मतवाणी, पृ० १७६ ।

३. परिचित पद संग्रह, पृ० ३३६ ।

४. र० मा० मो० वा०, पृ० ६२ ।

५. 'संत भाण साहेब' श्री माणेकलाल राणा, पृ० २५ ।

भाण साहब ने गुजरात के अनेक स्थानों का भ्रमण किया था। वे सूरत के पास वन्धारपाड़ा गये थे, वहाँ रवि उनका शिष्य हुआ था। मार्ग में बड़ौदे में चेन की चोरी के झूठे अपराध में बन्दी बनाये गये थे। कहते हैं, चमत्कार से बेड़ियाँ टूट गईं थीं तथा ताले खुल गये थे। इससे सूबेदार की आँखें भी खुल गई थीं। उनको भेंट की गई एक बहुमूल्य शाल आज भी शेरखी मन्दिर में है। शेरखी में सं० १७८५ में स्थान बना कर उन्होंने निवास किया था। तदनन्तर उन्होंने कच्छ तथा सौराष्ट्र की यात्राएँ कीं। मार्ग में एक मोजुद्दीन पठान उनका शिष्य हुआ। गिरनार की यात्रा में गोदड़स्वामी तथा तुलसीदास उनके साथ थे। सं० १७८६ में गोदड़दास ने समाधि ली। दूधरेज की गद्दी पर भाण साहब के गुरुबन्धु भवानीदास उत्तराधिकारी हुए। बड़ौदे में जिस स्थान पर उनको बन्दी बनाया गया था, वहाँ सयाजीराव की महारानी तानाबाई ने पुण्डरीकनाथ का मन्दिर बनवाया है, जिसमें भाण साहब की चरणपादुका की स्थापना की गई थी।[1]

भाण साहब के अनेक शिष्य थे, किन्तु आमोद (जि० भरूच) के एक वणिक युवक रवि को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। सं० १८११ के चैत्र शुक्ला तृतीया को उन्होंने कमीजड़ा गाँव के तालाब पर जीवन्त-समाधि ले ली।[2]

बन्दीगृह से मुक्त कराने के लिए भाण साहब ने जो प्रार्थना की थी, वह प्रसिद्ध है।

असुरा ने मन दया आणो रे, एम भणे लुहाणो-भाणो।
मीरां बाई ने मारवा जेदि, राणो राय रिसाणो।
कंठडे जातां अमृत कीधां, ते दि विषनो प्यालो पिवाणो ॥

नाभा भगत नुं नौंगल कीधुं, जे दि छापरो छवाणो।
कबीर ना माथे करुणा कीवी, मरघलो छोड़ाणो ॥[3]

भाण साहब की रचनाएँ कम मिलती हैं। उसमें उनके १४ पद, ३ साखी तथा १ संवाद है।

भाणसाहब के शिष्य

(१) कल्याणदास—वे रावनपुर के निकट के किसी गाँव के राजपूत थे। भाण साहब के उपदेश से प्रभावित होकर उनके शिष्य हुए थे। भाण साहब उनके घर

---

१. संत भाण साहब, पृ० ८१।
२. वही, पृ० १०८।
३. र० मा० मो० वा० (सस्ता साहित्य), पृ० ८।

गये थे; तदनन्तर उन्होंने शेरखाँ-संत धाम में आकर निवास किया था। गुरु के प्रति उनका अनन्य प्रेम था। भाण साहब के समाधि ले लेने के पश्चात् उन्होंने भी देहत्याग किया। उन्होंने हिन्दी में संतवाणी की रचनाएँ की थीं। अपनी वाणी में उन्होंने "शब्द" के महत्व को गाया है। परमानन्द-प्राप्ति का एक पद उद्धृत है।

भवदुख कौन मिटावत रे ॥

भवाटवी में बहुरी भटके, कहीं ठौर न पावत रे।
दूर्लभ आयु विरथ विगोई, विषया कीट कहावत रे ॥
आया अनुग्रह अगले भवके, गुरु बैया ग्रहावत रे।
अपनो जानके राख्यो शरण में, शरणागत कहावत रे ॥
परमानन्द से प्रीत हुई, 'गुरु' शब्द को गावत रे।
'दास कल्याण' गुरु भाणको पाया, दूजा न दिखावत रे ॥[1]

(२) रतनदास—भाण साहब भ्रमण करते हुए सौराष्ट्र में वांकानेर गये थे। वहाँ एक रतनसिंह नाम का राजभक्त था। भाण साहब के उपदेश से विरक्त होकर उनका शिष्य हो गया। उन्होंने संतवाणी की रचना की है। अपने एक पद के अन्त में इसका उल्लेख किया है।

सदगुरु नैनां खोलिया, अविगत दर्शाया हो।
भाणसाहब का बालका, रतनदास गाया हो ॥

राग बिलावल में एक पद है।

राम भजन बिन नहीं निस्तारा, भूल मत जाना संसारी।
मानवतन देवन को दुर्लभ, मानो भव जल की बारी ॥

गर्भ बसेरा कोल किया था, बेवचनी गये हारी।
क्या मुख लैके जैहो बावरे, साहब के दरबारी ॥
अजहु चेत अवसर बेमूल है, नाम-ज्योत निरधारी।
'रतनदास' को आन जगाये, भाण-गुरु की बलिहारी ॥[2]

(३) मोहनदास—ये राधनपुर के निवासी थे। भाण साहब भ्रमण करते हुए राधनपुर आये, तब ये उनके शिष्य हुए थे। भाण साहब बड़े ठाठ से घोड़े पर निकलते थे। राधनपुर के नवाब ने उनको कष्ट देने का प्रयास किया; किन्तु निष्फल हुए थे।

---

१. 'विश्व कल्याण' पत्रिका (मासिक) दिसम्बर, १९५५।
२. श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से।

भाण साहब ने उनको भी उपदेश दिया था। मोहनदास ने हिन्दी में वैराग एवं भक्ति के पदों की रचना की थी, उनका एक पद द्रष्टव्य है।

आज सखी मनमोहन पाया, भाग्य उदय भया मेरा रे।
मैं विरहिन को साहिब भेट्या, मिट गये भवका फेरा रे ।। टेक ।।

विकट भया औगाह बिचमें, साथी कोई न मेरा रे।
नाथजी मेरा नाव खेवैया, आरत सुनो हरि मेरा रे ।। १ ।।

साद सुनत पियरा उठ धाये, प्रीते कर ग्रहे मेरा रे।
डूबत ही मंझधार से तारे, कैसे विरुद लिखे तेरा रे ।। २ ।।

प्रगट बाह्य रवि भाण प्रकाशा, दोनों एक भयेरा रे।
विनति मोहनदास की मानों, मैं चरण का चेरा रे ।। ३ ।।[1]

(४) राघोदास—राघो उत्तर गुजरात के सांतलपुर के निवासी थे। "वाराही" में एक वार भाण भजन में मस्त होकर गाते थे। उस राजपूत के घर के अन्य लोग भी भजन में दत्तचित्त थे; उस समय राघो ने स्वर्णालंकारों की चोरी की। कहते हैं, भागते हुए राघो की आंखों के तेज ने जवाव दे दिया। वे लौटकर भाण साहब के चरणों में आकर गिर पड़े। उनकी आंखों में पश्चाताप के आंसू तथा क्षमा-याचना थी। भाण साहब के उपदेश से वे भी साधु वन गये।

राघो लंपट चोर को, मिलिया सद्‌गुरु भाण।
शठ मिटाई सज्जन किया, अलख-पुरुष निरवाण ।।

भाणदास भवदुख कट्या, मिटी जन्म की फांस।
डूबत भवजल विचमें, उबरे राघोदास ।।

(गुजरातना भक्तो, पृ० २३)

(५) वादल साहब—वादल भाण साहब को कच्छ की यात्रा के समय मार्ग में मिले थे, तब भाण साहब ने कहा था कि तेरा राग विराग में बदल जायगा। वही हुआ। पत्नी की वेवफाई ने उनको संसार से विरक्त कर दिया। उन्होंने संतधाम शेरखी में जाकर निवास किया। उद्धव स्वामी की जमात के साथ वे तीर्थ भ्रमण को गये थे। उद्धव वहाँ से विन्ध्याचल में तपश्चर्या को चले गये। वादल पांच वर्ष के पश्चात् शेरखी आये। गुरु भाण साहब ने उनको उद्धव की खोज में पुनः तीर्थाटन को भेज दिया।

---

१. श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से।

बादल को एक गुफा में रोगग्रस्त अवस्था में पड़े उद्धव मिले। उन्होंने उनकी सुश्रूषा की। भाण साहब की दी हुई दवा से उद्धव रोगमुक्त हो गये। कुछ समय पश्चात् उन्होंने समाधि ले ली। वहाँ से बादल जब शेरखां लौट आये, तब देखा, कि सं० १८११ में भाण साहब ने भी समाधि ले ली थी। बादल बहुत दुःखी हो गये।

भाणसाहब गुरु शूरमा, कर गये यहाँ से प्रयाण।
निष्ठुर बादल क्यों जिया, छांड़ ही तेरो प्राण॥
बादल अकेला छांड़के, चल गये साहब मोर।
अब मैं यहां कैसे रहूं, तुम बिन चहुं न ओर॥

(गीताधर्म, जुलाई-अगस्त, १६५०)

कुछ ही दिनों में उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया।

तिलकदास—ये जाति के हरिजन थे। कच्छ के "वीराणी" गाँव में उनका जन्म हुआ था। भाण-परम्परा के एक संत बालकदास से उन्होंने दीक्षा ली थी। ७५ वर्ष की उम्र में वे समाधिस्थ हो गये। उन्होंने हिन्दी में संतवाणी की रचना की है।

पानीका परपोटा जैसा हाड़ चाम का भारा।
ज्ञान-ज्योत घर भीतर जागे, मीट जावे अंधेरा।
विषय वासना छोड़ छोड़ तू सन्मुख कर दीदारा।
तेरा साहब तेरे घटमें, क्यों भटकत है बहारा।
... ...।
तिलकदास का बंधन टूटा, अब न धरूं अवतारा॥

('कच्छना संतो' श्री दुलेराय काराणी, पृ० २४८)

रविसाहब का जीवनवृत्त—मोरार साहब ने अपने एक शिष्य सुन्दरदास को रवि साहब का चरित्र कहा था। तदुपरान्त "भाण-चरित्र प्रकाश", "भाणु-परचरी", "भाणु-लीलामृत", "सत्पुरुष-चरित्र-प्रकाश", "रविराम चरित्रामृत" तथा दूलाराम के "संत चरित्र-प्रकाश" में रवि के जीवन का उल्लेख है। श्री माणेकलाल राणा ने रविसाहब का चरित्र लिखा है।

सौराष्ट्र में कबीर के समकालीन संत रैदास तथा भाणशिष्य रविसाहब के पद प्रचलित हैं। आचार्य सेन ने दोनों को एक माना है। दोनों रविदास के मध्य तीन सौ वर्ष का अन्तर है। श्री जयमल परमार ने रविसाहब के विषय में लिखा है, कि वह पूर्वावस्था में सूदखोर, धूर्त तथा हरि-विमुख बनिया था,[1] किन्तु श्री माणेकलाल

---

१. आपणी लोक संस्कृति, पृ० १२६।

राणा ने इसका विरोध किया है, तथा लिखा है, कि बचपन से संत के लक्षण उनमें दिखाई देते थे।[1]

रवि का जन्म सं० १७८३ की माघ पूर्णिमा को भरूच के पास तणछा (ता० आमोद) गाँव में हुआ था। वे श्रीमाली वैश्य जाति के थे। भाण साहब के पीछे उनकी दो परम्पराएँ चली थीं। उनकी नाद (शिष्य) शाखा के उत्तराधिकारी रवि-साहब थे। खीम बूंद (पुत्र) शाखा के उत्तराधिकारी थे।

गुजरात में लोहाना जाति में रवि साहब के सात हजार अनुयायी थे। उन्नीस शिष्य हमेशा उनके साथ रहते थे।

उनबीसी रविदास की अनभेपद हितकार।
भजन, भक्ति, सत्संग में, बहुनामी बलिहार॥

रवि साहब के शिष्यों में मोरार साहब, गंग साहब, लाल साहब, रामस्वामी, केशव स्वामी, स्यामदास, सुजानसिंह, मेहाजल, मौनीराम, राजुल, जोगीराम, दयालदास, सांगाजी, मेरमदास, रूपाल तथा दुलनदास प्रमुख हैं। बाबा मोतीराम, हाडाजी, लाभा भक्त, डींगाराम तथा तोवाजी जैसे भील शिष्य भी थे। "चन्दूर" गाँव में भाण साहब के भाई कहानदास की पुत्री स्यामबाई विधवा थी। उसने रविसाहब से दीक्षा लेकर "स्यामदास" नाम रखा था। उसकी परम्परा इसी गाँव में प्रवर्तमान है। पिपलोद में भगवानदास को नियुक्त किया गया था। सूरत में मंछाराम तथा वंसीराम उनके शिष्य हुए थे।

रवि साहब ने गबल कोली, कवाजी, वाहिल तथा कादरशाह (कादर बुकानी) जैसे भयंकर लुटेरों को भी उपदेश देकर संत बनाये थे। कादर बाबा कादरशाह के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसने संतवाणी की रचना भी की थी।

रचनाएँ—रवि साहब ने विपुल संतवाणी की रचना हिन्दी तथा गुजराती भाषा में की है। एक हजार के ऊपर उन्होंने पद लिखे हैं।

१. "चिंतामणि" ग्रंथ की रचना का प्रारम्भ शेरखी में किया था।
२. "भाणगीता" में २१ "कडवा" (एक काव्य प्रकार) है।
३. "मनसंयम" ग्रंथ में सात अध्याय हैं। लिपि वर्ष सं० १८८८।
४. "कवित्त छप्पा" ग्रंथ में अंगों में विभक्त करके वाणी लिखी गई है। कवित्त, रेख्ता, भूलना की संख्या २८५ है।
५. "रविसाहब की साखी" ग्रंथ बड़ा विशाल है। इसमें ६९ अंगों में २४२० साखियों का संग्रह किया गया है।

---

१. संत रविसाहेब, पृ० २५।

रविसाहब की वाणी कबीर-वाणी की परम्परा में लिखी गई है। उस पर कबीर साहब की वाणी तथा विचारों का प्रभाव परिलक्षित होता है। एक दृष्टान्त उपयुक्त होगा।

कबीर—गूंगे केरी सर्करा खावे और मुसकाय।
रवि—गूंगे साकर गली गलामां, समक्ष समक्ष मुस्काय।

रवि की वाणी में राम का नाम, नाम-जप, अजपाजाप तथा भक्ति के दर्शन होते हैं। "साधु जल में ज्योत जलाया" तथा "थान बिन दूध झरे, मुख विन बच्चा पिये" जैसे पदो में उलटवांसी का रूप दिखाई देता है। "संतो! निर्गुण की गत न्यारी" में निर्गुण भक्ति का तथा "प्रीतम! बसे मारी पासे" में आत्मतत्व का निर्देश मिलता है। उनका एक गुजराती पद "चरखो" गुजरात में विशेष प्रसिद्ध है।

रविसाहब के शिष्य

(१) स्वरूपदास—रविसाहब के आशीर्वाद से उनकी माता प्रसवपीड़ा से मुक्त हुई थीं। बड़े होने पर वे स्वयं संत के धाम में चले आये थे। रविसाहब यात्रा पर गये थे। उनकी अनुपस्थिति मे वे बाणशय्या पर सोते थे। उन्होने हिन्दी में संत-वाणी की रचना की है। उनकी वाणी में निर्गुण-राम की भक्ति तथा हरि-गुरु-संत की सेवा का उपदेश है। उनके ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के पदों में से कुछ ही पद प्राप्त होते हैं।

दरस बिन मोरी प्यास न बूझे, आ घट और न सूझे रे।
रैन दिन मोहे विरह सतावत, जखम हृदय नहीं रूझे रे।
आन मिलत उर आनन्द छायो, प्रेमे हरिवर पूजे रे।
आपको छांड़ि और कहाँ जाऊँ, दिल नहीं लागत दूजे रे।
'दास स्वरूप' दूर मत रखियो, छाजत नाहीं प्रभु तूमे रे ॥[1]

(२) सुजान सिंह—महीकांठा के पोड़ासर तालुका के हलधरवास गाँव में चौहान कुल में उनका जन्म हुआ था। उनकी शराब पीने की आदत के कारण उनकी पत्नी उनसे नाराज रहती थी। एक बार लुटेरों से रवि साहब ने उनकी रक्षा की थी। रवि साहब के उपदेश से उनमें परिवर्तन आया। उनकी पत्नी ने प्रसन्न होकर कहा, कि वास्तव में अब तुम सुजान बन गये। उन्होंने सदाव्रत देना शुरू किया, तथा घर पर संतों का आश्रम-स्थान बना दिया। सारी सम्पत्ति दान में अर्पण कर दी। एक ब्राह्मण को दान देने के लिये उन्होंने अपने पुत्र को बनिये के घर "गिरवी" रखा था। उन्होंने संतवाणी की रचना की है।

---

१. गुजरातना भक्तो, पृ० १४।

शरणागत रखवाल, हरि तुम हो मेरा।
रखो भक्त की लाज, बिरुद लाजत तेरा।
सद्गुरु दिया बताय, हरि बिन जग फीको।
सूरता लगी सत्संग, नाम रस है नीको।
केवल ब्रह्म स्वरूप, अलख अनहद वासी।
रविसाहब का लाल, 'सुजान' हरिरस-प्यासी ।।[1]

(३) स्यामदास—घोड़ासर (सौराष्ट्र) के राजा स्यामदास रवि के शिष्य थे। उनका विवाह रवि ने एक अहीर कन्या सुलभी से करवाया था। एक दिन सुलभी ने रवि साहब से प्रश्न किया कि आप वैरागी होकर संसार में क्यों रहते हैं ? कालांतर में सुलभी को लड़का हुआ। उसका नाम "मेहाजल" रखा गया। रवि ने सुलभी से कहा, कि जिस प्रकार के त्यागी महात्मा की बात तू करती थी, ऐसा तेरा यह पुत्र होगा। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में मेहाजल गृह-त्याग कर विरक्त हो गया था।[2] स्यामदास ने हिन्दी भाषा में अनेक पदों की रचना की है; इसमें से हरिभजन तथा सत्संग का एक पद उद्धृत किया जाता है।

भजन बिन मोर दिन दुखदाई ।।
जब हरि-भजन होत सत्संगा, सहज मिले सुखदाई।
अवधु दरस बिन आयु अकारथ, कैसे दिन बिताई ।।
निशदिन 'साहिब' नाम सुमिरो, रसना से लवलाई।
'स्यामदास' सद्गुरु के चरणा, बहुरि न भव भटकाई ।।[3]

(४) मेरमदास—महीकांठा के कटोसण विभाग के "वरसोड़ा" गाँव में एक ब्राह्मण स्त्री के पुत्र मेरम को रवि ने रोगमुक्त किया था। माता की मृत्यु के पश्चात् मेरम रवि के पास चला गया। रवि साहब से दीक्षा लेकर मेरमदास ने अपने गाँव में हरिभजन तथा संतसेवा में जीवन व्यतीत किया। हिन्दी भाषा में उन्होंने अनेक पदों की रचना की है; उनमें से एक पद दृष्टांत के रूप में लिया गया है।

पद

छिन छिन आयु बहत हरि मेरा, अब तो दिन नहीं बिते रे।
जित देखूं तित काल पारधी, सकल जहाँना पीते रे।

---

१. 'राजपूत' पत्रिका, पृ० ३ तथा ४।
२. संत रविसाहेब, पृ० १०६।
३. श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से।

तुमको छांड़ हरि क़हां जाऊं, अवर न सहारा दिसे रे।
चरण ग्रहा नहीं छोड़ूं हरिको, वह जगपालक इस रे।
'दास मेरम' भये प्रेम दिवाना, लागी लगन हरि से रे।।

(५) राजुलदास—भ्रमण पर निकले रवि साहब को ईडर के पास भीमखेड़िया पहाड़ी में एक बार लुटेरों ने घेर लिया था। उनमें से एक राजुल की सद्बुद्धि जाग उठी। रवि साहब को घर ले जाकर उसने पूजा-सत्कार किया। रवि के उपदेश से राजुल में परिवर्तन हुआ। उसने रवि साहब से कहा, जैसी रक्षा मैंने इस जंगल में आपकी की, ऐसी मेरी रक्षा इस भवाटवी में आप कीजिए। रवि के उपदेश से राजुल ने हरि-स्मरण तथा अन्नदान के कार्यक्रम को अपना लिया।

रविसाहब के संत धाम में महीकांठा की एक भक्तमंडली आई थी; उसने राजुल का बनाया एक पद गाया। रवि का राजुल की याद आ गई। तदनंतर राजुल शेरखी आ गया। उनका वह पद निम्नलिखित है।

आज सखी मोहे सद्गुरु भेट्या, दारुण दुख विलाया रे।
आवागमन का मिट गया फंदा, भवतारक हरि आया रे।
दुर्लभ संत-समागम भाई, दुर्लभ मनुज शरीरा रे।
हरि-सुमिरन कर सुफल कमाया, जैहो भवजल तीरा रे।
नैना पिव दरस को प्यासी, बन बन खोज लगाया रे।
'राजुल' को अब लीजे उबारी, वचन दियो पियराया रे।।

(६) गवलदास :—खंभात के पास पिपलोद में कामेश्वर महादेव में भाद्रपद मास में "कुहुकेरो" का मेला लगता है। संयोग से उसमें शांति के दूत रविसाहब के साथ क्रूरता का अवतार एक लुटेरा गवल भी आया था। वह रविसाहब की वाणी सुनने को गया था। रविसाहब ने पास बिठाकर उससे कहा कि तेरे पाषाण हृदय के भीतर दया का सागर लहरा रहा है। एक दिन तू भी एक दयालु संत बन जायगा। तब गवल को यह असंभव-सा लगा था, किन्तु एक गर्भवती स्त्री की हत्या करते हुए बच्चे के शरीर के दो टुकड़ों को देखकर उसके हृदय का परिवर्तन हो गया। नगतान में से वह संत बन गया। उसका स्थान संतों का धाम बन गया। रविसाहब के उपदेश से वह हरिस्मरण में मस्त रहने लगा।[1]

संत-समागम से गवलदास मस्त भजनीक बन गया। उसने हिन्दी में कुछ पदों की रचना की है। उनके पूर्व जीवन की क्रूरता के साथ पावन होने की इच्छा का दर्शन भी अग्रलिखित पद में होता है।

---

१. निजानन्द (गुजराती अंक) मई, १९७०।

मेरी हो गई सुफल कमाई ।।
अधम लुटेरा, और न सूझे, लूटे गाम घर बार ।
सोना रुपैया लूंठ के लेवे, लेले नग्न तलवार—कहर मचायो ।। मेरी०

मानव-हत्या बहुत करेरो, बालक बूढ़ा कहुंनार ।
मार मारके गर्दन पीसे, दिल मत दयालगार—जालीम कहायो ।। मेरी०

पापीको पावन करोरी, दया किन्ही दातार ।
'दास गबल' की बैया ग्रहके, बेगे करो भवपार—शरण में आयो ।। मेरी०

(७) हरिलोचनदास :—रवि साहब गिरनार गये थे, वहां एक स्त्री अपने अंध पुत्र को रवि के चरणों में छोड़ चली गई । कहते हैं, रविसाहब की कृपा से उनको दृष्टिलाभ हुआ था, इसलिए उनका नाम "हरिलोचन" रखा गया था । उसने रविसाहब से कहा, कि जब दो लोचन दिये, तो अब मार्ग भी दिखा दीजिए ।

अंधे को लोचन दिये, कर ग्रही लगावो पार ।
रविसाहब गुरु सुरमा, डूबत लियो उबार ।।

एक दिन हरिलोचन को अपनी माता के दर्शन हुए थे । उन्होंने अनेक पदों की रचना की थी । उनके पदों की पोथी महिकांठा की एक भक्त मंडली ले गई थी । उन भक्तों ने पोथी को रविसाहब को दे दिया । इसके द्वारा रवि को अपने शिष्य हरिलोचन की याद आ गई । हरिलोचन जब शेरखी संत-धाम में आये, तो पहचाने नहीं गये । रविसाहब को इससे बड़ा दुःख हुआ ।

रविसाहब की समाधि के पश्चात् वे पुनः गिरनार चले गये । जीवन का शेष काल वहाँ ध्यान में निर्गमन किया ।

रवि बिन बिलखत जियरा, रोवत हरि लोचन ।
फट् फट् भूंडा जीवना, क्यों नहीं छूटत तन ।।[1]

(८) रामस्वामी :—महीकांठा में कानजी भक्त के घर रविसाहब के आशीर्वाद से राम और केशव दो पुत्र हुए । कानजी भक्त ने वचनानुसार राम को गुरुचरण में समर्पित कर दिया । भक्त की मृत्यु के पश्चात् केशव भी गुरु के पास चला गया । रविसाहब ने राम को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था । गुरु की अनुपस्थिति में संतधाम की व्यवस्था उनके अधिकार में रहती थी । उन्होंने दो शिष्य बनाये थे, किन्तु हरिराम ने डाकोर में तथा कल्याण ने "पूरा" में अपनी-अपनी अलग गद्दियों की स्थापना की ।

---

१. 'मुंबई समाचार' (साप्ताहिक) ले० श्री माणेकलाल राणा, दि० २८-८-४९ ।

सं० १८६० में रामदास को विधिवत् शेरखी की गद्दी का उत्तराधिकारी नियुक्त कर रविसाहब खंभालिया मोरार साहब के पास समाधि लेने चले गये।

रामदास का व्यक्तित्व अत्यंत मोहक था। रूपा नाम की कोई स्त्री उन पर मोहित हो गई थी, किन्तु उन्होंने उसे सन्मार्ग पर लगा दिया था। इस प्रकार वीजल नाम के एक भील लुटेरे को तथा हेमा नाम के शिकारी को भी उन्होंने सन्मार्ग पर लगा दिया था। "धाधा" नाम के एक अन्य भील लुटेरे ने भी उनका उपदेश ग्रहण कर उनकी कंठी बांधी थी।

रविसाहब से बिछुड़ते हुए कुछ मांगने को कहने पर रामदास ने केवल गुरुकृपा ही मांगी थी।

मेहर लहर दरियाव की, सो चाहत गुरुदेव।
सदा हमारे संग बसो, तुम चरनन की सेव॥

रविसाहब की समाधि के पश्चात् राम ने संतमेले का महोत्सव किया था। उन्होंने संप्रदाय में कुछ नियम बनाकर उसे व्यवस्थित किया। शेरखी में बहुत बड़ा संत-मंडल निवास करता था। राम विद्यादान भी करते थे।

चारण जाति की एक स्त्री वांयाबाई उनकी शिष्या थी। मेटासी गांव का एक भक्त त्रिकम तथा उमेटा के ठाकुर जैतसिंह उनके शिष्य हुए थे, किन्तु रामदास ने अपने एक शिष्य बालदास को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके सं० १८८८ में समाधि ली थी।[1]

(६) लाल साहब :—पाटण के एक लोहाणा जाति के भक्त मनहर की पत्नी का नाम लक्ष्मी था। उनके लाल, पचाण तथा आतु नाम के तीन पुत्र थे। लाल का जन्म सं० १७६७ में हुआ था। रवि साहब के भजनों से प्रभावित होकर वे शेरखी उनके दर्शन को गये; वहाँ रविसाहब से दीक्षा ले ली। रविसाहब की आज्ञा से उनके एक शिष्य धर्मदास को साथ लेकर उन्होंने पाटण में निवास किया था।

लाल साहब के विषय में पत्थर बनाने की, गायों को लौटाने की तथा एक भक्त के पुत्र को सजीवन करने के चमत्कार की कथा कही जाती है। लाल साहब बड़े प्रतापी संत थे। उनके अनेक शिष्य थे।

अपने गुरु बंधु धर्मदास को चेकली गांव में जाकर स्थान बनाने की आज्ञा दी थी। वहाँ धर्मदास ने नरसिंहदास को अपना शिष्य नियुक्त किया था। शिष्य रामदास को गृहस्थ धर्म के पालन की आज्ञा दी। "माणेपुर" में आकर उन्होंने निवास किया। एक अन्य रामदास नाम के बड़े भक्त थे। उन कर्म-कांडों से [illegible]

1. 'भाण-चरित्र-प्रकाश' तथा 'रविराम-चरित्र-प्रकाश' के आधार पर।

गये। उनके शिष्य मीठादास को लालसाहब ने अपने पास रख लिया। शिष्य हिमदास को सौराष्ट्र में अमरेलो में स्थान बनाकर निवास करने का आदेश दिया। प्रेमदास तथा बालदास नाम के अन्य शिष्य भी थे। एक जाट लुटेरा आसोजी उनके प्रभाव से परम भक्त बन गया। मारवाड़ के मुरधर में उनके अनेक अनुयायी थे। अनेक चमत्कार की कथाएं उनके चरित्र के साथ जुड़ी हुई हैं। मुरधर में जिसने उनका ऊंट छुपा लिया था, उसका छप्पर उड़ने लगा था तथा ऊँट दिखाई पड़ा था।[1]

अपने प्रिय शिष्य मीठादास को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सं० १८८६ की माघ शुक्ला एकादशी के दिन लाल साहब ने जीवन्त-समाधि ली; वह स्थान पाटण में वर्तमान है।[2]

लाल साहब ने हिन्दी तथा गुजराती भाषा में संतवाणी की रचना की है। हिन्दी में उन्होंने रेख्ता, सवैया, दोहा, चौपाई तथा पदों की रचना की है।

अपने एक पद में लालसाहब ने रविगुरु के साथ आदि सद्गुरु कबीर-साहब का "बन्दी-छोड़" नाम से उल्लेख किया है।

रवि साहब हिरदे बसो, किंकर कहे कर जोड़।
'लालदास' की विनति, सुनि हो 'बंधी-छोड़'॥

लालसाहब की वाणी समर्थ तथा प्रभावशाली है। उनके एक "रेख्ता" में कबीर या कमाल की भाषा की परम्परा का दर्शन होता है।

शब्द गुरु ज्ञानका, सत् शमशेर है, मार मैदान पर, घेर घेरा।
आव वे आव तू, अगमका दम पर, नजर भर देख, साहेब तेरा।
शब्द की सैंन में, शब्द समझाई ले, शब्द ही संत है, और माया।
'लाल' के तख्त पर, तंत लाली लगी, लाल से लाल मिल, पुरुष पाया॥[3]

"नाम" एवं "शब्द" के महत्व का उल्लेख निम्नलिखित" रेख्ता" में है।

चेत बे चेत अचेत क्यों आंधरो, आज अरु काल में उठ जाई।
मोहका सोहमें सार नहीं सुधकी, अंध के धंध में जन्म जाई।
कालकु मारकर, कुबुद्धि को रोधकर, भरमके कोट को मांग भाई।
सबर कर, सबर कर, खोज ले नामको, याद कर शब्द को, संभाल भाई॥[4]

लाल साहब ने दंभी साधुओं के विषय मे एक सवैया लिखा है, कि वे ऊपर से

---

१. 'भाण-चरित्र-प्रकाश' के आधार पर।
२. आ० गु० सं०, पृ० २९।
३. र० भा० सं० बा० भाग १।
४. कल्याण—संत वाणी अंक, पृ० ४५३।

तो संत बने फिरते हैं, किन्तु भीतर में द्वेष रखते हैं। उन्हें आतम-ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ; यदि आत्म-ज्ञान होता तो आपको आपमें ही पाते।

बाहिर संत कहावत सज्जन, भीतर मन दूजो बतलावे।
गुण न दोष लिये संग डोलत, छांड़ि आराव, विरोध कमावे।
कोई को निंदत, कोई को वंदत, आप उथाप भूले भरमावे।
आतम-ब्रह्म चिन्या बिन मूरख, धनी को छोड़ के धक्का खावे।
'लाल' कहे सत्‌नाम सही कर, आपमें खोजते आपमें पावे॥[1]

(१०) वच्छराज—उक्त वच्छराज रविसाहब का शिष्य था; किन्तु गुजराती साहित्य में एक अन्य वच्छराज का उल्लेख हुआ है, जिसका "रसमंजरी" नाम का पद्य-कथाओं का संग्रह प्रसिद्ध है। संभवतः रविसाहब के शिष्य वच्छराज का कोई एक पद स्व० श्री इच्छाराम देसाई को मिला था। उनको रविसाहब के शिष्य इस वच्छराज का वृत्त ज्ञात नहीं होगा, इसलिए उनको ज्ञात रसमंजरीकार वच्छराज को ही उसका रचयिता मानकर उसे कबीरपंथी घोषित कर दिया।[2] उनकी परम्परा में गुजराती साहित्य के इतिहासकारों ने जंबुसर-निवासी उस "रस मंजरी" का वच्छराज को कबीरपंथी कहा है।[3] श्री किसनसिंह चावड़ा ने लिखा है, कि "कबीर साहब के एक अनन्य भक्त वच्छराज ने "रसमंजरी" नाम का एक उपदेशात्मक कथाओं का संग्रह किया था; वह जंबुसर का निवासी था।"[4]

गुजराती साहित्य के समर्थ विद्वान् श्री० के० का० शास्त्री ने इस धारणा पर सर्वप्रथम शंका उठाई थी। उन्होंने लिखा था कि "रसमंजरी" में कहीं भी कबीर का उल्लेख नहीं है, इसलिए इस पद का लिखनेवाला वच्छराज कोई अन्य होगा।" शास्त्रीजी का कथन वस्तुतः सत्य सिद्ध होता है, क्योंकि उस पद का रचयिता वच्छराज रवि साहब का शिष्य था,[5] तथा बड़ौदा का निवासी था।

बड़ौदा में किसी संपन्न क्षत्रिय कुल में उनका जन्म हुआ था। अपनी पत्नी मैना से उनको विशेष अनुराग था। भाग्ययोग से पत्नी का देहान्त हुआ। उसके आघात से वच्छराज विरक्त हो गये। एक दिन गृहत्याग कर साधु के वेश में भ्रमण करने को निकल पड़े।

---

१. र० भा० स० वा० भाग १।
२. बृहद् काव्य दोहन भाग ४, पृ० १६६।
३. गु० सा० मा० सू० स्तं०, पृ० ६१।
४. 'कबीर सम्प्रदाय' पृ० १६१।
५. 'भक्ति चरित' भा० १—२ (द्वितीय संस्करण), पृ० ३६१।
६. 'संत रविसाहब' पृ० १२०।

छः वर्ष तीर्थों में भ्रमण कर, जब वह लौट कर आये, तब वड़ौदे के पास शेरखी में एक विशाल संत मेने का आयोजन हुआ था। वच्छराज मेले में गये थे। रविसाहब के पूछने पर उन्होंने व्रजभूमि में शान्ति के लिए जाने की इच्छा व्यक्त की। रविसाहब ने उन्हें समझाया, कि कृष्ण की मूर्ति के दर्शनमात्र से कोई लाभ नहीं होगा। जो सच्चे नंदकिशोर हैं, वे धर्म चक्षु से दिखाई नहीं देते।

ब्रीज खोजन वहुरि गये, अजहु चलेगी और।
कवहु नैन मत देखिये, नागर नन्दकिशोर।[1]

वच्छराज गुरु के चरणों में बैठ गये। रविसाहब ने उनको नामस्मरण तथा ध्यान का उपदेश दिया। गुरु के आशार्वाद पाकर वच्छराज व्रजभूमि की यात्रा को चले गये। ध्यान में उनको किसी वृद्ध संत के दर्शन हुए थे। जब जागे, तो उनके आस-पास एक कुटिया बन गई थी।

अनेक वर्ष बाद वच्छराज "शेरखी" लौट आये, किन्तु रविसाहब उनको पहचान न सके। वे इतने कृश तथा वृद्ध हो गये थे। भजन की धुन चल रही थी। उन्होंने एकतारा अपने हाथ में लेकर निम्नलिखित पद गाया; इससे रविसाहब चौंक उठे। उन्होंने वच्छराज को पहचान लिया। वच्छराज गुरु-चरणों में लिपट गये।

पद

ब्रीज में मनमोहन पाया ।।
विरहानल में झूरत बावरे, विरथा भव भटकाया।
ब्रिजमोहन को देख पियारे, साहिब समझाया।
खोजत ही उस देश गये, जहां ठाढ़े पिवराया।
बिरहन की गत बूझ पियारे, नाथ निकट आया।
रविसाहब 'वच्छराज' को भेट्या, महारोग मिटाया ।।[2]

मोरार साहब तथा उनके शिष्य

मोरार साहब का जीवनवृत्त—मोरार साहब थराद (मारवाड़) के वाघेला वंश के राजकुमार थे। उनका जन्म सं० १८३० में हुआ था। रविसाहब के पास शेरखी आकर उन्होंने दीक्षा ली। उनकी माता का दुःख देखकर रवि ने उनको घर जाने की आज्ञा दी। गुरु के वियोग में उन्होंने "सद्गुरु वियोग" लिखा था। सं०

---

१. 'विश्वमंगल' दिसम्वर, १९६३ 'ब्रीज में मनमोहन पाया।'
२. वही।

१८४२ में संसार से निवृत्त होकर जामनगर के पास खंभालिया में स्थान बनाकर निवास किया।

जामनगर के राजा रणमल जी उनको बहुत मानते थे। उनकी सहायता से एक विशाल संतमेले का आयोजन किया गया था। सं० १९०४ में वे समाधि लेने की तैयारी करने लगे थे। जामनगर के राजा रणमल जी ने उन्हें कहा, कि यदि आप जीवन्त समाधि ले लेंगे; तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। अन्दर श्रीफल रखकर समाधि बंद कर दी गई। मोरार साहब मान गये, किन्तु सं० १९०५ चैत शुक्ल द्वितीया के दिन समाधि खुलवाकर अचानक उन्होंने समाधि ले ली।

राजकोट में गवर्नर जनरल के एजेन्ट को समाचार मिले। उसने जामनगर के राजा पर मुकदमा किया। एक वर्ष बाद अदालत ने फैसला दिया कि समाधि खुदवाई जाय। लोग सुनकर कांप उठे। अँग्रेज अधिकारी ने राजा से समाधि खुलवाने को कहा, किन्तु उन्होंने इन्कार किया, तब वह स्वयं सेना के एक छोटे दल के साथ गया। वहाँ समाधि के पास पहुँचने पर उसने देखा, कि मोरार साहब स्वयं समाधि पर बैठे हैं। उसने अपनी टोपी उतार कर बार-बार नमस्कार किया। उसका सारा गर्व गल गया। वह स्थान आज भी "मोरार साहेब का खंभालिया" के नाम से प्रसिद्ध है।[1]

मोरार साहब के अनेक शिष्य थे। उनमें से दासहोथी, दलूराम, चरणदास, सुन्दरदास, जीवा-भक्त तथा सांई करीमशा विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने संतवाणी की रचना की है।

(१) दासहोथी—मुस्लिम संत होथी के पूर्वज कच्छ के गूजर जाति के हिन्दू थे। जामनगर के पास खंभालिया में वे बस गये थे। होथी मोरार साहब के आश्रम की गायें चराता था। रात को भजन में बैठता था। कभी मोरार साहब का उपदेश भी सुन लेता था। उसकी रग-रग में भक्ति-भावना भर गई थी। उसका कंठ मधुर था। वह भी भजन गाने लगा। गाते-गाते उसकी वाणी खुल गई। वह भी पद-रचना करने लगा।[2]

गुरुजी ! कायागढनो कोट पाडो लागे रे।
कायामांथी हंस उडी जाय, वातो तमने रे।
'दास होथी' ने दीदार, दया करी देजो रे।
मेहम गुरु श्री मोरार, हृदयमां रे जो रे॥[3]

---

१. 'गीता' पत्रिका, १९६१।
२. 'कल्याण' भक्त परिवार, पृ० ७७८।
३. 'सजद' कविकुल अंक, नयी देहली, १९५८।

मुस्लिम जमात ने उनके पिता से कहा, कि यदि तुम्हारा होथी हिन्दू मंदिरों में जाना तथा भजन गाना छोड़ नहीं देगा, तो तुम्हारे सारे कुल को जाति-बाहर किया जायगा। पिता तथा परिवार को इस संकट से मुक्त करने के लिये होथी ने अफीम खा लिया। तदनंतर वह मोरार साहब को मिलने दौड़ा, किन्तु मार्ग में गिर पड़ा, वहाँ उनकी मृत्यु हो गई। मोरार साहब ने वहाँ ध्रोल तथा खंभालिया के मध्य में उनकी समाधि बनवाई।[1]

होथी ने अपने एक पद में समाज में प्रवर्तित दंभ तथा पाखंड पर प्रहार किया है। उसमें कलि का वर्णन है।

सम्मुख रहियो साहेब मेरे, कुडा कलियुग आया री।
हाहाकार हुआ अवनी पर, साधुने शोर मचाया री।
दया धर्मका नाम बिलाया, पाखड घोरतम छाया री।
काम क्रोध अहंकार गाढा, मत्सर मोह लुभाया री।
धूर्त अवधूत वेश धरत है, घर घर अलख जगाया री :
अवधूता सो यहां नहीं ठहरे, जंगल वास कराया री।
झूठे नरपति झूठी दुनिया, मूठका होड मचाया री।
'होथी' को सद्गुरु मोरार मिले, साहब सांच लखाया री।।

(२) सांई करीमशाह—यह मुस्लिम संत कच्छ के निवासी थे। अपनी यात्रा के समय मोरार साहब ने उनको उपदेश दिया था। उन्होंने हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन भी किया था। उन्होंने हिन्दी में अनेक पदों की रचना की है। उनके आगम (भविष्य कथन) कच्छ-सौराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं। मार्गी सम्प्रदाय में भी वे पाये जाते हैं।

तेरो अवसर वित्यो जाय बावरे, दो दिन का मेहमान।
... ... ।
इत पल 'साहेब' नाम न लीन्हा, हाय अभागे जान।
पतित पावन देख पियारे, हो जावे कल्यान।
हरिहर छांड आन कहं भटके, रे मन मेरे मान।
'सांई करीमशा' साहब जिसे अब तो कर पहचान।।[2]

(३) चरणदास—मोरार साहब के एक शिष्य द्वारा कोई भूल हो जाने पर उन्होंने उसको दूर हो जाने को कहा। उसको ऐसी चोट लगी, कि उसने हिमालय

१. 'सौराष्ट्रना संतो' (सं० २०२१), पृ० १८०।
२. 'कल्याण' संतवाणी अंक, पृ० ४५३।

जाकर देह-त्याग किया। इसी चरणदास ने पुनः अवतार लेकर मोरार साहब का शिष्यत्व धारण किया था, तब कहते हैं, मोरार साहब ने उसको पहचान लिया था।[1]

चरणदास ने हिन्दी में संतवाणी की रचना की है। सत्संग की महत्ता का एक पद निम्नलिखित है।

पद (राग-जंगला)

कीजे साध को संग-संग, अब तो मनवा मेरा।
पारस परसत लोह धातको, कंचन करत उत्तंग।
चंदनवास लगत और बनको, होत सुरभि सरवंग॥
जैसी भ्रमरी उलट पलट के, करत कीट ते भ्रंग।
तैसे साधु करत जीवते, पुरन ब्रह्म अभंग॥
मोरार सद्गुरु सब घट व्यापक, भितर बाहर असंग।
'चरणदास' ता संगत करते, दिन दिन बाढ़त रंग॥[2]

(४) वाराणसी—बड़ौदे में श्रीगौड़ ब्राह्मण कुल में उसका जन्म हुआ था। अपने पति खेमदास की मृत्यु से वह अत्यन्त उद्विग्न रहती थी। मोरार साहब के उपदेश से उसे शान्ति मिली। ज्ञान के प्रकाश से वैराग्य भाव जाग उठा। सं० १९१! पूष शुक्ला द्वितीया को बड़ौदे में उसने निर्वाण प्राप्त किया। बड़ौदे में वाड़ी मोहल्ले में उसका स्थान है।

उसने हिन्दी में सन्तवाणी की रचना की थी। अपने एक पद में गुरु मोरार साहब द्वारा क्लेश दूर होने का उल्लेख है।

मोरार सद्गुरु शूरमा, दियो विमल उपदेश।
वाराणसी के हृदय में, काटे कठिन क्लेश।

वाराणसी ने लिखा है, कि जीवन में चारों फल प्राप्त करने के लिए हमें संत-सेवा तथा वन्दगी करनी चाहिये। उसके पदों में से रामनाम की भक्ति का एक पद यहाँ उद्धृत किया गया है।

लगी रे मोहे रामनाम से प्रीत, मोहे मिल गये मनके मीत।
अजहू तोहे मन नहीं पायो, तू हार गयो या जीत।
मोह माया में डूब रहे थे, चलो उमरियाँ बीत।

---

१. 'भक्त-चरित्र-प्रकाश' के आधार पर।
२. 'भजनसागर' भा० १, पृ० ३३२।

स्वजन सनेही लागत नीके, पुत्रदारा में बड़ी प्रीत।
अभ्यागत को आदर नाहीं, पेखे न साधु अतीत॥
मोरार सद्गुरु ज्ञान बताये, चतुर हो गये चीत॥
'वाराणसी' हरिको यश गायके, जैहो भवजल जीत॥

(५) जीवणदास (दासी जीवण)—मोरार साहब के ये शिष्य "दासी जीवण" के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। सौराष्ट्र में "घोघावदर" गांव में दाफड़ा चमार जाति में उनका जन्म सं० १८४६ में हुआ था। पिता को जगावाला तथा उनकी माता को शामबाई कहते थे। पहले वे भजन से दूर रहते थे, किन्तु मोरार साहब के भजनों को सुनकर लगनी लग गई। पहले आश्रम की गायें चराते थे। उनको आश्रम में प्रवेश देने पर कुछ साधु आश्रम को छोड़ चले गये। मोरार साहब को विष देने का प्रयत्न भी किया गया, किन्तु मोरार साहब निश्चल रहे।

समाधि लेने से पूर्व मोरार साहब ने जीवण को भीमसाहब के पास भेज दिया था। वहाँ उन्होंने भीम साहब को गुरु रूप में माना था।[1]

उन्होंने हिन्दी तथा गुजराती भाषा में अनेक पदों की रचना की थी। दासी भाव के तथा प्रभु प्रेम के भजनों की ऐसी सृष्टि की, कि मीरां की याद ताजी हो जाय। उनकी वाणी में कबीर की परम्परागत विचार-धारा का दर्शन होता है। कबीर के रमताराम, झिलमिल ज्योत, अनहद नाद, सत्लोक, अगम का घर, सुरत-नुरत आदि शब्दों के दर्शन उनकी वाणी में होते हैं। उनके कुछ पदों में रामदेव पीर का उल्लेख मिलता है। गुरु भीम द्वारा अपने मन के भ्रम का दूर होने का उन्होंने उल्लेख किया है। "भीम भेट्या ने भ्रमणा भांगी।" उन्होने अपने एक पद में रवि-भाण परम्परा के तमाम सन्तों का उल्लेख किया है; तथा रामकबीर सम्प्रदाय के ज्ञान, गरीबी, संत सेवा, तथा प्रेम-भक्ति को उन्होंने स्वीकार किया है।

ज्ञान, गरीबी, संतनी सेवा, प्रेम-भक्तिनो संग हवे पालु।
भीम ने भाण, रवि रमता रामा, तेज तत्वमां गुरु भालु।
'दासी जीवण' संतो! भीमने चरणे, दूजो धणी नहीं धारुं॥[2]

जीवण अभिमान का त्याग करने को कहता है; ईश्वर की अधीनता को महत्व देता है। उनके प्रेम-वर्णन में सगुण-भक्ति का अभास होता है, किन्तु उनका विट्ठल अवर्ण तथा अरूप है।

ना, वे वर्णावर्णमां, ना' वे रूपमां रेख।
शा वखाण करूं विट्ठला, अरजी करूं अलेख॥[3]

---

१. 'दासी जीवणनां पदो, पृ० १२।
२. दासी जीवणनां पदो, भजन ७२।
३. वही, भजन ४७।

उन्होंने अपने को अविनाशी राम की दासी माना है। हरि-गुरु-सन्त में जीवण ने कोई भेद नहीं देखा।

मैं दासी सब संतन केरी, पाऊँ पियाला अविनाशी।
खोज खबर तू जो दिल भीतर रोम रोम में ले लागी ॥[1]

पैंतीस वर्ष की छोटी उम्र में सं० १८८१ में गिरनार के पास शेषावन में उन्होंने समाधि ले ली थी।

(६) अरजण भगत—वे अहीर जाति के सन्त थे। दासी जीवण के प्रभाव से उनके शिष्य बने थे।[2] उन्होंने सन्त वाणी की रचना की है। गुजरात में अरजण नाम के दो कवि हुए; किन्तु उक्त अरजण ने अपने पदों के अन्त में "दास-अरजण जीवण के चरणे" लिखा है। अरजण भगत की वाणी में कबीर-विचार-धारा के दर्शन होते हैं। पोथी, माला, धूप, ध्यान आदि के विरोध के साथ अगमतीर्थ की यात्रा का एक पद द्रष्टव्य है।

गुरु मोरे अगम तीरथ पर जाना ॥
सत्यनाम चढने की सीडी, नहीं पोथी, नहीं पाना।
नंन कमल में निरखी त्योने, सूरत नूरत निशाना।
आ घटमें घडियाला वागे, जुओ पुरुष आ वयांना।
मन मेरा नहीं माला फेरे, नहीं धूप, नहीं ध्याना।
ऐसा है कोई खेल अगम का, भटकीने भरमाना।
साव सफेद वस्तर पहने, ऐसा उनका बाना।
'दास अरजण' जीवण के शरणे, जोगी पुरुष है त्यांना ॥[3]

(७) भक्त वीजल—वीजल भील लुटेरा था। एक बार उसने रामस्वामी को पकड़कर वृक्ष से बांधकर बहुत मारा था। कहते हैं, तदनन्तर उनकी शरीर में जलन होने लगी थी। वह रामदास के चरणों में आकर गिर गया तथा क्षमा-प्रार्थना करने लगा। रामदास ने उसको हरिस्मरण का उपदेश दिया।

बिजल यह तन झूठ है, कल मिट्टी को ढेर।
बंदे मौज कुछ पायले, हरि-सुमिरन की लहेर ॥[4]

---

१. परिचित पद संग्रह, पृ० १२६।
२. 'गीता' पत्रिका, अहमदाबाद—जून-जुलाई, १९४३।
३. 'भजन संग्रह' १९६१, पृ० ६९।
४. 'भील संदेश' जनवरी, १९५०।

अपने अन्तिम समय में रामदास उसके पास गये थे। उनके सामने वीजल ने देह-त्याग किया था। उसके अन्तिम संस्कार गुरु रामदास द्वारा हुए थे।

विजल सब कुछ पा गये, भेटे सद्गुरु राम।
सुफल जन्म संसार में, वन्दो संत वह नाम।

खीम साहब तथा अन्य संत

खीम साहब का जीवनवृत्त - भाण साहब के सुपुत्र खीम साहब का जन्म सं० १७६० में हुआ था।[1] उन्होंने रविसाहब से दीक्षा ग्रहण की थी। कच्छ के पास समन्दर तट पर "रापर" में उनका स्थान है। वहाँ के मछुआ जाति के लोगों में उन्होंने रामकबीर-सम्प्रदाय का प्रचार किया था। उनको लोग "दरिया-पीर" कहते थे तथा सफर में जाने से पूव उनके आशीर्वाद ले जाते थे।

उनके समकालीन बावा दीनदरवेश ने अपनी एक कुण्डलिया में उनकी पीर के रूप में प्रशस्ति की है।

खीम साहब को पेखिया, प्रगट बखानो पीर।
ऐसे संत सुजान को, वंदहो दीन-फकीर ॥[2]

सं० १८५७ में रविसाहब की उपस्थिति में रापर में खीम ने जीवन्त समाधि ले ली। वह समाधि कच्छ के रापर में वर्तमान है।

समन्दर के तूफान में खीम साहब को याद करने से हैवत नाम के मछुए की नाव बच गई थी, इससे प्रभावित होकर वह खीम साहब का शिष्य हो गया था। त्रिकम नाम का गरोडा-हरिजन उनका शिष्य था, उनकी समाधि खीम की समाधि के बगल में है। उनके अन्य शिष्यों में मेघा खाचर, हरजीवनदास तथा भक्तिराम विशेष उल्लेखनीय हैं।

खीम साहब ने सन्तवाणी की रचना की है। उनके पदों में हिन्दी तथा गुजराती भाषा का मिश्रण हुआ है। उनके एक हिन्दी-गुजराती पद में से कुछ हिन्दी पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं।

साधु ! भेद अगम केरा पाया।
शून्य मण्डल में नोबत बाजे, अखण्ड आप बिराजे।
कहां से आया, कहां जायगा, कौन तुम्हारा ठामा ॥

---

१. 'कल्याण' भक्तांक, पृ० ७०१।
२. 'बाबादीन दरवेश' श्री माणेकलाल राणा, पृ० ३३।

'सत्य' शब्द से ध्यान लगाया; आद्य नाम निरधार्या।
'खीमदास' सद्गुरु प्रतापे, ओहं सोहं के पारा ॥[1]

गंग साहब—खीम साहब के मलूकदास तथा गंग नाम के दो पुत्र थे। गंग को रविसाहब ने दीक्षा दी थी। गंग को बचपन से भजन एवं सत्संग में प्रेम था। बचपन में वे रवि साहब के पास रहते थे। रवि साहब ने उनको ध्यान-योग सिखाया।[2] अपने जीवन पर रवि तथा खीम के प्रभाव का उन्होंने अपनी वाणी में स्वीकार किया है।

हिरदे अमीरस खिचिया, प्रगट रविगुरु भूप।
गोद बिठाके खीम ने, दियो अवधू को रूप।

गंग जब वाराही में थे, तब उनके योग के समय किसी दुश्मन ने उनके पाँव पर आग रख दी थी, जिससे उनका पाँव कुछ जल गया था। इससे गंग को इतना दुःख हुआ, कि वाराही में पुनः नहीं आने का प्रण करके वे शेरखी चले गये थे। गंग ने गुजरात तथा सौराष्ट्र की यात्रा की थी। भावनगर के राजा विजय सिंह तथा जोगीदास खुमान के पिता उनके भक्त थे। एक हमीर जाडेजा उनके शिष्य थे। एक शिष्य लालदास को उन्होंने कच्छ-भुज में सद्धर्म के प्रचार के लिए भेजा था। गंग का एक शिष्य दामोदर पण्डित बड़ा विद्वान् था। गुरु आज्ञा से "आमरण" में उन्होंने अपना स्थान बनाया था। सं० १८८३ में गुरुबन्धु मोरार साहब की उपस्थिति में गंग साहब ने जीवन्त समाधि ले ली। अपने पीछे केशवदास के पुत्र सुन्दरदास को उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।[3] उनका एक हिन्दी पद यहाँ उद्धृत है।

धन्य घड़ी जा घर संत पधारे, ता दिन की बलिहारी।
गृह अंगना पावन किया, मोर जीवन जनम सुधारी।
लोहा पारस परसत रंग पलटे, जगमग ज्योत उजियारी।
दोष निवारण, अधम उधारण, पर आतम उपकारी।
नामरूप जगकारण तारण, अकल पुरुष अवतारी।
लगत न चोट, ओट संतनकी, जम रहे जख मारी।
हरि-गुरु-सत सदा सिर मेरे जुग जुग शरण सुधारी।
भाग जगे भाण-रवि भेंटे, 'गंग' हो रंग करारी ॥[4]

---

१. प० प० सं०, पृ० १०० ।
२. 'कल्याण' भक्तांक, पृ० ७०३ ।
३. 'भाण-चरित्र-प्रकाश' तथा 'रवि-चरित्र-प्रकाश' के आधार पर ।
४. र० भा० सं० वा०, भा० १ ।

त्रिकम साहब—गुजरात में एकाधिक "त्रिकम" नाम के भक्त हुए हैं, किन्तु उक्त त्रिकम भगत "त्रिकम साहब" के नाम से प्रसिद्ध हैं। कच्छ-बागड़ के "रामवाव" गांव में ढेढ़-गरोड़ा जाति में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने रामगीर नाम के एक साधु के कहने पर जाप किया था, किन्तु अन्त में खीम साहब के पास जाकर दीक्षा ली थी। खीम साहब की आज्ञा से उन्होंने "चित्रोड़" में स्थान बनाकर गद्दी की स्थापना की।[१] रापर के लोहाना भक्तों की रुचि के यह अनुकूल नहीं था।

त्रिकम के एक चमत्कार की कथा बताई जाती है, कि नाव में नहीं बिठाने पर एक चद्दर बिछाकर वे नदी पार कर गये थे।[२] इस प्रसंग से उनकी कीर्ति कच्छ-सौराष्ट्र में फैल गई थी। त्रिकम अपने गुरु से बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने स्वीकृति ले ली थी, कि मृत्यु के पश्चात् उनकी समाधि रापर में गुरु की समाधि के साथ बनेगी। हरिजन भक्त उनके शव को लेकर जब रापर पहुँचे, तो पहले सवर्णों ने विरोध किया; किन्तु अन्त में उनकी समाधि वहीं गाड़ी गई।

वहाँ चैत्र शुक्ला द्वितीया को प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है, तथा उस दिन के लिये हरिजनों को अन्दर स्थान में जाने की कोई रोक-टोक नहीं है।[३] त्रिकम ने हिन्दी तथा गुजराती में संतवाणी की रचना की है; इसमें निर्गुण ब्रह्म के प्रति रहस्यात्मक अनुभूति तथा यौगिक उपासना का वर्णन है।

देख्या खाविंद का खेल, दरस बिन देख्या खाविंद का खेल।
नाभिकमल से आवे ने जावे, पल पल करे प्रकाश रे।
रनझार झनकार सब होई रहा है, अनहद नाद अवाज रे।
घेरी घेरी नोबत गडगडे, धीरज धरी कर ध्यान रे।
दास त्रिकम संत खीमने चरणे, गुरु गमनी आसान रे॥[४]

(६) भीम साहब—भीम परजिया चारण जाति के हमीरदान कछोला के पुत्र थे। बचपन से उनको भजन गाने की आदत थी। एक दिन हरिजनवास में त्रिकम भगत के घर भजन हो रहा था, भीम ने सुना और एक ही रात में बदल गया। उनका मन माया से विरक्त हो गया। दूसरे दिन त्रिकम साहब के पास दीक्षा लेने को गया। स्वयं अछूत होने से पहले तो त्रिकम साहब ने इनको स्वीकार नहीं किया, किन्तु उनकी लगन देख कर अन्त में स्वीकार करना पड़ा।

---

१. 'गीता' जुलाई-सितम्बर, १९४१।
२. 'सोरठना सिद्धो' पृ० १७७।
३. 'जनकल्याण' धूपसली अंक, १९६६।
४. प० प० सं०, पृ० १६४।

वागड़ की कागनोरा पहाड़ी की गुफा में बैठकर गुरु-शिष्य ने सत्संग किया तथा संतवाणी की रचना की थी। वहाँ से घर जाने पर माता-पिता ने भीम को अस्वीकार कर दिया।

कहते हैं, आमरण में एक वर्ष वर्षा नहीं हुई, तब भीम साहब ने रामसागर लेकर आराधना की, तब वर्षा हुई थी।

मेहेर करोने महाराज, प्रीतम आपोने पाणी।
भीम कहे सय वधी पड्यो, मेघ दो मही दाना दानी॥

सं० १८४८ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को खूब वर्षा हुई थी।[1]

भीम ने कुछ पदों की रचना भी की है। उनके पदों में नामजप, रामनाम, आतमराम तथा निर्गुण-भक्ति का उपदेश होता है। उनका एक पद द्रष्टव्य है।

मैं तो अजब नाम पे वारी॥
सून ले सुखमन नारी, मैं तो अजब नाम पे वारी॥
अजब नाम है सब से मोटा, सोच खोज संसारी।
परापार में अपरम देख्या, ऐसा आनन्दकारी॥
ध्यान धर कर सद्गुरु शब्दे, हद वेहद विचारी।
सुरता कर ले चौद भूवन में, अरस परस धून प्यारी॥
सहज शून्य में त्रिकुटि धून्य में, अखण्ड ज्योत उजियारी।
भीम साहब त्रिकम के चरणे, वेर वेर बलिहारी॥[2]

मेघो खाचर—वह एक लुटेरा था। एक नवदंपति खीम साहब के दर्शन करने रापर जा रहे थे। मेघा ने उनको रोका, किन्तु उस नारी ने उन्हें उपदेश दिया, कि "हम खीम साहब के दर्शन को जाते हैं, तू भी क्यों नहीं चलता?" वे चले गये, किन्तु मेघा के दिल में एक हलचल छोड़ गये। अन्त में उसने भी खीम साहब के पास जाकर उपदेश सुना, तथा एक वंदनीय संत बन गया।[3] उनके विषय में सौराष्ट्र में एक सोरठा प्रचलित है।

मेघा खाचर खीम सद्गुरु का बालका।
भांगी भवजल जीत, जोर नहीं कालका॥

भक्तिराम—कानम प्रदेश में एक रावल भगत के घर खीम के आशीर्वाद से एक पुत्र हुआ था, उनका भक्तिराम नाम रखा गया। कहते हैं, उनको अने

---

१. सौराष्ट्रना संतो, पृ० १६५।
२. प० प० सं०, पृ० २८७।
३. 'गीता धर्म' पत्रिका (काशी) अक्टूबर, १९४६।

पूर्वजन्म का ज्ञान था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने खीम साहब से दीक्षा ले ली।

कुछ समय वे महाराष्ट्र में रह कर रामनाम के जाप करते रहे। वहाँ से गुजरात में आकर गुरु से मिलकर हिमगिरी की ओर चले गये, फिर कभी लौटे नहीं।[1] भक्तिराम ने हिन्दी में पदों की रचना की है। उन्होंने माया को मृगजल तथा विष की धारा कहा तथा हरिस्मरण बिना जीवन को वृथा बताया। प्रियतम के विरह में आत्मा की तड़पन को उन्होंने अपने एक पद में व्यक्त किया है।

आली! मोहे हरिदरसन को नेम ॥
पल एक सूझ पड़त नहीं सजनी, दरस बिना नहीं चैन।
बालम हमसे दूर बसे हो, यह बिरहा दुख-दैन।
विकल मनवा धीर धरत नहीं, अंसुवा बहावत नैन।
तडप तडप मत मारो पियाजी, सांवरिया सुख-दैन।
'भक्तिराम' को भूल न जाना, ओधव अगलो सैन।

रवि-भाण-परंपरा के अन्य संत

हरजीवनदास—हरजीवन बनझारा जाति के संत थे। कच्छ-सौराष्ट्र में भ्रमण करते हुए खीम साहब के भजनों से प्रभावित हुए। "रापर" खीम के दर्शन करने गये थे। हैवत मछुए ने खीम द्वारा अपनी डूबती नाव के बच जाने के चमत्कार की कथा कही, इससे प्रभावित होकर वे खीम साहब के शिष्य बन गये।

उन्होंने हिन्दी में पद-रचना की है। संसार की माया में फँसकर रामनाम के धन को प्राप्त नहीं करने पर उन्होंने पश्चात्ताप व्यक्त किया है।

मंद मति अजहु नहीं समझे, सद्‌गुरु ने समझाया रे।
मिथ्या गुमान किया, मैं अभागा, पेख्या नहीं पिवराया रे।
नाम सुनत गुरु नेजाधारी, बंदी-छोड़ हरि आया रे।
प्यास बिदारी अमीरस पाये, जीवन बक्षे दयाला रे।
मैं अपराधी ना जानूं आपको, आपे आप ओखलाया रे।
साहेब खेम चरणरज दुर्लभ, हरजी हरि यश गाया रे।[2]

ओखा—उत्तर गुजरात के बड़नगर के एक नागर कुल में उनका जन्म हुआ था। उनका विवाह एक वृद्ध से किया गया। कुछ ही वर्षों में वृद्ध की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उनके विषयांध देवर ने उनको भ्रष्ट किया। पाटण में लाल साहब ने

---

१. 'गुजरात टाइम्स' दीपोत्सवी अंक, सं० २००८।
२. 'गीता' पत्रिका (अहमदाबाद), पृ० १०, अंक—१०, ११, १२ ई० सन् १९४५।

एक कुएँ पर से उनको आत्महत्या करने से बचाया था। गर्भवती होने से लाल साहब ने उनको एक संत-मंडली के साथ व्रज मंडल की ओर भेज दिया। वहाँ किसी "खापरा" गाँव में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। गाँव वालों ने उनके लिए एक कुटिया बनवा कर उनके निवास की व्यवस्था की। वह स्थान संतों के लिये एक तीर्थ स्थान बन गया।[1]

ओखा कवयित्री थीं। उन्होंने हिन्दी में संतवाणी की रचना की थी। उनकी वाणी में हरि-गुरु-संत की सेवा का आदेश है। उन्होंने अपने एक पद में लिखा है, "संत समागम, हरि भजन में बहुरि लगे सनेहा।" अपने सद्गुरु लाल साहब की कृपा तथा अलख की महिमा के गुण उन्होंने इस पद में गाये हैं।

सद्गुरु परम कृपानिधि देवा।
पतितपावन नाम तुम्हारो, अलख अवधू मेवा।
मोहे अनाथ को आसरा तेरा, दुनिया से न लेवा देवा।
कर ग्रही मोहे उगारे स्वामी, गुरु उपदेश लिखलेवा।
लालसाहब चरण की दासी 'ओखा' हरि-सुमिरण-सेवा॥

मदयन्ती—मदयन्ती पाटण नगर की प्रसिद्ध वेश्या थी। एक युवान साधु उसके कोठे पर गया था, तथा एक बहुमूल्य शाल दे गया था। वह साधु-वेशधारी युवक सूरत के पास 'सचिन' का दुर्लभराम नाम का ब्राह्मण था। उसने पिता के धन को कुमार्ग में उड़ा दिया था। साधुवेश में एक संतमेले के समय रविसाहब के पास जाकर उसने यह शाल मांग ली थी। यह बहुमूल्य शाल किसी राजा द्वारा रवि साहब को भेंट की गई थी।

रविसाहब के शिष्य लाल साहब का स्थान पाटण में था। एक बार मदयन्ती उसी शाल को ओढ़कर उनके दर्शन को गई। लाल साहब ने गुरु की शाल को पहचाना। उन्होंने मदयन्ती के भाग्य की सराहना करते हुए उनसे कहा कि तुम्हें गुरु की शाल की मर्यादा रखनी चाहिए तथा अपना जीवन उसके अनुरूप बनाना चाहिए।

दूसरे दिन से मदयन्ती ने अपने जीवन को बदल दिया। भोग के साधनों का त्याग करके हरिस्मरण में रत रहने लगी। रविसाहब के दर्शन के लिए वह शेरखी गई थी। तदनंतर उसने अपना घर साधु-संतों के लिए खुला कर दिया। एक बार वह ब्राह्मण भ्रमण करता हुआ आया था। मदयन्ती ने उसे रविसाहब के पास

१. 'गुजरात टाइम्स' दीपोत्सवी अंक, वि० सं० २००६।

जाकर जीवन सार्थक करने की सलाह दी। एक दिन भजन की धुन में सब के मध्य में उसने अपना शरीर छोड़ दिया।[1]

लालदास—पूर्वावस्था में वे कच्छ राज्य के कर्मचारी थे। राजद्रोह के अपराध में उनको प्राणदण्ड हुआ था। वह भाग कर गंग साहब के आश्रम में छुप गया था। संसार त्याग का वादा करने पर तथा गंग साहब के समझाने पर वह मुक्त किया गया था। उसने गंग साहब से दीक्षा ली।

तदनंतर वह हरिस्मरण में रत रहने लगा। उसने संतवाणी की रचना की थी। उसके पदों में रामनाम, हरि भक्ति तथा संत-सेवा का उपदेश है।

राम भजन से लाग पियारे, यह सुपना पल छिनका है।
मान गुमाना मत कर भाई, मिजमाना दो दिन का है।
गंदी काया का गर्व कहां कीजै, एक दिन सोवे मसान रे।
वड़े वड़े नृप चल गये यहां से, आज न उनका निशान रे।
मानव तन देवन को दुर्लभ, पामर तुझने पाया रे।
सेवा बंदगी लीजै वनाई, इस दुनिया में आया रे।
भाग्य वडा जिन्हें सद्गुरु भेट्या, गंग साहब गुरु दानारे।
'लालदास' मन मगन भया, मिट गया आवागमना रे॥[2]

शोभाराम—सूरत के पास वंधारपाड़ा में कुंवरजी के घर भजन में गंग की वाणी से प्रभावित होकर वहां का एक वणिक शोभाराम उनका शिष्य हो गया था। शोभाराम ने पदों की रचना की है। उनके पदों में राम का नाम, प्रेमपियाला तथा मरजीवा की प्रशस्ति है।

सद्गुरु से मन लगा, भरम दूर भागा रे।
भवाटवी मूंडी हो, भूदर के संग लागा रे।
हरदम लगो नेहडो, नाथ तेरे नाम को रे।
मन मतवाला कोई, प्याला भर पीवे रे।
मुक्ति पद गामी, मरजीवा हिय हामे रे।
रवि-गुरु प्रतापे मेरा भवदुख भागा रे।
शोभाराम के हृदय, स्वामी संग लागा रे॥[3]

---

१. संत रविसाहब, श्री माणेकलाल राणा, पृ० ७७।
२. 'गीताधर्म' पत्रिका (काशी) पु० १३ अंक ४ अप्रैल, १९४८।
३. 'विश्व कल्याण' धागंध्रा, (पत्रिका)।

पद्मनाभ-परंपरा की देन

कबीर साहब के शिष्य पद्मनाभ के तीन शिष्य थे, उनमें से लोचनदास की परम्परा सूरत में तथा नीलकंठदास की परम्परा सौराष्ट्र में (दूधरेज में) चली थी। तीसरे शिष्य धनराज की कोई परम्परा ज्ञात नहीं है। सूरत की लोचनदास की परम्परा में प्रतापी संत हो गये। उन्होंने विपुल संतवाणी की रचना की थी। दुर्भाग्य से जोगा हरि से यह परम्परा समाप्त हो गई, तथा लोचनदास का आश्रम भी नष्ट हो गया। इस परम्परा के संत प्यारेदास ने गुरुओं के चरित्र लिखे थे, तथा संतों की वाणी को भी संकलित किया था। संत माधवदास ने १५०० रचनाएं की थीं। कुछ रचनाएं उच्च कोटि की सिद्ध हो सकती हैं। इसके आधार पर सूरत का सं० १५५० से १७५० तक का धार्मिक प्रवृत्ति का इतिहास प्रकाश में आ सकता है। हिन्दीतर प्रदेश में हिन्दी साहित्य में संत-साहित्य के विकास की यह २०० वर्ष की प्रवृत्ति विशेष स्मरणीय एवं उल्लेखनीय है।

पद्मनाभ के अन्य शिष्य नीलकंठदास ने सौराष्ट्र तथा उत्तर गुंजरात में कबीर विचारधारा का प्रचार किया था। उनकी परम्परा दूधरेज में प्रवर्तमान है। लब्धराम के पश्चात् इस गद्दी पर चारणों का अधिकार है। इस परम्परा के प्रतापी संत भाण साहब तथा उनके शिष्य रवि साहब ने अपने अनेक शिष्यों द्वारा कबीर की विचारधारा को घर-घर पहुँचाया। इन संतों की विशेषता यह है, कि सांप्रदायिकता छू नहीं गई। मुस्लिम, चारण, हरिजन जैसी निम्न जाति के अनेक संत इस परम्परा में हुए हैं। इन संतों ने समाजसुधार का बहुमूल्य कार्य भी किया है। इन संतों के प्रभाव से मोतीराम, हाडा, लामा, डींगाराम जैसे भील, होथी तथा करीमशाह जैसे मुस्लिम संत हुए थे। उन्होंने गवल कोली, कबाजी, वाहिल, राघो, ओसाजी, मेघो खाचर तथा कादर बुकानी जैसे लुटेरों को उपदेश देकर संत बना दिये थे। गुजरात में कबीरमत का सर्वाधिक प्रचार इस परम्परा द्वारा हुआ है।

छठवाँ अध्याय

कबीर-परम्परा के संतों की वाणी का अनुशीलन

गुजरात में मुस्लिम प्रचारकों का आगमन सातवीं या आठवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। भरूच, खंभात, सिंध एवं सौराष्ट्र के बंदरों से आकर गुजरात में ठहरने लगे थे। ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् गुजरात में चमत्कारों के प्रभाव से उन्होंने सामूहिक धर्म-परिवर्तन कराना प्रारम्भ किया था। सूफियों का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। भारतीय वेदान्त से वे प्रभावित थे। उनका अद्वैतमूलक सर्वात्मवाद भारतीय दर्शन की देन थी। हिन्दुओं के प्रति उनमें सहज सहानुभूति थी।

तत्कालीन परिस्थितियां

गुजरात में कबीर साहब के आगमन के समय हिन्दू-समाज की आंतरिक दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी। मुस्लिम-शासन ने उनके अधिकार ले लिये थे, तथा उनके ऊपर विशेष कर तथा कानून लगाये थे। सूरत में मात्र हिन्दुओं को विवाह-कर देना पड़ता था तथा मोहर्रम का ताजिया उठाना पड़ता था, तथा कब्र गाड़नी पड़ती थी।[1] हिन्दू-देवस्थानों का विध्वंस हो रहा था। मूर्तियां तोड़ी गई थीं। इससे हिन्दुओं की श्रद्धा हिल गई थी। उनकी सगुण मूर्ति-भावना को एक प्रबल ठेस लगी थी।

---

१. फकीरा को आदर मिले, साधु आने न पाय।
दो बंदे साहिब के कैसे रखो जुदाय।
लग्न-वेरो हिन्दवा लगे, मुक्त रहे मोमीन।
घोर खुदे अरु ताजिया, हिन्दवा उठावत दीन।
हयात तेरे राज में, बहुरि दिखे अन्याय।
जो हुकमी वख्तक चले, कयामत को देख्‌ जाय।—दुलाराम।

हिन्दुओं की आंतरिक स्थिति अत्यधिक खोखली हो गई थी। धर्म के नाम पर बाह्याचार तथा कर्मकांड रह गये थे। दम्भ एवं पाखण्ड का प्रभाव इतना विस्तृत था, कि सत्यनिष्ठा भी पाखंड मानी जाने लगी थी।

> महा सवारथ लोग भक्ति लौलेस न जाने।
> माला-मुद्रा देखी, तासु की निंदा ठाने॥
>
> (भक्तमाल, छप्पय १०८)

स्थान-स्थान पर हठयोग के चमत्कारिक प्रयोगों से चन्दा वसूल किया जाता था।

क्रियाकांड तथा उपासना का अधिकार उच्च कहलानेवाली जातियों तक सीमित रह गया था। निम्न जाति के लोगों को उनके ही हिन्दू भाई हेय एवं निंद्य समझते थे। इसका प्रत्याघात यह हुआ कि हिन्दू धर्म या उनके ग्रन्थों के प्रति इन लोगों के मन में कोई ममता रह नहीं गई। हिन्दुओं में शैव तथा वैष्णव एवं शैव तथा शाक्त के मध्य प्रबल संघर्ष चलता था। वस्तुतः ज्ञानीजी की प्राप्त जीवनी से ऐसे उल्लेख मिलते हैं, कि स्वामी रामानन्द ने इन झगड़ों को मिटाने के लिये ही कबीर को गुजरात-यात्रा की आज्ञा दी थी।

पुराने धर्म निःसत्व होते जाते थे। उनके ऊपर अनैतिकता ने आक्रमण कर दिया था। गुजरात में शैवधर्म में कापालिकों का, शाक्त धर्म में वामपंथियों का, वैष्णव धर्म में गुरुओं की लीला का तथा मार्गी सम्प्रदाय में कांचलिया प्रवृत्ति का प्राबल्य बढ़ गया था।

स्वामी रामानन्द तथा कबीर ने साधुओं के वेश के दम्भ को दूर करने के लिये संसार में रहकर, भक्ति करने का उपदेश दिया, इसका सार्वत्रिक स्वीकरण हुआ।[1] भक्ति के समान अधिकार की भावना ने निम्न जातियों में एक विशेष आकर्षण जमाया, तथा उनके आत्मगौरव के भाव को जगाकर भक्ति के ऊँचे-से-ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिये उनको बढ़ावा दिया।[2]

उच्च जातियां उपनिषद्, गीता, वेदान्त, रामायण और महाभारत से ज्ञान-प्राप्ति तथा आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करती थीं, किन्तु ग्राम्य जनता के लिये जंगमतीर्थ जैसे संतों की वाणी के सिवा अन्य कोई संबल नहीं था। संतों की यह वाणी निरक्षर ग्राम जनता में कर्णोपकर्ण फैलती जाती थी। गुजराती साहित्यकार श्री

---

१. दी कल्चरल हिस्टरी आफ गुजरात, पृ० ३२४।

२. हि० सा० इ०, (२०१८), पृ० ६६।

स० क० झवेरी ने प्रजा का मानस तथा संस्कृति के विकास में, संत-साधुओं द्वारा गुजराती जन-जीवन को दी गई संतवाणी की देन, को सविशेष महत्व दिया है।[1]

संतवाणी का इतिहास

गुजरात में संतवाणी, हिन्दी तथा गुजराती, दो धाराओं में प्रवाहित हुई है। नाथपंथी सिद्धों की तथा कबीर एवं उनके समकालीन संतों की वाणी बहुधा हिन्दी भाषा में लिखी हुई है। उत्तर मध्यकाल में अखा, भाण, रवि, प्रीतम, निरांत तथा धीरा-भोजा आदि संतों ने हिन्दी तथा गुजराती में अलग-अलग रचनायें की हैं। उनकी हिन्दी वाणी पर गुजराती का विशेष प्रभाव है। कहीं-कहीं यह भाषा हिन्दी-गुजराती मिश्रित हो गई है। इन संतों की परम्परा के संतों की वाणी में गुजराती का प्रभाव क्रमशः बढ़ता गया है। दासी जीवण, भीम, अरजण भगत जैसे इस युग के संतों की वाणी में संतों के परम्परित हिन्दी शब्द ही शेष रह गये हैं। गुजराती साहित्य के कवियों में, क्वचित निर्गुण-भक्ति का आवेग तथा संतवाणी का प्रभाव बलवत्तर होता है, तब कुछ संतवाणी की झलक हिन्दी में मिल जाती है।

ज्ञान ध्यान तत कछु नहीं जानूं।
प्रेम-पदारथ सहज पीछानूं ॥[2] —उशनस्

विक्रम की दसवीं शताब्दी के पश्चात् गुजरात में कनफटा योगियों की पलटनें घूमने लगी थीं। उनकी धूनियों की आग तथा चिमटे के डर ने लोगों के मन में आतंक फैला दिया था। संतों के हृदय की निर्मल भावधारा ने, योग की उन काल-शिलाओं को तोड़कर तथा शुष्क ज्ञान की रेत को हटाकर, भक्ति की शीतल धारा को प्रवहमान किया था। रामानुजाचार्य की परम्परा में, स्वामी रामानन्द ने अपने उपदेशों द्वारा भक्ति के द्वार सर्व-साधारण के लिये खोल दिये थे। गुजरात में अपनी संतवाणी द्वारा, भक्ति के प्रथम प्रचार का श्रेय संत नामदेव को मिलना चाहिये, किन्तु गुजरात में भक्ति के आंदोलन द्वारा व्यवस्थित प्रचार का काम कबीर साहब, उनके शिष्य ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ तथा उनकी परम्परा के संतों की वाणी द्वारा हुआ था। कबीर में योगी की अक्खड़ता के साथ भक्त-हृदय की तरलता भी थी। उन्होंने अपनी भक्ति की भाव-धारा में, योग के त्रिशूल-चिमटे को गलाकर हरिरस के "प्याले" लिखे थे। उनके द्वारा ही योग के साथ भक्ति का समन्वय हुआ था।

कबीर ने एक पद में योगी को आराध्य कहकर उसके मिलन की अभिलाषा व्यक्त की थी।

---

१. 'प्रवेशको' गुच्छ २, पृ० १४३।

२. हि० वि० गु० फा०, पृ० ६६।

कौन मिलावै मोहि जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाय।

कबीर के इस पद को गुजरात के किसी मर्मी कवि ने, गुजराती में निम्न प्रकार रूपांतरित किया है, जो बहुत प्रसिद्ध है।

कोई रे मिलावो अमने जोगियो जी,
जोगी मारी काया तणो आधार, सुरता मिलावो मारा स्यामसु जी।

यही भाव मीराँ के अनेक पदों में रूपांतरित हुआ है।

धुतारा जोगी ! एक रसुं हंसी बोल।

गुजरात की आध्यात्मिक भावधारा को, संतवाणी के तीन प्रबल प्रवाहों का धक्का लगा था। सर्वप्रथम गोरख, भरथरी तथा गोपीचन्द की योगवाणी का प्रचार गुजरात में हुआ था। इसका प्रभाव आज यद्यपि कम हो गया है, किन्तु इसकी परम्परा निःशेष नहीं हुई। विक्रम की चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी में नामदेव-कबीर तथा ज्ञानीजी, निर्वाण, लोचनदास, रैदास तथा कमाल साहब की वाणी ने, गुजरात के जन-जीवन को भक्तिमय बना दिया। मंद पड़ती हुई उस भक्ति-धारा में पुनः सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भक्तिरस की बाढ़ आयी। भाण, रवि, मोरार, निरांत बापू, प्रीतम, धीरा, भोजा आदि भक्तों की वाणी में, गुजरात को भक्ति के अतल जल में अवगाहन करने का पुनः अवसर मिला। रविसाहब ने घोषित किया था, कि हम संत गहरे पानी के सिवा स्नान नहीं करते। इसी काल में अखाजी की वाणी में कबीर साहब की वाणी ही परम्परित हुई थी।

हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में इन संतों ने संतवाणी की रचना की है। कबीर-परम्परा के रवि-भाण आदि सन्तों की देन का स्वीकरण गुजराती साहित्य के इतिहासकार श्री अनन्तराय रावल ने किया है। भाण साहब ने यद्यपि विपुल संत-वाणी नहीं लिखी, किन्तु चालीस शिष्यों (भाण-फौज) द्वारा कबीर-विचारधारा का प्रचार किया था। उनके शिष्यों में अनेक संतकवि थे। रवि ने विपुल संतवाणी लिखी है। श्री मकरन्द दवे ने उनको "सरभंगी" (सर्वाङ्गी) कहा है, क्योंकि वे आध्यात्मिक अनुभूति के मर्मी संत थे। इस परम्परा के संत जीवणदास (दासी जीवण) में मीरां की प्रेम-साधना की परम्परा है।

गुजराती साहित्य के संत कवि नरसिंह मेहता, भीम, भालण तथा धनराज कबीर के लगभग समकालीन थे। कबीर की विचारधारा का प्रभाव उनकी वाणी पर सविशेष परिलक्षित होता है। कबीर के समागम का लाभ भी सम्भवतः उनको मिला था। नरसिंह मेहता के साथ कबीर-समागम का उल्लेख किया गया है तथा धनराज की दीक्षा के समय कबीर की उपस्थिति का उल्लेख भी अन्यत्र किया गया है। मांडण

क्र० -१७ पर कबीर तथा उनके शिष्य ज्ञानीजी की वाणी का अनुकरण देखा गया है।

उत्तर मध्यकाल में सन्तवाणी की अजस्र धारा विभिन्न सन्त-परम्पराओं द्वारा तेज गति से बहने लगी थी। गुजराती साहित्य में अखा तथा उनकी परम्परा, निरांत तथा उनकी परम्परा, धीरा-भोजा जैसे भक्त-कवियों की परम्परा तथा रवि-भाण-परम्परा के सन्त कवियों की वाणी ने, गुजराती साहित्य को ज्ञानमय भक्ति के सन्त साहित्य से सराबोर कर दिया था।

गोपाल, बूटाजी, नरहरि, वस्तो विश्वम्भर, प्रीतम, नृसिंहाचार्य आदि सन्त कवि, अखाजी की परम्परा के कवि हैं। बापू साहब, अर्जुन भगत आदि निरांत की परम्परा के कवि हैं। रविसाहब, मोरार साहब, खीम साहब, दासी जीवण, भीम, अरजण भगत आदि रवि-भाण-परम्परा के सन्त हैं। गुजराती साहित्य में ज्ञानी-भक्तों की भी एक परम्परा है; उन्होंने भक्ति के साथ ज्ञान को भी प्रश्रय दिया था। अगम्य की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के कारण, अखा जैसे ये भी ज्ञानियों की कोटि में गिने गये हैं। वस्तुतः उनका हृदय भक्त का हृदय था, तथा वे "भगत" के नाम से ही अभिहित हुए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी से आज तक संत काव्य की परम्परा अविरत चली है। यद्यपि यह क्षीण हो गई है, तथा परिवेश में भी परिवर्तन आ गया है, तथापि अगम्य के प्रति आकर्षण, प्रेम तथा जिज्ञासा आधुनिक कवियों के मन में कभी-कभी दृष्टिगोचर होते हैं। गुजराती के वर्तमान कवि उशनस् के उद्गार द्रष्टव्य हैं।

हे निगूढ़ ! हे सुरम्य ।
पूर्ववत् रह्यो हजीय तूं, अगम्य नो अगम्य ।
पूर्ववत् रह्या अमे, विमूढ ना हजी विमूढ ।।

नर्मदोत्तर गुजराती साहित्य में मणिलाल, ललित, ज्ञानी, पूजालाल, खबरदार, करसनदास माणेक, सुंदरम्, उशनस् तथा सुधांशु जैसे कवियों की वाणी में, निर्गुण भक्ति-परम्परा दृष्टिगोचर होती है। नरसिंह-मीरां तथा मांडण-धनराज की वाणी का विषय उत्तर मध्यकाल के अखा-निरान्त तथा रवि-प्रीतम की वाणी में परम्परित हुआ है; इस प्रकार इन कवियों की वाणी वर्तमान कवि पूजालाल, सुधांशु, माणेक तथा राजेन्द्र शाह जैसे कवियों में परम्परित हुई है। परम्परा का वह सूत्र अब पतला हो गया है। भक्ति का रूप तथा परिवेश बदल गया है, तथापि मिथ्याचार तथा दंभ का विरोध तथा अगम्य शक्ति से प्रेमानुभूति इन कवियों की वाणी में प्रच्छन्न रूप में अभिव्यक्त होती है।

इन कवियों ने ईश्वरी चमत्कार से भौतिक लाभ की आशा छोड़ दी है। उनकी आत्मश्रद्धा पुरुषार्थ-प्रेम द्वारा व्यक्त होती है। उनकी रहस्यात्मक एवं चिंतनात्मक वाणी पर डॉ० जयन्त पाठक ने अरविन्द-दर्शन का प्रभाव देखा है, किन्तु उनकी अगमतत्व की अनुभूति तथा सत्य-प्राप्ति का संकल्प संतवाणी का परम्परित प्रभाव ही लगता है। सुंदरम् तथा पूजालाल जैसे कुछेक कवियों पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव अवश्य है, किन्तु सुंदरम् की "कोया भगतनी कडवी वाणी" इस प्रभाव के पूर्व की रचना है; जिसमें संत-काव्य के सारे लक्षणों के दर्शन होते हैं।

आधुनिक कवियों की वाणी में अन्याय, दंभ, मिथ्याचार आदि का विरोध तथा पददलित जनों के प्रति समभावना आदि मानवता के नाम से व्यक्त होती है। श्री कृष्णलाल श्रीधराणी ने मंदिर के पुजारी को लौट जाने का आदेश देते हुए मन्दिर, घंटा आदि को बनानेवाले मजदूर तथा माली को सच्चा पुजारी कहा है। श्री करसनदास माणेक ने "हरिनां लोचनियाँ" काव्य में समाज में प्रवर्तित अन्याय, दंभ तथा अत्याचारों को देखकर बहते हुए हरि के आँसू के दर्शन कराये हैं।

डॉ० जयन्त पाठक ने वर्तमान भक्ति-कविता में पारम्परिक अनुकरण तथा अनुसरण का निर्देश किया है, तथा वर्तमान कवियों के अननुभूत उद्गारों की आलोचना भी की है। गुजरात में मध्यकाल के साहित्य को, डॉ० मंजुलाल मजुमदार ने पुनः जागृति का काल कहा है। विदेशी शासकों द्वारा गुजरात के साहित्य, संस्कृति एवं शिल्प का विनाश हो जाने के पश्चात् सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुजराती भाषा ने नया आधुनिक रूप लेना प्रारंभ किया। उस समय हिन्दी तथा गुजराती में संतवाणी का सर्जन हो रहा था। स्वामी रामानंद तथा कबीर साहब तथा उनके संतों के प्रभाव से गुजरात के संत कवियों ने हिन्दी में संतवाणी की रचनाएँ की थीं। गुजरात के निवासी संत भी भारत का भ्रमण करते थे। संत माधवदास ने अपने ३२ वर्ष के गद्दीकाल के दरमियान २४ वर्ष भ्रमण में व्यतीत किये थे। अतः इन साधुओं को हिन्दी भाषा पर पर्याप्त प्रभुत्व प्राप्त हो गया था।

संतवाणी के स्रोत

गुजरात के सौराष्ट्र प्रदेश में नरसिंह मेहता तथा मीरांबाई ने कृष्णभक्ति के पश्चात् निर्गुण-भक्ति के गीत भी गाये थे। सौराष्ट्र में उन दोनों से पूर्व कबीर तथा रैदास ने निर्गुण-भक्ति की स्थापना की थी। उत्तर गुजरात की तत्कालीन राजधानी पाटण में पद्मनाभ के शिष्य धनराज पंड्या, मांडण, भाल्लण आदि संत संतवाणी की रचना करते थे। अहमदाबाद में कमाल ने निवास किया था। उनके साथ उनके शिष्य दरियाखान पठान ने भी संतवाणी की रचना की थी।

दक्षिण गुजरात में कबीरवट का स्थान संतों का आश्रयस्थान था। उसके सामने तट पर राजपीपला विभाग के तत्कालीन मणिपुर (झांझा) में, कबीर के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी का आश्रम था। ज्ञानीजी की वाणी में कबीर की वाणी का अनुसरण है। संतों में वह इतनी प्रचलित तथा प्रचलित रही होगी, कि इसका अनुकरण मांडण की वाणी में दृष्टिगोचर होता है।

सूरत में निर्वाण साहब कबीर साहब के समकालीन थे। उनकी वाणी पर फारसी का प्रभाव है, किन्तु विचारधारा पर कबीरमत का प्रभाव है। सूरत में पद्मनाभ के शिष्य लोचनदास के प्रतापी शिष्यों ने उच्चकोटि की संतवाणी की रचना की थी। इस परम्परा में अनेक संत-कवि हुए थे। सारे गुजरात में संतवाणी के ये प्रमुख संस्थान थे, जहाँ से गुजरात भर में इसका प्रभाव पड़ा था।

इन कवियों की वाणी में उच्च जीवन की अभीप्सा के साथ परमतत्व की झंखना एवं अनुभूति के आनंद के दर्शन होते हैं। "राम-रस" में "अविगत की एंधाणी" दिखाई देती है। निरंजन भगत ने लिखा है, कि वास्तव में मैं अपने आप को ही नहीं पहचानता।

मने ज हुं अजाण लागतो, ने रहुं पुकारतो 'निरंजन'।

अब भी सुधांशु की वाणी में "हरिहरना ताले वाजे अलखना मंजिर" में अलख के मंजिर बजते हैं, तथा राजेन्द्र शाह की वाणी में "कायाकरी कोठरी में बन्द अलख" के गान सुनाई देते हैं।

गुजरात में हिन्दी संतवाणी के प्रमुख संरक्षक

गुजरात में प्राचीन संतों की हिन्दी संतवाणी के प्रमुख संरक्षक यहाँ के मठ, मन्दिर तथा महंत हैं। कबीर पंथ के तथा अन्य संप्रदायों के मन्दिरों में प्राचीन कवियों की सन्तवाणी की हस्तलिखित पोथियाँ पड़ी हैं। गद्दी पर रखकर उनकी पूजा होती है, किन्तु दर्शनार्थ भी देने से ये लोग हिचकिचाते हैं। ज्ञानीजी की वाणी की कुछ अमूल्य पोथियाँ दीप की लौ से जल गई थीं।

जूनागढ़ के पास एक कबीर मन्दिर में एक मंजूषा पुरानी संतवाणी की पोथियों से भरी है, किन्तु वर्षों से वह बन्द है। इसके महन्त साहब राजनीति से संलग्न हैं। इस स्थिति में दक्षिण गुजरात में, पद्मनाभ के शिष्य लोचनदास की परम्परा के सन्तों की वाणी, तथा निर्वाण साहब की परम्परा के सन्तों की वाणी का संरक्षण हुआ है। इसके प्रमुख श्रेयाधिकारी हैं, सन्त प्यारेदासजी, जोगाजी, कंवलदासजी तथा सन्त चरित्र के लेखक दुलाराम। प्यारेदासजी तथा जोगाजी ने लोचन-परम्परा के सन्तों की वाणी लिख ली थी, जोगाजी ने इसे निर्वाण-परम्परा

के सन्त जगन्नाथदास को दी थी। सन्त कवि कंवलदास की प्रेरणा से दुलाराम (सं० १८३० ७०) ने सन्त निर्वाण साहब तथा परम्परा के दस महंतों का चरित्र लिखा। उन्होंने अन्य अनेक सन्तों के चरित्र भी लिखे थे। इन सन्तों की वाणी के आधार पर सूरत के निवासी श्री माणेकलाल राणा ने गुजराती में उन सन्तों के जीवन तथा वाणी को प्रकाश में लाने का प्रयास किया।

संतवाणी का प्रतिपाद्य— साधारणतया यह कहा जा सकता है, कि कबीर का प्रतिपाद्य ही सन्तों की वाणी का प्रतिपाद्य है। इसे कबीर ने रामरस या हरिरस का नाम दिया था। सन्तवाणी को इसके 'प्याले' कहा जा सकता है। सौराष्ट्र में कबीर के 'प्याले'' प्रसिद्ध हैं। सन्तों ने इसे ''शब्द'' कहा था, अतः सन्तों की वाणी में ''शब्द'' का विशेष मूल्य है। यह ''शब्द'' पूरे गुरु का ''शब्द'' है। अगम्य के भेद की वह चाभी है। भेद खुलने पर अगम्य की अनुभूति होती है। उस अनुभूति का आनंद शब्दातीत है। सन्त इसे ''शब्द'' द्वारा व्यक्त करता है। जब 'सुरति' के साथ 'शब्द' का योग होता है, तब अक्षय लोक के दर्शन होते हैं। यह दर्शन अनुभूति-जन्य है। कबीर ने समझाया था, वैसे ये ''लिखा लिखी की है नहीं, देखी देखी बात'' है। इससे दिल में निर्भयता तथा हृदय में आनंद छा जाता है।

अहम् तथा ममत्व का नाश किये बिना दर्शन की प्राप्ति नहीं होती। संतों की वाणी आतमराम के दर्शन का बोध देती है। उनकी वाणी में वैराग्य-बोध, गुरु-महिमा, प्रेममय भक्ति, आगम-निगम की चर्चा तथा आत्मानुभूति के दर्शन होते हैं। सन्तों की वाणी में आध्यात्मिक अनुभूति के साथ अकृत्रिम सौंदर्य, वेधकता तथा आत्मबल होता है।

सन्तों ने अपनी वाणी में परमतत्व की आनंदमय अनुभूति का वर्णन करते हुए शून्य-शिखर, शब्द, सहज, सुरत निरत, त्रिवेणी (तरवेणी), तख्त, झालर, गगन-मंडल जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। कबीर की परम्परा में अनेक संतों ने उलटबांसियों का प्रयोग भी किया है।

संतों की इस काव्यगंगा में मात्र शुष्क वैराग्य ही नहीं है, इसमें आत्मा की समाधि, ब्रह्म का भेद पाने की उत्कटता तथा विरह-विकल गोपी की भक्ति-भावना के दर्शन भी होते हैं। संतों की वाणी में किसी पन्थ का प्रचार नहीं है, किसी विशेष देव की स्तुति नहीं है। इसमें शरणागत-भावना, मस्ती तथा आनन्द की अभिव्यक्ति है। संतों ने अपनी वाणी द्वारा समाज की रूढ़ियों का, स्वार्थ का, सांप्रदायिकता का बाह्याडम्बर तथा जातिभेद का विरोध किया था, तथा मूर्ति पूजा, तीर्थयात्रा एवं बाह्याचार के खोखलेपन को खुला कर दिया था।

विषय का विभागीकरण

गुजराती संतवाणी का श्री मकरन्द दवे ने तीन पाट से अवगाहन किया है। उन्होंने गुजरात में प्रवर्तित संतवाणी को महामार्ग, नाथयोग तथा संत-परम्परा की वाणी के रूप में समीक्षा की है। गुजरात की हिन्दी संतवाणी के विद्वान् डा० अंबाशंकर नागर ने विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सिद्धांत, अध्यात्म तथा समाज के रूप में तीन पक्षों का निरूपण किया है, जो अधिक समीचीन लगता है। मैंने "अध्यात्म" के स्थान पर इसे "उपासना" कहा है।

सिद्धांत—संतों ने अपनी वाणी में ब्रह्म, जीव, जगत् तथा माया का वर्णन किया है, तथा ब्रह्म एवं जीव के सम्बन्ध की सूचना भी दी है। कबीर ने भी किसी विशेष दर्शन का आधार लेकर अपना मत स्थिर नहीं किया था, तथापि उनकी विचारधारा पर विविध दर्शन तथा मत का प्रभाव माना जाता है। तमाम निर्गुण मत के संतों की वाणी में एकात्मकता है। इन संतों ने एक या विविध दर्शन या मतमतांतरों का अध्ययन नहीं किया, वरन् कबीरमत की परम्परा में वेद तथा दर्शनों का विरोध किया था। गुजरात के अनेक संतों की वाणी पर विद्वानों द्वारा शांकरमत तथा गौड़पादाचार्य के अजातवाद का प्रभाव देखा गया है, किन्तु वास्तव में इन संतों की वाणी पर उनके पूर्व की परम्परा के संतों की वाणी का ही प्रभाव है। उदाहरणार्थ हरि-गुरु-संत के अभेद की भावना किसी दर्शन की देन नहीं है; परम्परित संतवाणी की देन है।

ब्रह्म—ब्रह्म की सत्ता को सब के ऊपर माना गया। यह ब्रह्म परात्पर ब्रह्म है, जो सगुण तथा निर्गुण से भी ऊपर है। ये निराकार निर्लेप तथा निरन्जन हैं, किन्तु गुरुगम से हरि के उसी रूप में दर्शन होते हैं।

निराकार निर्लेप नारायण, लेखा बिना अलेखा।
रविदास सान ग्रही गुरु की, ज्यों का त्यों हरि देखा ॥—रविसाहब

भक्त-परम्परा की संत गौरीबाई ने भी ब्रह्म को इसी रूप में देखा है।[1]

माया-जगत्—संतों ने जगत् को माया या ब्रह्म की लीला कहा है। ब्रह्म तथा जीव के मध्य माया बाधा बनकर आती है। वह एक परदा है, जो ब्रह्म तथा जीव

---

१. रूप नहीं, रंग नहीं, वर्ण नहीं विभू,
निरंजन निराकार, नहीं माया-कामी।
'गवरी' गुरु ज्ञान प्रकाश, तिमिर भयो रि नाश,
भाग्यो भ्रम चिद् विलास, पूर्ण-पद पामी ॥

के मध्य पड़ा रहता है। संतों ने अपनी वाणी में माया को विभिन्न नाम दिये हैं। संत दादू ने माया को "विष की वेल", रुखड़जी ने "मृगजल", अखाजी ने "कांच का मन्दिर" तथा संत माधवदास ने इसे "ठगिनी" कहा है।

माया वेली विषफल लागे, ता परि भूल न भाई। —दादू
माया मृगजल कौन फंसे, मेरो मन चाहत कछु ओर। —रूखड़जी
कैवल्य सूरज तपे सदा, माया ते मन्दिर कांच। —अखो
ठगनी का संग तू छोड़ दे मूर्ख, ग्रही हस्त सत् संत समझावत है।—माधवदास

कुछ संतों ने माया को बाजी तथा ब्रह्म को बाजीगर की उपमा दी है। बाबादीन तथा संत चरणदास ने जगत्‌रूपी बाजी को झूठी कहा था।

कहत दीन दरवेश, सब माया का धन्धा।
मत साच कर मानो, झूठ है बाजी बन्दा॥ —दीनदरवेश
झूठी सबै जगत् की बाजी, ज्यों बाजीगर खेल।
नानाविध की वस्तु दिखावत, अंत रेत की रेत॥ —चरणदास

अखाजी ने इसे ब्रह्म की "लीला" कहा था। पुष्प एवं सुवास का रूपक देते हुए उन्होंने समझाया कि जैसे कली में सुवास होती है, किन्तु जब पुष्प होता है, तब सुवास फैलती है, तथा अंत में वह अपना मूल रूप धारण कर लेती है; इस प्रकार माया ब्रह्म में लीन है। ब्रह्म की जब मौज होती है, तब संसार की लीला के रूप में वह दीख पड़ती है। अंत में तो वह मूल रूप में मिल जाती है।

जो था वास कली में भरिया, तब मेहक्या, जब फूल प्रसरिया;
मौज मिटी, तब निजरूप धरिया। —अखो

सम्बन्ध—जीव तथा शिव में संतों ने अभेद देखा है। आत्मा ही परमात्मा है। निर्वाण साहब ने कहा कि प्रेम विरह को तथा विरह प्रियतम को जगाता है। प्रिय जीव को जगाता है, क्योंकि जो प्रियतम है, वही जीव है।

प्रेम जगावे विरहको, अरु विरह जगावे पीव।
पिव जगावे जीवको, वही जीव, वही पीव॥ —निर्वाणसाहब

आत्मा एवं परमात्मा के मिलन की प्रक्रिया का वर्णन कबीर साहब ने जिस रूप में किया था; परम्परा के संतों की वाणी में उसी रूप में इसका वर्णन मिलता है। कबीर ने कहा था।

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, तो मैं भी हो गई लाल॥ —कबीर

निर्वाण साहब ने लिखा है कि जोगन पियु खोजने निकली थी, वह पियु में समा गई।

जोगन पियु को खोजन निकसी, पियु में जाई समाई। —निर्वाण

कबीर-परम्परा के संत जीवणजी ने अन्तिम चरण मात्र को बदलकर कबीर साहब के ही शब्दों में इसकी अभिव्यक्ति की है।

नूरी मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखने में गई, जीवण भये गुलाल॥ —जीवणजी

आतम-राम—कबीर साहब ने कहा था कि "तेरा सांई तुझ में।" उन्होंने राम को "आतम राम" का नाम दिया था।

हिंदोलना तहां झूले आतमराम।
प्रेम-भक्ति हिंदोलना, सब संतन को विश्राम॥[1]

संतों ने सांई को घट-घट में देखा था। उन्होंने उपदेश में कहा, "तेरे साहब, तेरे घट में, क्यों भटकत है बांरा।"—तिलकदास

जिसने सांई को इस प्रकार घट-घट में देखा, है, उसके ऊपर हुर्रा बलि जाती है।

जाको सांइयां सब घट देखा, ताको जाऊं बलिहार। —हुर्रा

मीरां ने कहा था कि जिनके पति विदेश में बसते हैं, वे बार-बार पत्र लिखती हैं; मेरे पति तो मेरे मन में निवास करते हैं, अतः मैं निशि-दिन आती-जाती हूं।

जिनके पति परदेश बसत हैं, लिख लिख भेजत पाती।
मेरे पति मो मांही बसत हैं, निश-दिन आवत जाती॥

इस विषय में अन्य सन्तों के उल्लेख भी दर्शनीय हैं।

श्याम सनेही राम है, आपन ही में देख।
सब घट रमता राम है, नानाविधि के भेख॥ —श्यामदास

काशी गयां ने गोदावरी, जगन्नाथ डाकोर।
गुरु ए कह्यूं तारा अंतरमां, त्रिभुवन नो ठाकोर॥— धीरा भगत

उपासना—संभव है, कबीर साहब ने गुरु का महत्व नाथपंथियों से लिया हो, तथा राम का नाम स्वामी रामानन्द से प्राप्त किया हो, किन्तु उनकी उपासना उनकी अपनी है। कबीर ने समन्वयात्मक पद्धति को अपनाया है। यौगिक साधना

---

१. क० ग्रं०, पृ० ६४।

का आधार मात्र सहज-साधना के रूप में लिया है। उनकी परम्परा के संतों ने उपासना की इसी पद्धति को अपनाया था, जिसकी भूमिका "नामस्मरण" है।

गुरु—गुरु इस अगम्य मार्ग में सब कुछ है। वे ही सेवा हैं, वे ही पूजा हैं, वे ही सकल शास्त्रों की चावी हैं।

गुरु ही सेवा, गुरु ही पूजा, गुरु सम देव नहीं को दूजा।
गुरु ही सकल शास्त्र की कुंजी, गुरु सम वात सवे थे ऊंची ॥

—वस्ताजी

प्रीतम ने गुरु को गोविंद का रूप तथा त्रिलोक का सार कहा था।

तत्वसार त्रिलोक मां, गुरु गोविंद ज रूप।
आद्य अंत मध्य एक है, हरि-गुरु-संत स्वरूप ॥ —प्रीतम

राम—साधारणतः संतों ने राम-नाम को ही अपना लिया था। उन्होंने राम से प्रेम किया था।

लगी है मोहे रामनाम से प्रीत, मोहे मिल गये मन का मीत।

—वाराणसी

संतों का राम दशरथ-पुत्र राम नहीं है, वह अन्तर्यामी अविनाशी राम है। जगाजी कहते हैं कि सीतापति राम भी अविनाशी राम थे।

व्यापक राम चराचरो, राम अंतर्यामी।
तेहज राम सीतापति रे, जन जगाचा स्वामी ॥ —जगाजी

उनको वर्ण, रूप या रेखा नहीं, अतः दासी जीवण ने अलख से अर्ज की।

नावे वर्णावर्णमां, नावे रूपमां रेख।
शा वखाण करूं विठ्ठला, अरजी करू अलेख ॥ —जीवणदास

इसकी अधिक स्पष्टता करते हुए निरांत भगत ने कहा कि सब लोग जिस नाम का जाप जपते हैं, वह तो राजा राम है। जिसको कबीर ने जपा था, वही नाम अजर अमर है।

राम-नाम सब को जपे, सो तो नाम अमीर।
अजर अमर एक 'नाम' है, जाकु जपे कबीर ॥[1] —निरांत

नाम-स्मरण—संतों ने राम से अधिक महत्व उनके नाम को दिया था। अर्जुन ने कहा था कि जो नाम को पढ़ सके, वही पक्का पंडित है; "पढ़े नाम सो

---

१. प्रा० का० मा० ग्रं० १०, पृ० १२०।

पक्का पंडित।" जगाजी ने कहा था कि सब साधनाओं में श्रेष्ठ 'नामस्मरण' है।

सकल साधना में शिरोमणि नाम, जनहिं जगाकु एहज काम। —जगाजी

जीवणजी ने नाम को ही सब कुछ कहा है।

नाम ही सेवा, नाम ही पूजा, नाम बिना देव और न दूजा।
नाम लेत सेवा सब आई, नाम बिना नहीं आन उपाई॥

—जीवणजी

भीम साहब नाम पर वारी गये हैं। प्रभुदास नाम के दीवाने हो गये हैं।

सुन ले सुखमन नारी, मैं तो अजब 'नाम' पे वारी।

—भीमसाहब

मैं दीवाना नाम का, मोहे पिव-मिलन की आश।
अब तो मिलि हो जायके, जहां गुरु निर्मलदास॥ —प्रभुदास

सहज साधना :—संतवाणी में यौगिक प्रक्रिया का वर्णन है, किन्तु सभी संतों ने सहज-साधना का ही समर्थन किया है।

इंगला, पिंगला, सुसुम्ना, स्हेजे स्हेज घर पाया। —भाणसाहब

सहजे आवे ने सहजे जावे, सहज सुमिरन पावे। —कल्याणदास

हरिने पामवा सहु तप करे, अखो हरिमां मेले फरे। —अखाजी

समाज :—कबीर के अनुकरण में संतों ने अपनी वाणी द्वारा समाज-सुधार का गुरुतर कार्य किया है। उन्होंने वर्णाश्रम, हिन्दू-मुस्लिम भेद, मन्दिर, मूर्ति, मिथ्याचार आदि का घोर विरोध किया। समाज के दम्भ का पर्दाफाश किया। उन्होंने स्वयं अपने संत-समाज में प्रवर्तित दम्भ को भी खुला कर दिया।

दंभ :—

बाहिर संत कहावत सज्जन, भीतर मन दूजो बतलावे।
गुण न दोष लिये संग डोलत, छांड़ि आराध विरोध कमावे।
कोई को निंदत, कोई को वंदत, थाप-उथाप भूले भरमावे।
आतम-ब्रह्म चिन्या बिन मूरख, धनी को छोड़ के धक्का खावे।
लाल कहे सत्‌नाम सही कर, आपमें खोजते, आपमें पावे॥

—लालसाहब

गुजराती के प्राचीन कवि मांडण ने भी ऐसे संतों को "बगुला भगत" कहा था।

खोटां यतिनां टोलां मिल्यां, जिम वहु वगला ध्यानी मिल्या।

—मांडण

जातिभेद :—संतों ने जातिभेद को नहीं माना। अपनी वाणी में उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान के बीच भी भेद मानने का विरोध किया। बाबा दीन ने कहा कि दोनों समान हैं, तथा दोनों के ईश्वर एक हैं।

हिन्दू कहे सो हम वड़े, मुसलमान कहे हम।
एक मुंग दो फाड़ है, कुण ज्यादा कुण कम।
कुण ज्यादा, कुण कम, कभी करना नहीं कजिया।
एक भजत है राम, दूजा रहिमान से रंजिया।
कहत दीनदरवेश, दोय सरिता मिल सिंधु।
सब का साहब एक, एक ही मुस्लिम-हिन्दू॥ —दीन दरवेश

मूर्ति-मन्दिर—कबीर का मूर्ति-विरोध संतवाणी में परम्परित हुआ है। कबीर ने कहा था, "पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।" इस भाव को इसी रूप में मांडण ने अपनी वाणी में अभिव्यक्त किया है।

जु प्रतिमा पर दैवत जाण, पूजू गिरि, गिरिगण पाषाण। —मांडण

वापू साहब ने भी देहस्थित देव को छोड़ काष्ठ या पाषाण में उनको ढूंढ़ने वालों की आलोचना की है।

देहमां देव तेने नहि जाणो, जई काष्ठ पाषाण ने मानो। —वापू साहब

मिथ्याचार—संतवाणी में मिथ्याचार का कटु विरोध दृष्टिगोचर होता है। मांडण ने कहा था कि जिसके हृदय में सच्चा दर्द नहीं है, वह यदि एकादशी या रोजा रख ले, उसको इससे लाभ नहीं होगा।

दरद विराना सो नहीं जाना, पढ़ा पुराना का होजा।
ले तसल्ली नहीं खोजा मनकु, वसे निरंजन मन दोजा।
फसे नाह्यो, धायो विन थंभे, जप तप उठे चित्त खोजा।
कह मांडण सुन दोस्त पियारे, क्या एकादशी क्या रोजा। —मांडण

मीरां ने कहा कि हृदय में हरि का स्थान नहीं है, मात्र मुख से नाम लेता है।

हरिदे हरिको नाम न आवे, मुख ते मनिका गन। —मीरां

कबीर की साखी—"केशन कहा बिगारिया जो मूंडे सत बार" का रूपान्तर जीवणजी की वाणी में द्रष्टव्य है।

मन मूंड्यो नहीं जीवणा, तो सिर मुंडे का होय। —जीवणजी

मिथ्या ज्ञान—संतवाणी में पोथी-पंडित तथा शुष्कज्ञान का विरोध है। वेद तथा दर्शन का विरोध है।

पोथी पढ़ पढ़ पंडित हारे, मिला नहीं कछु सार।
चार वेद ढूंढे नहीं पावे, खट् दरसन के पार॥ —निर्मलदास

संतवाणी की साहित्यिकता

साधारणतः संत विशेष पढ़े-लिखे नहीं होते थे। इस प्रकार के ज्ञान को उन्होंने ज्ञान ही नहीं माना। पोथियों के ज्ञान का उन्होंने विरोध किया था।

पोथी वांचे प्रभु नहीं भजे, खोजो आप शरीर। —उका भगत

भाषा उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं, अतः उन्होंने इसकी अधिक चिंता नहीं की। इस विषय में अखाजी की एक पंक्ति प्रसिद्ध है। "भाषा ने शुं वलगे भूर, जे रणमां जीते ते शूर" अनेक संतों ने अपने इस अल्प ज्ञान या अज्ञान को स्वीकार किया है।

मैं शायर नहीं और कवि नहीं हूं। —काजी अनवर
पींगल की परख नहीं, जाणुं नहीं जाती।
अरजुन ज्युं अंध सुरता, शब्द में समाती॥ —अर्जुन

संतों का लक्ष्य परमात्मा की भक्ति था। अर्जुन ने कहा कि साहब तो सारी भाषाएँ जानते हैं।

गाया गुजराती, मेरी जबान जरा उरदु में आती।
साहेब तो सर्व बूझे, बोलत विलाती॥ —अर्जुन

यह होते हुए भी संतवाणी में साहित्यिकता का विरोध या अभाव नहीं है। गुजराती साहित्य के विद्वान् डॉ० जयन्त पाठक ने लिखा है कि कविता तथा तत्वज्ञान में विरोध नहीं है। समग्र सत्य-दर्शन का ध्येय रखा जाय तो दोनों का ध्येय जगत् का आकलन तथा वैविध्यपूर्ण सत्य का दर्शन कराने का है।[1]

संतवाणी की परख के लिए साहित्य की परम्परित कसौटियां काम नहीं दे सकतीं। संतवाणी की अपनी विशेषताएँ होती हैं, जो अन्य वाणी में नहीं होतीं। डा०. अंबाशंकर नागर ने संतवाणी को मणि तथा अन्य काव्य को कंचन की उपमा

---

१. आधुनिक कविता प्रवाह, (२०१९), पृ० ११८।

देकर इसे निम्न प्रकार समझाया है। "जिस निकष पर कंचन परखा जाता है, उस पर मणिका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु इससे मणि का अवमूल्यन सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उसे परखने के लिए निकस की आवश्यकता न रहकर विशेष दृष्टि की अपेक्षा रहती है।"[1]

संतवाणी का भावपक्ष

संतवाणी का भावपक्ष इसके कलापक्ष से अधिक प्रबल रहा है। इसका कारण यह है, कि मर्मी संतों की वाणी स्वानुभूत सत्य का ही वर्णन करती है। गुजराती संतों की वाणी का अनुशीलन करते हुए डॉ० अंबाशंकर नागर ने बताया था, कि "इसका प्रमुख रस शांतरस है, तथापि कहीं-कहीं वैराग्य-निरूपण के हेतु बीभत्स, प्रभु की महत्ता निरूपण के हेतु अद्‌भुत, नैराश्यपूर्ण वातावरण को शुद्ध करने के लिए उत्साहजन्य वीर एवं रौद्र आदि रसों के छींटे भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। "यह सत्य है कि सन्तवाणी में अन्य रस के दृष्टांत प्राप्त होते हैं, किन्तु सन्त-वाणी का प्रमुख अवलंबन प्रेम-भाव है। सन्तों ने दाम्पत्य-भाव में अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। मूल में यह सूक्ष्म भाव है, किन्तु कहीं-कहीं स्थूल रूप में इसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी हुई है। अतः इसे शृङ्गार रस में समाहित नहीं मानना चाहिये। इसका नाम है; "हरिरस"। इसमें भी वही नशा है, वही मस्ती है, वही संयोग तथा वियोग की भावना है, जो शृङ्गार-रस में है। प्रेम का यह भाव चिरंजीवी है, प्रेम का रङ्ग कभी फीका नहीं होता। इस विषय पर बंकादास की उक्ति द्रष्टव्य है।

प्रेम रंग मत होवत फीको, चाहे युग बीत जाई।
आतम छूटे, नेह न छूटे, बेर बेर मिल जाई॥ —बंकादास

संत-वाणी की यह परम्परा वर्तमान गुजराती कवि में संरक्षित है।

ज्ञान-ध्यान-तप कछु नहीं जानूं, प्रेम-पदारथ सहज पीछानूं।—उशनस्

प्रेम की इस सनातन भावना का आधार लेकर सन्तों ने अपनी वाणी में विरह की व्यथा के साथ मिलन के आनंद की अभिव्यक्ति की है। परब्रह्म की पहचान से संत अखा के दिल में आनन्द की व्याप्ति हो गई थी।

आज आनन्द म्हारा अंगमां उपन्यो, परब्रह्मनी मुने भाल लागी। —अखो

घर आये प्रियतम को मोरार साहब रात रुक जाने को कहते हैं।

---

1. गु० सं० हि० वा०, सं० डा० अंबाशंकर नागर, पृ० २१।

आज पिया मत जैहो रैन संग, मैं पाऊं सुख सैन ।
दास मोरार मिलन पियुका, मिल गये चारों नैन ।। —मोरारसाहब

साईं-मिलन का आनन्द अनिर्वचनीय है। इसके वर्णन में अपनी विवशता का निर्वाण साहब निर्देश करते हैं।

साईं-मिलन के दिन को, कैसे कहहु बखान ।
रसना बैन न आवहीं, बड़े अजान निरवान ।। —निर्वाण साहब

साहब के दर्शन बिना संत का हृदय तड़पता है। उनकी वाणी में उन्होंने इस तड़पन की तुलना जल से बिछुड़ी मछली से की है।

बारा बरस रोई बितिया, अजहु न आये अविनाशी ।
जल बिछुरे मीन जीवत नाहीं, पिव-दरसन की प्यासी ।—मेरमदास

मीरां ने अपनी विरहावस्था की "जल बिन बेली" से तुलना की है।

श्याम बिना जियड़ो मुरझावे, जैसे जल बिन बेली ।
बहुत दिन बिते, अजहु न आये, लग रही तालावेली ।। —मीरां

मोरार साहब को विरहानल सताता है, नयन-नासिका बहते हैं, प्यास से कंठ रुँधा जाता है, व्याधि उनको मुख ग्रास बनाने को प्रस्तुत है।

नयन-नासिका बहत पनैया, कंठ रुंधाये प्यासा ।
ये विरहानल बहुत सतावे, व्याधि रहे मुख ग्रासा ।।—मोरारसाहब

संत का शब्द—सन्त का "शब्द" विशेष महत्व रखता है। सन्त स्यामदास ने कहा, "शब्द में खोज विश्राम प्यारे।" इससे मन के सारे विकार मिट जाते हैं।

जबसे शब्द दियो गुरु सुमिरन, मिट गये सकल विकार !—निर्मलदास

नडियाद के संत सन्तराम ने कबीर की आधी साखी को कोटि ग्रंथों के बराबर कहा था", आधी साखी कबीर की कोटि ग्रंथ करी जाण।"

डॉ० अम्बाशंकर नागर ने सन्तों को टकसाल की उपमा देते हुए कहा कि "सन्त-टकसाल का प्रत्येक शब्द अशर्फी है, जिसे देश के एक छोर से दूसरे छोर तक जहाँ भी चाहिये भुना लीजिये । सन्तवाणी की ये अशर्फियां राष्ट्र की अमूल्य सम्पदा हैं।"

काव्यशास्त्र के विषय में अपना अज्ञान व्यक्त करते हुए भी सन्त-कवि अर्जुन का अपनी वाणी की शक्ति के विषय में उल्लेख द्रष्टव्य है।

जेवुं राम-लखन नुं वाण, एवो शुरवीर मारो बाण।
तन मस्तक मां ताकी मारे, फाटे पर्वत पहाण।
फाटी-टूटी कटका थईने, थाशे कच्चर घाण॥ —अर्जुन

कलापक्ष

सन्त अपने स्वानुभूत सत्य की सहज अभिव्यक्ति करता है, अतः काव्यकला के उपादान स्वतः व्यक्त होते रहते हैं। इस विषय में डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल का मत उल्लेखनीय है। "गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी" के "सम्पादकीय" में उन्होंने लिखा है, "इन सन्तों की वाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है, कि जब कोई कवि या द्रष्टा सैद्धान्तिक या साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर स्वानुभूत सत्य को सहज रूप में अभिव्यक्त करता है, तब उसकी वाणी में जीवन की गम्भीरता और व्यापकता पूर्ण अर्थ गौरव के साथ व्यंजित होती है तथा अभिव्यक्ति के सभी उपादान-लय, तुक, बिंब, प्रतीक, अलंकार, छंद आदि—अनुभूति की प्रकृत माँग के अनुरूप स्वतः समाहित हो जाते हैं।

काव्य-प्रकार—सन्तों ने अपनी वाणी की अभिव्यक्ति में तमाम प्रचलित काव्य-प्रकारों का उपयोग किया था। कबीर-नामदेव आदि सन्तों की परम्परा में सन्तों ने निम्नांकित काव्य प्रकारों का प्रयोग किया था। कक्का, वार, तिथि, माव, बारहमासा, प्रभातिया, आरति, होरी, गजल, फागु, टप्पा, ख्याल, ठुमरी, भजन, पद, चाबखा, साखी, सबद, रमैनी, जकडी, बावनी, गीत, आख्यान, प्रश्नोत्तरी, भक्तमाल तथा परिचयी।

भाषा—सन्तों की भाषा पर गुजराती, राजस्थानी, व्रज, पंजाबी आदि भाषाओं का प्रभाव है। सन्तों ने अपनी वाणी का शरीर खड़ी बोली का रखा, तथा उस पर प्रादेशिक भाषा के शब्द, प्रत्यय आदि के अलंकार चढ़ाते रहे। गुजराती सन्तों की वाणी पर गुजराती का प्रभाव स्वाभाविक था। मुस्लिम शासन के कारण अरबी-फारसी का विशेष प्रचलन था, अतः इसका प्रभाव भी पड़ा था।

स्वयं कबीर साहब की वाणी में गुजराती का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। बीजक की प्रथम साखी में "जहिया" "तहिया" तथा "हता" का प्रयोग द्रष्टव्य है।

जहिया जन्म मुक्त हता, तहिया हता न कोई।

"अलह लहंता भेद छे, कछु कछु पायो भेद।"[1] में गुजराती "छे" का प्रयोग हुआ है। सन्त भ्रमण करते रहते हैं, अतः अन्य भाषाओं में भी काव्य-रचनाएँ मिलती हैं। ज्ञानीजी, निर्वाण साहब, जगाजी जैसे कतिपय सन्त अन्य प्रदेश में से

---

१. क० ग्रं०, पृ० ३१०।

आकर गुजरात में बस गये थे, इसलिए उनकी वाणी पर उनकी मातृभाषा का प्रभाव सहज ही होता था। "जन जगा चा स्वामी।" में का के स्थान पर "चा" प्रत्यय द्रष्टव्य है। संतवाणी में अनेक भाषाओं के मिश्रण के कारण इसे "सधुक्कड़ी" नाम दिया गया है। उस काल में सूरत में अरबी-फारसी का प्रभाव सविशेष था। सूरत के सन्त निर्वाण साहब की वाणी पर इसका प्रभाव द्रष्टव्य है।

दीदार की प्यास में दीवाना हो गये, नूरे-नजर को नाहीं देखा।
हरदम खोजत दरवेश डाले, तेरी सूरत को नाहीं देखा।
अब तो कयामत आ गई, साहेब मोरे पूछत लेखा।
'निरवान' के सांई को पेखे बिना, अवधू तेराही बिरथ भेखा॥

—निर्वाण साहब

कहावत-मुहावरा—सन्तों ने अपनी वाणी में लोक-भाषा का प्रयोग किया है, अतः जनजीवन में प्रचलित लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे सहज ही उनकी वाणी में आ गये हैं। "नागर कानी, भरिया पानी" जैसे अनेक प्रयोग संतवाणी में हैं।

किड़ि कण भेगा करे, तीतर भरे टोटा।
खांसवा के जल मांही, लाख भरे लोटा॥ —अर्जुन

छंद—सन्तों ने अपनी वाणी में चौपाई, दोहा, भुजंगी, झूलना, कुंडलिया, कवित्त, छप्पय, लावणी जैसे अनेक छंदों का उपयोग किया है।

साखी :—

आद्य अंत जाणुं नहीं, नहीं मध्यनु काम।
नाम-प्रताप पाषाण तरे, सो 'जीवण' सुमरा राम॥ —जीवणजी

चौपाई :—

तब ज्ञानी मन किया विचारा, रामकृष्ण सम कबीर निरधारा।
'रामकबीर' यह नाम ठहराया, सब संतन मिली एही गाया॥[1]

—श्यामदास

रेख्ता :—

चेत वे चेत अचेत क्यों आंधरो, आज अरु काल में उठ जाई।
मोह के सोह में सार नहीं सुध की, अंध के धंध में जन्म जाई।

---

१. उ० ध० प० र० भा०, पृ० २०१।

कालकु मार कर, कुबुद्धि को रोधकर, भरम के कोटकु भाग भाई ।
सबर कर, सबर कर खोज ले नाम को, याद कर 'शब्द' संभल भाई ।।[1]

—लालदास

भूलना :—

तेरा मेरा तू कहत प्यारे । यहाँ तेरा कौन है भाई ।
माता-पिता बांधव भगिनी, सुतदास न तेरे संग आई ।
अपनी करनी सोई संग चले, नेकां और बदी को देख भाई ।
समर्थ कहत कुछ बंदगी किय ले, जामे नफा कुछ और पाई ।।

—समर्थदास

कवित्त :—

गुरुजन को विवेक, दिखाऊँ चरित एक;
संत को है ऐसो टेक, एक पायो नाम है ।
कबीर है निःसंदेह, मालिका को मेर एह;
तनमें होवे उजेह, खेह जाने दाम है ।
संत-साहेब का मत पाई, तीन लोक गत;
खिले तन षड्रत, सत्‌नाम राम है ।
ताको मैं चरित गाऊं, कबीर पे बल जाऊं;
साहेब के नाम नाऊं, आउको विश्राम है ।।[2]

—मुकुन्द गुगली

कुंडलिया :—

पापी पाखंडी बहुत है, शोध्या मिले न संत ।
लोभी धुतारा दिसत है, तस्कर चोरी चंत ।
तस्कर चोरी चंत, फिरत ही रैन हराया ।
परत्रिया परधन, ढूंढ़त ही खेत पराया ।
कहे माधवदास, झूठ ही जालीम थापी ।
शोध्या मिले न संत, बहुत पाखंडी पापी ।। —माधवदास

जकड़ी :—

प्रेम खेत का बना बगिचा, नाम धणी का न बोया ।
कह मांडण सून दोस्त पियारे, क्या जागा फिर क्या सोया ।। —मांडण

---

१. संतवाणी अंक—कल्याण, पृ० ४५३ ;
२. गु० सं० हि० सा०—सं० डा० अंबाशंकर नागर, पृ० १०० ।

अलंकार—सन्तों ने प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु उपमा, रूपक तथा दृष्टांत का प्रयोग समझाने की दृष्टि के कारण अधिक हुआ है। "अनुप्रास" किसी भी कवि में सहज मिल जाता है।

उपमा :—

सिस धरती सा चाहिये, गुरु जैसा आकाश।
वे बरसें, ये झीलही, निपजे सकल विलास॥

रूपक :—

सत्य-नाम चढने की सीडी, नहीं पोथी, नहीं पाना।
नैन-कमल निरखो त्योने, सुरत - नुरत - निशाना॥

—अरजण भगत

राम स्वरूपी कामधेन, संत स्वरूपी स्थान।
शब्द स्वरूपी दूधका, जन ज्ञानी कीजे पान॥ —ज्ञानीजी

सांग रूपक—रवि साहब ने शरीर को चरखे की उपमा देकर सांग रूपक लिखा है।

राम कोणे बनाव्यो चरखो, एना घटनारा ने परखो।
आवे ने जावे ने बोलावे, ज्यां जाऊँ त्यां सरखो।
देवल देवल करे हकोरा, पारख थई ने परखो॥ —रविसाहब

सन्त दयालदास ने आत्मा तथा सुरति के विवाह का सांग रूपक लिखा है।

पंचरंगी घोडली, प्रेमतणा पलाण।
लक्ष लगाम निज नामकी, बेठा सोहंग चतुर सुजाण॥ —दयालदास

दृष्टांत :—

जैसे सर्प डसत है किनको, सो कहे लींबरस मीठा।
तन अहंकार लग्यो है जाको, तिन आतम हीन दीठा॥ —देवा भगत
मच्छी खाडी परहरी किया समुदां वास।
तहां ज्ञानी निरभै भया, काल जाल नहीं फांस॥ —ज्ञानीजी
मेंहदी केरे पातज्यूं, लाली लखी न जाय। —श्यामदास

अपन्हुति :—

नारी नहीं ए नागिणी, नर मेडक निरधार।
कहे प्रीतम कैसे ग्रसे, लेखा नहीं लगार॥ —प्रीतमदास

कारण माला :—

बीज के अंदर झाड है, झाड के अंदर फल।
फल के अंदर बीज है, पानफल पड डाल॥ —अनवर

संगीतात्मकता

सन्तों ने पद-रचना किसी-न-किसी राग में की थी। जिस प्रकार अन्य ज्ञान उनको सत्संग से प्राप्त हुआ था, इसी प्रकार संगीत का ज्ञान भी उनको सत्संग तथा भजन-कीर्तन से प्राप्त हुआ था। सन्तों के ये पद भजनों में गाये जाते थे। कभी-कभी सन्त स्वयं अपनी रचना को गाते थे। गुजरात में रामकबीर सम्प्रदाय में संगीत को विशेष स्थान दिया गया है। समय-समय पर गाने के विभिन्न रागों में पद लिखे गये हैं, तथा उनके भजन-संग्रहों में इस प्रकार विभिन्न रागों में गाये जाने वाले पदों को संकलित किया गया है। उनके एक भजन-संग्रह—'सदा-धर्म-पंचरत्न माला'—में ही विभिन्न सन्तों के ४६८ पद निम्नांकित रागों में विभक्त कर संकलित किये हैं गये।

सामेरी केदारा—७, विहाग—१२, रामग्री—१४, पंचम—२४, प्रभात—२७, तिथूडो—३०, भैरव—३०, भूपाल—१६, विभास—३, वेलावल—३६, धनाश्री—३६, टोडी—१४, सारंग—४५, मालगोडी—५, संझागोडी—४५, कल्याण—२६, गोड—८, मारु—१४, सोरठ—११, केदारो—१३, केहरा—१५, बिहाग—१२ तथा आसावरी—२०।

यद्यपि इन पदों में कबीरदास, सूरदास तथा तुलसीदास के पद प्रचुर मात्रा में संगृहीत हैं, किन्तु अन्य सन्तों के पद भी हैं तथा इससे इस परम्परा के सन्तों की संगीत-प्रियता की झाँकी मिलती है। रामकबीर-सम्प्रदाय के सन्तों की परम्परा मूल कबीर के शिष्य ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ की परम्परा है।

ज्ञानीजी की परम्परा के शिष्य जीवणजी ने राग—आसावरी, रामग्री, बसंत, कल्याण, केदारो, गोडी, सामेरी, भैरव, प्रभाती, धन्याश्री तथा नट नारायण में ३५ पदों की रचना की थी।

सूरत की लोपनदासी परम्परा के अनेक सन्त कवियों ने विभिन्न रागों में रचनाएँ की थीं। सन्त दादू के शिष्य बखाजी ने अनेक रागों में रचनाएँ की हैं, जो उस मन्दिर के "योगपाठ" ग्रंथ में संकलित हैं।

गुजरात में संतवाणी की परम्परा

गुजरात के संतों की वाणी सामान्यतः कबीर-नामदेव की वाणी की परम्परा में लिखी गई है। उनमें से निर्गुण-परम्परा के संतों ने कबीरवाणी के भाव, विचार,

शैली तथा अभिव्यक्ति का अनुकरण तथा अनुसरण किया है। ऐसे भी अनेक दृष्टान्त हैं, जिनमें कबीरवाणी के शब्दों की रचना के कुछ परिवर्तन के साथ ले लिया है। एक दृष्टान्त निम्नांकित है।

कबीर—लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल॥

जीवणजी—नूरी मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई, जीवण भये गुलाल॥

कबीरवाणी की परम्परा

कबीरवाणी के किसी एक पद का प्रतिपाद्य विषय यथारूप गुजरात के संतों की वाणी में अभिव्यक्त हुआ है। कबीर के एक निम्नांकित पद का रूपांतर अखाजी तथा धीरा भगत की वाणी में दर्शनीय है।

कबीर—पंडित वाद वदन्ते झूठा।
राम कह्या दुनिया गति पावै, खांड कह्या मुख मीठा।
पावक कह्या पांव जो दाझै, जल कहीं तृषा बुझाई।
भोजन कह्या भूख जे भाजै, तो सब कोई तिरि जाई।
नर के साथ सुवा हरि बोलै, हरि-परताप न जानै।
जो कबहु उडि जाय जंगल में, बहुरि न सुरतै आनै।
साची प्रीति विषै-मायासूं, हरि भगतिनि सूं हासी।
कहे कबीर प्रेम नहीं उपज्यो, बांध्यो जमपुरि जासी॥[1]

अखाजी—समजण विनारे सुख नहीं तुजने रे, वस्तुगति केम करी ओलखाय॥
रवि रवि करतां रे रजनी नहीं मटे, अंधारुं रवि उग्या पछी जाय।
हृदयमां एम उगे रे, रवि गुरु ज्ञाननो, थनारुं जे होय ते थाय।
जल जल करतां रे तृषा तारी नहीं टले, अन्न अन्न कहेतां भागे नहीं भूख।
प्रेम रस पीतां तृष्णा तरत टले, एम महाज्ञानीयो वदे छे मुख॥
दस मण अग्निरे लखिये कागल परे, एने लई रूमां जो आलेपाय।
एनी उष्णताए रू नथी दाझतुं, रति एक साचो पड्ये प्रले थाय॥[2]

धीरा भगत—आत्मा शोध्या विनारे, जे जन साधन साधे।
साचे प्रभूना रे, झूठ यश केम प्रभूना वाधे॥

---

१. क० ग्रं० (सं० २०११), पृ० १०१।
२. संत केरी वाणी, पृ० ६०।

रविरवि रटत रजनी मटत नहीं, एक तिमिर नव जांय।
आत्मा अर्क उग्यो रे अंतरमां, त्यारे अजवालुं थाय।
भोजन भोजन भाखे रे, मांगे ना भूख बिना खाधे।।
मीठा मेवा वखाणे मुख थी, तेनो स्वाद न आवे लगार।
जल जल भखे तृषा न छीपे, पुकारे वार हजार।
अंधारे वस्तु शोधे रे, अजवालां विना क्यांथी लाधे?[१]

कबीर वाणी के अनेक तत्वों की परम्पराएँ संतों की वाणी प्रवर्तमान हैं। कबीर के प्याला तथा उलटबांसी, उनका अगम्य देश तथा हरि-गुरु-संत के ऐक्य की उनकी भावना, मरजीवा, बावन का विस्तार, बूंद-समन्दर का रूपक, तथा चुनरी का रूपक संतवाणी में परम्परित होता चला आया है।

मरजीवा

समन्दर के गहरे पानी में जाकर गोता लगाने वाले गोताखोर को "मरजीवा" कहते हैं। डॉ० सत्येन्द्र का मत है, कि "मृत्युंजय" से "मरजीवा" शब्द बना है। उनका कहना है, कि कबीर ने "मरजीवा" बनने का आदेश दिया था।[२] डॉ० रांगेय राघव ने "लोई का ताना" में कबीर के जीवन-चरित्र के आलेखन में "मरजीवा" नाम का एक अध्याय लिखा है। इसमें कबीर कहते हैं।

मैं मरजीवा समुद्रका, डूबकी मारी एक।
मूंडो लाया ज्ञानकी, जामें वस्तु अनेक।

डूबकी मारी समुद्र में, निकसा जाय अकास।
गगन मण्डल में घर किया, हीरा पाया दास।
जो मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहो कब पाइहो, पूरन परमानन्द।।[३]

अन्य संतों की वाणी में "मरजीवा" शब्द की परम्परा निम्नांकित है।

कबीर कसौटी रामकी, खोटा टिके न कोय।
राम-कसौटी सो टिके, जो मरजीवा होय।।[४]—कबीर साहब

१. प० प० सं०, पृ० १६१।
२. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतांत्रिक अध्ययन, पृ० ११५।
३. लोई का ताना, पृ० ६०।
४. क० ग्रं०, पृ० २५०।

बावन-बाहर

ब्रह्म अवर्णनीय तथा अनिर्वचनीय है, इसलिए उनका विवरण निगम ने "नेति-नेति" द्वारा दिया था। जिसका वर्णन हो सकता है, वह ब्रह्म की लीला या संसार है। ३४ व्यंजन में २ संयुक्ताक्षर तथा १६ स्वर मिलाने पर ५२ अक्षर होते हैं, जिनकी सहायता से सांसारिक ज्ञान के ग्रन्थ लिखे गये हैं, इसलिए कबीर साहब ने इसे "बावन अच्छर का विस्तारा" कहा था। कबीर के नाम से "बावन अखरी" तथा "चौंतिसा" प्रसिद्ध हैं। इन दोनों की परम्पराएँ संतों की वाणी में प्राप्त होती हैं।

ब्रह्म का वर्णन इन बावन अक्षरों से नहीं हो पाता, इसलिए उनको "बावन के बाहर" कहा गया है। गुजरात के संतों ने ब्रह्म को "बावन-बाहेरो" कहा है।

बावन आखिर लोक भी, रस कुछ इनहि मांहि। —कबीर
माधवदास भये मतवाला, मिल गये 'बावन बहारो'। —माधवदास
(संत माधवदास, पृ० ३५)

गगनमंडलमां गुप्त गेबी 'बावन बाहर' सोही बोले। —रविसाहब
(संतवाणी, पृ० १६६)

बावननो सघलो विस्तार, अखा त्रेपनमो जाणे पार। —अखो
(अखाना छप्पा, पृ० ७२)

बावन बाहेरो जीवणा, डोले सरे न काज। —जीवणजी
(उ० घ० प० र० मा०, पृ० १२०)

अर्जुन वाणी उचरे, बावन घर बहारा हो। —अर्जुन
(गु० सं० हि० वा० (अहमदाबाद), पृ० ४१७)

बावन अक्षर बाहरी, धनुर्विद्या रही एक।
लालदास कहे ताहिको, संत जाणे विवेक॥ —लालदास
(संतोनी वाणी, पृ० ४६)

हे कोई अलख आराधो, हे बोले बावननी बहार।
निगम 'नेति' कहे छे, वाणीनी पार रे॥ —धना भगत
(प० प० सं०, पृ० १८७)

बोलनहारो रह्यो छे बावन-बाहेरो,
प्रगट करीने गुरु आपे प्रतीत जो॥ —होथु
(प० प० सं०, पृ० १२५)

आगम (रमैनी) तथा प्याला की परम्परा

आगम तथा उनका "सायवा"—सौराष्ट्र में कबीर साहब की रमैनी की परम्परा संतों की वाणी में "आगम" नाम से चली है। आगम में आराध्य को [illegible]-

'सायबा' कहते हैं। यह "सायबा" शब्द "साहब" से बना है। सौराष्ट्र में खीमड़ा कोटवाल के आगम प्रसिद्ध हैं। आगम दो प्रकार के हैं; एक में सृष्टि की उत्पत्ति की कथा है, दूसरे में भविष्य-कथन है। दसवां कल्की अवतार "निष्कलंक" नाम से आगम-वाणी के भविष्य कथन का मूल आधार बन गया है।[1]

प्याला—संतों की वाणी में कबीर साहब के "प्याला" की परम्परा भी चली है। संतों की वाणी प्रेमरस का "पियाला" है; संत उसे पीते हैं, तथा मस्ती तथा नशे में रहते हैं। इसका मूल उल्लेख कबीर वाणी में है।

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल।
कबीर प्याले प्रेम के, भरि भरि पिवै रसाल ॥ —कबीर

"प्याले" का उल्लेख अनेक संतों की वाणी में है, किन्तु सौराष्ट्र में "प्याले" एक भजन का प्रकार है, जिसमें पीने की ध्वनि के शब्द आते हैं।

हे जी पियाला,
प्रेमरस का भरपूर पियाला-हरिरस का भरपूर पीयो कोई…
घटाक घटाक घटाक घटाक पीओ कोई।
लागी रे संतो ! सद्‌गुरु वचनों की चोटुं लागी,
हरिगुरु वचनों की चोटुं लागी,
चोटुं कलेजे में खटाक खटाक खटाक खटाक। —कबीर

"प्याला पिलाने" का अर्थ दीक्षा देना भी होता है, कण्ठी बांधने या मन्त्र फूंकने के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। सौराष्ट्र में रविसाहब, त्रिकम साहब, लक्ष्मी साहब (लखीराम) तथा दासी जीवण के "प्याले" प्रसिद्ध हैं। लखीराम के "प्याले" का एक अंश निम्नांकित है।

प्यालो मने पायो रे सद्‌गुरुए म्हारे करुणा करी।
आ देहमां दरशायो रे, सरोवर आपे हरि ॥
पहेलो प्यालो लखीरामनो, जुगते पायो जोई।
कूंची बतावी आ देह तणी, वहाले कला बतावी कोई ॥[2]
—लक्ष्मीसाहब

मेरी मरदां पियो पियाला, अर्जुन छक्कर छक्का। —अर्जुन
प्रेम-पियाला जो पिवे, सिस दच्छिना देई।
लोभी सिस न दे सके, प्रेम का नाम बिगोई ॥ —निर्वाण साहब

---

१. 'आपणी लोक संस्कृति'—श्री जयमल्ल परमार, पृ० १७४।
२. प० प० सं०, पृ० ३२५।

मैं दासी सब संतन केरी, पाऊं पियाला अविनाशी।
खोज खबर तू जो दिल भीतर, रोम रोम में ले लागी॥
—दासी जीवण

पिया पियाला प्रेमका रे, और रंग न सोहाय। —मीरां

मतवाला कोई प्याला भर पीवे। —शोभाराम

"हरि-गुरु-सन्त" की परम्परा

सुमिरन सेवा बंदगी, और बड़े सत्संग।
चारों पदारथ पाइया, साधु निरवान के संग॥ —निर्वाण साहब

हरि-गुरु-संत एक करी जाण्या, आतम न जाण्या दूजा॥
—रविसाहब

'वंदो हरि-गुरु-संत' ने, वही सब शास्त्र प्रमाण। —गंग साहब

'हरि-गुरु-संत' नी जेने किरपायुं थाय।
दास धनो के, छे रे, हीरे हीरो विधाय॥ —धना भगत

लिजे हरि-गुरु-संत नी ओथ, चोट लागे नहीं जम कालनी रे।
—रतनदास

सीताराम ने भजीने ल्हावो लीजिये रे।
संग 'हरि-गुरु-संत' नो कीजिये रे॥ —गोविंदराम

हरि-गुरु-संत कृपा करे, हरे सकल संदेह।
परम पुरुष परमातमा, तासु लागे स्नेह॥ —निरांत

ते आरत मु उरमां धारो, तो सेवो हरि-गुरु-संत ने। —अखो

वह देश

कबीर ने "अगम्य-देश" का उल्लेख किया है, संतों ने अपनी वाणी में अनेक प्रकार से इसका उल्लेख किया है।

हम ज्ञानी उस देशके, जहाँ झलमल झलमल ज्योत। —ज्ञानीजी

हम वासी उस देशके, जात बरन कुल नाहीं।
शब्द मिलावा हो रहा, देह मिलावा नाहीं॥ —निर्मलदास

मैं बिरहिन सुहागिन बनके, चलही पियुके देस। —प्यारेदास

चल अगमवा देस, काल देख्यां डरां।
भरा प्रेम का होज, हंस केल्यां करां॥ —मीरां

संतवाणी में इसे वह देश, वह घर, साजन का देश, मरजीवा या संतों का देश कहकर इसका वर्णन किया गया है।

बूंद-समन्दर का रूपक

बूंद जाई सरवर में मिल गई, भेद भाव नहीं रहना।

—गोपालदास

साहब समुन्दर जाणीए, में समन्दर की मोज।
मौज समुन्दर में मिल गई, कोई न पाया खोज ।। —अनवर

ज्यूं सिंधु में होत है, लहरी अनन्त अपार।
कह प्रीतम यूं ब्रह्म में, उपजे सब संसार ।। —प्रीतम

गूंगे की साकर

गूंगे केरी सर्करा खावे और मुस्काय। —कबीर साहब
गूंगे साकर गली गलामाँ, समझ समझ मुस्काय। —रविसाहब
तू क्या जाने बावरी, वो गूंगे की सैन। —निर्मलदास
गुंगा नी सानमां सामो समजे नहीं,
अद बद मुठडी रही रे बांधी। —अखो

चुनरी

एक "चुनरी" का रूपक-काव्य कवीर की परम्परा में मूलदास ने लिखा था।[1]

व्हाले चुनरी ओढाडी पाका रंगनी, छेडे आतमरामना रंग।

—गोपालदास

शरीर को चुनरी का रूपक देकर कबीर ने कुछ पद लिखे हैं। इसकी परम्परा में नरसिंह मेहता का भी एक पद मिलता है। संत पीपा का भी "चुनरी" पर एक पद है।

उलटवांसी

तरवर देखा मूल बीन, अवर रह्या निरधार।
आद्य अन्त मध्य नहीं, साखा पान अपार ।। —ज्ञानीजी
सास बहुके सोवे जाई, तो पुत्र माता जाई। —श्यामदास
पांख बिना पंखी भमे, बे बच्चां गोद में लई, अद्धर रमे।
थान बिना जेने दूध झरे, मुख बिना बच्चां पीए ।।

—रविसाहब

बापे बेटा जाइया, बेटे जाया बाप।
नेह कर्मी की रीत है, खोजो अपोआप ।। —वस्ताजी

---

१. 'सर्वे संत उद्धारण त्रुंदडी, मांही आतमरामनो अंक। —मूलदास

एक अचंबो एवो रे देख्यो, अर्क बिना ज्यों उजियारा।
बिन बादल बिजली चमके, जलधर बिन बरसे धारा ॥
—गणपतराम

बिना तोपसे भया भड़ाका, कीडी कुंजर लड़ता है।
पंखी फंद में पड़्यो पारधी, शिकार सिंहकु जमता है ॥ —अर्जुन
बिन करताल बजत पखवाज है, अनहद की झंकार।
बिन सूर राग छत्तिस आलापे, रोम-रोम रणकार ॥ —मीरां

सन्तवाणी की विशेषताएँ

संतों के लक्षण : सगुण-निर्गुण—कतिपय संतों की वाणी में निर्गुण के साथ सगुण-भक्ति के उल्लेख हैं, क्योंकि ये संत पहले सगुण भक्त थे और पीछे से निर्गुण-मतवादी हुए थे। संतराम ने अपनी वाणी में इसको स्वीकार किया है।

मैं तो मेरु चढिया, धजा फरूखा देखा।
सद्गुरु मुझे आन मिले, तब लेखा हुआ अलेखा। —संतराम

नम्रता—कबीर साहब ने अपने को राम का कुत्ता कहा था। उनकी परम्परा में संतों की नम्रता का यह उल्लेख द्रष्टव्य है।

हे जुगन के दास हुए तुम्हारे दासन के दास।
फिर फिर मैं दास हूं, जैसे हंस सरोवर पास ॥ —संतराम

शांति :—

शांति पमाडे, तेने तो संत कहीये।
तेना दासना दास थई रहीये ॥ —बापू साहब

राम-नाम :—

दिलमें रखता दीनता, मुखमें रखता राम।
अर्जुन जपता नामकु, वाका मैं हूं गुलाम ॥ —अर्जुन

संत-मिलन :—

वो दिन कबहु न बिसरे, सगा हमारा साथ।
मगन बिचारा साधका, जाका मता अगाध ॥ —मगनलाल

शाक्त-विरोध :

साकुत नर नो संग न करीए, मरिए महाविष खाई। —प्रीतम

नारी विरोध—उपासना के क्षेत्र में संतों ने नारी को बाधक माना है। यह नारी विरोध कबीर-परम्परित है। संत मापदान ने नारी को कनक की छुरी कहा था।

कनक छुरी-सी कामिनी, जोबन फना-मुकाम।
अवधू हुई हम भाग चले, जहाँ सद्गुरु-धाम॥ —माधवदास

नारी के विषय में कबीर ने लिखा था; "जो नारी की छांई पड़े, अंधे होवे भुजंग।" कबीर के इसी उल्लेख का आधार लेकर निर्वाण साहब ने इस विषय पर एक कुंडलिया लिखी है।

यही नारी की छायसे, अंधे होत भूजंग।
गाफिल तेरी कौन गत, नित नारीके संग।
नित नारी के संग, अंग तेरा जरी जावे।
हाड चाम की देह, देखत जाय विलाये।
कहत सांई निरवाण, फंद में काहे फंसाये।
अंधे होत भूजंग, पडत नारी की छांये॥ —निर्वाण साहब

मस्ती :—जिसकी चाह मिट गई है, ऐसे संत को कबीर ने बादशाहों का बादशाह कहा था। कबीर की यह फक्कड़ाना मस्ती संतों की वाणी में परम्परित हुई है।

मैं अलमस्त फकीरा संतो, मैं अलमस्त फकीरा।
मैं देवन के देव कहाऊं, मैं पीरन के पीरा॥ —भाणुदास
यारी लग गई नामसे, मनवा हुए मस्तान।
सोई रहे मैदान में, लोग कहे निरवान॥ —निर्वाण साहब

संत माधवदास ने मृत्यु की लिज्जत प्राप्त करने के लिये लड़ने को कहा है।

कर लिजे तकरार, मरण की लहेजत मरदो। —माधवदास
मैं मस्ताना मसती खेलूं, जीत तणां अब दऊं डंका।
घननन घननन घडियाल वागे, ताल पखावज मिरदंगा॥
—दासी जीवण
संतों का अमल है रामका, बाजे डंका हर राम का।
—उका भगत

संत चरित्र का आलेखन

गुजरात में अनेक संतों ने भक्तमाल के रूप में तथा चरित्र लेखन या परिचई के रूप में संतों के चरित्र लिखे हैं।

(१) दादू के शिष्य जगाजी ने भक्तमाल लिखी है, किन्तु इसमें सन्तों के नाम का उल्लेख मात्र है। "राघोदास की भक्तमाल" के परिशिष्ट में यह समाविष्ट की गई है।

(२) वि० सं० १७०८ में गुजराती के एक प्राचीन कवि मुकुन्द ने भक्तमाल लिखी थी। एक सौ आठ सन्तों के चरित्र लिखने की अपनी इच्छा उन्होंने कबीर को माला का मेर बनाकर प्रकट की थी। इस भक्तमाल में कबीर तथा गोरख के चरित्र प्राप्त हुए हैं। गोरख का चरित्र इसका आठवां मनका है, इससे लगता है, कि कम-से-कम मुकुंद ने आठ चरित्र लिखे होंगे। इसमें हिन्दी तथा गुजराती-दोनों भाषा का उपयोग किया गया है।

(३) सूरत में संत लोचनदास की परम्परा के संत प्यारेदास ने अपने गुरु माधवदास तथा दादा गुरु समर्थदास का चरित्र लिखा है। इन गुरुओं के शिष्यों के चरित्र भी उन्होंने लिखे हैं, जिसमें संतों की वाणी भी संगृहीत की गई हैं।

(४) बाबा दीन दरवेश ने "भक्त-बिरुदावली" लिखी है। बाबा दीन की आज्ञा से इसे गंगा के पानी में बहा दिया गया था; किन्तु इससे पहले उनके शिष्य रब्बूत ने इसे लिख लिया था। इसमें भक्तों के चरित्र तथा प्रसंग हैं। कबीर गुजरात-यात्रा के उल्लेख भी हैं।

(५) सूरत के सन्त कवि दुलाराम (सं० १८३०-७०) ने "निर्वाण-चरित्र-प्रकाश" तथा "दशम निर्वाण-चरित्र" लिखा है, जिसके आधार पर सूरत के संत चरित्र के लेखक श्री माणेकलाल राणा ने "संत निर्वाण साहब" नाम का ८६४ पृष्ठ का ग्रन्थ गुजराती में लिखा।

(६) धीरा भगत के ग्रन्थों में एक छोटी भक्तमाल का उल्लेख मिलता है।

(७) रवि-भाण परम्परा के सन्तों ने परिचई तथा गुरु-प्रणालिका लिखी है। रविसाहब ने अपने गुरु भाण की परिचई लिखी है। सरदारपुर के संत श्यामदास ने अपने पिता-गुरु "कृष्णदास की परिचई" लिखी है।

समन्वय

गुजराती के साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी ने एक समन्वयकार के रूप में कबीर की सराहना की है। डॉ० नंदा शंकर नागर ने संतमत के मूल में समन्वय की भावना को देखा है। संतों की वाणी में सगुण-निर्गुण का भेद नहीं होता।

सत्संग सुख दायना, सगुण निर्गुण कहां भेद।
बूझो गति निर्वाण की, अवधू सदा अभेद ॥ —दुलाराम

उसे सगुण कहो, या निर्गुण कहो परब्रह्म एक है।

निर्गुण सगुण ते एक परब्रह्म, तिनको समझ गहेउ मर्म।
—नरहरि

कमाली ने कहा कि रोगनाशक निर्गुण रूपी नीम खाने से सगुण औषध हानि नहीं करता।

निर्गुण लीमडो जो रोग निगमे, तो सगुण भोजन सुखे जमे ।
—अखाजी

भक्ति के साथ ज्ञान का समन्वय करते हुए अखाजी ने कहा था ।

ज्ञान बिना भक्ति ते असी, मसते श्वान ज्यम उठे मसी

चमत्कार

संतवाणी में चमत्कार के अनेक उल्लेख हैं । चमत्कार के स्थान के विषय में मतभेद हैं । इस समस्या की चर्चा करते हुए डॉ० अंबाशंकर नागर ने लिखा है; संतों की जीवनी प्रस्तुत करते समय उनके जीवन से सम्बन्धित चमत्कारपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख किया जाय अथवा नहीं, यह भी एक समस्या है । यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के उल्लेख असंगत प्रतीत होते हैं, तथापि संत-साधना एवं साहित्य में ऐसे प्रसंगों का विशिष्ट महत्व है ।[1]

यह सत्य है, कि किसी भी महान् संत के निधन के पश्चात् उनके शिष्य तथा अनुयायी, गुरु की महत्ता बढ़ाने की इच्छा से उनके जीवन के साथ चमत्कार की कथा जोड़ देते हैं, किन्तु हम यह भी नहीं कह सकते कि संतों के जीवन में ऐसा अलौकिक कुछ नहीं घटता था । दूसरी बात यह है, कि किसी भी संत की जीवन-कथा में चमत्कार की सृष्टि पर्याप्त समय पीछे खड़ी की जाती है, तथा किसी संत की वाणी में अन्य किसी संत के चमत्कार की कथा के आधार पर उसे कुछ काल पीछे ठहराया जाता है, यह उचित नहीं है, क्योंकि सन्तों के चमत्कार की कथा उनकी उपस्थिति में भी फैल जाती है । कबीर वट को पुनः सजीवन करने के चमत्कार की कथा तुरन्त सारे देश में फैल गयी थी, जिसे सुनकर जैसलमेर के राजकुमार (ज्ञानीजी) लग्नवेदी को छोड़कर मंगलेश्वर चले आये थे ।

संतवाणी की देन

गुजरात के विभिन्न सन्तों ने कबीर-नामदेव की वाणी की ज्वालाओं से अपने दीप जला लिये थे तथा इसे लेकर गुजरात-सौराष्ट्र में घर-घर, कुटिया-कुटिया में जाकर उनके अज्ञान का अंधेरा दूर कर ज्ञान के प्रदीप जलाये थे । उन्होंने तीखे व्यंग्य तथा कटु उक्तियों द्वारा समाज के दम्भ तथा मिथ्याचार को दूर करने का प्रयास किया था । थोक विक्रेता कबीर-नामदेव के ये प्रतिनिधि थे, बहुधा निर्गुण-भक्ति की गठरियां लेकर वे गांव-गांव घूमे थे । आंगन-आंगन में उन्होंने भजनों की धूम मचाई थी । व्यक्ति तथा समाज के अनिष्ट तत्वों के सामने उन्होंने युद्ध किया था, सम्भवतः इसलिए श्री किशोरलाल मशरुवाला ने सन्तमण्डलियों को शांति-सेना कहा था ।

१. गु० सं० हि० वा० (संपादकीय), सं० डा० अंबाशंकर नागर ।

गुजरात के संतों की वाणी में उत्तर भारत की योग साधना तथा दक्षिण भारत की वैष्णवी भक्ति का समन्वय है। सौराष्ट्र में योग का प्राबल्य था। गिरनार नाथ पंथियों का गढ़ था। गुजरात में नामदेव, स्वामी रामानंद तथा कबीर ने भक्ति का प्रचार किया। ये धाराएँ संत वाणी में परंपरित हुई हैं। इसके फलस्वरूप गुजरात में "स्वामीनारायण संप्रदाय" जैसे समन्वयात्मक पंथ का जन्म हुआ था।

सन्तों की वाणी में जिस विचारधारा के दर्शन होते हैं, वह कबीर-नामदेव आदि सन्तों के मत की ही परम्परा है। हिन्दी-साहित्य-कोश (पृ० ७८७) ने, संतमत का अर्थ कबीर आदि सन्तों की उन स्वीकृतियों को बताया है, जिनका प्रचार पाँच सौ वर्ष पहले हुआ था, किन्तु जिनकी एक परम्परा बराबर एक समान अविच्छिन्न रूप से प्रचलित चली आई है।

सातवाँ अध्याय

गुजरात के अन्य संतों पर कबीर-प्रभाव

गुजरात में कबीर-मतावलम्बी पांच प्रकार की परम्पराओं के संतों का उल्लेख किया है। ये परम्पराएँ निर्गुण-मतवादी हैं, तथा किसी-न-किसी रूप में कबीर की शिष्य परम्पराओं से सम्बन्धित हैं। अखा, निरांत तथा बाबा दीनदयाल की परम्पराओं का सम्बन्ध कबीर परम्परा या रामकबीर या सत् कबीर सम्प्रदाय से परिलक्षित होता है। उनको जोड़ने वाली कड़ी के विषय में कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होने से उन परम्पराओं को "अन्य" लिखना पड़ रहा है।

गुजरात में निर्गुण पंथ के प्रवर्तकों में प्राणनाथ पर कबीर विचारधारा का गहरा प्रभाव है। निर्मलदास का रामकबीर परम्परा से तथा देवा साहब का कबीर पंथ से सम्बन्ध लगता है। दादा मेकरण ने कबीर के महत्व को गाया है। नृसिंह दास, संतराम तथा कुबेरदास अखा की परम्परा के सन्त हैं, किन्तु उन्होंने अलग पंथ चलाये थे, इसलिए पंथ प्रवर्तकों की श्रेणी में रखे गये हैं। कुबेरदास ने लिखा है, कि जो उपदेश कबीर साहब ने धरमदास को दिया था, वही उपदेश मैं देता हूँ।

एकमात्र अवधूती परम्परा के सन्त ऐसे हैं, जिनके ऊपर कबीर विचारधारा का कोई-न-कोई प्रभाव मात्र है, तथापि उनके नागदास, नारायणदास तथा जुगल साहब कबीर के किसी सम्प्रदाय के साथ सम्बन्धित होने चाहिये, ऐसा लगता है।

अखा की परम्परा के सन्त लालदास, जीतामुनि, सागर आदि ने कबीर का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है। लालदास ने तो "कबीरा हमारी आतमा, हम कबीरा की मत" कहा है। सागर ने अपने आपको कबीर का प्रतिनिधि बताते हुए लिखा; पूर्वे जन्म्या एक कबीरा, के बीजा "सागर" "राज।"

निरांत-परम्परा के संत बापू तथा अर्जुन की वाणी में कबीर की विचारधारा प्रतिबिंबित हुई है। कबीरपंथ से उनका सम्बन्ध लगता है। उनकी वाणी में सत् नाम, सत्लोक जैसे शब्दों का प्रयोग तथा कबीर की वाणी का अनुकरण दृष्टिगत होता है।

जिस फकीर के प्रभाव से बाबा दीन विरक्त हुए थे, वह कौन था, यह ज्ञात नहीं है। उनके ऊपर सूफी प्रभाव भी है, किन्तु उन्होंने कबीर का उल्लेख सद्गुरु, बंधी-छोड़, जैसे परम्परित शब्दों से किया है। उनकी गुजरात-यात्रा का वर्णन किया है। इससे कबीर का प्रभाव परिलक्षित होता है।

निर्गुण पंथों के प्रवर्तक संत

(१) संत प्राणनाथ—जामनगर के पास नवतनपुरी (सौराष्ट्र) में सं० १६७५ में केशव ठाकुर के घर उनका जन्म हुआ था। माता धनबाई के ये चौथे पुत्र थे। बारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु देवचन्द्र के पास "तारतम्य मंत्र" की दीक्षा ली थी। गुजरात में उनके द्वारा जो पंथ प्रवर्तित हुआ, उसको "प्रणामी" या "धामी" सम्प्रदाय कहते हैं। सम्प्रदाय में प्राणनाथ को "मेहराज" या "श्रीजी" भी कहते हैं।

डा० बड़थ्वाल ने उनकी पत्नी को कवयित्री, तथा "पदावली" को उनकी पत्नी की रचना माना है।[1] इस मत के आधार पर डा० सावित्री सिन्हा ने लिखा, कि इन्द्रावती उनकी परिणीता पत्नी थी तथा पंथ-प्रचार के काम में उन्होंने पति को सहायता दी थी। इन्द्रावती नाम से रचित ग्रन्थों में "प्राणनाथ" शब्द का "पति" अर्थ लिया गया; किन्तु डा० रामकुमार गुप्त ने इसे "प्राणों का नाथ" के अर्थ में प्रयुक्त माना है। अतः वे इन्द्रावती को प्राणनाथ की पत्नी नहीं मानते।[2]

डा० गोवर्धन शर्मा ने अपने एक लेख में लिखा है, कि प्राणनाथ ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ अपने नाम से लिखी थीं। मध्यकालीन रचनाएँ "इन्द्रावती" के नाम से तथा उत्तरकालीन रचनाएँ "महामती" के नाम से लिखी थीं। उनकी दो पत्नियों के नाम "फूलबाई" तथा "तेजकुंवरी" था।[3]

अति अल्प आयु में गृहत्याग कर उन्होंने देशभ्रमण किया था। सन्त-समागम तथा भ्रमण से विभिन्न धर्मग्रन्थों तथा भाषाओं का ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था। गुरु द्वारा उनको अरब देश भी भेजा गया था। पन्ना (बुन्देलखंड) में उनकी भेंट महाराजा छत्रसाल से हुई थी। महाराजा के पत्रों के आधार पर आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इस भेंट का वर्ष सं० १७३२ तय किया है।[4] ये सं० १७१० से १७१२ तक धौलपुर राज्य में दीवान के पद पर रहे थे। ये सं० १७३० में सूरत पधारे थे तथा सं० १७२१ में वहां गद्दी की स्थापना की थी। सूरत में ही उन्होंने "बसन्त"

---

१. हि० का० नि० सं०, पृ० १३३।
२. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १२८।
३. वही।
४. उ० भा० सं० प०, पृ० ५६७।

ग्रन्थ की रचना की थी। उनके विभिन्न ग्रन्थों तथा रचनाओं का संग्रह सं० १७५१ में उनके एक शिष्य केशवदास ने किया था। इसमें रास, प्रकाश, षट् ऋतु, तथा कलश की रचना गुजराती में तथा सनंध, कीर्तन, खुलासा, खिलवत्, परिक्रमा, शृंगार सिन्धी, मारफत, कयामतनामा आदि की रचना हिन्दी भाषा में की गई थी।

प्राणनाथ ने श्रीकृष्ण का नाम आराध्य के रूप में लिया है, किन्तु उनका कृष्ण अनादि तथा अक्षरातीत है। ये मूर्ति में नहीं मानते थे, इसलिए उनकी गद्दी पर कृष्ण की मूर्ति के स्थान पर उनकी वंशी तथा मुकुट रखे जाते हैं। प्राणनाथ निर्गुण मतवादी थे। उनकी विचारधारा बहुत कुछ कबीरमत से मिलती है, इसलिए कबीरपंथ में उनको कबीर का शिष्य माना जाता है, तथा विदेश-गमन के समय कबीर द्वारा बोजक देने के प्रसंग का उल्लेख किया जाता है।

सर्व-धर्म-समन्वय उनका लक्ष्य था। सं० १७३५ में कुंभ मेले में सर्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन उन्होंने सफलता से किया था। हिन्दू-मुसलमान दोनों जाति के लोग उनके अनुयायी थे। "कुलजुमस्वरूप" ग्रन्थ में वेदों तथा कुरान की समानता उन्होंने दिखाई है। "कयामतनामा" में यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान आदि सब के पीर, पैगम्बर, तथा महात्माओं की जीवनियाँ देकर मौलिक समानता का समर्थन किया है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उनके मत की चर्चा करते हुए लिखा है, कि उनकी विचारधारा का स्वरूप वही है, जो हमें अन्य प्रमुख सन्तों के मत में लक्षित होता है।[1] वास्तव में वे रूढ़िवाद तथा साम्प्रदायिकता के विरोधी थे; उनके गुरु-पुत्र बिहारी के साथ इसी कारण से उनके विचारों का मेल नहीं बैठता था।

(२) संत निर्मलदास—उनकी पूर्वावस्था का नाम अमराव गुलज था। सं० १८२२ में उनका जन्म लखनौ में हुआ था। वे नवाब की नौकरी करते थे, किन्तु नवाब की मृत्यु के पश्चात् उनके शाहजादे ने उनको नौकरी से हटा दिया। आर्थिक कठिनाई के कारण उनको लुटेरों के एक दल में सम्मिलित होना पड़ा। उनके एक साथी सुबुद्दीन बहेलिया के पकड़े जाने पर नवाब ने उसके सिर को काट कर लखनौ नगर के दरवाजे पर टँगवाया। उसकी पत्नी ने विलाप करते हुए पति के साथ मर जाने की इच्छा प्रकट की। अमराव जान की बाजी खेलकर लखनौ के बाजार में से बहेलिया का सिर ले आये। आकर जब देखा कि उनकी पत्नी ने किसी अन्य से विवाह कर लिया था, उनके दिल को बड़ी चोट लगी। तदनन्तर उनके दिल में विरक्ति छा गई। सच्चे गुरु की खोज में साधुओं की मंडली में घूमने

१. उ० भा० सं० प०, पृ० ५६६।

लगे। अयोध्या के एक सन्त बाबा ओधवदास ने उनको निर्मलदास नाम देकर अपना शिष्य बनाया। उन्होंने अपनी वाणी में इसका उल्लेख किया है।

लुटेरा अमराव था, हो गया निर्मलदास।[1]

सं० १८५७ के गदर में उन्होंने जनता का साथ दिया था। उन्हें बन्दी बनाया गया था। पीछे मुक्त कर दिया गया। सं० १८६२ में वे सूरत आये तथा निकट के एक बीहड़ स्थान "दांडी वल्ला" में निवास किया। अपने अन्तिम दिनों में वे सूरत आकर ठहरे थे। सं० १६३५ में सूरत में "कोट-सफील" पर जहाँ आज शेषशायी का मन्दिर है, वहाँ उन्होंने जीवन्त समाधि ली थी।

निर्मलदास या उनके गुरु ओधवदास किस पंथ के थे, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, किन्तु निर्मलदास के उपदेश तथा वाणी पर कबीर वाणी का प्रभाव लक्षित होता है। निर्मलदास के उपदेशों में रामनाम, नाम जप, सत्संग, अन्नदान का महत्व, निर्गुण-भक्ति, पंडिताई का विरोध तथा यौगिक शब्दावली का वाणी में प्रयोग देखा जाता है। उन्होंने हिन्दी में विपुल सन्त-वाणी की रचना की है। राम के नाम का जादू उनके ऊपर हुआ है। उन्होंने कहा है—

बहुरि खोजत, जादू सबै नकाम।
सबसे बड़ा संसारमें, जादू रामका नाम ॥

उनके एक निम्नांकित पद में कबीर विचारधारा के दर्शन होते हैं।

मौज चल उठी पवन के संग, छोड़ चले पांचों रंग ॥
अबहु चेत, हेत कर हरिसे, गुरु शब्द के संग।
'रामनाम' की नाव बना ले, पार उतारे संत-संग ॥
सत्लोग सद्गुरु का वासा, मिल रहे एक रंग।
'निर्मलदास' रामरंग राता, चढ़े न दूजा रंग ॥

निर्मलदास की वाणी पर कबीरवाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है।

कबीर—सैना बैना करी समझाऊं, गूंगे का गुड़ भाई।
निर्मलदास—तू क्या जाने बावरी, वो गूंगे की सैन।
कबीर—पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोई।
निर्मलदास—पोथी पढ़-पढ़ पंडित हारे, मिला नहीं कछु सार।

(३) संत प्रभूदास—सूरत की राणा जाति के संत प्रभुदास निर्मलदास के शिष्य थे। एक बार पुत्र के विवाह के समय गुरु ने उनकी मदद की थी। वे गुरु को बहुत प्रेम करते थे। सं० १६३५ में गुरु के समाधि ले लेने के पश्चात् वे बहुत दुःखी

---

१. संत निर्मलदास जी, श्री मगनलाल राणा।

तथा उदासीन रहने लगे। लोगों ने समझा कि वे पागल हो गये, किन्तु ये रामनाम के दीवाने थे। उन्होंने लिखा है।

मैं दीवाना नामका, मोहे पिय-मिलन की आश।
अब तो मिलो हाँ जाय के, जहाँ गुरु निर्मलदास ॥

उन्होंने हिन्दी तथा गुजराती में संतवाणी की रचना की है। उनकी वाणी अप्रसिद्ध है। उनका गुरु पर लिखा एक कुण्डलिया निम्नांकित है।

यंदू वेच दयानिधि, अवधूत निर्मलदास।
सैंया तुम्हारे दरस बिन, लगी प्रेम की फांस।
लगी प्रेम की फांस, श्वास की डोर टूटेगी।
वचन दिया मुसकाय, खबरियां लीजे मेरी।
परभूदास कैसे रहे, हम तुम रह्या मेवा।
अब रहा न जाय, कैसे मिलिये गुरुदेवा ॥

(४) देवा साहब—कच्छ के एक "हमला" गाँव में क्षत्रिय जाति में उनका जन्म हुआ था। ये पहले गृहस्थी थे, उत्तरावस्था में विरक्त हो गये। नदी तट पर कुटिया बनाकर रहते थे। डा० रामकुमार गुप्त ने उनका समय सं० १८०० के आस-पास माना है।[1] पिता के मना करने पर चमत्कार से वे द्वारका यात्रा को निकल गये थे।[2]

उनके शिष्यों में जेठीराम, बिहारीदास, सेवादास तथा कृष्णदास प्रमुख थे। उनके पुत्र रामसिंह ने हमला गांव में, बिहारीदास ने "वांढाय" में, सेवादास ने सिंध में तथा कृष्णदास ने "कोटड़ी" में अपनी गद्दियां स्थापित की थीं।

उन्होंने रामसागर, हरिसागर तथा कृष्णसागर नाम के तीन ग्रन्थ लिखे हैं। "रामसागर" के भजनों में निर्गुण ब्रह्म की साधना का वर्णन है। कृष्णसागर तथा हरिसागर उपासना-मूलक ग्रन्थ हैं। हिन्दी तथा गुजराती भाषा में उन्होंने फुटकल पद भी लिखे हैं।

देवा साहब के गुरु के विषय में कोई उल्लेख नहीं हुआ, किन्तु कबीरपंथ के महंत तपस्वी साहब ने कबीर साहब द्वारा सौराष्ट्र के चार भक्त कोया भगत, सूरा भगत, शामला भगत तथा देवा भगत को कंठी-माला देने का उल्लेख किया है।[3] सम्भव है, वे कोई कबीरपंथी महात्मा हों, इससे वे कबीरपंथ में दीक्षित थे, ऐसा लगता है। उनकी वाणी से भी यही निर्देश मिलता है।

---

१. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १५८।
२. 'रामसागर' भूमिका, पृ० ५।
३. कबीर ब्रह्म प्रकाश (२०१६), पृ० २६३।

वाणी में न आवे रे, अक्षरातीत हरि
नाम निरंजन रे, देवा रह्या छे भरि ..

(प० प० सं०, पृ० १८४)

ब्रह्म की महिमा का एक पद निम्नांकित है।

तू दयाल, तू दयाल, तू दयाल देवा, तेरी तो अपार लीला, तू जाने मेवा।
शारदा अरु शेष गावे, पारको न पावे, महिमा सो तेरी अपार निगम
ही बतावे।
ऋषि-मुनि देवगणो, तुम्हीको ध्यावे, सोही सो संसार तरे, शर्ण नहीं आवे।
जे जे जिन भाव सेवे, तुमको प्रभू जेही, जनदेवा प्रभू कल्पतरु, ताको
फल देही॥

(भजन सागर भाग १, पृ० ४५४)

(५) दादा मेकरण—कच्छ के खोमड़ी गांव में हट्टी (भट्टी) राजपूत हरखोलजी के घर उनका जन्म सं० १७२० में हुआ था। गांगोजी नाम के एक सत्पुरुष ने उनको कापड़ी-पंथ की दीक्षा दी थी।

गाम खोमड़ी, गुरु गांगजी, भटीरा कुल में भाण।
हुआ नेण ले नीर सों, हेते हरखो, सद्गुरु का मैं पंजा लिया।

(सोरठना सिद्धो, पृ० ४१)

सोरठ के सरभंग आश्रम में नाथ-पंथियों के साथ उनकी मुठभेड़ हो चुकी थी। कच्छी भाषा में उन्होंने संत-वाणी की रचना की है। कबीर-सी विचारधारा तथा अर्थघनता के कारण श्री दुलेराय काराणी ने उनको "कच्छ का कबीर" कहा था।[1]

जहां से कच्छ के रण प्रदेश का प्रारम्भ होता है, वहां ध्रंग में उन्होंने पहले एक कुटिया बना कर निवास किया था। अब वहां पक्के मकान तथा एक छोटा-सा गांव भी है। वहां अपने दो प्रिय साथी लालाराम (गधा) तथा मोतीराम (कुत्ता) के साथ रहकर वे जन-सेवा करते थे। गधे के ऊपर ठंडे जल के दो मटके रखकर कुत्ते के गले में एक चिट्ठी बांधकर रण में भेज देते। मार्गच्युत प्यासे यात्री का दैन मोती लाला को उनके पास ले जाता था। यात्री बैशाखी-धूप में रण में ठंडा पानी पीकर परमतृप्ति का अनुभव करता था। ये दोनों ध्रंग से भुज जाकर माल-असबाब को ले आते थे। दोनों की सेवा की सुवास उस प्रदेश में फैल गई थी।

सं० १७८६ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को अपने ग्यारह साथियों के साथ दादा मेकरण ने जीवन्त-समाधि ले ली थी। उनमें "लड़ा" नाम का एक हरिजन भी था।

उनकी वाणी कबीर-परम्परा का निर्वाह करती है। उन्होंने कुण्डलियों तथा

१. कच्छना संतो अने कविओ, पृ० ७।

मुल्लाओं का विरोध किया है। मन्दिर में झालर बजाने से या बांग पुकारने से मालिक का पता नहीं चलता।

ठाकर जो ढुकायो, मुल्ला दीनी बांग।
उन मालिक जे घर, जो न तरोगे साग ।।

बबूल तथा नीम के वृक्ष में भी नारायण है, फिर एकमात्र पीपल के वृक्ष की ही पूजा क्यों ?[1] मीठा संसार उनके लिए खारा बन गया था तथा नयन का खारा जल (अश्रु) मीठा बन गया था। उन्होंने "अलख" जगाया था। उसे उन्होंने रामनाम से पुकारा। आत्मा ही वह राम है; वही आतम-राम है।[2]

हरिजनों के प्रति उनको विशेष प्रेम था। उनको अपने आश्रम में रखते थे। उन्होंने कहा, कि किसी को द्रव्य, किसी को अंगूठी प्रिय है, मुझे व्यक्त हरिजन सर्वाधिक प्रिय हैं।

कें कें वलिनुं कोरियुं, कें के वला वेढ़।
वले कना वला, मुके ढाटी नेप्वा ढेढ़ ।।

(सोरठना सिद्धो, पृ० ५०)

दादा मेकरण ने समाज सुधार का काम भी किया है। अहीर जाति में कुछ रूढ़ियों को दूर करवाया। "जुहार" के स्थान पर "रामनाम" शब्द दाखिल करवाया।

उन्होंने अभिमान तथा दम्भ का विरोध किया था। उन्होंने कहा, कि बहुत झांझ फूटने से तो ईश्वर त्रस्त होते हैं।

दादा मेकरण ने कबीर साहब के नाम का उल्लेख अपनी वाणी में बड़े आदर के साथ किया है।

मेका चेटा मच्छंदरका, रामानन्द का कबीर।
आदि अंत फिरता रहा, करताराम फकीर ।।

(मेकणदास, पृ० १३)

उनकी वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है।

कबीर—पांचों इन्द्री वश करो, आप ही दास कबीर।
मेकरण—पांचों इन्द्री वश करे, पीर थींदा पाण।

(६) नृसिंहाचार्य—सूरत के पास कड़ोद के एक नागर परिवार में सं० १९१० में दुर्लभरामजी के घर उनका जन्म हुआ था। माता महालक्ष्मी हरिभक्त थी। सूरत

१. सोरठना सिद्धो, पृ० ५०।
२. मेकणदास—श्री दुलेराय काराणी, पृ० ४१।

में उन्होंने यजुः संहिता गंगादत्त शुक्ल से, वेदांत भूमानन्द स्वामी से तथा मन्त्रप्रयोग का अध्ययन मधुसूदन स्वामी से किया था। कहते हैं, कि उन्होंने योगाभ्यास से मंत्र-सिद्धि भी प्राप्त की थी। अपनी दो पत्नियों की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपना तृतीय विवाह रुक्मिनी देवी से किया था। इनसे उनके दो पुत्र हुए थे—उपेन्द्राचार्यजी तथा सुरेश्वराचार्य जी।

तापी नदी के सामने तट पर जीतामुनि के आश्रम के निवासी मोहनलाल ब्रह्मचारी को वे गुरु मानते थे।[1] सूरत से वड़ोदा आकर उन्होंने निजामपुरा में निवास किया था। उनके दो प्रमुख शिष्य थे। श्री कन्थारिया ने उनके गृहतंत्र को तथा श्री विश्व-वंद्य (छोटालाल मास्तर) ने उनके प्रचारतन्त्र को संभाला था।

सं० १९३८ में वड़ौदा में उन्होंने "श्रेय साधक अधिकारी वर्ग" नाम के एक मंडल की स्थापना की थी। गुजरात के बुद्धिजीवी वर्ग को उन्होंने आकर्षित किया था। उन्होंने प्रचारार्थ कुछ ग्रंथों की रचना की। नृसिंहवाणी विलास-अनुभव प्रदीप-सुरेश चरित्र-सिद्धांत सिंधु-मामिनी भूषण-सद्बोध पारिजातक-सति सुवर्णा-नृसिंहकिरणा-वलि-श्री पंचवरद वृत्तांत-त्रिभुवनविजयी खड्ग तथा सुखार्थ सदुपदेश। तदुपरान्त उन्होंने हिन्दी तथा गुजराती में अनेक फुटकल पद लिखे हैं। स० १९५३ में उनका देहावसान हुआ।

डॉ० केशवलाल ठक्कर ने उनके मत को अजातवाद या ब्रह्मवाद कहा है। गृहस्थाश्रम में रहकर तथा गृहस्थ के वेश में रहकर भी उपासना की जा सकती है, ऐसा वे मानते थे। ज्ञान, भक्ति तथा योग का उन्होंने समन्वय किया था। साधना का प्रारम्भ उन्होंने कीर्तन से किया था।

उनकी वाणी में शब्द का महत्व, एकेश्वरवाद तथा नाम-महिमा का उपदेश है। शब्द में विवाद क्या? जहां वस्तु एक है; नाम का आधार लेकर अपना काम पूरा करो।[2]

(७) सन्तराम :—नड़ियाद में सन्तराम का एक विशाल मन्दिर है। उनकी पूर्वावस्था का कोई वृत्त प्राप्त नहीं होता। उनका जन्म का वर्ष सं० १८३७ बताया जाता है। सं० १८७२ में वे नड़ियाद आये थे।[3] मन्दिर में उनकी समाधि पर समाधि लेने का वर्ष सं० १८८७ लिखा हुआ है। मन्दिर में एक अखंड ज्योत जलती रहती है।

ये पहले गाँव से दूर एक चिन्नी के वृक्ष के तले में मौन रहते थे। काशी से लौटते हुए संत रविसाहब उनसे मिले थे, तथा संसार का कल्याण करने का उपदेश

---

1. आ० गु० सं०, पृ० ६८।
2. नृसिंह वाणी विलास, पद—३१।
3. हि० सा० गु० सं० का दे०, पृ० १६५।

भी दिया था। तब से उन्होंने मौन तोड़ा।[1] संभव है, उनका मूल नाम "सतराम" हो। यदि ऐसा हो, तो यह कबीर पंथ का मूल मंत्र है। उनके गुरु के विषय में उनकी वाणी में कोई उल्लेख नहीं है। मंदिर के महन्त उनके गुरु के विषय में अज्ञात हैं। कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह ने सागर महाराज की डायरी के आधार पर गुरु-परम्परा दी है, उसमें संतराम को जोतामुनि का शिष्य लिखा है।[2] जोता मुनि मूल नड़ियाद के निवासी थे। तापी के सामने तट पर उनका आश्रम था। संभव है, उन्होंने अपने एक शिष्य को जन्मभूमि की सेवा के लिए वहां भेजा हो। संतराम ने "गुरु-बावनी" लिखी है। उन्होंने अपनी एक रचना में पूर्व तथा पश्चिम में गुरु की खोज करने का, दक्षिण में दीक्षा लेने का तथा उत्तर में आकर निवास करने का उल्लेख किया है;[3] जो सूरत के पास दीक्षा लेकर उत्तर में नड़ियाद आकर निवास करने के तथ्य के साथ मेल खाता है।

नम्रता विषयक उनके विचार तथा वाणी की परम्परा कबीर की वाणी में देखी जा सकती है।

कबीर—कबीर चेरा संतका, दासनिका पर दास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या, ज्यूं पाऊं तलेकी घास।।

(क० ग्रं०, पृ० ६५)

संतराम—है गुनन में दास हुए, तुम्हारे दासन के दास।
फिर फिर मैं दास हूं, जैसे हल सरोवर पात।।

संतराम की वाणी से प्रतीत होता है, कि वे पहले सगुण भक्त थे; गुरु के उपदेश से ही उन्होंने निर्गुणमत को अपनाया था।

मैं तो मेरु चढ़िया, ध्वजाफरूखा देखा।
सद्‌गुरु मोहे आन मिले, तब लेख हुआ अलेखा।।

(पद संग्रह, पृ० ५०)

संतराम ने उनकी वाणी में भजन को सर्वाधिक महत्व दिया है। जो सत् की भक्ति करता है, उसे प्रेम मिलता है। परमात्मा घट-घट में खेल रहा है। "रोम रोम में रमी रह्यो, घट घट सोहंग राम।" सूरति शब्द में जाकर मिल गई; प्रेम का प्रकाश फैल गया; अब संतराम राम-मिलन की आशा में बैठे हैं।[4]

(८) कुबेरदास :—आणंद के पास सारसा गांव में उनका विशाल समाधि-मंदिर है। उनके पंथ को कुबेर-पंथ या सत्केवल पंथ कहते हैं। गुजरात में इस पंथ का

१. संत रविसाहेब, पृ० ९९।
२. अक्षयरस, पृ० ३३।
३. पद संग्रह, पृ० ५।
४. वही, पृ० १०।

विशेष प्रचार है। कुबेरदास को उनके अनुयायी "करुणा सागर" कहते हैं। जैसे डॉ०
रामकुमार गुप्त ने बताया है,[1] वैसे करुणा सागर कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, उत्तरा-
धिकारी भी नहीं है; सत्केवल पंथ के अनुयायी कुबेरदास को ही "करुणासागर भगवान्"
कहते हैं। कबीर-पंथ में बताया गया है, कि द्वापर में कबीर साहब का नाम
"करुणामय" या "करुणासागर" था। संभव है, इससे यह नाम लिया गया हो।

कुबेरदास ने अखा-परम्परा के संत जीतामुनि से दीक्षा प्राप्त की थी।[2] अखा-
परम्परा का सम्बन्ध कबीर-परम्परा से है, किन्तु अखा के गुरु के विषय में कुछ विशेष
वृत्त प्राप्त नहीं होने से इसकी कड़ी अज्ञात रही है, तथापि तमाम संतों ने कबीर साहब
का नाम अपनी वाणी में बड़े आदर से लिया है। कुबेरदास ने कबीर साहब के नाम
का उल्लेख सद्गुरु के रूप में ही किया है। "चकित भये सद्गुरु जबी, साहब साहेब
कबीर।"[3]

कबीर साहब के ज्ञानमार्ग के तीन सिद्धांतों को गुणात्मक रूप में स्वीकार कर
उन्हें अपने नये पंथ की आधारशिला बनाया है।

> अवखर्व गति अगम ज्यों, उचरे ज्ञान कबीर।
>
> 'न्हे अक्षर', 'घर रेहेत' ही, 'सार शब्द' 'रसे सीर'॥[4]

डॉ० रामकुमार गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध में आद के किसी कृष्णस्वामी
महाराज के द्वारा कुबेरदास को दीक्षा प्राप्त होने का उल्लेख किया है;[5] किन्तु अन्य
स्थान पर "अक्षयरस" की परम्परा के आधार पर जीतामुनि के शिष्य के रूप में भी
उनको दिखाया है। वि० सं० १८२८ में कुबेरदास का जन्म हुआ था, तथा उनका
निधन सं० १९३४ में हुआ। ये मूल अजरपरा (खेड़ा जिला) के पाटीदार जाति के
संत थे।

इस संप्रदाय के उनके ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। इस पंथ को "कारणपंथ" भी
कहते हैं। यद्यपि कुबेरदास अखा की विहंगम मार्ग की प्रणाली के मत हैं, तथापि इस
पंथ में साम्प्रदायिकता अत्यधिक मात्रा में आ गई है।

कुबेरदास ने अपनी वाणी में हिन्दू-मुसलमान के भेद को नहीं माना। राम तथा
रहमान को एक समझा है। आत्मा हिन्दू भी नहीं है, तथा मुसलमान भी नहीं है।
वह इससे न्यारी है।[6] कुबेरदास ने अपनी वाणी में "सत्" शब्द का अनेक बार प्रयोग

1. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ७५।
2. अक्षय रस, पृ० ३३।
3. पंचम स्वसंवेद, साखी—३६।
4. पंचम स्वसंवेद, साखी—३६।
5. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १८०।
6. हंस तालेव, अंग ६/५।

किया है। अखा ने "कैवल्य" शब्द का ऐसा ही प्रयोग अपनी वाणी में किया है। संभव है, कुबेरदासजी ने कबीर के शब्द के साथ अखा के "केवल" को जोड़ कर अपने पंथ का नामकरण किया हो।

अवधूती परम्परा के संत

(१) संत मूलदास :—सौराष्ट्र में ऊना के पास "आमोदरा" गांव में सं० १७११ में उनका जन्म हुआ था।[1] सौराष्ट्र में वैष्णव धर्म का महामार्ग के साथ मिलन कराने का श्रेय संत मूलदास को दिया जाता है। पिता कल्याणजी सोरठी लुहार थे। माता का नाम गंगाबाई था। सोलह वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह बालबाई के साथ संपन्न हुआ था। मूलदास लुहारी का काम करते थे। गिर के जंगलों में जाकर कोयला बनाते थे।

एक बार एक जलती हुई लकड़ी से चींटियां बाहर आने लगीं। उसने शीघ्र उसे बुझा दिया, किन्तु कुछ चींटियां जलकर मर ही गईं। इस घटना से उनके दिल पर बड़ा आघात हुआ। उनके मन में विरक्ति आ गई। गृहत्याग कर वे तीर्थयात्रा को चले गये। यात्राकाल के दरमियान उन्होंने कहीं भिक्षा नहीं मांगी। मजदूरी करके गुजारा कर लेते थे। गिरनार की एक गुफा में उन्होंने कुछ काल-निर्गमन किया था। वहां रविसाहब के साथ उनका मिलन हुआ था।[2] रविसाहब का प्रभाव उनकी वाणी पर लगता है।

गिरनार से गोंडल आये। वहां लोहलंगरी नाम के एक महात्मा से मिलन हुआ। मूलदास ने उनसे दीक्षा ली। महात्मा दिन से सम भाव रखते थे। मूलदास में भी सर्व धर्मसमभाव की भावना थी। गहन तत्व को वे सरलता से समझाते हैं। अहंकार का त्याग कर परमार्थ करने का उपदेश देते हैं। उन्होंने एक "चुनरी" का रूपक लिखा है, इस पर कबीर की "चुनरी" का प्रभाव है। उसमें आत्मारूपी दूल्हे का शरीररूपी दुल्हन से विवाह कराया गया है।

(२) मस्तराम—भावनगर के इस त्यागी संत ने कोई पंथ नहीं चलाया। उनके ऊपर कबीर का प्रभाव विशेष लगता है। कबीर का उल्लेख उन्होंने बड़े आदर के साथ किया है।

कबीर भजे रामको, राम रह्या भरपूर।
र-रे म-मे की बीच में, उदय होय अंकूर॥

उनमें सम भाव था। पशु में भी भगवान् के दर्शन करते थे। एक गधे के घाव पर रेशमी वस्त्र बांध दिया था। भावनगर के महाराज एक बहुमूल्य शाल दे गये,

---

१. 'संत केरी वाणी' सं० श्री मकरंद दवे, पृ० ६२।
२. संत रवि साहेब, पृ० ६६।

तो बोले "ऐसा करते रहो।" रात को चोर उसे उठा ले जाते थे, तो बोले "ऐसा करते रहो।"

वे दम्भ के बड़े विरोधी थे। उनमें कबीर जैसी मस्ती थी। किसी की परवाह नहीं रखते थे, बस 'रामनाम' में विश्वास करते थे। अपने आपको उन्होंने राम का सिपाही कहा। "परम सिपाही राम का, ताती बांधी तलवार।" वे मूर्ति को नहीं मानते थे। उन्होंने कहा, कि पत्थर का देव तो कच्चा है, उसमें से हीरा निकाले, वही सच्चा गुरु है।[1]

(३) संत नागदास—ये सूरत के पास "बहुधान" के निवासी पाटीदार थे। पहले वे कृपण धनी थे। एक संत निगमदास के कथनानुसार उनको सांप ने काटा था। निगमदास ने जहर चूस लिया। तदनन्तर नागजी विरक्त संत नागदास बन गये। हरिस्मरण में अपनी मस्ती का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है, कि यह सुख अकथ्य है। सं० १७४२ में उन्होंने समाधि ले ली थी। उन्होंने हिन्दी में रचनाएँ की हैं। "गुरु" विषयक एक कुण्डलिया द्रष्टव्य है।

अजहु हरि नहीं आइया, सद्गुरु मोरे दयाल।
दरश बिना कैसे रहूं, तलपत मोरा प्राण।
तलपत मोरा प्राण, वचन विमुख न रहियो।
स्वामी हुई सनाथ, खेप करी खबर कहियो।
नागदास विनति करत, तुम्हरे चरण लिपटाय।
बहुरि दिन बित गये, मोरे हरि नहीं आय॥

(४) जुगल साहब—पाटण नगर में एक सम्पत्तिवान ब्राह्मण के घर उनका जन्म हुआ था। किसी हरवंशदास ने उनको विवाह नहीं करने की चेतावनी दी थी; किन्तु उनका विवाह हुआ। उनकी पत्नी अन्य पुरुष को प्रेम करती थी। समझाने पर भी जब उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तब जुगल ने सारी सम्पत्ति पत्नी के नाम करके गृह-त्याग किया। बाबा हरवंशदास को प्राप्त करने की इच्छा से उन्होंने अनेक तीर्थों में भ्रमण किया।

गिरनार की पहाड़ियों में खोज की। भोमफेरी के आगे सीतागढ़ी पर्वत का उल्लंघन करके देखा। चन्द्रगढ़ी पहाड़ पर जो जमात थी, उसके महन्त स्वामी हरवंशदास थे। गुरु ने जुगल को महन्त-पद पर स्थापित कर देह-त्याग किया। इस

१. महात्मा मस्तरामजी, वामनलाल पटेल।
२. गुजरातना भक्तो, श्री माणेकलाल शाह।

इसी समय में कुबेरदास ने भी किसी अन्य साधु को महन्त बनाकर शेष जीवन हरिस्मरण में बिता दिया।[1]

(५) नारायणदास—उनके जीवनवृत्त के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं होता, किन्तु वे एक संत-कवि हैं। उनकी वाणी में कबीर विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। ईश्वर का निर्गुण रूप तथा दम्भ, पाखंड, माला तथा तिलक का विरोध उनकी वाणी में मिलता है। उन्होंने अपने गुरु के रूप में किसी मोतीदास का उल्लेख किया है।[2]

एक नारणदास का चरित डॉ० केशवलाल ठक्कर ने लिखा है, जिसका एक संग्रह "नारायण भजन सागर" नाम से प्रकाशित हुआ था। वे अयाचक व्रत रखते थे तथा सं० १९५७ में उनका देहावसान हुआ था। संभवतः ये कोई अन्य नारायणदास होंगे, क्योंकि उनके गुरु का नाम "नामदास" बताया है।[3]

नारायणदास का एक हिन्दी पद निर्गुण ब्रह्म के विषय में बड़ा ही सुन्दर है।

अजब हैरान हूं भगवन्। तुझे कैसे रिझाऊं मैं ?
कोई वस्तु नहीं ऐसी, तेरी सेवा में लाऊं मैं।
तुम्ही हो मूर्ति में भी, तुम्ही व्यापक फूलों में भी।
भला भगवान पर भगवान तुझे कैसे चढाऊं मैं !
तेरी ज्योति से रोशन है, सूरज चांद ग्रह तारे।
महा अंधेर है तुमको, अगर दीपक जलाऊं मैं ?
न भुजा है, न सीना है, न गरदन है, न पेशानी।
कहां निर्लेप नारायण, अगर चंदन लगाऊं मैं॥

(६) रंग अवधूत—उनका जन्म गोधरा में सं० १९०८ में हुआ था। उनके पिता का नाम विट्ठल भट्ट तथा माता का नाम रुक्मिनी देवी था। गुजरात विद्यापीठ में उन्होंने अनुस्नातक शिक्षा सम्पादित की थी।

उनको सहज विरक्ति हो गई। नर्मदातट पर कुछ समय भ्रमण करते रहे। तदनन्तर नारेश्वर महादेव के पास एक बीहड़ झाड़ी में स्थान बनाकर निवास किया। कहते हैं, यौगिक साधना से उनको सिद्धि प्राप्त हुई थी।

उन्होंने गुजराती में २०, संस्कृत में ७ तथा मराठी में २ ग्रन्थ लिखे हैं। हिन्दी में भी उन्होंने फुटकल मुक्तक लिखे हैं। उनके विचारों में संतमत का प्रभाव है। वे मानते हैं कि ईश्वर का स्थान मन्दिर में नहीं, मानव मन्दिर में है। जब संसार में

---

१. 'गीता धर्म' (काशी) मार्च, १९४९।
२. 'भजनसागर' भा० १, पृ० ६२३।
३. आ० गु० सं०, पृ० १९७।

कुछ भी नहीं था, एक परमतत्त्व था। संसार की माया उस परमतत्व की देन है। जब कुछ भी नहीं रहेगा, तब भी वह परमतत्व रहेगा। एक "रंग" संसार में अरंग रहेगा।

नहीं था कुछ, तब तू ही था वाला।
तूही है, अब सब, खुद ही का जाला।।
न होगा कुछ, तो भी तू आला।
'रंग' अरंगा होगा अकेला।।

अखा की परम्परा के संत

(१) संत लालदास—श्री सागर ने उनको कबीर जैसा अवधूत कहा है।[१] ये अखाजी के प्रमुख शिष्य थे। उनकी वाणी के एक उल्लेख से लगता है, कि वे निम्न जाति के थे। अखा की परम्परा निर्गुण मतावलम्बी है, तथापि उन्होंने सगुण या मूर्ति का विरोध नहीं किया।

लालदास के पूर्वजन्म का वृत्त अज्ञात है। उन्होंने संतवाणी की रचना हिन्दी में की है। अखा की परम्परा के संत श्री भगवानजी महाराज ने इस परम्परा के संतों की वाणी को "संतवाणी" नाम से संगृहीत किया है।

संत लालदास ने गंगदासजी के नाम एक पत्र लिखा था। ये गंगदास भाग-साहब के पुत्र गंगसाहब होने की सम्भावना नहीं दिखाई देती, क्योंकि वे लालदास के समकालीन नहीं ठहरते। लालदास ने अपने उस पत्र में कबीर साहब के नाम का दो बार उल्लेख किया है। उन्होंने गंगदास को उसी "अमरमन्त्र" को अपनाने को कहा, जो स्वामी रामानन्द ने कबीर को दिया था। अगम्य (बावन बाहेरो) तिरपनवां अक्षर है, जिसे अनेक भक्तों के साथ कबीर ने जाना था।[२]

एकमात्र लालदास की वाणी से निर्देश मिलता है, कि अखा की परम्परा कहीं-न-कहीं कबीर-परम्परा से सम्बन्धित है। संत लालदास ने अपनी वाणी में कबीर साहब को अपनी आत्मा तथा स्वयं को "कबीर-मत" कहा है।

कबीर हमारी आत्मा, हम कबीरा की मत।
एक तुझे रमी रह्या, कोई न जाणे गत।।[३]

उन्होंने लिखा है, कि कबीर हमारे हैं, तथा हम कबीर के पास हैं, प्रत्येक युग में ये अपने संतों के पास जाते हैं। संत लालदास की कबीर में श्रद्धा दर्शनीय है।

---

१. संत वाणी की भूमिका, पृ० ५६।
२. संत वाणी, पृ० ६१ सं० श्री भगवानदास महाराज।
३. संत वाणी, पृ० ५३।

हम कबीरा के पास है, कबीर हमारा और ।
एम जुग जुग प्रत्ये आवत है, परमहंस महावीर ॥[1]

लालदास ने कहा है, कि प्रेमरूपी दीप के प्रकाश से अलगत्व के ताले टूट जायेंगे, तब अलख पुरुष के दर्शन होंगे । तू उनमें करोड़ों कबीर को भी देखेगा ।[2]

(२) जीवामुनि नारायण—तापी के तट पर अश्विनीकुमार के सामने उनका आश्रम था । वहां उनकी समाधि भी है । प्रकृति से ये मस्त थे । पशु चरानेवाले चरवाहों के साथ खेला करते थे । उनके मूल स्थान के विषय में दो मत हैं । एक मत उनको सूरत के निकट अमरोली को तथा दूसरा मत नडियाद को उनका जन्म-स्थान मानता है । उन्होंने योग की उपासना की थी । वहां आसपास के गांव में उनके चमत्कार की कई कथाएं प्रचलित हैं ।

ये कल्ना की परम्परा के संत हरिकृष्ण के शिष्य थे । उनके गुरु पूर्वावस्था में अहमदाबाद की माणेक पटेल की पोल में तथा उत्तरावस्था में दूधेश्वर में निवास करते थे । गुरु-पुत्री रतनबाई गुरु के साथ रहती थी । जीवामुनि की वाणी में रतनबाई तथा गोरीबाई के नाम का उल्लेख है । दूधेश्वर तट पर रतनबाई अवधूत दशा में मस्त रहती थी । मुस्लिम-शासन के किसी कर्मचारी ने उनको कष्ट दिया था । इसके अनुसंधान में जीवामुनि ने गुजरात के सुलतान को एक पत्र लिखा था । उस पत्र का नाम उन्होंने "काफर बोध" रखा था । उसमें उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का उपदेश दिया है ।

ये पानी की पैदाश, क्या हिन्दू क्या मुसलमान ।
पीर जिसका अक्लमंद है, मुर्शिद [illegible] ॥
हिन्दू ध्यावे देहरा, मुसलमान मस्जिद ।
सच्चा फकीर वही ध्यावे, दोनों की [illegible] ॥[3]

कबीर साहब द्वारा भक्ति के प्रचार के विषय में प्रसिद्ध [illegible] "[illegible] नवखंड" तथा उनका बीजक विषयक साखी का अनुसरण उनकी वाणी में हुआ है, जो इस बात की प्रतीति कराता है, कि कबीर वाणी का [illegible] [illegible] किया था तथा उनकी वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव था ।

ताली लागी शब्द की, टूट गया [illegible] ।
साहेब निराला देखिया, सत्कबीर नव खंड ।
दूंत बतावे विसको, जो [illegible] [illegible] ।
'शब्द' बतावे बहुको, जिसे [illegible] [illegible] ॥[4]

१. वही, पृ० ५० ।
२. वही, पृ० ४० ।
३. सतोनी वाणी, पृ० २७ ।
४. वही, पृ० १५८ ।

उन्होंने ६४ साखियाँ, २२ पद तथा "काफर बोध" लिखा है।

(३) संत कल्याणदास :—ये जीतामुनि के शिष्य थे। अखा-परम्परा की वाणी जहाँ से प्राप्त हुई, उस "कहानवा" (जंबुसर के पास) गांव के बंगले में उनकी समाधि है। भरुच के तत्कालीन कलक्टर मि० प्रेन्ड की उपस्थिति में संत कल्याणदास ने जीवन्त-समाधि ली थी। मि० प्रेन्ड ने इस जीवन्त-समाधि की रिपोर्ट मि० केम्बेल की गजटीयर में छपवाई थी।[1] कल्याणदास ने सं० १८७६ में समाधि ली थी।

ये पहले बड़ौदा के निकट "तरसाली" गांव में रहते थे। वहां से कुछ समय "चिसाल" ठहरकर कहानवा में आकर निवास किया। बड़ौदा के जयसिंह राव गायकवाड़ का कोई भयंकर दर्द उन्होंने मिटा दिया था। अतः उन्होंने यह समाधि-मन्दिर बनवा दिया। आसपास गांव में उनके चमत्कार की अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं। उन्होंने संतवाणी की रचना हिन्दी तथा गुजराती में की है। उन्होंने हिन्दी में "काफर बोध" तथा गुजराती में "अजगर बोध" लिखा है। उनकी हिन्दी वाणी पर अरबी-फारसी का प्रभाव विशेष है।

पाक दीदार दिल में धरो, और सब छोड़ दो साँई सांचा।
कहत कल्याण दरवेश दुनिया के बीच, पाक है नाम और सब काचा ॥[2]

(४) संत रतनबाई :—अखा की परम्परा की श्री हरिकृष्ण महाराज की पुत्री रतनबाई संत थीं। यद्यपि उनका विवाह हो गया था, वे संसार से विरक्त थीं। उनके समझदार पति ने विवाह बंधन से मुक्त करने की उनकी विनती को स्वीकार कर लिया था।

रतनबाई ने अपने पिता को ही गुरु के रूप में स्थापित किया था। वे पिता के साथ रहती थीं। उनके पदों में भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। उनके कुछ पदों में श्री कृष्ण या गिरधारी का नाम आता है, किन्तु निर्गुण ब्रह्म की भक्ति उनको विरासत में मिली थी। गुरु ने उनको ज्ञान दिया था, कि घट-घट में एक ही तत्व का वास है।

ज्ञान रतन, गुरु हरिकृष्ण मलिया, एक आत्मा जिन्हो नरनारमां ।[3]

रतनबाई का आराध्य सगुणनिर्गुणी ब्रह्म है। उनका गिरधारी शुद्ध गोविंद है, जो साकार है। इसलिए उन्होंने लिखा है, कि ब्रह्म का मूल रूप निराकार है, गुरु के रूप में वह साकार होता है। रतनबाई उसे "पूरा नर" (पूर्ण पुरुष) कहती है, जिसको सहज का ज्ञान, शून्य का अनुभव तथा सहज-समाधि की सिद्धि प्राप्त हुई है।[4]

(५) नथीबाई :—सौराष्ट्र के वीरपुर गांव की निवासी नथीबाई अपनी बाल्यावस्था में विधवा हो गई थी। संत-समागम तथा ज्ञानगोष्ठी ने उनको वैराग्य की

१. कैम्बेल गजटीयर वोल्यूम २/१४, पृ० ५६५ ।
२. संतोनी वाणी, पृ० १०४ ।
३. संतोनी वाणी, पृ० ३५ ।
४. वही, पृ० ११० ।

भावना प्रबल हो उठी। योग साधना में उन्होंने समाधि की स्थिति प्राप्त की थी। उन्होंने संतवाणी की रचना की है। उनके पदों में प्रार्थना, वैराग्य का उपदेश, तथा निराकार के साथ साकार-उपासना का भाव भी है। गुजरात में ज्ञानमार्गी कवयित्रियों में उनका स्थान ऊँचा है। गवरी ने ब्रह्म के निरंजन-निराकार रूप का वर्णन किया है।

रूप नहीं, रंग नहीं, वर्ण नहीं विभू
निरंजन निराकार, नहीं नाया-कामी।
गवरी गुरु ज्ञान प्रकाश, तिमिर भयोरि नाश,
भागा भ्रम चिद् विलास, पूर्णपद पामी ॥[1]

गवरी राम-भक्त है। वह "राम" को पुकारती है, उन्हें विश्वास है, कि निराकार ब्रह्म राम का रूप लेकर आयेगा। कबीर साहब ने ब्रह्म को "पुष्प की सुवास" का रूपक दिया था, उसी रूपक द्वारा गवरीबाई भी ब्रह्म का परिचय कराती है।

वनेश्वर विश्वमां विलस्या, जेम फूलन में वास।

गवरी की धारणा यह है, कि ब्रह्म का मूल रूप निराकार निरंजन है, किन्तु गुरु-कृपा से वह साकार बनता है। गवरी ने आत्मा तथा परमात्मा के मिलन को सरिता तथा सागर का रूपक दिया है।

गौरी मेटी ब्रह्म सनातन, जेम सागर में गंग।

(६) सागर—जगन्नाथ दामोदरदास त्रिपाठी (सागर) का जन्म सं० १९३६ में जंबूसर में हुआ था।[2] गुजराती साहित्य में डा० अनिल त्रिपाठी (सागर के पौत्र) ने उनके साहित्य पर शोध प्रबन्ध लिखा है। वे अखा-परम्परा के सन्त नृसिंहाचार्य के प्रभाव में आये थे। उन्होंने समाजसुधार तथा शिक्षा-प्रचार का कार्य भी किया था।

उनके मित्र श्री भगवान्जी महाराज द्वारा उनको अखा की कुछ अप्रसिद्ध वाणी प्राप्त हुई थी। हिमालय में चार वर्ष रहकर उन्होंने इसका अध्ययन किया। उन्होंने अखाजी को ही अपना गुरु माना था। उन्होंने अपनी वाणी में लिखा है।

अखा मिल्या, गुरु पक्का मिल्या, गुरु घाट घड़े को घड़ा मनको।[3]

सागर ने हिन्दी तथा गुजराती में अनेक रचनाएँ की हैं। उनकी भाषा पर कबीर तथा अखा की भाषा का प्रभाव है। उसमें माधुर्य तथा कला कम है; किन्तु सामर्थ्य सविशेष है। भाषा में कबीर की मस्ती तथा फक्कड़पन की परम्परा के दर्शन होते हैं।

---

१. बृहद्काव्य दोहन, भा० १, पृ० ८५५।
२. आ० गु० सं०, पृ० २३४।
३. 'दीवाने सागर' दफ्तर—२, पृ० १२४।

आज भजन की मिजलस में भाई आये पुरी, तीर्थ, सबगीर।
ना हम तीरथ, ना हम पुरी पर्वत, गुरु हमारा घनचक्कर ॥[1]

सागर रामनाम के भक्त हैं; किन्तु उनके राम निरंजन राम हैं, जो सारे विश्व में व्याप्त हैं।

निरंजन तत्व सोही राम, त्रिभुवन व्यापी तारक राम।[2]

डा० केशवलाल ठक्कर ने सागर की वाणी के कुछ लक्षणों की सूचना दी है। उनकी वाणी में पंथ-विरोध, आचार-विरोध, प्रेम-भक्ति का महत्व, मन की शुद्धता, संयम, सहज समाधि तथा "पिंड-ब्रह्मांड-ऐक्य" कबीर-विचारधारा की परंपरा के रूप में आये हैं।

डा० त्रिपाठी ने "सागर" पर कबीर के प्रभाव का समर्थन किया है। उनकी गजलों में व्यक्त बाह्याडंबर तथा कर्मकांड का विरोध तथा उनके व्यंग्य के विषय में उन्होंने लिखा है, कि "कबीर तथा अखा की परम्परा में सागर ने भी जगत् के प्रति लापरवाही का दर्शन कराने वाली अपनी गजलों के द्वारा बाह्याडंबर एवं कर्मकांड की जड़ क्रियाओं के ऊपर तीव्र व्यंग्य किया है।[3]

सागर के प्रेमधर्म, जाति-पांति विरोध तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के उपदेशों में डा० त्रिपाठी ने कबीर-परम्परा के दर्शन किये हैं।[4]

गुजराती साहित्य के कवि सुन्दरम् ने "अर्वाचीन कविता" का अनुशीलन करते हुए, सागर की रचनाओं के विषय में लिखा है, कि सागर ने अखा के साथ कबीर की वाणी का भी गहरा अध्ययन किया हो, ऐसा लगता है; क्योंकि कहीं-कहीं उन्होंने कबीर के विचार, भाव, रूपक, प्रसंग आदि को उसी रूप में ले लिया है।[5]

सागर ने अपनी वाणी में अपने आपको कबीर की परम्परा का ही नहीं, इस युग में कबीर का प्रतिनिधि कहा है।

पूर्वे जन्म्या एक कबीरा, के बीजा 'सागर' राम।[6]

सागर ने कर्मकांड का घोर विरोध किया था। जातिभेद को वे नहीं मानते थे। उन्होंने लिखा है; "नहीं मुस्लिम, नहीं हिन्दू, अजाति ने अनामित।"

---

१. 'सागर' (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), डॉ० उर्मिल त्रिपाठी, पृ० ६०५।
२. 'दीवाने सागर' दफ्तर—१, पृ० ६६६।
३. 'सागर' वही, पृ० ७५२।
४. वही, पृ० ७५६।
५. अर्वाचीन कविता, पृ० १८६।
६. 'सागर' वही, पृ० ७४५।

हरिरस का पियाला पिये बिना कोई पूर्णत्व प्राप्त नहीं कर सकता। काजी का कुरान पढ़ना या ब्राह्मण का माला फिराना व्यर्थ है।

काजी कुरान बधू भणे बामण भले मणका गणे।
पण कोई ना पूरा बने, चश्मों मोंघो पीधा वगर ॥[1]

कबीर की परम्परा में सागर ने उलटवासियाँ भी लिखी हैं। कबीर वाणी की परम्परा सागर की वाणी में परिलक्षित होती है। तुलना का एक दृष्टांत निम्नांकित है।

कबीर—मन मार अगमगढ़ लीन्हा, साकत पर डोरा दीन्हा।
जहाँ बजे कबीर का डंका, तब जीत लिया गढ़ बंका ॥
सागर—तू रागी हो या बैरागी, गढ़ जीते सोही बंकाजी।
सेतु बंध 'सागर' सद्गुरु, अंधा जीत ले लंकाजी ॥[2]

निरांत परम्परा के संत

१. निरांत भगत—डा० केशवलाल ठक्कर ने उनका जन्म देथाण में सं० १८०३ में तथा उनका निर्वाण सं० १९०८ में बताया है।[3] उनको जाति से पाटीदार, कोली तथा राजपूत बताया गया है, किन्तु डा० ठाकर ने उनको गोहिल राजपूत माना है, सो यथार्थ है, क्योंकि उनके पिता का नाम उमेदसिंह था, तथा उनके दो विवाह परमार राजपूतों के घर हुए थे। उनके आठ पुत्र तथा चार पुत्रियाँ थीं।

बड़ोदा में प्रेमजी भगत के घर ठहरे थे। वहाँ स्वामी सहजानन्द से उनका समागम हुआ था। ये पहले सगुण भक्त थे। प्रति पूर्णिमा को हाथ में तुलसी का पौधा लगाकर डाकोर रणछोड़जी के दर्शन करने जाते थे। एक समय मार्ग में किसी मुस्लिम सन्त के उपदेश से वे निर्गुण मतवादी हो गये। उन्होंने पादरा के पास करणकट (भाखर रोड) में सन्त गोकुलदास से दीक्षा प्राप्त की थी।

यद्यपि डा० केशवलाल ने उनको रामानन्दी माना है, किन्तु उनकी वाणी से वे निर्गुण मार्गी सन्त लगते हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित निरांत पंथ मूर्ति-विरोधी है। उन्होंने कहीं मन्दिर नहीं बनाने दिये। मूर्ति नहीं है, गद्दी पर "निरांतवाणी" का ग्रन्थ रखा जाता है, जैसा कि कबीर-पंथ में होता है। उनके समय में गुजरात में सन्त प्रीतमदास, सन्त कुबेरदास, सन्त रविसाहब तथा स्वामी सहजानन्द अपने-अपने मत का प्रचार कर रहे थे।

---

१. 'दीवाने सागर' दफ्तर—२, पृ० २५।
२. 'सागर' वही, पृ० ६७७।
३. आ० गु० सं०, पृ० ७४।

निरांत भगत ने हिन्दी तथा गुजराती भाषा में संत वाणी की रचना की है। उन्होंने ज्ञान तथा भक्ति के १११ पद उपरांत सवैया, आत्मबोध, पत्र, ज्ञानोपदेश के ४९ पद, सातवार, बारहमास तिथि, ज्ञानी-गुरु की साखी, सांख्ययोग के श्लोक, अवतार खंडन, नाम महिमा, ब्रह्मज्ञानी पद तथा ५७ अन्य फुटकल पद लिखे हैं। देशी घोल, गरबा, गरबी, होरी, घुमार आदि राग में पद लिखे हैं। धीरा भगत जैसी "काफी" नाम के काव्य प्रकार में भी रचनाएँ की हैं। उनकी वाणी में निर्गुण उपासना के पदों की संख्या सर्वाधिक है।[1]

निरांत की वाणी में, गुरु महिमा, गुरुता का आनन्द, कैवल्य-पद आत्मज्ञान, पुरुष-प्रकृति वर्णन, सन्त के लक्षण, सत्संग-महिमा, तथा वैराग-बोध जैसी कबीर विचारधारा की परम्परा के दर्शन होते हैं। निरांत ने अपने समकालीन रविदास, हरिदास तथा मंछाराम जैसे ज्ञानी सन्तों के साथ पत्र द्वारा भी ज्ञानगोष्ठी की है।

उनके सोलह शिष्यों ने विभिन्न स्थानों में गद्दियों की स्थापना की थी। ये सोलह शिष्य निम्न-प्रकार हैं।

१. दयालदास (करमडी), २. गणपतदास, ३. रामदास, ४. मंछाराम (थातो-डिया), ५. गोविन्दराम, ६. नरोत्तमदास, ७. गिरिजाबाई, ८. दौलतराम (सूरत), ९. बापूसाहब (बड़ौदा), १०. पुरुषोत्तम, ११. प्रभुदास, १२. वाराणसी (बड़ौदा), १३. जमनाबाई, १४. लक्ष्मीदास, १५. नरेरदास (पुत्र), १६. गुलालदास (पुत्र)।

निरांत ने अपनी वाणी में प्रमुख शिष्य होने से 'बापू' के नाम का उल्लेख किया है।

'अवधू-बापू' शिष्य हमारा, सुनो कान करी सरवा।
'निरांत' निरजन एक दिखावे, संसार-सागर तरया॥[2]

निरांत ने रामनाम की महिमा गाई है। उनका राम निर्गुण राम है। संसार के साधारण लोग जिस राम की पूजा करते हैं, ये वे राम नहीं हैं। इसलिए उन्होंने राम के सच्चे रूप को पहचानने की सूचना दी है; "बीजो भाई सन्त सुजाण, स्मरण श्री रामनो।" इस मत की अधिक स्पष्टता करने के प्रयोजन से उन्होंने लिखा कि संसार तो राजाराम के नाम को जपता है, किन्तु जिसको कबीर साहब जपते थे, उस "राम" का नाम अजर-अमर है।

रामनाम सब को जपे, सो तो नाम शरीर।
अजर अमर एक नाम है, ताकु जपे कबीर॥[3]

---

१. वही, पृ० ७५।
२. गा० का० सं० पं० १०, पृ० १२७।
३. वही, पृ० १२७।

नाम से प्रेम करने वाले सबसे ऊँचे हैं; क्योंकि सारे शास्त्रों के मंथन से जो प्राप्त हुआ है, वही तत्व "नाम" है ।[१]

नाम के सोहाग को धारण करनेवाली ही सच्ची सुहागिन है ।

सदा सोहागिन वाको कहिये, निरखत 'नाम-सोहागी' ।

निरांत को ब्रह्म का पूर्ण परिचय हुआ था; इसलिए उन्होंने निर्गुण नाम लिया है । यह "नाम" वर्णनातीत है, अनिर्वचनीय है । वाणी में आकर वह बदल जाता है, नाम-रूप से वह न्यारा है । प्रेम से वह बन्धन में आता है तथा अनुभव करनेवाले के हृदय में निरन्तर रहता है ।[२]

जीव तथा शिव का मिलन नीर-क्षीर-मिलन जैसा है । जो यह विवेक कर सकता है, वही सच्चा संत है ।[३] परम पुरुष से प्रेम करने के लिए उन्होंने हरि-गुरु-संत की कृपा अनिवार्य मानी है । उससे सारे संदेह दूर हो जाते हैं, तथा परम पुरुष से प्रेम हो जाता है ।[४]

"साहब", "सत्" तथा "सांई" जैसे शब्दों की परम्परा निरांत की वाणी में अविरत रही है । हिन्दू तथा मुसलमानों का एक ही ईश्वर है, जिसे निरांत ने घट-घट में देखा है ।

कवि कहे निरांत साहेब का सब ही भेखा ।
मुसलमान परमान, सांई सब घट में देखा ।।[५]

निरांत की वाणी से निर्देश मिलता है, कि वे कबीर मतावलंबी थे । उन्होंने "सत्-मत" को अपनाने का उपदेश दिया है ।

अनुभवे अंतर ओलखो, राखो 'सत्‌मत' नो पंथ ।

उन्होंने गुरु के लिए "बंधी-छोड़" शब्द का प्रयोग किया है, यह शब्द कबीर-पंथ में कबीर साहब के लिए प्रयोग में आता है । दम्भ तथा आचारों का विरोध करते हुए निरांत ने लिखा है, कि मूड़ मुडाते हैं, भगवा वस्त्र पहनते हैं, संन्यासी का वेश बनाते हैं, ऐसे पंडित तथा पुराणी को भी अविनाशी की पहचान नहीं है । कबीरवाणी की परम्परा निरांतवाणी में दर्शनीय है ।

कबीर—जो तू बामन बामनी जाया, और मारग क्यूं नहीं आया ?
निरांत—बामन ! तुम्हें काहा चोना है, कहां से बामन आया रे ।

---

१. प्रा० का० सं० ग्रं० १०, पृ० ५७ ।

२. वही, पृ० १२७ ।

३. 'निरांत कृत काव्य' पृ० ६७ ।

४. प्रा० का० मा० ग्रं० १०, पृ० १०५ ।

५. वही, पृ० १०६ ।

कबीर—अब हम जाना हो, हरि बाजी का खेल।
बाजी झूठ सांच बाजीगर, साधुनकी मति मेल ॥
निरांत—बाजीकी मैं जाऊँ वलिहारी, बाजी उपर सब राजी।
बाजीगर को कोऊ न बूझे, ऐसी अकल मत छाजी ॥[1]

(२) संत बापू साहब—वि० सं० १७७४ में बड़ोदा में यशवंतराव गायकवाड़ के घर उनका जन्म हुआ था। ये पहले धीरा भगत के शिष्य हुए थे।[2] वहाँ निरांत साहब से भी सत्संग होता था। धीराभगत की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने निरांत को गुरु किया था।[3]

ये बड़ोदा राज्य में जमादार की नौकरी करते थे। ईश्वर से लगन लग गई थी, इससे नौकरी में मन नहीं लगता था। अन्त में उनको त्यागपत्र दे देना पड़ा। जातिपांति के भेदभाव को वे नहीं मानते थे। एक बार अंत्यजवास में भजन करने चले गये थे। इस पर समाज में उनकी बड़ी निन्दा हुई तथा पिता ने उनको घर से निर्वासित कर दिया था।

उन्होंने ज्ञानोपदेश के ३० पद लिखे हैं। उनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति तथा योग के समन्वय की भावना है। "धर्मवेश" में दम्भ तथा पाखण्ड का खंडन है। "ब्रह्मज्ञान" में निर्गुण उपासना के मार्ग का दर्शन है। "महिना" में कामादिक षड्रिपुओं का वर्णन है। अठारह सिद्धियों के खंडन की अठारह "काफी" लिखी हैं। ब्रह्मबोध तथा ज्ञानी के लक्षण पर कुछ "काफी" लिखी हैं। मिथ्याज्ञानी को चेतावनी दी है।

बापूसाहब की वाणी में कबीर-मत की परम्परा में अलख की साधना, भक्ति तथा ज्ञान का समन्वय, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, अस्पृश्य प्रेम, नाम का महत्त्व, अनुभूति-जन्य ज्ञान, आतम राम, मिथ्याचार तथा परम्परा-विरोध, मूर्तिविरोध तथा दम्भ-विरोध जैसे तत्वों के दर्शन होते हैं। कबीर-पंथ की वाणी के सतगुरु, सतनाम, तथा सतधाम जैसे शब्दों का प्रयोग भी उनकी वाणी में अनेक बार हुआ है।

सं० १८९९ के आश्विन शुक्ला एकादशी के दिन बापूसाहब का निधन हुआ था।[4]

नाम की महिमा गाते हुए उन्होंने कहा कि "नाम" का ज्ञान जिनको हो जाता है, उनको चारों वेद का ज्ञान हो गया, ऐसा समझना चाहिये।" धर्मपन्थों में मूर

१. 'निरांत कृत काव्य' पृ० ९५।
२. प० प० सं०, पृ० २७७।
३. 'नाम निरांत तारी सांभली'।
४. प० प० सं०, पृ० २७३।
५. 'नाम जेणे जाण्युं रे, ते तो वेद चारे भण्यो।' प० प० सं०, पृ० २७१।

की चर्चा छोड़कर विभिन्न मार्गों की चर्चा की। कर्माधर्मी मार्ग लेकर पण्डितों ने खेल बिगाड़ दिया था। पाप-पुण्य तथा विधि-निषेध में जगत् को उन्होंने डाल या।[1] इसलिए काल ऐसे पण्डितों तथा काजियों को भी खा गया, किसी को छोड़ा। "काले काजी ने मुल्ला खाधा करडी।"[2]

छापा-तिलक लगाकर प्रपंच में पड़े रहनेवाले डूब जायेंगे। तीस दिन रोजा र मछली खाने वाले तथा बकरे काटने वाले का भी यही हाल है। हिन्दू तथा मान द्वारिका तथा मक्का दौड़कर हार गये। देव मन्दिर में नहीं है। अपनी देह े आतमराम निवास करता है। उन्हें कोई नहीं जानता, और काष्ठ तथा पाषाण मूर्तियों में उन्हें ढूंढ़ते हैं।

देहमां देव तेने नहीं जाणो, जई काष्ठ पाषाणने मानो।[3]

बापू ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का उपदेश दिया था। उन्होंने कहा, राम-रहमान, ृ-करीम, विष्णु-बिस्मिल्लाह तथा अल्ला-अलख में कोई भेद नहीं है।

बापू ने संत उनको कहा, जिनके द्वारा शान्ति मिले। उन्होंने ऐसे संत के दास भी अपने को दास कहा।

कबीरवाणी की परम्परा तथा प्रभाव बापू की वाणी में देखने को मिलता है। ीरवाणी के भाव, भाषा, उपमा, रूपक तथा दृष्टान्त बापू ने अपनी वाणी में लिये। निम्नांकित तुलना द्रष्टव्य है।

कबीर—गनिका के घरि बेटा जाया, पिता नाम किस कहिये।
बापू—कोने बाप कहेशे रे, वेश्या जे पुत्र जण्यो।
कबीर—कबीरा बिगर्या राम दुहाई, तुम जिनि बिगरो मेरे भाई।
पारस को ज्यों लोह छूवेगा, बिगरि-बिगरि सो कंचन होगा।[4]
बापू— अमे वगड्या, अमे वगड्या, लेजो जाणी रे।
पारसना स्पर्श थकी, पत्थर जोने वगड्यो, जेणे
आत्मा लीधो जाणी रे॥[5]

(३) अर्जुन भगत—सं० १६१२ में अंकलेश्वर के पास धड़खोल गाँव में उनका जन्म हुआ था। वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उनके अन्तर की सूक्ष्म

१. प्रा० क० मा० ग्रं० ७, पृ० १५।
२. वही, पृ० ५।
३. प० प० सं०, पृ० २७४।
४. क० ग्रं० (२०११), पृ० १८१।
५. प्रा० का० मा० ग्रं० ७, पृ० १८।

अद्‌भुत थी। ये गृहस्थाश्रमी संत थे। उनके चार पुत्रों में से अचानक तीन पुत्रों का निधन हो गया, किन्तु इतना प्रबल आघात भी भक्त की स्थिरता एवं विश्वास को विचलित कर न सका। खगोलशास्त्र के अद्‌भुत ज्ञान को देखकर गायकवाड़ सरकार ने उनको उच्च पद देना चाहा था, किन्तु उन्होंने ईश्वर के सिवा अन्य किसी की भी सेवा करने से इन्कार कर दिया था।[1]

निरांत के एक शिष्य रणछोड़दास के पास सूरत में सं० १६४८ में अर्जुन भगत ने दीक्षा ली थी। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में किया है।[2] उन्होंने अपने आप को पंखी की उपमा देकर सद्‌गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान को पंख कहा।

मैं पंखी बिन पांख के, पर है सद्‌गुरु ज्ञान।
मन-पवन के आशरे, अर्जुन उड़ूं आसमान॥[3]

अर्जुन ने हिन्दी तथा गुजराती भाषा में अनेक रचनाएँ की हैं। उन्होंने अनेक पद, साखी, दोहा, चौपाई, कुंडलिया आदि लिखे हैं। श्री रामनारायण पाठक ने उनकी तमाम रचनाओं को खोज, अनुभूति तथा बोध में विभक्त किया है।[4] अर्जुन की भाषा कबीर की भाषा जैसी है। उसमें सफाई नहीं है, किन्तु चोट है। उनकी रचनाओं में कल्पना की उड़ान, घरेलू शब्द-प्रयोग, कलात्मक अभिव्यक्ति, आध्यात्मिक दृष्टि तथा ग्राम्य दृष्टान्तों का प्रभाव है। भावों की अभिव्यक्ति प्रबल है। उन्होंने मूर्ति-पूजा में मूढ़ नहीं बनने की चेतावनी दी है। उनके दिल पर "राम" शब्द की चोट लगी है।" वे राम का भजन करते हैं। "राम" के नाम को छोड़ेंगे नहीं। उन्होंने निर्गुण वृक्ष की सगुण छाया का रूपक रचा है। उन्होंने कहा; कि मैं वृक्ष का आधार लेता हूँ। छाया तो शाम तक रहेगी, फिर वृक्ष में छिप जायगी, किन्तु वृक्ष बना रहेगा।

डॉ० केशवलाल ठक्कर ने लिखा है, कि अर्जुन भगत निर्गुणमार्ग का यात्री था। मूर्ति-पूजा तथा बाह्याचार को नहीं मानता था। हरिस्मरण तथा अभिमान-त्याग का उपदेश देता था।[6] अर्जुन ने अपने उपदेशों में दो बातों पर बल दिया था, "सत्य-काम" तथा "राम-नाम।"

"संत-काम कीजिये और राम-नाम लीजिये।"[7] उन्होंने "नाम" को सर्वाधिक

---

१. आ० गु० सं०, पृ० १५५।
२. 'अर्जुनवाणी' सं० महादेव देसाई, पृ० ११०।
३. 'अर्वाचीन कविता' १९६०, पृ० ५०१।
४. 'काव्यनी शक्ति' पृ० २४७।
५. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, सं० डॉ० अंबाशंकर नागर पृ० [illegible]
६. आ० गु० सं०, पृ० १५७।
७. अर्जुन वाणी, पृ० १०८।

महत्व दिया था। जो नाम को पढ़ सके उसी को ही उन्होंने पक्का पण्डित कहा था। "पढ़े नाम सो पक्का पण्डित।" नाम ही काशी है, नाम ही गंगा है, नाम सब तीर्थ हैं, सचराचर में नाम बिना कोई स्थान रिक्त नहीं है।[1] अर्जुन ने उसी नाम को निरंजन भी कहा है। "नाम निरंजन है न्यारा।" सद्गुरु की छाया में बैठकर अर्जुन जिस "राम" का नाम लेता है, वह "राम" अविनाशी राम है। वह साहब एक है, जिसके द्वारा अज्ञान का अंधेरा हो गया है।[2]

अर्जुन ने "साहब" को देश-देश के मन्दिरों में तथा अड़सठ तीर्थों में ढूँढ़ा, किन्तु वह उनको प्राप्त न कर सका।[3] तदनन्तर उसको ज्ञान हुआ, कि जिनको वह ढूंढ़ता था, वे उसके भीतर हैं। पिंड में ही भगवान् हैं; किन्तु उनकी पहचान कराने के लिए पूरे गुरु की आवश्यकता होती है, जो इस भेद रूपी ताले को खोल दे।

अंतर्यामी अगम्य है। कोई नहीं जानता कि इस ढोल को कौन बजा रहा है। पतंग को आसमान में कौन उड़ाता है? नीर में नाव को कौन डुबाता है तथा इस शरीर को कौन चलाता है।

> मंबस मंबम बाजत ढोलक, ढोल न जानत कौन बजावे।
> ज्ञान पिछान चढ़ी आसमान, पतंग न जानत कौन चगावे।
> नीर में नाव डूबे कदी दावज, नाव न जानत कौन डूबावे।
> अर्जुन ज्ञाति न जानत रानि, आ काया कु कौन चलावे ॥[4]

अर्जुन की वाणी में कबीर वाणी की परम्परा प्रतिध्वनित होती है। उनकी वाणी के ये तत्व-आपात्याग, आचार-विरोध, मूर्ति-विरोध, पंडिताई-विरोध, शाक्त-विरोध कबीरमत के तत्व हैं। तदुपरांत अर्जुन ने सत्नाम, साहब, साइँ जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है। उन्होंने उलटवासियां भी लिखी हैं, जो कबीर परम्परा का अनुकरण करती दीख पड़ती है। यमराज का जीव एक राजा ले गया, मुर्दा चलकर श्मशान जाता है। चोर सत्वादी को शूली चढ़ाता है। संगीत का साज स्वयं बजता है; चींटी कुंजर से लड़ती है, तथा अहेरी पंखी के फंदे फंस गया है।[5]

पण्डित तथा काजी मिथ्या चर्चा करते हैं, उनको संसार का भेद ज्ञात नहीं है। "पण्डित काजी करे जक झाझी, नहीं परपंच परखाया।" वे संत नहीं हैं, संत तो वे

---

१. वही, पृ० १३३।
२. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ० ४२०।
३. संतवाणी, पृ० ४५।
४. 'अर्वाचीन कविता' श्री सुन्दरम्, पृ० ५०१।
५. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ० ४२४।

हैं, जो दिल में दीनता रखते हैं, तथा मुख में सदा राम का नाम रखते हैं। ऐसे नाम-जप निरन्तर करनेवाले संत का मैं गुलाम हूं।[1] अर्जुन को तीन रत्न प्राप्त हो गये हैं, अब उसे उनकी रक्षा ही करनी चाहिये।

मन मुलक में मैं गया, अमुलख तीन रत्न।
सत, नाम ने सद्गुरु, अर्जुन करो जत्न॥

(४) संत प्रेम दास—भरूच जिले के "अरगा" गांव के मोती विश्राम भील के वे सुपुत्र होते थे। दिन भर मजदूरी कर रात को भजन करते थे। उनके जमींदार ने उनकी सच्ची लगन देख कुछ जमीन भी उनको दे दी थी। नर्मदा तट पर आलमपुरा गांव में निरांत पंथी संत धरमगीर गोसाईं से उन्होंने दीक्षा ली थी। सं० १६६६ में "घरेड़िया" गांव में उनका देहांत हुआ।[2]

उन्होंने संतवाणी की रचना की है। दासी जीवण जैसा प्रेम-भाव उनके कुछ पदों में है। उन्होंने शब्द तथा सद्गुरु के महत्व को दिखाया है। उन्होंने विवाह का रूपक लिखा है। निवृत्ति रूपी कन्या के साथ आत्मा का विवाह होता है। इसका सारा आयोजन सद्गुरु ने किया है। शब्दरूपी बिन्दी लगाई गई है। सुषुम्ना सांस है, साथ में इंगला-पिंगला दो सहेलियां हैं। हस्त-मिलाप समाधि है, बाजे अनहद नाद हैं। जिन पर सद्गुरु की कृपा होगी, उनका ही सौभाग्य अखण्ड रहेगा।

बावा-परम्परा के संत

(१) बाबा दीन दरवेश—उनका जन्म सं० १७६८ में उत्तर गुजरात के खेरालु के पास डाभोड़ा गांव में सोमाजी के घर हुआ था। उनकी माता का नाम तुलजाबाई था।[3] गांव में आये हुए एक फकीर के प्रभाव से वे विरक्त हो गये थे। इस पर घर वालों ने उनको स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इससे गृहत्याग कर वे गिरनार चले गये। सोलह वर्ष ध्यानयोग करके सं० १८०४ में वे अपनी गुफा से बाहर आये।[4] तदनन्तर उन्होंने भारत-भ्रमण किया। बद्रीनाथ, व्रज तथा अयोध्या होकर वे गुजरात आये तथा सौराष्ट्र की यात्रा की। सौराष्ट्र-यात्रा में वे जंगम तीर्थ जैसे संत रवि, खीम, गंग, मोरार, होथी, करीम शाह, मूलदास, जलाराम, इसरदान तथा लालनशाह को मिले थे। इन संतों के मिलन का उन्होंने अपनी कुण्डलियों में उल्लेख किया है, तथा उन संतों की जननी सौराष्ट्र की भूमि को धन्यवाद दिये हैं।

---

१. दिल में रखता दीनता, मुखमें रखता राम।
अर्जुन जपता नामको, वाका मैं हूं गुलाम॥
२. 'गुजरातना भक्तो' पृ० ३२।
३. 'बाबा दीनदरवेश' श्री माणेकलाल राणा पृ० २१।
४. 'कल्याण' संतवाणी अंक, पृ० ४५५।

पाया संत दीदार, धन्य सौराष्ट्र की भूमि।

तदनन्तर बाबा दीन पालनपुर गये। पालनपुर के एक कवि कहान ने बाबादीन को मिलने से पूर्व उनके विषय में एक कुण्डलिया लिखी थी।

फानी दुनिया जानके, लियो फकीरी वेश।
जननी सुत ऐसो जने, जैसो दीन दरवेश।
जैसो दीनदरवेश, सैंया से तार मिलायो।
बसे अगोचर वास, मेरी नजर नहीं आयो।
कथे सुकविया कहान, पूण ब्रह्मतेज में ज्ञानी।
लियो फकीरी वेश, जानके दुनिया फानी॥

उन्होंने पालनपुर में आश्रम बनाकर वहाँ निवास किया। उनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहते हैं, उन्होंने जूनागढ़ के नवाब शेरखाँ बाबी को उनकी मृत्यु की सूचना दे दी थी। उनकी एक कुण्डलिया में इसका उल्लेख है।

कहत दीन दरवेश, पतशाही मानो ख्वाबी।
जीवन है दस साल, सून लो शेरखां बाबी॥[1]

मेवाड़ की यात्रा के दरमियान पठानों द्वारा नष्ट किये गये एकलिंगजी के भग्न मन्दिर को देख उनको बड़ा दुःख हुआ था। सं० १८८९ की कार्तिकी एकादशी को उन्होंने जलसमाधि ले ली।

बाबादीन दरवेश निर्गुण के उपासक थे, किन्तु उन्होंने मूर्ति का विरोध नहीं किया। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का उन्होंने सविशेष प्रचार किया था। इस विषय पर बाबा दीन ने अनेक "कुण्डलियां" लिखी हैं। एक मुस्लिम लुटेरा-कादर (बुकानी) को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था।

कादर तू बूझत नहीं, अविगत नाम अनेक।
राम कहो, रहीमा कहो, कृष्ण-करीमा एक।
कृष्ण करीमा एक, सांई का नाम अपारा।
हिन्दू मुसलमान, चहाय वे नाम पुकारा।
कहत दीन दरवेश, 'साहब' से रखियो आदर।
उनके नाम अनेक, कुफ्र में डूबो ना कादर॥[2]

बाबादीन ने कबीर साहब के विषय में उनकी गुजरात-यात्रा में वे जहाँ-जहाँ गये थे, तथा जो-जो शिष्य हुए थे, उसका वर्णन उनकी वाणी में किया है। प्रगट-

---

१. बाबादीनदरवेश, पृ० ३१।

२. बाबादीनदरवेश, पृ० ८५।

पीर, बंधी-छोड़ तथा सद्गुरु के रूप में कबीर साहब के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उनमें से एक कुण्डलिया निम्नांकित है।

बंध छुड़ावन आइया, करुणासिंधु कबीर।
तारे जोव अनन्त को, प्रगट देखा गुरु-पीर।
प्रगट देखा गुरु-पीर, हिन्दू मुस्लिम भटकाये।
रहबर साहिब मोर, भूले को राह बताये।
कहत दीनदरवेश, सत् का शब्द सुनाया।
करुणा-सिंधु-कबीर, बंध छुड़ावन आया।[1]

बाबा दीन ने भगवद्गीता, महाभारत, रामायण तथा कुरान के विषय पर भी 'कुण्डलियां' लिखी हैं।

उनके अनेक शिष्य थे। उनमें से नेकखान, अमीरुद्दीन, पीरुद्दीन, बाबा फजल, बाबा नबी, हुसेन खाँ, बिजली खाँ, कुब्बत खाँ, बाबा नुरुद्दीन, गीजनी खान तथा पद्मसेन राठौड़ प्रमुख शिष्य थे।[2]

(२) बाबा मुराद—ये नांदोद (राजपीपला) के निवासी थे। उनके पिता शेख सूरत बंदर पर नाविक का काम करते थे। उनका समय सं० १७५० से १८२५ था। छोटी उम्र में भी वे सफर पर जाते थे। किसी काम से उनको राधनपुर के नवाब के पास जाना पड़ा। वहाँ से लौटते हुए मार्ग में बाबा दीनदरवेश से भेंट हो गई। मुराद ने अपने पेशे में अपनी कार्यदक्षता की बात कही, किन्तु बाबा दीन ने कहा, कि समन्दर में नाव सफलता से चलाते हो, किन्तु भवसागर के मंझधार में तुम्हारी जीवन-नौका के खेनेवाले को क्या तुमने कभी खोजा है?

कहत दीनदरवेश, छिन का यार प्रवासी।
नैया बहे मंझधार, खेवैया खोज खलासी॥[3]

उस समय तो वह चला गया। नांदोद आने पर उसे हाजियों का एक जहाज लेकर अरब देश जाने का निमन्त्रण मिला। ईरान आदि देशों की सफर कर तीन वर्ष पीछे जब घर पहुँचे, तो देखा, उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। वे अत्यन्त निराश हो गये। निराशा में उन्हें बाबा दीन की याद आई। वे राधनपुर बाबा के पास आश्रम में आये, वहां बाबा दीन के उपदेश से उनको शांति मिली। उनके ज्ञान-चक्षु खुल गये। तदनन्तर उन्होंने गुरु के चरणों में निवास किया। उन्होंने हिन्दी में कुण्डलिया लिख संतवाणी की रचना की, किन्तु एक दिन साईं ने उसे सावधान किया, कि

१. श्री माणेकलाल राणा के संग्रह से।
२. बाबा दीनदरवेश, पृ० ११६।
३. 'रविवार' दीपोत्सवी अंक, सं० २००६।

उन्होंने ये वर्ष व्यर्थ गवां दिये, क्योंकि प्राप्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था[1]। बाबादीन ने उनको "नाम-जप" का उपदेश दिया। गुरु के आश्रम में रहकर ध्यान लगाना संभव न जानकर गुरु निर्दिष्ट अरवल्ली की पहाड़ियों में वे चले गये। वहां उनको नामस्मरण में ताली लग गई। पिव से लगन लग गई, अंत:चक्षु खुल गये। कहते हैं उनको प्रियतम के दर्शन हुए थे। इसका उल्लेख उनकी वाणी में हुआ है।

लगन पियुसे लगते, आली खूल गये नैन।
अपने पियु को देखते, बिसर गई सुख चैन॥

सं० १८९६ में गुफा को छोड़ मुराद पालनपुर गया, तब उनको ज्ञात हुआ कि सात वर्ष पूर्व बाबादीन का निधन हो चुका था। इस समाचार से उनको बड़ा आघात पहुँचा। मुराद ने गुरु के वियोग में साखियां लिखी हैं, जिनमें उनका दर्द व्यक्त होता है।

पालनपुर सूना लगे, सूना सांई का धाम।
मुराद मुरसद के बिना, पाया नहीं विश्राम॥

मुराद ने अपनी एक कुंडलिया में हरिस्मरण, आतम-राम, नाम-प्रेम तथा पिव-मिलन का उल्लेख किया है।

सुमिरन ऐसो कीजिये, लग रहे आठो जाम।
पल-छीन न्यारा ना रहे, हरदम आतम-राम।
हरदम आतम-राम, नाम से लग रहे यारी।
पिया अमीरस घूंट, उनको जहां अकारी।
मुराद सुध विसार के, पिव में जाय मिलेसा।
लग रहे आठों जाम, कीजिये सुमिरन ऐसा॥

(३) बाबा नुरुदीन—पालनपुर में बाबादीन के आश्रम में अनेक शिष्यों में नुरुद्दीन एक राम भक्त थे। एक बार रामायण की कथा सुनने पर "राम" की ऐसी लगनी लग गई थी, कि रामायण के ग्रन्थ को हमेशा अपने पास रखते थे। जहां कहीं अवकाश मिलता, उसे पढ़ने को बैठ जाते थे।[2] इस प्रसंग का उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में किया है।

राम सुनत सखो, उपन्यो मन अनुराग।
वे रहिमन को पेखिया, उदय भये बड़भाग।

---

१. बारा बरस बिरथा गये, मिले न खेवनहार।
कबतक खोज लगाइये, आयु बिते गंवार॥

२. 'रविवार' दीपोत्सवी अंक (बम्बई) अक्तूबर, १९५२।

उदय भये बड़भाग, यार से लग गये नाता।
यह फानी संसार, देखते लग रहे ताता।
नूर सांई सुध बिसरै, रघुपति राघव गायो।
मुरशिद भेद बताय, रामकथा मोहे सुनायो ।।

बाबादीन के एक शिष्य मेरुनाथ ने यह राम-कथा उनको सुनाई थी। गुरु ने ही उनको माया का फंदा छोड़कर राम की भक्ति करने का उपदेश दिया था।[1] बाबा नुरुद्दीन ने हिन्दी में रेख्ता तथा झूलना छंद में संतवाणी की रचना की है। गुरु के उपदेश से उन्होंने मायिक संसार को छोड़ दिया। रोती हुई पत्नी को उपदेश देते हुए उन्होंने लिखा है।

रेख्ता

खसम से यारी छांड़ दे बावरी, तेरा खसम अब नहीं रहाया।
फानी जहां के फंद को पेख, परवर का इश्क, आंसू बहाया।
मादर, पिधर, फरजंद, दारा, ये झूठ नाता, नहीं को सहाया।
सांई नूरको, मेहबूब प्यारा, दिलदार से हमने मुजरा कहाया ।।

उनकी राम-भक्ति को देख कुछ मुसलमान उनको काफिर कहने लगे। उनके लिए अपने एक छंद में उन्होंने लिखा, कि "सांई कुफ्र से दूर रहते हैं। मैंने दोनों दुनिया देखी है, दोनों राम-रहीम से भरी हुई हैं।" कुछ मुसलमानों ने उनको मारा तथा रामायण के ग्रन्थ को चीर डाला। बाबादीन ने हिन्दू-मुस्लिम अभेद के उपदेश से वे शान्त हो गये थे। तदनन्तर वे पालनपुर छोड़कर आबू आये और एकान्त स्थान में ध्यान लगाने लगे। उनको "नाम" से यारी लग गई। प्रिय-मिलन की उत्कट अवस्था का वर्णन उन्होंने अपनी एक कुण्डलिया में किया है।

यारी लगी उस नामसे, लीन्हो फकीरी वेश।
तेरी सूरत को देखने, दर दर फिरे दरवेश।
दर-दर फिरे दरवेश, तू ही बिन और न खोजा।
तेरे इश्क लवलीन, बूझे नहीं निमाज अरु रोजा।
कहत 'नूर' दरवेश, सांई को जीऊ पियारी।
लीन्हों फकीरी वेश, नाम से लग गई यारी।

श्री राम के दर्शन के लिये वे अयोध्या भी गये थे। अवध में बैठकर उन्होंने रामायण के अनेक प्रसंग पर कुंडलियां लिखकर विशाल संतवाणी की रचना की थी।

---

१. कहत दीन दरवेश, फगादे मायिक फंदा।
भवजल तारणहार, भजो मन राम-गोविंदा ।।

उन्होंने एक कुण्डलिया में अपने हृदय के गहनतम दुःख को अभिव्यक्ति दी है। कबरी, गुहक, वानर तथा जटायु पर कृपा करनेवाले भगवान् क्या यवन होने के कारण ही मेरे पर कृपा नहीं करते ?[1]

(४) संत बाबा मलेक—ये पठान जाति के मुसलमान थे। नर्मदा तट पर चांदोद में निवास करते थे। चांदोद में किसी हिन्दू लड़की से प्रेम हो गया था। पता चल जाने पर लड़की के माता-पिता ने लड़की पर सख्ती की। निराश हो जाने पर उस लड़की ने आत्महत्या की। समाचार मिलते ही मलेक पागलसे हो गये। यत्र-तत्र भटकने लगे। मन की शान्ति के लिये उन्होंने तीर्थ-यात्रा का प्रारम्भ किया। नर्मदा के तट पर उनको हरिदास नाम के एक संत मिल गये। उनके उपदेश से उनको शान्ति मिली। तब से वे विरक्त संत मलेकदास बन गये।[2] बाबा मलेक अच्छे कवि हैं। उन्होंने प्रेम तथा भक्ति के अनेक पद हिन्दी में लिखे हैं।

जन्मभूमि चांदोद तथा गुरु हरिदास से मिलन का उल्लेख निम्नांकित पद में किया गया है।

हरिदास चेतावनी गाया, दास मलेक मन भाया।
जन्मभूमि चांदोद नगर से, तीरथवृत में चाल्या।
दास मलेक भेट्या हरिदासा, त्रिविधताप टल्या।।

संसार के प्रति उनके दिल में विरक्ति ही नहीं; घृणा हो गई थी। मतलबी संसार पर लिखा उनका एक पद द्रष्टव्य है।

बाबा तेरी दुनिया मुझे न भावे।
मतलब के सब लोग यहां के, बिन मतलब कोई न आवे।
अपना राग सुनावत सबही, हमरो कोई न गावे।।[3]

मलेकदास के जन्म तथा मृत्यु के वर्ष निश्चित रूप में नहीं प्राप्त होते, किन्तु उनको जहांगीर का समकालीन बताया जाता है। जहांगीर का समय सं० १६६२–१६८४ है।

---

१. शबरी भीलनी जानके, झूठे खाये बेर।
नाविक जान शरण रख्यो, यहाँ यवन से बैर।
यहां यवन से बैर, जटायु खग थे प्राणी।
वानर और किरात, उबारे जाणी अजाणी।
नूर फकीर जाने नहीं, जात बरण एक राम।
तुम चरण में आयके, अब तो किया विश्राम।।

२. 'अखंड आनन्द' मई, १९४९।

३. हिं० वि० गु० फा०, पृ० ७९।

उस काल में एकाधिक हरिदास हो गये हैं, उनमें से किस हरिदास के मलेक शिष्य थे, यह कहना कठिन है, किन्तु मलेकदास की वाणी में राम की भक्ति, एकेश्वर-वाद, हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य की भावना आदि को देखते हुए लगता है, कि हरिदासजी किसी-न-किसी कबीर-परम्परा से सम्बन्धित थे। गुरु के संग में मलेक राम के रंग में रंग गये थे। गुरुकृपा से उनको काल का डर नहीं रहा, वे अभय हो गये थे[1]। हरि एक है, राम-रहीम तथा कृष्ण-करीम में भेद नहीं है। नाम मात्र भिन्न है; जगत् में अनेक मत-मतान्तर हैं। काबा-काशी जाना व्यर्थ है।

मलेकदास का मन एक हरिमें लुभाया है।

यह जगत् एक धर्मशाला है। मलेकदास ने भी "यह जग देखा शराही।" वे मजहब को नहीं मानते, एक साहब को जानते हैं।

साचा-झूठको साहब पूछे, मजहब से नाता नाहीं।

हिन्दू मुस्लिम तथा काबा-काशी का भेद गुरु हरिदास ने दूर किया था, इस बात का उल्लेख मलेकदास ने अपनी वाणी में किया है।

आदिकाल का रवैया दूर किया हरिदास।
काशी-काबा मत भूले पाया अपने पास॥

अपनी उत्तरावस्था में गुरु के साथ चांदोद से चल पड़े थे, तथा गुरु हरिदास के चरणों में उन्होंने चिर समाधि ली थी।[2]

(५) बाबा फकरुद्दीन—ये मुगलों के समय में सूरत के सिपहसालार थे। सूरत में संग्रामपुरा के पास आज भी एक बहुत बड़ा कब्रस्तान है। उसके निकट में एक संत कृष्णदास ने "धूनी" लगाई थी। ये कृष्णदास संग्रामपुरा कबीर-मन्दिर के महंत कृष्णदास से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुए थे। नवाब के कहलाने पर भी उन्होंने अपना स्थान नहीं छोड़ा।

नवाब ने अपने सिपहसालार फकरुद्दीन को संत की कत्ल करने की आज्ञा दी। तदनुसार उन्होंने संत की कत्ल की थी, किन्तु दूसरे दिन पुनः आरती की घण्टियों की ध्वनि सुनाई पड़ने से नवाब ने क्रोध में आकर फकरुद्दीन को बुलाकर तलाश करने को कहा। फकरुद्दीन ने संत को जीवन्त देखा, तो नवाब के भय से सूरत छोड़ भाग गया, किन्तु कुछ समय बाद वेश बदल कर आया और संत से दीक्षा लेकर बाबा

---

१. महा पतित को पावन कीन्हो, रामरंग में राचा।
'दास मलेक' निर्भय हुई सोया, काल न भागे डाचा॥

२. 'अखंड आनन्द' मई, १९४९।

फकरुद्दीन बन गया।[1] हिन्दी में उन्होंने ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति विषयक रचनाएँ की हैं। उनमें से एक छन्द निम्नांकित है।

सूर्ख नाम पियाको भूल गयो, पामर क्यों गरव में फूलता है।
जिन्हें जठराग्नि से बाहर कियो, तू वोही समरथ को भूलता है।
सुन्दर नरतन खाख मिले, तू इश्के-अंजाम क्यों झूलता है।
दरवेश 'फकरुद्दीन' सांच कहे, तेरी अंखियां क्यों नहीं खूलता है ॥[2]

---

१. 'गुजरात' दीपोत्सवी अंक, वि० सं० २००९
२. 'विश्वमंगल' भागवतांक, पृ० ३०७।

आठवां अध्याय

गुजरात के अन्य संप्रदायों पर कबीर-प्रभाव

गुजरात में प्रवर्तित सम्प्रदायों में से अनेक सम्प्रदाय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कबीर विचारधारा से प्रभावित हुए हैं। निर्गुण-सम्प्रदायों में ऐसे तीन प्रकार के सम्प्रदाय हैं। उनमें से एक प्रकार के कुछ पंथ कबीर-परम्परा के किसी सन्त द्वारा प्रवर्तित हुए हैं। कबीर के शिष्य ज्ञानीजी द्वारा प्रवर्तित रामकबीर-सम्प्रदाय में सन्त जीवणजी की शाखा को "उदापंथ" नाम दिया गया था। कमाल के शिष्य दादू दयाल द्वारा प्रवर्तित पंथ को 'दादूपंथ' या 'परब्रह्म सम्प्रदाय' भी कहते हैं। दादू के शिष्य जगाजी के नाम भी एक "जगाजी पंथ" चल पड़ा है।

निर्गुण-पंथों में दूसरे प्रकार के पंथ ऐसे हैं, जो सिद्धान्त की दृष्टि से कबीर-मतावलम्बी हैं; किन्तु कबीर-परम्परा या कबीरपंथ के साथ उनके प्रवर्तकों का सम्बन्ध प्रकाश में नहीं आया है। उन प्रवर्तकों को कबरी-परम्परा से जोड़ने वाली कड़ी अज्ञात है। विशेष रूप में अखा जी की परम्परा के पंथ-अखा का 'विहंगम मार्ग', सतराम का 'सेवापंथ', कुबेरदास का 'सत्केवल पंथ' तथा नृसिंहाचार्य का "श्रेय साधक वर्ग" कबीर विचारधारा की परम्परा के दर्शन कराते हैं। कुबेरदास ने तो अपनी वाणी में स्वीकार किया है कि 'जो ज्ञान कबीर साहब ने धर्मदास को दिया था, वही मैं दे रहा हूँ'। राधास्वामी, धामी तथा बाबा-लाली भी कबीर की विचारधारा के ही वाहक हैं। उनके प्रवर्तकों ने कबीर साहब की महत्ता तथा कृपा का उल्लेख किया है।

एक अन्य प्रकार के निर्गुण पंथ भी प्रवर्तमान हैं, जिनका कबीर साहब की परम्परा के साथ सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। साधारणतः ये मुस्लिम-समन्वयवादी-परम्परा से प्रभावित हैं। उनके अनुयायी हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों जाति के लोग हैं। सत्पंथ, पिराणा तथा मार्गी (बीजपंथ) इस प्रकार के पंथ हैं। अघोर तथा ओघड़ संप्रदाय पर योगियों का प्रभाव है। कबीर साहब ने उनके आतंक को तोड़ कर उन्हें प्रायः मृतप्राय कर दिया था।

कबीर साहब के निर्गुण मतवाद का प्रभाव गुजरात में कुछ सगुण पंथों के ऊपर भी पड़ा था। स्वामीनारायण संप्रदाय तथा अगासो-पंथ इसके दो दृष्टांत हैं।

वैष्णव मार्ग में कुछ सुधार अपनाकर स्वामी सहजानंद ने इसका प्रवर्तन किया था। इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र ने रामकबीर सम्प्रदाय का प्रभाव स्वीकार कर जैनधर्म में सुधार कर अपने "अगासो पंथ" की स्थापना की थी।

कबीर-परम्परा द्वारा प्रवर्तित पंथ

(१) उदापंथ—उदापंथ को राम कबीर संप्रदाय की एक शाखा मात्र समझना चाहिए, क्योंकि नाम मात्र बदला है, अन्यथा सम्प्रदाय की गतिविधियों में बहुत कम अन्तर हुआ है। इसके प्रवर्तक ज्ञानीजी-परम्परा के सन्त जीवणजी थे। पुनियाद में उनकी गद्दी तथा परम्परा प्रवर्तमान है। उनके गुरु गोपालदास के गुरु भगवानदास ज्ञानीजी के शिष्य थे। उनकी गुरु गद्दी मोटासांभा में है। इस पंथ का तथा परंपरा का सम्बंध ज्ञानीजी के साथ दिखाया गया है। जीवणजी ने अपनी वाणी में ज्ञानीजी की परंपरा का उल्लेख किया है; "ज्ञानी के परमोध में उदा जीवणदास।"

कबीर-परम्परा—उदापंथ के प्रवर्तक जीवणजी कबीर-परम्परा के संत हैं, तथा उदापन्थ रामकबीर-सम्प्रदाय की एक शाखा का नाम मात्र है, तथापि उदापन्थियों में प्रवर्तित वैष्णवी-मर्यादा के कारण कुछ विद्वानों को संशय हुआ कि यह कबीर-परम्परित पन्थ न भी हो। श्री किसनसिंह चावड़ा ने लिखा है, कि उनका कर्मकांड मूल कबीर-पन्थ से बिलकुल उल्टा हो गया है। इस पन्थ के लोगों में प्रवर्तित संकुचितता तथा स्थितिचुस्तता के दो कारण उन्होंने दिये हैं; "मुस्लिम आक्रमण से बचने के लिए या नये सम्प्रदाय की स्थापना के अति उत्साह में इसे स्वीकार कर लिया हो।"[1] उदापन्थ "कबीर-पन्थ" की शाखा नहीं है, यह रामकबीर-सम्प्रदाय की शाखा है। पन्थ के अनुयायियों में जो संकुचितता है, वह पन्थ प्रेरित नहीं है, इस प्रदेश के अनपढ़ देहाती लोगों की विशेषता है। जीवणजी का समय सं० १६४६ से १७३७ तक है, उस समय तक मुस्लिम आक्रमण प्रायः समाप्त हो गये थे। इस आक्रमण का सामना तो रामकबीर सम्प्रदाय के प्रवर्तक ज्ञानीजी को करना पड़ा था; उनका सारा नगर "मणिपुर" इसमें नष्ट हो गया था। नये पन्थ की स्थापना का वह उत्साह भी दृष्टिगत नहीं होता, क्योंकि जीवणजी ने अपनी वाणी में ज्ञानीजी की परम्परा को सहर्ष स्वीकार किया है। जीवणजी के शिष्य कहानदास ने तो कहा था, कि मैं गुरु नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानीजी की गुरु-गद्दी को दृढ़ करने के लिए दीक्षा देता हूँ।[2] डॉ० केदारनाथ द्विवेदी ने रामकबीर तथा उदापन्थियों के अन्तर को बताते हुए लिखा था, कि गृहस्थ

१. कबीर सम्प्रदाय, पृ० १४५।

२. कहान कहत मैं गुरु नहीं, पारख वचन प्रमाण।
'ज्ञानी-धाम' को दृढ़ करी, दीक्षा देहु सुजान॥

भक्त को उदापन्थी तथा विरक्त महात्मा को रामकबीर-पन्थी कहा जाता है।[1] मुनि श्री ब्रह्मलीनजी ने लिखा है, कि उदापन्थ को लोग आजकल "रामकबीर" कहने लगे हैं।[2] डॉ० द्विवेदी ने जैसा सूचित किया है, ऐसा कोई भेदभाव नहीं है; इस पन्थ के अनुयायी अपने को "उदा" या "रामकबीर" कहते हैं। स्वामी श्री ब्रह्मलीनजी का यह कहना कि मूल उदाधर्म को आजकल "रामकबीर" कहते हैं, उपयुक्त नहीं है, क्योंकि "रामकबीर" शब्द इसके मूल प्रवर्तक ज्ञानीजी का दिया हुआ है, तथा "उदापन्थ" नाम उसकी कानम शाखा के महन्त जीवणजी द्वारा दिया हुआ है। जीवणजी ने इस "शब्द" का अर्थ भी समझाया है। इस पन्थ के मूल पुरुष के रूप में कबीर को ही मानते हैं। जीवणजी की वाणी तथा पन्थ की विधियों में सद्गुरु के रूप में कबीर साहब के नाम का उल्लेख है।

१. जीवणजी ने अन्यथा कहनेवालों को सावधान करते हुए एलान किया था;

सबके सद्गुरु कबीरजी, समत करो जन कोई।

२. कबीर साहब की दी हुई माला परम्परा में जीवणजी को मिली थी। कहते हैं, जीवणजी ने इसे अपने शिष्य कृष्णदास को दी थी।[3]

३. कबीर बाबा की माला थाल में रख कर भोग लगाया जाता है।

४. जीवणजी ने मृत्यु समय पर जो संदेश दिया था, उसमें अपनी गद्दी नामदेव-कबीर का स्थान होने का उल्लेख किया है।[4]

५. जीवणजी के स्वधामगमन का वर्णन श्यामदास ने किया है। देवदूत वैकुंठ में कबीर, सेना, नामदेव, पीपा, रांका, धना तथा रैदास के होने को स्वीकार करते हैं तब जीवणजी पुनः कबीर साहब के विषय में पूछते हैं। वहां कबीर के होने का समर्थन मिलने पर ही वे देह त्याग करते हैं। इस प्रसंग की यथार्थता को छोड़ जीवणजी को सद्गुरु कबीर के प्रति जो श्रद्धा थी, वही द्रष्टव्य है।

६. कबीर साहब द्वारा प्रस्थापित कबीरवट पर रामकबीर-सम्प्रदाय वालों का अधिकार है।

७. पुनियाद गांव के एक सदाव्रत के दस्तावेज में गुरु-मन्दिर मोटासांभा, कबीरवट आदि स्थानों के सदाव्रत का उल्लेख है।

नामकरण—उदापन्थ के नामकरण के विषय में विभिन्न मत हैं।

१. "उदा" शब्द उदार या उदासी से बना है।

---

१. कबीर और उनका पन्थ, पृ० १६०।

२. अनेना स्थाप्यु उदाधर्मोऽधुना 'रामकबीर' भाक्। स० क० च०, पृ० २५४।

३. 'विवेक समुद्र' सरदारपुर गद्दी, (उ० गु०)।

४. उ० ध० पं० र० भा०, पृ० ३२६।

२. अनुराग सागर में कबीर की पालक-माता का नाम "उदा" लिखा है।[1]

३. "उदा" शब्द उद्धव से बना है। जीवणजी उद्धव के अवतार थे, तथा बद्रीकेदार की यात्रा में जीवणजी को उद्धव के दर्शन हुए थे।

४. उदापन्थ के संस्थापक जीवणजी ने "उदा" नाम रखने के हार्द को अपनी वाणी में स्पष्ट किया है। "उदा" शब्द हनुमान् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हनुमान् रामभक्त थे। इस प्रकार उदा भक्तों ने एक उड़ान मारकर "रामफल" प्राप्त कर लिया।

उदा जात हनुमान की, दीनी एकज फाल।
हरिफल लीन्हो जीवणा, सद्गुरु को उपकार ॥[2]

तीर्थ-व्रतादि विधियों को छोड़कर उदा भक्त कूदकर सीधे राम को प्राप्त कर लेते हैं। राम की प्राप्ति में वे कर्म का आधार नहीं लेते।

तीरथ, व्रत सब परहरे, उदा ताको नाम।
कुल कर्म तजी जीवणा, जो सुमरे सीताराम ॥

उदा भक्तों ने संत-समागम के द्वारा कूदकर अयोध्या के राजा रामचन्द्र जी को पा लिया।[3]

सिद्धान्त—उदापन्थ में कबीर विचारधारा के तत्त्वों को ही सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया गया है। उदाधर्म में कबीरमत के निम्नांकित तत्त्व पाये जाते हैं।

१. ब्राह्मण विरोध जीवणजी ने लिखा है, कि दरवाजे पर ब्राह्मण आवे तो उसको कलि समझना चाहिये।

२. वेद विरोध—स्यामदास ने लिखा है कि पृथ्वी रूपी मटके में जीव को डालकर ऊपर आकाश का ढक्कन रखकर चार वेद लकड़ी बनकर उसको जलाते हैं।[4]

३. अवतार विरोध—मनुष्य दो भुजा से सन्तोष नहीं होने से चतुर्भुज को भजता है। उसको छोड़ अष्टभुजा की भक्ति करता है। जीवणजी कहते हैं, गोकुल में गाय चरानेवाले "राम" का तू मात्र "नाम" ही ले ले।[5]

४. पण्डिताई विरोध—जीवणजी ने प्रेम के "ढाई अच्छर" को ही अधिक

---

१. चंदनशाह पुरुष कर नाऊ, 'उदा' नाम नारी परभाऊ।

२. उ० ध० पं० र० भा०, पृ० ९८।

३. वही।

४. वही, पृ० २०२।

५. वही, पृ० १७७।

महत्व दिया है। सूत पुराणी, संजय, शुकदेव तथा व्यास से भी ऊँचा स्थान व्रज की गोपी का है, जहां प्रेम-भक्ति का प्रकाश हुआ है।[1]

५. निराकार ब्रह्म—जीवणजी ने आराध्य का नाम राम या कृष्ण लिया है, किन्तु उनके राम भी निराकार हैं।

रूप-रेख नहीं जीवणा ऐसा ही रघुवीर ।। ४१ ।।

६. नाम का आधार—मात्र नाम का आधार लेने पर हरिजन का उद्धार हो जाता है। "हरिजन उबरे जीवणा, केवल नाम-आधार।"

७. मूर्ति-विरोध—उदापन्थ में मूर्ति को स्थान नहीं है। मन्दिर नहीं है। स्थान में गद्दी पर "उदा-धर्म पंच-रत्न माला" का ग्रन्थ रखा जाता है। जीवणजी ने अपनी वाणी में इस बात को स्वीकार किया है, कि मैं शालिग्राम की सेवा नहीं करता; मुझे स्वरूप से कोई काम नहीं, सद्गुरु ने मुझे समझाया है, कि एक राम का नाम ही सत्य है।

शालिगराम सेवुं नहीं, नहीं स्वरूप सु काम।
सतगुरु समझायो जीवणा, जो सीतापति को नाम ।।[2]

समन्वय :—रामकबीर-संप्रदाय की इस शाखा में अवतार-विरोध कुछ दब गया है, तथा समन्वय की विचारधारा का जन्म हुआ है। जीवणजी ने कहा था, कि ब्रह्म का मूल रूप तो निराकार है, किन्तु आकार आनंद देता है। यशोदा जिनको गोद में खिलाती है, वही पूरण परमानंद है।

निराकार निरधार है, आकारे आनन्द।
गोद खेलावे जशुमति, सो पूरण परमानन्द ।।[3]

निर्गुण-ब्रह्म भक्त हेतु सगुण बनता है। "निर्गुण ते सिरगुण भयो, सब सखियन हेत।"

जीवणजी तथा उनकी परम्परा पर वैष्णव मत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे अपने आपको वैष्णव कहते हैं, तथा वैष्णवों की मर्यादा का पालन भी करते हैं। यह होते हुए भी उन्होंने कबीर के आत्मतत्व, शुद्धाचार, संत-सेवा, अनन्य-भक्ति, ब्राह्मण-कर्म, वेद तथा मूर्ति के विरोध को अपनाया है।

(२) परिब्रह्म-संप्रदाय :—दादूदयाल पंथ-प्रवर्तन के पक्ष में नहीं थे। काशी, बांधोगढ, विद्रूपुर तथा धनौती की चार शाखाओं में कबीर-पन्थ को विभक्त होते हुए उन्होंने स्वयं देखा था। पन्थ के उन झगड़ों को देख दादू ने पूछा था।

१. उ० ध० पं० र० भा०, पृ० ३८।
२. वही, पृ० ६८।
३. वही, पृ० १८१।

ये सब किसके पंथ में धरती अरु आसमान ।
पानी पवनदिन रातिका, चंद सूर रहमान ।। ११३ ।। साचको अंग ।

सं० १६२० में दादू भ्रमण से लौट कर सांभर में आकर स्थिर हुए थे। गुजरात, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश में प्रायः १५२ शिष्य थे। सांभर में उनकी बैठकें होती थीं। भजन तथा सत्संग होता था, उस स्थान को "अलख-दरबार" कहते थे। निर्गुण परब्रह्म की उपासना करनेवाले अनुयायियों को "परब्रह्म-संप्रदायी" कहा गया। सुन्दरदास ने अपनी वाणी में इसका उल्लेख किया है।

दादू दयाल दस दिशि प्रगट, झगरि झगरि द्वै यम थकी ।
कही 'सुन्दर' पन्थ प्रसिद्ध, यह सम्प्रदाय-परब्रह्म की ।।

दादू ने वाद-विवाद के झगड़े से दूर रहने के प्रयास किये हैं। उनकी विचार-धारा पर कबीरमत का प्रभाव स्वाभाविक रूप से है, क्योंकि ये कमाल साहब के शिष्य थे। निर्गुण ब्रह्म के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करती हुई उनकी वाणी को देख उनके ऊपर सूफी प्रभाव का आरोप डॉ० ताराचन्द ने किया है, किन्तु ऐसा आरोप तो कबीर साहब की वाणी पर भी हुआ है। आत्मा एवं परमात्मा के मध्य दांपत्य-भावना की भक्ति वैष्णव धर्म में भी है; इस दृष्टि से देखा जाय, तो इसको वैष्णव मत का प्रभाव कहना चाहिये क्योंकि इन निर्गुण-पन्थी संतों ने ईश्वर को पतिरूप में देखा है; सूफियों जैसे माशूक के रूप में नहीं।

दादू ने जीवात्मा, परमात्मा तथा जगत् की माया को आधार बनाकर सहज शून्य, प्रेममय दर्शन, साधना का निष्कर्ष, सहज समर्पण, सुमिरण तथा सेवा का उपदेश दिया है। उनका शून्य आस्तिकता का सूचक है। दादू जीवन मुक्ति में विश्वास करते हैं। सहज समर्पण, सुमिरण तथा सेवा सारी उपासना के मूलमन्त्र हैं। आ० चतुर्वेदी ने कबीर, नानक तथा दादू की प्रणालियों में अन्तर दिखाते हुए लिखा था कि कबीर की आस्था आत्म-प्रत्यय में, नानक की आत्म-विकास में तथा दादू की आत्मोत्सर्ग में थी। इनकी साधना क्रमशः विचारप्रधान, निष्ठाप्रधान और भावप्रधान थी। कबीर ने स्वातन्त्र्य और निर्भयता, नानक ने समन्वय तथा एकता तथा दादू ने सद्भाव एवं सेवा को श्रेष्ठ माना था।"[1]

पन्थ की कुछ विशेषताएं :—पन्थ में दो प्रकार के भक्त होते हैं, विरक्त तथा सेवक। विरक्त साधु गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, तथा पठन-पाठन करते हैं। उनमें भी पांच प्रकार (खालसा, नागा, उत्तरादि, विरक्त तथा खाकी) के साधु हैं। सेवक

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २३१ ।

सफेद वस्त्र पहनते हैं। खेती, वैदकी या फौजी नौकरी भी करते हैं। तिलक तथा कंठी के विरोधी हैं। टोपी या मुरायठ पहनते हैं, तथा "सत्तराम" कहकर अभिवादन करते हैं।

परब्रह्म की उपासना के मुख्य साधन अजपाजाप, चित्तशुद्धि, रामनाम, निर्गुण-प्रेम-साधना, ध्यान, धारणा, सहज सुमिरण, सेवा आदि को माना है।

इस पन्थ की विशेषता यह है, कि इसमें कट्टरता नहीं है। अहम् का त्याग, सर्वधर्म समभाव, संतोष, सरलता तथा नम्रता का उपदेश दिया जाता है। निर्गुण-राम का नाम लेकर निरंजन निराकार की भक्ति इस पन्थ का प्रमुख सिद्धांत है। आडम्बर, प्रपंच तथा कोरे ज्ञान का विरोध किया जाता है। हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव नहीं है।

कबीर-प्रभाव :—१. दादू ने अपनी वाणी में कबीर के प्रभाव तथा उपदेश को स्वीकार किया है।

"जो था कंत कबीर का, सोई वर वरी हूं।
मनसा, वाचा, करमना, मैं और न करी हूं ॥"[1]

पूरे गुरु के रूप में दादू ने कबीर की वन्दना की है।

२. इम्पीरियल गजटियर में दादू के मत को एक मूर्ति-विरोध को छोड़कर कबीरमत से अत्यंत निकट से मिलता हुआ लिखा है।[2]

३. गुजराती मध्यकालीन साहित्य के विद्वान् श्री कनैयालाल मुन्शी ने दादू को कबीर-पन्थी (मतावलंबी) माना था तथा उनकी वाणी पर कबीर की वाणी के प्रभाव का उल्लेख किया था।

४. पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने दादू को कबीर मार्ग का अनुयायी बताया है।[3]

(३) जगाजी पंथ :—दादू दयाल के शिष्य जगाजी ने बड़ौदे के पास "सोखड़ा" (देवजी-सोखड़ा) में निवास किया था, वहां उनका समाधि-मन्दिर है। यद्यपि मन्दिर की ओर से प्रकाशित "बोध पाठ" में जगाजी को रामानन्दी-परम्परा की जायल गद्दी के शिष्य गेसानन्द का शिष्य कहा है तथा ज्ञानीजी का भी गुरुबंधु लिखा है, किन्तु अन्यत्र इस प्रबन्ध में प्रमाणित किया है, कि जगाजी का सम्बन्ध न रामानन्दी परम्परा से है, न ज्ञानीजी से। वे दादू दयाल के शिष्य थे।

उनको गुरु के रूप में स्वीकार कर उनके अनुयायियों ने उनके नाम "जगाजी पंथ" चलाया है। प्रायः सारा सोखड़ा गांव जगाजी का अनुयायी है। भरूच, जंबूसर, सूरत, पाटण, भावजी, लाछरस, अंकलेश्वर, दीवा, पगेथण तथा टंकारी जैसे गांवों में

---

१. "दादूजी की वाणी" ह० लि० ग्रंथ।
२. "दि इम्पीरियल गजेटीयर आफ इण्डिया" वाल्युम-२।
३. हिं० सा० इ (१३ वां संस्करण), पृ० ८६।

इसके अनुयायी हैं। जगाजी-पन्थ की अन्य गद्दियां अंकलेश्वर, भायली, पाटण तथा सूरत में हैं।

जगाजी की समाधि की पूजा होती है। एक समय कुछ लोगों ने समाधि मन्दिर के एक कोने में ठाकुरजी को मूर्ति रख दी थी। धीरे-धीरे ठाकुरजी के सेवक बढ़ने लगे। किसी के द्वारा शिकायत करने पर चेरीटी-कमिश्नर ने इसे हटवा लिया। इस घटना से निर्देश मिलता है, कि जगाजी निर्गुण मतावलंबी संत थे। पंथ का मन्त्र "ॐ तत्व निरंजन तारक राम" है।

जगाजी की लिखी एक आरती में गुरु दादू के नाम का उल्लेख है।

"जन दादूजी आरती गाई, प्रगट भये तब हरिजी भाई।
जुगीया यह आरती जुगजुग कहिये, गुरु गोव्यंद का चरणा रहिये॥"

मन्दिर में आज भी आरती के पश्चात् कबीर की जय गाई जाती है।

ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष की द्वितीया के दिन जगाजी के दर्शन सोखड़ा में हुए थे, इसलिए उस दिन सब अनुयायी सम्मिलित होते हैं, तथा उत्सव मनाया जाता है।

संत दादू के अनन्तर उनके पुत्र गरीबदास उच्च कोटि के संत थे, किन्तु उनमें शासन की योग्यता का अभाव था, इसलिए दादूपंथ का संचालन ढीला पड़ गया।[1] फलतः जगाजी जैसे दादू के शिष्य पर अन्य परम्पराओं को अपना अधिकार जमाने का अवसर मिला।

(४) पारख मत—इसे कबीरपन्थ की एक शाखा समझना चाहिये। इसका प्रवर्तन तथा प्रचार बुरहानपुर वाली शाखा से हुआ था। यह मठ मूल कबीरपन्थ का है। इस गद्दी के महन्त अमरदासजी, मुखलालदासजी तथा पूरणदास जी ने अपने क्रांतिकारी विचारों को "पारख मत" के नाम से प्रसिद्ध किया। अपने मत का समर्थन कबीर की निम्नांकित साखी से किया है।

"भूल मिटै, गुरु मिले पारखी, पारख देहि लखाई।
कहहि कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई॥"[2]

ये ब्रह्म को मिथ्या मानते हैं। जीव ज्ञान स्वरूप तथा चैतन्य तत्व है। आत्मा ज्ञान-अज्ञान का विषय नहीं, वह निराधार तथा निरक्षर है; अविद्या से परे तथा पाप पुण्य से मुक्त है। अविद्या माया है, जो जीव को भ्रमित करती है। योग या ब्रह्म-ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। पारख पद की प्राप्ति से सांसारिक बन्धन छूट जाते हैं।

सत्संग तथा नाम-स्मरण को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। मूर्ति का विरोध किया जाता है। कबीरपन्थ के सत्यलोक के स्थान पर सत्यपद तथा "सत्यपुरुष" के बदले "चैतन्य पुरुष" शब्द का प्रयोग होता है।

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० ५३३।

२. पारखमत-समीक्षा ले० स्वामी श्री ब्रह्मलीनजी।

ये अपने को हिन्दू या मुसलमान नहीं मानते; "कबीरपन्थी" कहते हैं। वेद-धर्म को नहीं मानते। शिखा-सूत्र का त्याग कर मात्र श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इनके साधु-महन्त बहुधा हिन्दू होते हैं। कबीर-पन्थ के साथ प्रमुख अन्तर यह है, कि ये लोग कबीर साहब को प्राकृतिक पुरुष मानते हैं, दिव्य-पुरुष नहीं। योनिज मानव-महात्मा के रूप में उनको आदर देते हैं। हिंसा का इतना विरोध है, कि चमड़े से बने ढोल नहीं बजाते। ईश्वर को निराकार मानते हैं, अतः भोग नहीं लगाते।

निम्नांकित कुछ ग्रंथ अपने मत का प्रचार करने के प्रयोजन से इस शाखा के संतों ने लिखे हैं।

१ निर्णयसार	२ सखुन बहार दर्पण	३ वैराग्य शतक
४ पारख-विचार	५ तिमिर भास्कर	६ तत्वयुक्त निजबोध विवेक

निर्गुण मतावलंबी पंथ

(१) विहंगम-मार्ग—अखाजी की यह परम्परा गुजराती साहित्य में "अखा-प्रणालिका" के नाम से प्रसिद्ध है।

नामकरण—अखाजी कबीर-परम्परा के अन्य संतों के सदृश पन्थ-प्रवर्तन के विरोधी थे। उन्होंने अपनी वाणी में सांप्रदायिक गढ़-बन्धी का विरोध किया है।[1] ये पन्थ तथा संप्रदाय के विरोधी थे, इसलिए उनकी परम्परा को किसी पन्थ या संप्रदाय के नाम से सूचित करना उनके साथअन्याय करना है। उनकी शिष्य-परम्परा को गुजराती साहित्य में 'अखा-प्रणालिका' कहते हैं। श्री सागर ने अखा की वाणी का गहरा अध्ययन किया था। "संतोनी वाणी" की भूमिका में उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करके "आकाशी-पंथ" नाम का निर्देश दिया है।[2] इसके लिए मूल शब्द है, "विहंगम मार्ग।" अखाजी ने अपनी वाणी में उस पद की सूचना दी है। "सोनर विहंगम भये सुनिश्चल, वें पद अखा हमारा।"[3] इस परम्परा के साथ इसकी कुछ प्रणालिकाएं भी हैं, अतः "विहंगम मार्ग" नाम अधिक उपयुक्त लगता है।

प्रणालियाँ—श्री सागर ने इस मार्ग के यात्रियों की कुछ प्रणालियों का संक्षेप में निर्देश किया है।

"महंतपद नहीं है, न पंथ है, न सेवक। न गेरुआ वस्त्र है, न तिलक, न माला, न कोई नियम या बंधन। न विधि है, न दीक्षा। स्त्रियों को ज्ञान का अधिकार

---

१. "अखाना छप्पा" स० सा० व० का०, अहमदाबाद, पृ० १४।
२. "सन्तोनी वाणी", पृ० ६३।
३. "अक्षय रस" जकडी-२९।

है; तथा हरि-गुरु सन्त एक हैं, उनकी सेवा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।[१] अखाजी तथा उनकी परम्परा के सन्तों की वाणी में अनेक स्थान पर "हरिगुरुसन्त" की सेवा का उल्लेख है।

श्री उमाशंकर जोशी ने अखा पर शंकरमत के साथ प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रभाव देखा है।[२] वस्तुतः यह कबीर-परम्परित निर्गुण भक्ति है, जिसमें कबीर ने भक्ति के साथ अद्वैत का समन्वय किया था।

ये राम की भक्ति करते हैं, किन्तु उनका "राम" निर्गुण-ब्रह्म का एक प्रतीक मात्र है। संसार ब्रह्म की लीला है। ब्रह्म-मिलन का आनन्द अनिर्वचनीय है। इन सन्तों की वाणी में इसे "बावन बाहेरो" कहते हैं। सर्वप्रथम कबीर ने "बावन बाहेरो" शब्द का प्रयोग किया था। कबीर ने इसे "गूंगे का गुड़" भी कहा था। अखाजी की वाणी में यह रूपक परम्परित हुआ है।

कबीर—"सैना वैना करि समझावुं, गूंगे का गुड़ भाई।"
अखो—"गुंगानी सानमां सामो समझे नहीं, अदबद मुठडी रही रे बाँधी।"

परम्परा में अवतारों का महत्व नहीं है; किन्तु गुरु का महत्व गोविन्द के समान है।

इसमें निर्गुण की उपासना है. पर सगुण का विरोध नहीं है। अखा की दृष्टि इस विषय में समन्वयात्मक है। उन्होंने कहा है कि मूल रूप निर्गुण जब सगुण रूप धारण करता है, तो दूध में जैसे मिस्री मिल जाती है।[३]

परम्परा के सन्तों ने राम-रहीम को एक माना है। उनको एक समझने वाला ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।

राम-रहीम को देख देदार कर, नाम लौलीन, काहे न गावे।"[४]

उनका परम्परा के एक संत हरिकृष्ण ने लिखा है, कि मैंने वेद-पुराण सब देखे हैं, किन्तु राम-नाम से कुछ भी वड़ा नहीं है।[५]

अखाजी ने आत्मा-परमात्मा में अभेद देखा है। "पिंड ब्रह्मांड ने ब्रह्मांडे पिंड" (पृ० २३३) "हुं हरिमां ने मुजमां हरि" (पृ० २३८) प्रायः तमाम संतों ने अपनी वाणी में "आतमराम" का उल्लेख किया है। अविनाशी राम का घट-घट में वास है। लालदास ने लिखा है; "नित्य उठीने बाहर ढूंढे, साहेब अपने मांहीं रे।"

---

१. "सन्तोनी वाणी, पृ० ५४।
२. "अखाना छप्पा", तृतीय संस्करण, पृ० ८।
३. "निर्गुण थईने सगुण मां मले, तो अखा दूधमां साकर मले।"
४. "सन्तोनी वाणी, पृ० १७६।
५. वही, पृ० १००।

अखाजी ने अपने पक्ष की एक धुन बनाई है, इसमें सद्गुरु की सेवा तथा आत्मलक्ष दो तत्वों को ही प्रमुखता प्रदान की है।

"सद्गुरु-सेवा आतम लक्ष, अखा भगत नो एवो पक्ष।"

अखाजी ने भक्ति के साथ ज्ञान का समन्वय किया। उन्होंने कहा, कि ज्ञान के जहाज पर "साहब" का नाम लिखो। कुत्ते जैसे देखादेखी भौंकने लग जाते हैं, ऐसी बिना ज्ञान की भक्ति है।

कबीर-प्रभाव :—१. अखाजी तथा उनके शिष्य लालदास की वाणी कबीर की वाणी का अनुसरण करती है। संत लालदास के विषय में श्री सागर ने लिखा है, कि "वे ऐसे अवधूत थे, जैसे महात्मा कबीर"

२. "संत लालदास ने कबीर को अपना माना है, तथा अपने को हमेशा कबीर के निकट पाया है।

"हम कबीरा के पास हैं, कबिरा हमारा और।
जुग-जुग प्रति आवत है, परम हंस महा घोर।।"[1]

३. कबीर हमारी आत्मा है, तथा हम कबीर के मत हैं।

"कबीर हमारी आत्मा, हम कबीरा की मत।
एक मुझे रमी रह्या, कोई न जाणे गत।।"[2]

४. संत वाणी के साथ संत लालदास का रावल गंगदास के नाम एक पत्र प्रकाशित हुआ है, उसमें लिखा है, कि "जो मन्त्र रामानन्द ने कबीर को दिया था, इसे अपनाना चाहिये, क्योंकि अगम्य का ज्ञान एकमात्र कबीर को ही मिला था।"[3]

५. श्री सागर ने अखाजी की परम्परा के संत तथा उनकी वाणी का अनुशीलन किया है, उन्होंने कबीर की महत्ता के साथ अपने को कबीर का प्रतिनिधि कहा है।

"पूर्वे जन्म्यो एक कबीरा, के बीजा "सागर-राज"।"[4]

परम्परा :—भरूच के पास जंबूसर के "कहानवा" गांव में एक स्थान है, जिसे "बंगलो" कहते हैं, वही इस परम्परा का स्थान है।

अखाजी की परम्परा-अखाजी (१७६२)-लालदास (१७८७)-हरिकृष्ण-पुत्री रतनबाई (१८३७)-जीतामुनि नारायण-कल्याणदास (१८७६)-पूर्णानन्द-ध्यानानन्द-भगवानदास-हरमदास (वर्तमान)

---

१. वही, पृ० ५०।
२. सन्तोनी वाणी, पृ० ५३।
३. वही, पृ० ६१।
४. "दीवाने सागर" ह० लि० ग्रंथ।

जीतामुनि के एक शिष्य कुबेरदास की परम्परा सारसा में, एक अन्य शिष्य संतराम की नड़ियाद में तथा मोहनलाल ब्रह्मचारी की बड़ौदा में चली है।

(२) संतराम सेवा-पन्थ :—नड़ियाद में संतराम का विशाल मन्दिर है, तथा उनके अनेक अनुयायी हैं; किन्तु संतराम ने कोई पन्थ नहीं चलाया। अखा की परम्परा के संत जीतामुनि के ये शिष्य थे।[1] इस परम्परा में उन्होंने भी हरि-गुरु-संत की सेवा का उपदेश दिया है। उन्होंने लिखा है, कि पूर्ण-पद को पहचानने के लिए हरि-गुरु-संत की कृपा अनिवार्य है।

"मन कल्पना में आवे नहीं, क्षर अक्षर न कहेवाय।
हरि-गुरु-सन्त कृपा थकी, पुरण-पद प्रीछाय ॥२६॥"[2]

संतराम के इन उपदेशों को देखते हुए इसे "संतराम सेवापन्थ" नाम देना उपयुक्त लगता है। "संतराम" शब्द में "हरि-गुरु तथा संत" व्यक्त होते हैं। संत तथा राम (हरि) तो है ही, और जुड़ जाने पर "संतराम" में गुरु का निर्देश भी मिल जाता है। इस परम्परा के अन्य संत कवियों ने भी हरि-गुरु-संत की कृपा का उल्लेख किया है।

यह परम्परा निर्गुण मतावलंबी है। निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का उपदेश दिया गया है। गुरु का वही महत्व है। गुरु को ईश्वर से अभेद मानकर उनसे दांपत्य-भाव की भक्ति की गई है। नाम की वही महिमा है, जो कबीर साहब ने दी थी। कुछ अंश में वैष्णव मत का प्रभाव दृष्टिगत होने लगा है। वैष्णवी-भक्ति के साथ कुछ पदों में वैष्णव जन की व्याख्या, थाल, भोग तथा तुलसी का महत्व जैसे चिह्न इसका निर्देश देते हैं; तथापि सिद्धांत की दृष्टि से अक्षरातीत परात्पर ब्रह्म की आराधना की जाती है। एक वेद की मूर्ति की स्थापना हुई है। वेद कथित "ईश्वर सत्य है", "संत समागम" तथा "सदाचार का पालन" उनके बोधमन्त्र हैं।[3] बड़ौदा, उमरेठ, पादरा, करमसद, कोयली तथा रढू में इसकी शाखाएं हैं। संतराम की परम्परा निम्नांकित है।

संतराम (१८७२)-लक्ष्मणदास (१८८७)-चतुरदास (१६२५)-जयरामदास (१६४१)-मुगुटरामदास (१६४७)—माणेकदास (१६६१)—जानकीदास (१६७३)—नारायणदास (२०२६) वर्तमान।

(३) सत्केवल पन्थ :—इस पन्थ के प्रवर्तक कुबेरदास अखा-परम्परा के संत जीतामुनि के शिष्य थे। उनको पन्थ के अनुयायी "करुणा सागर" कहते हैं। पन्थ की प्रमुख गद्दी आणन्द के पास सारसा में है। पन्थ को "कैवल्य ज्ञान-संप्रदाय" भी कहते हैं, तथा "कायम पन्थ" भी कहा गया है।

---

१. "अक्षय रस", पृ० ३२।
२. "पद संग्रह"—सन्तराम मन्दिर, पृ० १०४।
३. "गुजरात सर्व संग्रह", पृ० १३५।

"कायम पंथ हमारडा, कैवल्य का देदार।
सत्कुबेर है अगुआ, आवो ने कोई यार ॥"[1]

पन्थ का मूल मन्त्र है; "ॐ आप सक्रत स्वराज करुरोश केवल ननामी।" उनका उपास्य सत्केवल है, जो सगुण तथा निर्गुण से परे है। यह अनहद पद है। निरंजन तथा परमगुरु उनके सर्जक हैं। यह परमगुरु कबीर साहब हैं। निरंजन सृष्टि का कार्य करते हैं, परमगुरु मुक्ति का।

पन्थ का समग्र तत्वज्ञान तीन तत्वों पर आधारित है; "सार शब्द", "रेहेतघर" "न्हेः अक्षर"। कुबेरदास ने लिखा है, कि यह वही मन्त्र है, जो कबीर साहब ने धर्मदास को दिया था।

"धर्मदास कु जेहि दिया, "सार शब्द" निज छेक।
"न्हेः अक्षर" "घर रेहेत" ही, नाम तीन लख एक॥"[2]

इसमें भी ज्ञान को गुप्त रखने का आदेश है। पन्थ का प्रवर्तन कबीर-पन्थ की परम्परा में हुआ है। कबीरपन्थ में सत्पुरुष ज्ञानी को जीवों का उद्धार करने के लिए भेजते हैं, ऐसा इसमें सत्पुरुष ने करुणासागर को भेजा है। "पंचम-स्वसम्वेद" ग्रंथ पन्थ का मूल आधार ग्रन्थ है। कहते हैं, इसे कुबेरदास ने लिखा था। पंचम वेद की उत्पत्ति की कथा रोचक है।

"पंचमवेद" के ज्ञान से मनुष्य सीधा मोक्ष प्राप्त करता था। ब्रह्मा ने जब अपने पंचम मुख से "पंचम वेद" कहना प्रारम्भ किया, सृष्टि में से लोग इसे सुनकर सीधे मोक्षधाम चले जाने लगे। विष्णु की विनती से शंकर ने ब्रह्मा का वह मुख काट लिया तथा अपनी रूंडमाल में लगा लिया। इन तीन देवों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के हेतु जगत् को अपने फन्दे में फँसाये रखा।"[3] कबीर-मतानुसार चार वेदों का विरोध करते हुए भी सांप्रदायिकता ने पंचम वेद की स्थापना की।

राम तथा कृष्ण को ब्रह्मस्वरूप में स्वीकृत नहीं किया गया, क्योंकि वे अवतार को नहीं मानते थे; किन्तु राम और कृष्ण आखिर उस ब्रह्म की ज्योति में लीलीन हो गये थे, ऐसा उनका मत है।

कबीर साहब के विषय में उनकी अनन्य महिमा को स्वीकार करते हुए कुबेरदास ने लिखा है, कि कबीर ने अर्ब-खर्ब गुना अगम्य ज्ञान बताया था। उनके अनेक शिष्य तथा संप्रदाय हुए, किन्तु किसी ने इस ज्ञान को समझा ही नहीं।[4]

संक्षेप में इस पन्थ के प्रवर्तक कुबेरदास ने कबीरवाणी के मूल तत्वों का आधार लिया है। सत्पुरुष को सत्केवल नाम दिया गया है। कबीर की रहस्यवादी धारा की परम्परा भी कुबेरदास की वाणी में दर्शनीय है।

---

१. हंस तालेब, अंग ५०/१८।
२. "पंचम स्वसंवेद", पृ० १०।
३. वही, पृ० १०।
४. वही, पृ० ११

संत कुबेरदास का समय सं० १८२८ से १६३६ है।[1] कुबेरदास के पश्चात् जो महन्तों की परम्परा चली, निम्नांकित है।

कुबेरदास — नारणदास—वलदेवदास–भगवानदास—प्रागनाथ—शीतलदास—अविचलदास।

(४) श्रेय साधक वर्ग :—इस वर्ग के संस्थापक नृसिंहाचार्यजी अखा की परम्परा में जीतामुनि के शिष्य मोहनलाल ब्रह्मचारी के शिष्य थे।[2] सं० १६३८ में वड़ौदा में इसकी स्थापना की गई थी। "महाकाल" पत्रिका द्वारा इस मत का प्रचार किया गया, फलतः शिक्षित उच्च वर्ग के अधिकांश लोग उसके अनुयायी हुए थे। यह मार्ग गृहस्थियों के लिये मुक्ति के साथ योग का मार्ग भी खोज देता था। स्वयं नृसिंहाचार्य गृहस्थी थे। संसार में रहकर निष्काम भाव से योगमार्ग द्वारा ध्यान केन्द्रित करके भक्ति करने का उपदेश दिया गया है।

नृसिंहाचार्य ने अपना कोई विशेष मत स्थापित नहीं किया, किन्तु यौगिक चमत्कार से एक बड़े शिष्यवर्ग को आकर्षित किया था। अनुयायी उनको भगवान् मानते थे। उन्होंने परिवार की सेवा का समर्थन किया था, तथा परिणीत जीवन को उत्कृष्ट जीवन माना था।[3]

उनका मुख्य ध्येय दीक्षा, सदुपदेश तथा प्रत्यक्ष दृष्टांत से मुक्ति की अनुभूति था। नृसिंहाचार्य ने अपनी वाणी में यौगिक प्रक्रिया का वर्णन किया है।[4] इस मार्ग में योग के साथ भक्ति का समन्वय किया गया है। इसमें प्रेम एवं भक्ति की अभिव्यंजना भी है। यह निराकार-ब्रह्म की दांपत्य-भाव की भक्ति है। मिलन के साथ विरह का वर्णन भी है। विरह में उदासीनता है, प्रीतम की निष्ठुरता के कारण दुःख भी है।

"सजन वियोग फिरू मैं उदासी, प्रीतम करत भिठोरी।
कैसे सहूँ, मैं दुख कहूँ तो सो, नृसिंह सामने तोरी॥"[5]

(५) राधास्वामी संप्रदाय :—इस संप्रदाय का मूल आधार सत्संग है, इसे अब भी कुछ लोग राधास्वामी सत्संग कहते हैं। गुजरात में इसका सविशेष प्रचार है। इसके मूल प्रवर्तक लाला शिवदयालसिंह थे। उनका जन्म सं० १८७५ में हुआ था। सं० १६१७ में बयालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया था।[6]

---

१. आ० गु० सं०, पृ० ३२।
२. "अक्षयरस", पृ० ३३।
३. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ८१।
४. "नृसिंह वाणी विलास", पृ० १८४।
५. "नृसिंह वाणी विलास", पृ० १५४।
६. "कबीर ब्रह्म प्रकाश", पृ० २७८।

शिवदयालसिंह के गुरु अज्ञात हैं, उन्होंने कहीं इनके नाम का उल्लेख नहीं किया, और उनके अनुयायी उनका कोई गुरु था, इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने अपने उपदेशों में सद्गुरु के रूप में कबीर का उल्लेख किया है, इससे निर्देश मिलता है, कि ये भी कबीर-पंथ के किसी संत के शिष्य रहे होंगे।

कबीर-प्रभाव :—राधास्वामी ने लिखा है, कि "गुरुओं की आज्ञा से मेरी आत्मा आगे बढ़ी।" उनके शिष्य शालिग्राम ने अपने अनुभव का विवरण दिया है, कि "अदली-कबीर मेरी आत्मा को उस स्थान पर ले गये थे, तथा उनकी आज्ञा से मुझे सत्यलोक के द्वारा मिले थे।"[1] किसी संत ने लिखा है, कि कबीरधारा में "धारा" को उलटा कर (राधा) इसके साथ में "स्वामी" को जोड़ देने से यह संप्रदाय बना।

"कबीर "धारा" अगमकी, सद्गुरु दीन्ह लखाई।
ताहि उलट कर सुमिरिये, स्वामी संग लगाई।"

कबीरपंथी विद्वान् स्वामी श्री ब्रह्मलीनजी का मत है, कि राधास्वामी संप्रदाय में शब्द तथा सुरति का जो महत्व है, यह कबीरमत की ही देन है।[2]

विशेषताएँ :—वर्तमान अनुयायी राधास्वामी को ही सत् पुरुष या परम पुरुष मानने लगे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य अवतारों को परम पुरुष से नीचा समझा जाता है।[3] परम पुरुष को मालिक, खुदा, ब्रह्म या सत्नाम कहते हैं।

राधास्वामी ने कबीर संप्रदाय की परम्परित कथाओं को उसी रूप में स्वीकार किया है।

परमतत्व पुष्प की सुवास से भी पतला है। संत तथा सत् पुरुष में अन्तर नहीं है, इसलिए सत्संग सत्पुरुष का संग है। पिंड, ब्रह्माण्ड में चेतन तथा दयाल-देश में शुद्ध चेतन अंश है। इनमें उच्चतम परात्पर पद का ज्ञान एकमात्र राधास्वामी को था।

समस्त विश्व रचना का मूल "सो+आमी" या परमपिता है। चेतन धारा का प्रवाह रूप शक्ति "राधा" है। दोनों का सम्मिलित रूप "राधास्वामी" है। संत या सद्गुरु द्वारा दिखाई "जुगति" के आश्रय से सुरति-शब्द-योग के अभ्यास द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। साधक नेत्र बंद कर मध्य बिंदु पर विचार केन्द्रित कर "राधा सो आमी" का उच्चारण कर क्रमशः घंटी की ध्वनि सुनता हुआ अनाहत शब्द का गुप्त अनुभव करता है। ये लोग संतमत, सुमिरन, ध्यान, भजन तथा तीन साधनाओं का प्रयोग करते हैं।[4]

---

१. वही (शेरे आलम फौजा), पृ० २७५।
२. "सद्गुरु श्री कबीर चरितम्", पृ० ६९५।
३. "सारवचन" वार्तिक भा० १, दफा० ४८, पृ० ६३।
४. "हिन्दी सन्त साहित्य", श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० ८९।

सत्संग की मुख्य साधना भक्ति-प्रधान है, जिसमें शब्दरूप राधास्वामी की उपासना होती है। भक्ति में शरणागति, दीनता, प्रपत्ति तथा प्रेम ग्राह्य है। पंथ के चार प्रमुख अंग-पूरा गुरु, नाम, सत्संग तथा अनुराग-है। गुरु केवल सत्नाम का ही उपदेश देते हैं।[1]

गुरु को "साहब" कहने की परिपाटी कबीरपंथ की देन लगती है। संप्रदाय में मूर्तिपूजा नहीं है। पोथी की पूजा होती है। संप्रदाय में सत्संग तथा नामस्मरण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

"सत्संग" में आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने वाला प्रत्येक कार्य शुभ तथा उससे विरुद्ध ले जानेवाला प्रत्येक कार्य अशुभ माना जाता है।[2]

(६) धामी संप्रदाय :—संत प्राणनाथ ने धामी (या प्रणामी) संप्रदाय की स्थापना गुजरात में की थी। मारवाड-उमरकोट के श्री देवचन्द्र से उन्होंने प्रथम दीक्षा ली थी। जामनगर में उन्होंने सं० १६८७ में एक धर्मपीठ की स्थापना की थी। तदनंतर हरिदास से दीक्षा ली। उस मन्दिर के आसपास "खिजड़ा" के वृक्ष अधिक होने से इस मन्दिर को खिजड़ा-मन्दिर भी कहते हैं।

देवचन्द्र द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय को निजानन्द संप्रदाय कहते हैं। उसमें ज्ञान एवं भक्ति की अपेक्षा प्रेम को विशेष महत्व दिया गया। कृष्ण के बालस्वरूप की गोपीभाव से आराधना की जाती है।[3]

भ्रमण, सत्संग तथा विभिन्न धर्मों के अध्ययन ने संत प्राणनाथ को विशेष उदार बना दिया। किसी भी प्रकार के भेदभाव को वे नहीं मानते थे। उनकी विचार-धारा पर कबीरमत का प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर के बारह पंथों में इस पंथ का नाम भी लिया जाता है। कबीर पंथियों का दावा है, कि इसका "निर्गुण" कबीर पंथ से लिया गया है।

"धामी राह कही पंथ चलावे, कछु कुरान, कछु वेद चुरावै।
कछु-कछु निर्गुण हमसे लीना, "तारतम" पोथी तेही कीना।
राह चलावे ब्रह्मज्ञाना, कर्मी जीव बहुत लपटाना ॥"[4]

उनका मत है, कि जो कुरान ने कहा है, वही वेद ने भी कहा है। दोनों हिन्दू तथा मुसलमान एक ही "साहब" के बन्दे है। बिना लड़े ही यह भेद पा लिया है।[5]

---

१. "सन्त संग्रह" भा० २, पृ० १८।
२. "मोर्डन रिलिजस मुवमेन्ट इन इन्डिया", पृ० १६२।
३. उ० भा० सं० प०, पृ० ५६६।
४. "अनुराग सागर", पृ० १४७।
५. "खूलासा", पृ० ११ उ० भा० सं० प०, पृ० ६००।

अलख के साथ प्रेमाभिव्यक्ति की वही भावना है, आत्मा को इन्द्रावती तथा परमात्मा को धामधणी का नाम देकर उनके सत्संग से तारतम का उत्पन्न होना बताया गया है। इन्द्रमती इन्द्रियों से ग्रस्त अवस्था की सूचक है, इससे मुक्त होने पर महामती की स्थिति होती है।

जायसी ने पद्मावत में नागमती को माया का तथा पद्मावती को ब्रह्म का रूपक दिया है, इस प्रकार प्राणनाथ ने "इन्द्रमती" तथा "महामती" की कल्पना की हो ऐसा लगता है।

पंथ की कुछ विशेषताएं निम्नांकित हैं।

१. पन्थ के अनुयायी अपने को ब्रह्मधाम का निवासी मानते हैं।
२. जातिगत भेदभाव नहीं है। किसी भी जाति का मनुष्य पन्थ का अनुयायी बन सकता है।
३. कुरान, गीता, बाइबल की एकता का प्रचार किया जाता है।
४. ये निर्गुण मतवादी हैं। मूर्ति नहीं है; गद्दी पर गुरुवाणी के साथ मुकुट तथा मुरली की भी पूजा होती है।
५. पन्थ के अनेक नाम हैं। इसे मेहराज पन्थ, धामी पन्थ, प्रणामी पन्थ, खीजड़ा या चकला पन्थ भी कहते हैं।
६. ये लोग कुंकुम का तिलक करते हैं, तथा तुलसी की माला पहनते हैं।
७. मांस-भक्षण का कड़ा विरोध है, तथा चारित्र्य-शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

शिष्य :—प्राणनाथ के शिष्यों में मुकुंददास, मोहम्मद अमीन, वली तथा नाथ भवान (अनुगवानन्द) प्रमुख हैं। नाथ भवान ने कृष्ण के स्थान पर शक्ति (निराकार) की उपासना की। मुकुंददास (सं० १७‥-१७७५) सूरत के निवासी थे; अपने को ब्रह्म-धाम की नवरंग बाई का अवतार मानते थे।

शाखाएं :—पन्थ की प्रमुख गद्दियां जामनगर, सूरत तथा बुंदेलखंड में हैं। सूरत की गद्दी नाद (फकीरी) तथा जामनगर की बूंद (गृहस्थी) है। जामनगर में देवचन्द्र के पीछे उनके पुत्र बिहारीलाल जी हुए। सूरत की गद्दी की स्थापना सं० १७३० में प्राणनाथ ने की थी। सूरत में कच्छी लोगों में उनके अनुयायी अधिक हैं। हालार का नौतनपुर इस पन्थ का प्रधान केन्द्र है। पन्ना में प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमा को बड़ा मेला लगता है।

प्रणालिका (सूरत)[1]

प्राणनाथ—स्यामदास—गोपालदास—मोहनदास—पीताम्बरदास—रंगीलदास—गोपालदास—मेहराजदास—मंगलदास।

---

१. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ६१।

(७) बाबालाली संप्रदाय :—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने पंजाब में बावा लाल नाम के महात्माओं का उल्लेख किया है,[1] किन्तु उक्त बावा लाल का शैल वड़ोदा में सूरसागर तालाब के किनारे पद्मावती चौगान में है। उनके कुछ अनुयायी पश्चिम पाकिस्तान में रह गये हैं। वड़ोदा तथा आसपास की सिंधी तथा लोहाना जाति में उनके अनेक अनुयायी हैं।

उनका निवास-स्थान सिंध में ठठानगर था "ठठा" को ये प्राचीन नगरी "सप" मानते हैं। उनका जन्म नसरपुर (सिंध) में रत्नराय नाम के एक लोहाना गृहस्थ के घर बताया जाता है।[2] आचार्य क्षितिमोहन सेन ने उनको मालवा के किसी खत्री कुल का बताया है।[3] कबीरपन्थ की परम्परा में बावा लाल की उम्र भी सं० १४१२ से १७१२ तक तीन सौ वर्ष की बताई गई है, किन्तु आचार्य सेन तथा चतुर्वेदी जी ने उनका जन्मसंवत् १६४७ तथा मृत्युसंवत् १७१२ को स्वीकार किया है।[4] प्रो० एफ० ई० की ने सं० १७०६ को दाराशिकोह से उनकी धर्मचर्चा का वर्ष माना है।[5]

कहते हैं, उनको अनेक सिद्धियां प्राप्त थीं। इस वर्ष की उमर में वे संसार से विरक्त हो गये थे। बावा चेतनदास से उन्होंने दीक्षा ली थी।[6]

अपने २२ शिष्यों के साथ काबुल, गजनी तथा पेशावर की यात्रा करते हुए वे सूरत आये थे। उनके जन्म के विषय में कृष्णजन्म जैसी कथा चलती है। ठठानगर के एक क्रूर शासक सूबा मरकशाह के अत्याचार तथा धर्म-परिवर्तन से त्रस्त होकर हिन्दू जनता ने समन्दर तट पर आकर वरुण से प्रार्थना की थी। कहते हैं, वरुण ने प्रसन्न होकर बावा लाल के रूप में अवतार लेकर उनका उद्धार किया था। अंत में चैत शुक्ला दूज (चेटी चांद) को उन्होंने जीवन्त जल-समाधि ले ली थी।

कबीर-प्रभाव :—इस संप्रदाय पर कबीरमत के प्रभाव का समर्थन करते हुए आचार्य क्षिति मोहन सेन ने लिखा था; "बावा लाल कबीरमत में विश्वास रखते थे, तथा ईश्वर के लिए "रामनाम" का प्रयोग करते थे। उनके उपदेशों में शम, दम, चित्तशुद्धि, दया, पर-सेवा, सहज भाव, सत्य दृष्टि, अहम्-त्याग, तथा प्रेम-भक्ति द्वारा ब्रह्म प्राप्ति ये कबीरमत के महत्व के अंग हैं।[7]

---

१. उ० भा० सं० प० (द्वितीय संस्करण), पृ० ५८८।
२. "चेटी चांद" पत्रिका वड़ोदा), सं० २०२५।
३. "मध्ययुग की साधना धारा", पृ० ६६।
४. उ० भा० सं० प०, पृ० ५८८।
५. "कबीर एण्ड हिज फालोअर्स", पृ० १६३।
६. "कल्याण" सन्त अंक, पृ० ५१३।
७. "मध्ययुग की साधना धारा", पृ० ६६।

दाराशिकोह तथा बाबा लाल के मध्य धार्मिक चर्चा के सात वार्तालाप हुए थे। उन दोनों के प्रश्नोत्तर "असरारे मार्फत" नामक एक फारसी ग्रंथ में दिये हैं। इसमें दारा ने बाबा लाल को "मुंडिया" तथा "कबीरमार्गी" कहा है।[१]

बाबा लाल के अनेक नाम अनुयायियों में प्रचलित हुए हैं। उनको "प्रचेता", "पाश पति", "जल चरेश", "अमर लाल", "जिंद पीर", उदेरो लाल", या "भूलेलाल", के प्यार भरे नामों से पुकारा जाता है।

हिन्दू तथा मुसलमान दोनों उनको मानते हैं। दोनों जातियों में उनके भक्त हैं। बाबा लाल की वाणी पर कबीर-वाणी के प्रभाव के कुछ निर्देश मिलते हैं। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के विषय में उन्होंने लिखा है।

"हिन्दू तो हरि हर कहे, मुसलमान खुदाई।
साचा सद्गुरु जो मिले, दुविधा रहे न काई।।

एक अन्य साखी की तुलना दर्शनीय है।

कबीर—"चाह गई, चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिये, वे शाहं के शाह।।"

बाबा लाल—"जिहंकी आशा कछु नहीं, आतम राखे शून्य।
तिहंको नहीं कछु भर्मणा, लागे पाप न पुन्य।।"

कबीर विचारधारा से प्रभावित अन्य निर्गुण-पन्थ

(१) पिराणा संप्रदाय :—शिया इस्लामिया सैयद ईमामशाह ने सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में अहमदाबाद से सात मील पर "पिराणा" गांव के निवासी पाटीदारों का सामूहिक धर्म-परिवर्तन कराया था। डॉ० मजुमदार का कहना है, कि उन्होंने अकाल में वर्षा लाकर उन सब को प्रभावित किया था,[२] किन्तु डॉ० के० एम० कापडिया का मत यह है, कि यात्रा पर जाते हुए यात्रियों को वहीं उन्होंने तीर्थ के दर्शन करा दिये थे, अतः वे उनके अनुयायी हो गये।[३] उस गांव के नाम से इस पन्थ को "पिराणा-संप्रदाय" कहते हैं। उनके विषय में गुजराती कवि दयाराम ने लिखा था, कि ये पिराणा न हिन्दू हैं, न मुसलमान। राम तथा रहीम को भजते हैं। बिना भक्ति सुख कैसे मिले ? सोना मुक्ति को रोकता है, तथा तुलसी नर्क को रोकती है। तुलसी को छोड़ सोने के पीछे पड़नेवाले क्या प्राप्त करेंगे ?"[४] गुजरात में अनेक

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० ५६२।
२. "दि कल्चरल हिस्टरी आफ गुजरात", पृ० २५४।
३. "सोस्योलोजी आफ कल्चर इन इन्डिया", पृ० २४५।
४. "प्रबोध-बावनी" छप्पय-१६।

स्थानों में हिन्दू तथा मुसलमानों ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया था। नवसारी में एक स्थान में बापू साहब की कबर के साथ माताजी की मूर्ति भी है। उसे "भाई बापू" का मन्दिर कहते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, पारसी इत्यादि तमाम जाति के लोग उसके अनुयायी हैं। इस्लाम ने अपनी कट्टरता कुछ कम कर दी तथा हिन्दू धर्म ने अपना शास्त्रावलंबन कुछ ढीला कर दिया।

इसमें फाल्गुन मास की दूज से एक-एक महीने के उपवास रखे जाते हैं।

पिराणा की गद्दी का प्रभाव कम हो जाने पर सैयद खान के अनुयायियों ने सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण गुजरात में नवसारी में गद्दी की स्थापना की थी।

आगे चलकर मेहमूदशाह दूला के पुत्र बालमेहमूद के अनुयायी को "सतिया" तथा मेत्राजो कारभारी के अनुयायो को "पंचिया" कहते थे। ये दोनों मूल में "मतिया" थे।

गुजरात की हिन्दू तथा मुस्लिम जातियों में जो समन्वयात्मक दृष्टिकोण की भावना थी, यह कबीरमत के प्रभाव की देन थी।

उपदेश :—ईमामशाह ने परब्रह्म को "निरंजन" "या" नकलंकी नारायण" कहा था। ये लोग सत्रह अवतारों में मानते हैं। अतिम अवतार का नाम आद्यपुरुष है। अंडे में से पृथ्वी की उत्पत्ति मानने हैं। "मूलबन्ध" ग्रंथ में इसकी कथा है। इसके साररूप "नकलंकी" गीता लिखी गई है।

नरसिंह, राम, बुद्ध तथा नकलंकी (कल्की) अवतार को अधिक महत्व दिया जाता है। कहते हैं, दसवें अवतार के रूप में नकलंकी का जन्म हो गया है। अरबस्तान के केहकपुर में मौला मुरजातअली उनका नाम है। पिता का नाम हासमी अबुतालब, माता मा नाम जुलेखा, तथा गुरु का नाम नबी मोहम्मद मुस्तफा है। पत्नी का नाम फातिमा है।[1] इसमें कल्की के घोडे का भी चित्र है।

ईमामशाह को इन्द्र का अवतार माना जाता है। उन्होंने ६६ दुआएँ लिखी हैं। आराध्य के विषय में उन्होंने लिखा है।

"तमे देव निरंजन निराकार, नकलंकी नारायण, दसवाँ अवतार।"

अतः स्पष्ट है, कि उन्होंने कल्की अवतार को अपना आराध्य माना है, किन्तु जहाँ एक स्थान पर अरबस्तान में मुरजादअली के नाम से अवतार की बात कही है, वहाँ अन्य स्थान पर उनको निरंजन निराकार भी कहा है। उन्होंने सद्गुरु पीर "कबीरुद्दीन" की प्रथम वन्दना की है, किन्तु ये कबीरुद्दीन कबीर साहब ही थे, ऐसा कोई निर्देश नहीं मिलता। ये वेद में अथर्व वेद को तथा कलमा को मानते हैं।

"अथरवेदने वायके चालिये, भाई तो कलमा विना नहीं ठार॥"

ये ग्रंथ संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर ही लिखे गये हैं। ग्रंथ में जरेज, उद्बुद, उद्मोद तथा सीतेज नाम की चार खाणों का उल्लेख है। रामकबीर-संप्रदाय के ग्रंथों

१. "सतपंथ शास्त्र", पृ० ५२।

में चार वेद को चार "खाण" कहा है। इसमें विष्णु द्वारा ब्रह्मा को कहलवाया है, कि "नये वेद पैदा करो।"[1] "घट घट हरि वसी रह्यो।" तथा "खलक में खालिक, खालिक में खलक" जैसे वाक्यों पर कबीर वाणी का प्रभाव दीख पड़ता है।

(२) सत्पंथ :—इस पंथ में हिन्दू एवं मुस्लिम अनुयायी हैं। हिन्दू जाति में बहुधा निम्न जाति के कोली, भील, माछी आदि जाति के अनुयायी हैं। इसका मूल पिराणा संप्रदाय है। ये भी अपने धर्म को "पिराणा संप्रदाय" ही कहते हैं; पिराणा की यात्रा को भी जाते हैं। पिराणा संप्रदाय के प्रवर्तक ईमामशाह के अनुयायियों में दो वर्ग हो गये। एक वर्ग ने इस्लाम को पूर्णतः अपना लिया; वे "मोमोन" (मानने वाले) या "मूमना" कहलाये। दूसरे वर्ग ने ईमामशाह को गुरु तथा उनके मत को स्वीकार किया, वे "मतिया" कहलाये। मतिया हिन्दू तथा इस्लाम दोनों में विश्वास रखते हैं। रमजान के साथ होली तथा दिवाली मनाते हैं। विवाह के समय मुस्लिम विधि संपन्न हो जाने के पश्चात् ब्राह्मण के पास हिन्दू विधि भी करवाते हैं।[2]

एक रामानन्दी संत निर्मलदास के प्रभाव से इनमें से जो हिन्दू धर्म में पुनः प्रविष्ट हुए, उनको "वैष्णव-मतिया" कहते हैं। ये चुस्त निरामिष भोजी हैं। कुछ लोग तो प्याज या लहसुन भी नहीं खाते। ईमामशाह की शिक्षापत्री उनका धर्मग्रंथ है। एक अन्य ग्रंथ "सत्पंथ-शास्त्र" श्री कासिमअली पिराणा ने संपादित किया है। अपने पंथ को ये लोग "सत्पंथ" कहते हैं।

दक्षिण गुजरात के मतिया पाटीदार भी ईमामशाह के अनुयायी हैं। नवसारी के सैयतसदत को ये अपना गुरु मानते हैं। ये लोग खेडा और सूरत के २२ गाँव में हैं। भरूच के मतियाओं ने सं० १७४७ में विद्रोह किया था। भरूच के फौजदार की कत्ल करने भरूच पर अधिकार भी कर लिया था।[3]

सत्पंथियों ने भी इस्लाम का प्रभाव पूर्णतः छोड़ा नहीं। ये लोग मन्दिर में मूर्तिपूजा का विरोध नहीं करते, किन्तु दिन में छः वार इबादत करते हैं। प्रार्थना करने से पूर्व हाथ मुँह धोते हैं। माला में १०८ के स्थान पर ३७ मनके होते हैं। तीन वार फिराने पर एक माला पूरी होती है। अपनी आय का दसवां भाग धार्मिक मुखिया को दे देते हैं। श्राद्ध करते हैं, भोग भी लगाते हैं।

(३) अघोर संप्रदाय :—गुजरात के कच्छ सौराष्ट्र में कबीर साहब के समय में अघोरी, औघड़ तथा नाथपंथी योगियों का प्रभाव सविशेष था। अघोर संप्रदाय अब तक रहस्यात्मक रहा है, क्योंकि इस पर कोई वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं हुआ।

---

१. वही, पृ० ५।
२. कल्चरल हिस्टरी आफ गुजरात", पृ० २५४।
३. "बोम्बे गजटियर" वाल्युम—९, भा० २, पृ० ६६।

कापालिक उनकी ही एक शाखा थी। गिरनार अघोरियों का आश्रय स्थान था। कबीर साहब के गुजरात में आने से पूर्व कच्छ सौराष्ट्र में योगियों का बोलबाला था। वैष्णव भक्ति का प्रचार हुआ था, किन्तु ये लोग वैष्णव भक्तों की कंठी तोड़ देते थे, तथा तिलक चाट जाते थे। यौगिक चमत्कारों द्वारा ग्राम्य प्रजा को डरा-धमका कर चन्दा वसूल करते थे। कबीर निर्गुण-भक्ति ने उनके प्रभाव को तोड़ा था। उनकी अहिंसा ने इस हिंसक संप्रदाय को समाज से अलग कर दिया।

उनकी डरावनी वेशभूषा, खोपड़ी तथा रीढ़ की हड्डी की माला, श्मशान-निवास तथा गड़े मुर्दों की चीरफाड़ ने उनको संस्कृत समाज से अलग कर दिया। उनके अखाड़े थे, जहाँ उनको दीक्षा तथा तालीम दी जाती थी। अठारह प्रकार के इन योगियों में सौराष्ट्र में गोरख, कापालिक, निरन्जनी, अवधूत, गोदड़ तथा सरभंगी योगियों का विशेष प्रचार था। कापालिक भक्ति की पूजा करते थे, अघोरी शिव को मानते थे।

मंत्र एवं ओषधियों द्वारा योग साधन का यह प्रकार है। उसमें भी दो प्रकार की साधना थी। काष्ठोषधि का प्रयोग करनेवालों से रसोषधि का प्रयोग करनेवाला रसेश्वर संप्रदाय अलग था। यजुर्वेद के एक श्लोक का प्रयोग मन्त्र के रूप में किया जाता है। अघोरी शिव के अघोर स्वरूप को मानते हैं। नाथपंथियों को स्वीकार्य "काया-योग" द्वारा परम-सिद्धि की प्राप्ति को ये लोग भी मानते हैं।

जगत् को सुख-दुःखमय मानते हैं। यह संप्रदाय दीक्षित अवधूतों के लिए ही है। ओषधि निर्माण के क्षेत्र में इन योगियों ने अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। वैष्णवमत तथा कबीरमत के प्रभाव से यह संप्रदाय मृतप्राय अवस्था में रह गया है। "अघोर संहिता" में इस संप्रदाय का तमाम गुप्त ज्ञान है, किन्तु यह ग्रंथ अप्राप्त-सा है।[1]

(४) मार्गी संप्रदाय :—संप्रदाय का मूल नाम "महामार्ग" था। इसे "बीजपंथ" भी कहते हैं। इसे हिन्दू धर्म की एक छोटी आवृत्ति कहना चाहिये। यह पंथ ज्योतिस्वरूप निरंजन से लेकर शिवशक्ति से गुजरता हुआ रामदेव पीर की अवतार पूजा तक विकसित होता आया है। सौराष्ट्र में इस संप्रदाय के विभिन्न जाति के अनेक अनुयायी हैं।

संप्रदाय का प्रमुख लक्षण पाठ-पूजा है। जो पाठ-पूजा को मानता है, वह बीज मार्गी है।[2] इस मार्ग के अनुयायियों में गोसाईं लक्ष्मीनारायण को, हरिजन नरसिंह मेहता को तथा नाथपन्थी भैरव को अपना इष्टदेव मानते हैं। पाठ-पूजा के दस तथा

---

१. 'अघोर सम्प्रदाय'—श्री रविशंकर मेहता, किस्मत प्रकाशन, बम्बई।

२. 'सत केरी वाणी', पृ० ५।

बीसा दो प्रकार हैं। दसा सामान्य तथा बीसा गूढ़ पाठ है। संप्रदाय के अन्तरंग अनुयायियों को इसमें स्थान मिलता है। यद्यपि संप्रदाय का कोई ऐतिहासिक प्रमाणबद्ध साहित्य नहीं है; किन्तु संप्रदाय पुराना है।

संप्रदाय में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। गुरुशरण भाव, अजपाजाप तथा गत्यगंगा संप्रदाय के महत्व के अंग हैं। गुरु शिष्य के मध्य रहस्यगर्भित सम्बन्ध है। इस मार्ग की परम्परा समन्वयात्मक है। दूज का प्रतीक हिन्दू-मुस्लिम समन्वय तथा स्त्रियों की महत्ता आर्यों के साथ अनार्य-परम्परा का समन्वय स्थापित करती है। इस्लामी चिह्नों की रक्षा की गई है। शुक्ल-द्वितीया-दूज का बड़ा महत्व है।

युधिष्ठिर द्रौपदी से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। पति-पत्नी राग का त्याग कर गुरु चरण में समर्पण करते हैं। आत्मा लैंगिक भेद से परे है। भेद-भाव एवं द्वन्द्व भाव को छोड़ आत्मस्थ होने का उपदेश है। संसार में रहकर समत्व की स्थापना करनी चाहिये। स्त्री के मार्गदर्शन से पुरुष अध्यात्म मार्ग पर आगे बढ़ता है। रत्नावली, तारामती तथा सति तोरल, लोयण, रूपांदे तथा दाड़लदे के नाम भजनों में आते हैं। इसे "सतियों का धरम" भी कहा गया है। उनकी साधना भोग से भागकर नहीं, किन्तु इसके मध्य में निवास कर जल-कमलवत् रहकर की जाती है। बंगाल की "बाऊल-साधना" से यह साधना मिलती है।[1]

जो स्थिति बंगाल में उसकी हुई, महामार्ग की वही दशा सौराष्ट्र में हुई। गुरु आज्ञा तथा सत्धर्म की दुहाई के नाम पर सामूहिक व्यभिचार फैल गया।[2] पुरुष व्यभिचार से शर्म के स्थान पर गौरव का अनुभव करता था।[3] पन्थ की मुखिया स्त्री एक बड़े कमरे में युवान स्त्री-पुरुषों को सम्मिलित करती थी। मध्य में रखी स्त्रियों की कंचुकियों में से पुरुष आंख पर पट्टी बांधकर एक उठा लेता था। जिस स्त्री की कंचुकी उसके हाथ में आती थी, वह उस रात उसकी साथिन बन जाती थी। इस कारण से उसे "कांचलिया पन्थ" भी कहते हैं।[4]

कबीर साहब ने इन गुरुओं को कच्चे सिद्ध कहकर उनकी कटु आलोचना की है। यह मूल रूप में अलख धणी की उपासना है। संयम को ढीला करने का उपदेश कहीं नहीं है। श्रेष्ठ जाप अजपाजाप है। बीज मन्त्र से साधना का प्रारम्भ होता है। संप्रदाय के सामूहिक मिलन को गत्यगंगा कहते हैं। इसे "जामो", "जामपो या जमेलो" भी कहते हैं। गुरु के वायक (निमन्त्रण) आने पर सब कुछ छोड़कर

---

१. 'सत केरी वाणी', पृ० १२। २. वही, पृ० १६।
३. 'गुजराती साहित्य' खंड ५ : पृ० २२०।
४. वचेट वहु : श्री देवशंकर मेहता, पृ० १७७।

जाना पड़ता है। 'गत्यगंगा' का मूल रूप निकृष्ट नहीं होगा, ऐसा उनके भजनों से लगता है।

अनेक प्रभाव पड़ने से संप्रदाय का मूल रूप इतना परिवर्तित हो गया है, कि इसकी कल्पना दुष्कर बन गई है। यौगिक उपासना को छोड़ निर्गुण-भक्ति तथा अजपाजाप के प्रति इसका झुकाव कबीर विचारधारा के प्रभाव से लगता है। संप्रदाय में कबीर साहब तथा उनकी परम्परा के रविसाहब के आगम तथा "पियाला" गाया जाता है।

इस पन्थ को "मार्गीपन्थ", निजारपन्थ", "महापन्थ", "निजियाधरम" या "बीजपन्थ" भी कहा जाता है। कुछ समय से अलखधणी का स्थान "नकलंक" ने लिया है। अब रामदेवपीर को नकलंकी-अवतार माना जाता है। गीतों में उनको "सायबा" के प्रिय नाम से संबोधित किया जाता है। "सायबा" का अर्थ प्रियतम है, यह "साहेब" से बना लगता है।

रामदेवपीर का जन्म सं० १४६६ में तथा मृत्यु सं० १५१५ में हुई है। ये कबीर साहब के समकालीन प्रतीत होते हैं।

(५) सरभंग संप्रदाय :—इसे औघड़ संप्रदाय भी कहते हैं। सौराष्ट्र में इसका विशेष प्रचार है। "संतमत का सरभंग संप्रदाय" नाम से इस संप्रदाय पर एक गवेषणात्मक ग्रंथ लिखा गया जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से प्रकाशित है।

इस संप्रदाय के प्रवर्तक कीनाराम हैं। कहा गया है, कि कबीर से कीनाराम तक की एक परम्परा है। उनका आराध्य "राम" हैं। कीनाराम ने कहा है कि राम हमारा बुद्धि बल, हमारे प्राण तथा सब कुछ हैं।

उनका "राम" निर्गुण-राम है। कीनाराम ने उसे निरंजन भी कहा है। "निरंजन ! धुंध तेरा दरबार।" ईश्वर के अलख रूप को स्वीकार करते हुए भी राम के लख स्वरूप को उन्होंने माना है।

"सन्ता सन्ता लखिया, लखन वाला लख।
राम बिना कैसे लखे, जाको नाम अलख।।"

कालक्रम में निर्गुण की कट्टरता नहीं रही। निर्गुण की भक्ति करते हुए भी वे सगुण सत्ता का विरोध नहीं करते थे।

इस संप्रदाय के भजनों में प्रेरणामूर्ति के लिए एक शब्द आता है; "सरभंगी"। इसका मूल रूप "सर्वांगी" है। यह हिन्दी में "सरबंगी" होते हुए "सरभंगी" हो गया है। गोरखबानी में सिद्धों के बत्तीस लक्षण गिनाये गये हैं; उसमें सरबंगी, सावधान, सति, सारग्रही आदि आते हैं। सर्वांगी व्यक्ति प्रभावशाली होता है, जिसका प्रभाव चारों ओर फैलता है।

कबीर विचारधारा से प्रभावित सगुण पंथ

(१) स्वामीनारायण संप्रदाय—संप्रदाय की मूल पीठिका वैष्णव संप्रदाय है, किन्तु गुजरात में वैष्णव धर्म में प्रचलित विलासिता के अनिष्ट की प्रतिक्रिया के रूप में इसका जन्म हुआ था। दी० ब० कृष्णलाल झवेरी ने लिखा है, कि वल्लभाचार्य के भक्ति मार्ग की विलासिता तथा वासनावृत्ति के विरोध में इस संप्रदाय की स्थापना हुई थी।[१] प्रो० मजुमदार ने इसका समर्थन करते हुए लिखा था, कि गुजरात समर्पणी-वैष्णवों की गुरु को ईश्वर का रूप समझने की मान्यता के कारण भक्ति का परिणाम व्यभिचार हुआ। स्वामी सहजानंद ने अपनी ऊँची नीतिमत्ता से वैष्णवमत में सुधार का आवश्यक कार्य किया। उन्होंने राधा और कृष्ण की उपासना के स्थान पर लक्ष्मीनारायण की उपासना का प्रारम्भ किया।[२]

गुजराती साहित्य के एक पद्य-कथाकार श्री शामल भट्ट ने वैष्णव-धर्म की इस निर्बलता का वर्णन किया है।

गोसांई गुरु जेहना, समर्पणी सरदार।
तनमन सोंपे तेहने, निर्मल पोतानी नार॥"

प्रारम्भ में स्वामी सहजानन्द को गोसांइयों तथा वैरागियों की ओर से प्रचंड विरोध का सामना करना पड़ा था। ये लोग साधुओं की कंठी, जनेऊ तथा मूर्तियां तोड़ते, भिक्षा लूट लेते, या भिक्षा में मृत चूहे डालते थे; किन्तु स्वामी सहजानन्द अपने विचारों में अटल रहे।[3]

स्वामीनारायण संप्रदाय के ऊपर कबीर के सन्त मत का प्रभाव है। डॉ० रामकुमार गुप्त ने अपने प्रबंध में इस बात को स्वीकार किया है। "साधारणतः यह संप्रदाय वैष्णव-संप्रदाय होते हुए भी सन्त भावधारा को पोषित करने में सहायक हुआ है।"[४]

गहराई से देखा जाय, तो विष्णु की भक्ति को छोड़कर पुष्टिमत से इसका किसी प्रकार का साम्य नहीं है; तथा एक मूर्तिपूजा को छोड़कर अन्य तमाम प्रकार का साम्य कबीरमत से है।

वल्लभ मत के राग के स्थान पर उन्होंने वैराग को महत्व दिया है। डॉ० थूथी ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।[५]

१. 'माइल स्टोन इन गुजराती लिटरेचर', पृ० २६३।
२. 'कल्चरल हिस्टरी आफ गुजरात', पृ० २२१।
३. सहजानन्द स्वामी'—श्री किशोरलाल मशरूवाला, पृ० ४१।
४. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ४८।
५. 'दि वैष्नवाज आफ गुजरात', पृ० २६६।

स्वामी सहजानन्द नीलकंठ ब्रह्मचारी के रूप में सं० १८५७ में सौराष्ट्र में आये थे। साधुओं के लिये उन्होंने कठोर नियम बनाये थे। उनके उपदेश से सौराष्ट्र के कुछ लुटेरों के जीवन में परिवर्तन आ गया था। उनके शिष्यों में ब्रह्मानन्द, मुक्तानन्द, निष्कुलानन्द, प्रेमानन्द तथा देवानन्द प्रसिद्ध हैं। इन शिष्यों ने हिन्दी तथा गुजराती में सुन्दर पद-रचना की है।

"शिक्षा-पत्री" में शूद्रों को शिक्षा का अधिकार लिखा है। संस्कृत भाषा के स्थान पर जनभाषा (गुजराती) का प्रयोग किया; किन्तु तमाम ग्रन्थों की लिपि देवनागरी रखी थी। निम्न जाति के लोगों के लिये वैष्णव-भक्ति के द्वार उन्होंने खोल दिये।

नारी-विरोध, मांसाहार विरोध, बाह्याचार विरोध, ब्रह्म-विरोध, तथा सर्व-धर्म-समभाव एवं कथनी-करनी ऐक्य जैसे कबीर मत के तत्व इन सन्तों की वाणी में परम्परित हुए हैं। सम्प्रदाय में अश्लीलता, जुआ, शराब आदि का घोर विरोध है। स्वामीजी ने अपने शिष्यों द्वारा गुजराती में विवाह गीत लिखवाये। इस सम्प्रदाय के साधुओं में चारित्र्य निष्ठा, संयम तथा आत्मविश्वास सराहनीय है।

स्वामी सहजानन्द ने देखा था कि अन्य पंथों में कनक तथा कामिनी का मोह छूटता नहीं, इसलिए उन्होंने दोनों का त्याग कर एकमात्र "साहेब" से लगन लगाने का उपदेश दिया था।[1] उनकी दिनचर्या में भी "भूखे को अन्न तथा साहब की बन्दगी" को ही स्थान मिला था। डॉ० निपुण पंड्या ने अपने प्रबन्ध में इस सम्प्रदाय पर कबीर एवं रैदास का परम्परित-प्रभाव देखा है। डॉ० पंड्या का मत है, कि कबीर एवं रैदास की परम्परा के नवीन संस्कार ये अपने साथ ले आये थे[2]; किन्तु सौराष्ट्र में पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से कबीर तथा रैदास की विचार-धारा की परम्परा चली है; इसलिए सम्भव यह है, कि सौराष्ट्र में आने पर इन परम्पराओं का उन पर प्रभाव पड़ा हो। रामकबीर सम्प्रदाय के सन्त भाण तथा रवि उनके समकालीन थे।

(२) अगासो पंथ—श्रीमद् राजचन्द्र ने "अगासो" गांव में इस पंथ की स्थापना की थी, इसलिए इसका नाम "अगासो पंथ" पड़ गया। सूरत तथा भरूच जिले के कुछ गांवों में उनके अनुयायी हुए थे। रामकबीर-सम्प्रदाय के भक्त समाज के कुछ अनुयायी इस पंथ में सम्मिलित हुए। आणंद से खंभात जाते हुए मार्ग में "अगासो" गांव पड़ता है।

---

१. भक्त चिन्तामणी—पृ० ३४८।

२. मध्यकालीन गुजराती साहित्य मां तत्व विचार—पृ० १५५

श्रीमद् राजेन्द्र के विषय में लोग कहते हैं, वे शतावधानी थे। उनको पूर्व जन्म का ज्ञान था। दमन तथा सलोद्रा के मन्दिरों में उनकी मूर्ति बनाई गई है। वहाँ आरती तथा प्रार्थना की जाती है।

उन्होंने सात वैष्णव, बुरी आदतें तथा सात अक्षम्य का उपदेश दिया था।

इस पंथ में जैन धर्म के सिद्धान्तों पर रामकबीर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रभाव है। भक्ति-पद्धति में अन्तर पड़ गया है, किन्तु भजन कीर्तन का प्रभाव रह गया है। रामकबीर सम्प्रदाय के भक्त समाज के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार है।[1]

इस पंथ के प्रवर्तक श्रीमद् राजचन्द्र सौराष्ट्र के "ववाणिया" गाँव में सेठ खत्री के घर जन्मे थे। उस समय उनके गाँव में "रामबाई मा" के स्थान में संत रामदासजी वर्तमान थे। राजचन्द्र बचपन में वहाँ जाकर बैठते थे। गुरु रामदास द्वारा गुरु भक्ति, संत सेवा तथा हरि भजन की भावना का सिंचन उनमें हुआ था। संत रामदास याचक को मिष्ठान्न खिलाकर एक धोती भी देते थे।[2]

राजचन्द्र का कुल धर्म "जैन धर्म" था। उनके ऊपर संत रामदास द्वारा संतमत का प्रभाव पड़ा। उनके नये पंथ में दोनों विचारधाराओं का समन्वय है।

महात्मा गांधीजी उनको गुरुवत् आदर देते थे।

---

१. 'दि रिलिजस क्रीड्स एमंग दि पाटीदार्स ऑव साउथ गुजरात', पृ० २५६।
२. 'सोरठनां सिद्धो', पृ० १५०।

नवां अध्याय

समकालीन गुजराती साहित्य पर कबीर का प्रभाव

गुजराती साहित्य के इतिहासकारों ने गुजराती साहित्य के इतिहास का निम्नप्रकार काल-विभाजन किया है। श्री नरसिंह राव दिवेटिया ने इसे प्रारम्भ काल (सं० १५५० से १६५०), मध्यकाल (सं० १६५०-१७५०) तथा आधुनिक काल (सं० १७५० से आगे) में विभक्त किया था। श्री मणिलाल व्यास ने इसे पुरानी गुजराती (सं० १३०० से १६००) तथा आधुनिक गुजराती (सं० १६०० से आगे) के रूप में स्वीकार किया है। श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने ईसा की चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य को "प्राचीन साहित्य" कहा, तथा इससे आगे सत्रहवीं शताब्दी तक मध्यकालीन साहित्य और इसके आगे के साहित्य को अर्वाचीन साहित्य कहा।

गुजराती साहित्य का काल-विभाजन—श्री विजयराय वैद्य ने गुजराती साहित्य की रूपरेखा में ई० सन् १२५० से १६५० पूर्व मध्यकाल, ई० सन् १६५० से १८५२ उत्तर मध्यकाल तथा इसके आगे के समय को अर्वाचीनकाल कहा था। डाँ० रामकुमार गुप्त ने प्रायः इसी विभाजन को अपना कर मध्यकाल को पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल में विभक्त किया। इस प्रकार उन्होंने उसे प्रस्तावना काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में विभक्त किया। यह विभाजन उपयुक्त एवं वैज्ञानिक होते हुए भी इस प्रबन्ध में हमें इसे कबीर साहित्र के सदर्भ में देखना होगा। गुजराती साहित्य मे कबीर के समकालीन कवियों पर उनके व्यक्तित्व, वाणी एवं उपदेशों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने की सम्भावना है, तथा परवर्ती कवियों पर कबीर की वाणी तथा परम्परा का प्रभाव सम्भवि है। अतः हमें इसके अनुपक्ष में काल का विभाजन करना होगा।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक हमने कबीर के प्रत्यक्ष प्रभाव को स्वीकार किया है, क्योंकि इसके पूर्वार्ध के अन्त तक वे जीवित थे। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आज तक का गुजराती साहित्य इसके परवर्ती साहित्य के विभाग में सम्मिलित किया गया है।

२–गुजरात की भक्ति ज्वालाओं का स्रोत

एक विवाद—गुजरात के प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी ने सं० १९६१ की "गुजराती साहित्य परिषद्" के अध्यक्ष के रूप में दिये हुए अपने भाषण में प्रश्न उठाया कि नरसिंह तथा मीरां की भक्ति की ज्वालाएँ कहाँ से प्रज्वलित हुई थीं। प्रश्न का समाधान करते हुए उन्होंने कहा; "गुजरात के इन आदि कवियों में ये ज्वालाएँ गुजरात के बाहर किसी धर्मप्रवर्त्तक से नहीं आईं, क्योंकि वे इस कवियुग्म के जीवन-काल के पश्चात् जन्मे तथा उदित हुए थे।"[1] तदुपरांत उन्होंने यह भी कहा था, कि सारे उपदेशों के बीज नरसिंह-मीरां के काव्य में हैं। नरसिंह तथा मीरां की कविता में जो योग, अध्यात्म-ज्ञान तथा पराभक्ति है, वह भागवत से मिल सकती है।

गुजरात के प्रखर विद्वान् आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ने "वसंत" में त्रिपाठीजी की इस स्थापना का विरोध करते हुए नरसिंह-मीरां को रामानन्द-कबीर के परवर्ती प्रमाणित करने का प्रयास किया था।[2] नरसिंह-मीरां की ज्वालाओं का मूल कबीर में होने के तथ्य का उन्होंने समर्थन किया था। नरसिंह-मीरां पर भागवत के प्रभाव के त्रिपाठी जी के उल्लेख पर व्यंग्य करते हुए आचार्य ध्रुव ने कहा था कि नरसिंह की "ढेड वरणमां दृढ़ हरिभक्ति" को यदि भागवत का सिद्धान्त माना जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।"[3]

श्री त्रिपाठीजी ने अपनी स्थापना के समर्थन में जो एकमात्र तर्क दिया था, वह समय का था। वे नरसिंह-मीरां को रामानन्द-कबीर के पूर्ववर्ती मानते थे। आचार्य ध्रुव ने नरसिंह-मीरां को कबीर के परवर्ती प्रमाणित करने के प्रयास किये हैं; किन्तु वर्तमान अनुसंधान के अभाव में उनको "मुंबई-समाचार" के किसी अज्ञात लेखक का आधार लेना पड़ा था। वर्तमान खोजों के अनुसार उनका समय निम्न प्रकार है।

कबीर—		सं० १४५०—१५५२।
नरसिंह—	वृद्धमान्य	१४७०—१५३६।
	मुन्शी	१५३०—१५८०।
मीरां—		सं० १५५०—१६२०।

---

१. 'वसंत' पत्रिका, आषाढ़, १९६१, पृ० २११।
२. वही, श्रावण, १९६१, पृ० २४२।
३. वही, पृ० २५०।

मीरां :—मीरां के समय के विषय में जो भ्रम उपस्थित हुआ था, उसका मूल कर्नल टोड हैं। उन्होंने मीरां को राणा कुंभा की पत्नी कहा था। वस्तुतः मीरां कुंभा के पुत्र संग्रामसिंह के पुत्र भोजराज की पत्नी थी। कबीर के निधन के अनन्तर मीरां का जन्म हुआ है। मीरां ने रोहीदास से दीक्षा ली थी। मीरां ने अपनी वाणी में रोहीदास-मिलन का उल्लेख किया है। संत रोहीदास ने अपनी वाणी में कबीर के निधन का उल्लेख किया है। "निर्गुण का गुण देखो भाई, देही सहित कबीर सिधाई।" मीरां ने अपनी एक रचना में कबीर के चमत्कार का उल्लेख किया है। अतः मीरां का कबीर की परवर्ती होने में कोई संदेह नहीं रहता।

नरसिंह मेहता :—नरसिंह के समय के विषय में मतैक्य नहीं है। नरसिंह का वृद्धमान्य सं० १४७०-१५३६ है।[1] श्री कन्हैयालाल मुन्शी, श्री अंबालाल जानी, आचार्य ध्रुव; श्री नटवरलाल देसाई तथा श्री दुर्गाशंकर शास्त्री आदि विद्वान् उनका समय सं० १५३० से १५८० स्वीकार करते हैं। श्री नरसिंहराव दिवेटिया ने बम्बई विश्वविद्यालय के तत्वावधान में दिये गये अपने व्याख्यानों में डॉ० आनन्द शंकर ध्रुव के मत का समर्थन करते हुए नरसिंह को सं० १५३६ से आगे रखा है।

दोनों में से किसी भी एक मत को स्वीकार किया जाय, तथापि नरसिंह मेहता कबीर के समकालीन रहते हैं। वृद्धमान्य समय को स्वीकार करने पर भी वे कबीर से चालीस वर्ष छोटे रहते हैं। इस स्थिति में कबीर पर उनके प्रभाव की संभावना नहीं रहती।

डॉ० ध्रुव ने कबीर की सोरठ यात्रा वाले पद का उल्लेख किया है। इस पद में कबीर ने सोरठ यात्रा के समय वहां के लोगों में क्रोध तथा अहंकार तथा मूर्तिपूजा की भावना देखी थी। राजा साधुओं का माहात्म्य जान कर उनकी पूजा करता था।[2] वह राजा सम्भवतः नरसिंह मेहता वाले 'पाँचवां रा' मांडलिक थे, जो साधु के माहात्म्य को जानते थे।[3]

उस समय कबीर साहब गुजरात के प्रसिद्ध भक्त-कवि नरसिंह मेहता को न मिले हों, ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। वरन् कबीर-पंथ के ग्रन्थों में कबीर-नरसिंह समागम का उल्लेख है। उस प्रसंग का वर्णन करते हुए लिखा गया है, कि कबीर ने नरसिंह मेहता को रासदर्शन कराने की विनती की थी। जब रास होने लगा था, कबीर साहब ने नरसिंह मेहता से कहा कि कृष्ण का हाथ पकड़ लो। पीछे से नरसिंह ने देखा, तो वे अपने एक हाथ से अपने ही दूसरे हाथ को पकड़े हुए थे। उस समय कबीर ने नरसिंह को आत्म-तत्व का उपदेश दिया था।[4]

---

१. 'कवि चरित' भा० १-२, पृ० ४४। २. काव्य तत्व विचार, पृ० २६४।
३. 'कबीर सम्प्रदाय', पृ० १५५।
४. 'सर्वाजीत पण्डित की गोष्ठी', जागुष्टे, अहमदाबाद, पृ० ११२।

आचार्य ध्रुव ने नरसिंह के ज्ञान तथा आत्म-तत्व के पदों पर कबीर का प्रभाव देखा है। नरसिंह के "ज्यां लगी आत्मा-तत्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।" वाले पद पर कबीर के, "आत्म-तत्व चीना बिना, सब हैं जूठी सेव" वाले पद का प्रभाव है।[1] गुजरात में भक्ति का विकास नरसिंह मेहता से पूर्व हो चुका था, इस तथ्य का समर्थन श्री अम्बालाल जानी ने "हरि लीला सोडस कला" की उपोद्घात में श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने "गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर" में तथा डॉ० थूयी ने "वैष्नवाज आफ गुजरात" में किया है।[2]

डॉ० अंबाशंकर नागर ने नरसिंह मेहता के ज्ञान-वैराग के पदों पर कबीर का प्रभाव परिलक्षित किया है।[3]

निष्कर्ष :—मीरां एवं नरसिंह उपदेशक नहीं, प्रेमी भक्त थे। उन्होंने जो भी लिखा, स्वान्त: सुखाय लिखा था। उन दोनों में कबीर की परिव्राजक वृत्ति नहीं है, न समाज को सुधारने की जिज्ञासा है, न पाखंड का भंडाफोड़ करने का साहस हैं, न मूर्ति का विरोध है, न भेदभाव का विरोध।

ये सगुण कृष्ण-भक्त थे। कबीर पर न सगुण का प्रभाव पड़ा है, न कृष्ण भक्ति का। वरन् उनकी रामभक्ति का प्रभाव नरसिंह तथा मीरां पर दृष्टिगोचर होता है। यह "राम" भी निर्गुण परब्रह्म का रूप ले लेता है, तथा आतम राम (आत्म तत्व) का परिचय किये बिना की गई सगुण की सेवा को व्यर्थ प्रतिपादित करता है।

नरसिंह तथा मीरां की वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है।

नरसिंह की वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव

(१) कबीर—"बीज के मांही ज्यों वृक्ष विस्तार, यों चाहके मांही सब रोग आवे।"
नरसिंह—"बीजमां वृक्ष तुं, वृक्षमां बीज तुं, जोऊ पटंतरो एज पासे।"

(२) कबीर—"जैसे बहु कंचन के भूषण थे, कहीं गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोकवेद के बिछुरे, सुन्नहि मांहि समायहिंगे॥"
नरसिंह—"वेद तो एम वदे, श्रुति स्मृति साखदे, कनक कुंडल विशे भेद न्होंय।
घाट घडिया पछी नामरूप जूजवां, अंते तो हेम नुं हेम-हेम होय॥"[4]

(३) कबीर—"मोको कहां ढूंढे वन्दे, मैं तो तेरे पास में।"
नरसिंह—"पासे छे पियु अल्या, तेने नव परखियो।"[5]

---

१. 'काव्य तत्व विचार', पृ० २६३।
२. 'माइल स्टोन इन गुजराती लिटरेचर', पृ० ३४।
३. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (सं० २०१५) अंक-२, पृ० ३६।
४. बृ० का० दो० भा० १, पृ० २६।
५. वही।

(४) कबीर—"पोथी पढ़-पढ़ जग मुंआ, पण्डित भया न कोई।"
नरसिंह—"पण्डितो पार नहीं पामे पोथे।"

(५) कबीर—"दीप जरै अगम्य का, बिन बाती, बिन तेल।"
नरसिंह—"बत्ती विण, तेल विण, सूत्र विण जो वली।
अचल झलके, सदा अनल दीवो॥"[1]

(६) कबीर—"अरघ उरघ के घाट पर निशदिन खोजो पंड।"
नरसिंह—"अकल अविनाशी ए, नवजाये कल्यो,
अरघ उरघनी मांहे म्हाले॥"

(७) कबीर—"आतम तत्व चीने विना, सव है झूठी सेव।"
नरसिंह—ज्यां लगी आत्मा तत्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।"

मीरां की वाणी पर कबीर-वाणी का सविशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मीरां अपने उत्तर काल में कुछ समय बांधोगढ में थीं। डॉ० गेरस ने सं० १६०७ में मीरां का बांधोगढ़ में होने का उल्लेख किया है। इस स्थिति में मीरां को कबीर एवं धर्मदास की वाणी के अध्ययन का अवसर भी मिला होगा। धर्मदास का एक पद साधारण परिवर्तन के साथ मीरां के एक पद से बहुत कुछ मिलता है।

धर्मदास—"साहिब ! चितवो हमरि ओर।
हम चितवे तुम चितवो नाहीं, तुमरो हृदय कठोर।
औरन को तो और भरोसों, हमें भरोसो तोर॥"

मीरां—"तनक हरि चितवां जी म्हारी ओर॥
हम चितवां थे, चितवो नाहरि, हिवडो बड़ो कठोर।
मेरी आशा चितवन थारी, और न दूजो दोर॥"[2]

मीरां की वाणी पर कबीर-वाणी का प्रभाव

कबीर—"करमगति टारै नाहीं टरी।
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने, बलि पाताल धरी॥"

मीरां—"करम गत टारां नाहीं टरां।
सतवादी हरिचन्द राजा, डोम घर नीरां भरां॥"[3]

---

१. 'नरसिंह मेहता ना भजनो' स० सा० व० का०, पृ० २४।
२. 'मीरांबाई और उनकी पदावली', पृ० १८६।
३. मीरांबाई की पदावली', सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १५७।

कबीर—"जैसा राखे वैसा रहूं, जो देवे सो खाऊं।"
मीरां—"जो पहिरावे सोई पहरूं, जो दे सोई खाऊं।"[1]
कबीर—"सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास-कबीर है, गावे और रोवे ॥"
मीरां—"सब सोवां सुख नींदडी, म्हारे नैन जगावां।
रीमा बेठ्यां जाग्यां, जगत सब सोवां ॥[2]
कबीर—"यह तन जारौं मसि करौं, ज्यों धुआं जाय सरग्गि।"
मीरां—"अगर चंदन की चिता बनाऊं, अपने हाथ जलाना।"[3]
कबीर—"मनका तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांही।"
मीरां—"हिरदे हरिको नाम न आवे, मुख ते मनिया गन ॥"
कबीर—"वो छे जली जैसी मछिका, उदर न भरई नीर।
त्युं तुम कारनि केशवा, जन तालावेली कबीर ॥"
मीरां—"स्याम बिना जियडो मुरझाये, जैसे जल बिन वेली।
बहुत दिन बिते अजहु न आये, लग रही तालावेली ॥"[4]

पूर्व-मध्यकालीन संत कवि

नरसिंह मेहता :—श्री के० का० शास्त्री ने नरसिंह मेहता के जीवन के प्रसंगों को सक्षेप में इस प्रकार दिया है। तलाजा में जन्म, बाल्यावस्था में माता-पिता का निधन; भाई के घर आश्रय, ग्यारह वर्ष की उम्र में माणेकबाई से विवाह, दो संतान कुंवरबाई तथा शामलशाह, शामलशाह का विवाह तथा हार का प्रसंग।[5]

हार का प्रसंग :—नरसिंह के जीवन में हार का प्रसंग विशेष महत्व रखता है। इसका वर्णन नरसिंह ने किया था, अतः इसका महत्व बढ़ जाता है। नरसिंह ने अपने विरोधियों के विषय में जोगी, माला-तिलक विरोधी तथा निर्गुण मतवादी कहा था, इसके आधार पर वे नाथपन्थी सिद्ध या संन्यासी समझ लिये गये हैं। राम के नाम की भक्ति की जो सूचना मिलती है, इसके आधार पर भीम को "रामानन्दी" मान लिया गया है; किन्तु सब को एकत्रित करने पर यह 'निर्गुण राम' की

---

१. 'मीरांबाई और उनकी पदावली', पृ० २६।
२. मीरांबाई और उनकी पदावली, पृ० २२१।
३. वही, पृ० २८०।
४. वही, पृ० ३५७।
५. 'कवि चरित' भा० १-२, पृ० ४२।

भक्ति है। उन्होंने कहा था, "अंतर मां रट राम।" हार के पदों में द्वारका से भगवान् द्वारा रामानन्द को जूनागढ़ के नरसिंह नागर पर कृपा करने के लिए भेजने का उल्लेख है।

"द्वारका पहोंच्या कमलापति, रामानन्द प्रत्ये कहे विनति।
तमे जूनागढ़ लगी वेगे जाओ, नरसैया नागर ने करो पसायो॥"

"हार समे" के पदों में निर्गुण-राम की भक्ति तथा आचार-विरोध की भावना के जो दर्शन होते हैं, इनका मूल कबीर के संतमत के सिवा अन्य कहीं नहीं मिल पाता।

नरसिंह का काल-निर्णय :—गुजराती साहित्य के इतिहास में मेहता का समय विवादास्पद रहा है। कवि नर्मद, स्व० इच्छाराम सूर्यराम देसाई, श्री कांटावाला आदि विद्वानों के समय (सं० १४७०—१५३६) को "वृद्धमान्य समय" कहा जाता है। आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ने राधा की सखियाँ तथा गोपीनाथ महादेव के उल्लेख के आधार पर नरसिंह को रूपगोस्वामी के "विदग्ध माधव" (सं० १५८९) के अनंतर रखा था।[1]

तदनन्तर श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने डॉ० ध्रुव के मत का समर्थन करते हुए अनेक तर्क उपस्थित किये। इन तर्कों में प्रमुख हैं—बंगाली ग्रंथ "गोविंददास कड़छो" में श्रीधरादि कवियों का उल्लेख तथा नरसिंह का अनुल्लेख। सं १६५० के पश्चात् नरसिंह की रचनाओं के अनुसंधान में संशयातीत प्रमाण प्राप्त होते हैं।[2] श्री नरसिंहराव दिवेटिया ने डॉ० ध्रुव के मत का समर्थन किया था।[3] डॉ० ध्रुव के मत को सूचनात्मक मानकर श्री० कृष्णलाल झवेरी ने लिखा, कि जब तक इस प्रश्न का कोई निर्णयात्मक अंत न आ जाय, हमें पुराने (वृद्धमान्य) समय को मानकर ही चलना चाहिये। श्री के० का० शास्त्री ने मुन्शीजी के तर्कों का उत्तर देकर वृद्धमान्य-समय को ही मान्य किया। उन्होंने लिखा है, कि मुन्शीजी के तर्कों का प्रमुख आधार "गोविंददास कड़छो" की कृति को डॉ० आर० सी० मजुमदार ने जाली घोषित किया है।[4]

श्री नरसिंह राव दिवेटिया ने "पर्वत पच्चीसी" के कर्त्ता त्रिकमदास के जन्म-संवत् १७७० के आधार पर ३० वर्ष की एक पीढ़ी का औसत काल लेकर नरसिंह को सं० १५२६ में होने की संभावना व्यक्त की। त्रिकमदास नरसिंह मेहता के चाचा पर्वतदास की दसवीं पीढ़ी में आते हैं। इसमें ५७ वर्ष का अन्तर पड़ता है। एक पीढ़ी का

---

१. 'वसंत' वर्ष ४, अंक ७ तथा ८।
२. 'नरसैंयों—भक्त हरिनो, प्रस्तावना, पृ० ८१।
३. बम्बई वि० वि० ठक्कर व्याख्यानमाला—१९३०।
४. 'कवि चरित' भाग १-२, पृ० ४७।

औसत काल ३३ या ३५ लिया जाय तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रबंध में अन्यत्र हमने देखा है कि गुजरात में एक पीढ़ी का औसत-काल लगभग ३५ वर्ष आता है।

सौराष्ट्र में मांगरोल में रणछोड़ राय का मंदिर है। पर्वतदास को सं० १५०० में श्री रणछोड़राय के दर्शन हुए थे।[1] इसलिए संभवतः सं० १५०१ में दीव के किसी वासुदेव सलाट द्वारा बनाये गये पत्थर के सिंहासन पर रणछोड़राय की मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय नरसिंह की उपस्थिति का अंतःसाक्ष्य प्रमाण है। रात के भजन में नरसिंह को प्यास लगी तो पानी उनकी एक सखी रतनबाई ले आयी थी। इस प्रसंग पर उन्होंने चार पद लिखे हैं। "रतनबाई घणु, व्याकुल फरे छे, वमे त्योने मेहता जल पाणी रे।" शास्त्रीजी ने इस प्रसंग को ऐतिहासिक माना है।

रणछोड़राय के दर्शन के समय पर्वतराय की उम्र ६८ वर्ष की थी। श्री दिवेटियाजी ने पर्वतदास का जन्म सं० १४३३ तथा नरसिंह का सं० १४६९ में रखा है। सं० १५०१ में नरसिंह की आयु ३२ वर्ष की ठहरती है, इससे भी उनके जन्म संवत् १४६९ का समर्थन होता है।

नरसिंह की मृत्यु का समय भी उतना ही विवादास्पद रहा है। श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने इसे सं० १६७० तक आगे बताया है, तो आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सं० १५३२,[2] डॉ० धीरुभाई ठाकर ने सं० १५३६ का वर्ष दिया है; श्री जनक दवे ने सं० १६३६ का वर्ष माना है।[3] श्री जेठालाल त्रिवेदी ने सं० १५९५ को नरसिंह के निधन का वर्ष माना है।[4]

एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने हार का प्रसंग सं०१५७२ में माना है, किन्तु उसमें आये हुए "वारोत्तर" शब्द का शास्त्रीजी ने "बारह" अर्थ लेकर इस प्रसंग को सं० १५१२ में माना है।[5] इसमें "वारोत्तर" का बहत्तर-बोतर-बोतेर होना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। यदि हार का प्रसंग सं० १५७२ में हुआ हो, तो श्री जेठालाल त्रिवेदी का दिया हुआ सं० १५९० संभव जान पड़ता है। इस स्थिति में नरसिंह का समय सं० १४७० से १५९० के आसपास ठहराया जा सकता है।

---

१. 'कल्याण' भक्त चरितांक (१९५२), पृ० ४५३।
२. 'बुद्धि प्रकाश' (१९७२) जुलाई से सितम्बर, पृ० २९९।
३. हिं० वि० गु० फा०, पृ० ४६।
४. 'भालण के पद', पृ० १२।
५. 'संवत् पन्नर वारोतर, सपतमी अने सोमवार रे।
मार्ग शीर्ष अजुआली पखे (आ) नरसिंनि आप्यो हार रे॥' कविचरित, पृ० ४१।

नरसिंह पर निर्गुण भक्ति का प्रभाव

(१) निर्गुण ब्रह्म :—नरसिंह की रचनाओं में कुछेक में अकल, अविनाशी, अगम्य ब्रह्म को प्रेम के धागों में बांधने का प्रयास किया गया है। उनके एक पद-निरखने गगन मां कोण घूमी रह्यो, तेज हुँ, तेज हुँ, शब्द बोले। पर कबीर की रहस्य-वादी विचारधारा का प्रभाव है। ब्रह्मांड में श्री हरि एक है, विभिन्न रूपों में वह अनन्त दीख पड़ता है। देह में देवरूप, तेज में तत्व रूप तथा शून्य में शब्द रूप वही ब्रह्म निवास करता है।

"अखिल ब्रह्मांड मां एक तुं श्री हरि, जूजवे रूपे अनन्त भासे।
देहमां देव तुं, तेजमां तत्व तु, शून्यमां शब्द थई वेद वासे।।"[1]

(२) अविनशी राम :—नरसिंह ने अपने उपास्य के रूप में राम तथा कृष्ण का नाम लिया है, वह मूल में निर्गुण नाथ है। नरसिंह ने कहा है, कि लोग सगुण को समझते नहीं, निर्गुण को देख नहीं पाते; चेतन की निंदा करते हैं तथा जड़ की वन्दना करते हैं; अचेत होकर भूले-भूले फिरते हैं। भगवान् अकल अविनाशी हैं, अवर्णनीय हैं। अरघ-उरघ के अन्दर रहते हैं, तथा सर्वव्यापी हैं; किन्तु संत उनको प्रेम के धागों से बांध लेते हैं।[2]

(३) आतम राम :—प्रभु पिण्ड में भी हैं, वे प्रकट दिखाई नहीं देते। जो उन्हें दूर समझता है, वह भ्रम में पड़ा है। माला से उनकी गणना नहीं होती।

"पिंडमां प्रभू पण प्रगट प्रेखे नहीं, फोगट भमे ते दूर भाले।
अगणित ब्रह्मनुं गणित लेखुं करे, दुष्ट भावे करी, माल झाले।।"

नरसिंह ने कहा कि ये निर्गुणनाथ तो तेरी आंखों में वसे हैं। तेरी देह में उस अनुपम मूर्ति के दर्शन होंगे। वे तेरे प्रेम मात्र से प्रसन्न हो जायेंगे।

"देहमां दरश से, प्रेमथी परस से, अजब अनुपम अधर मूर्ति।"[3]

(४) सत्संग :—नरसिंह मेहता ने "वैष्णव जन" वाले काव्य में सच्चे संत के ही लक्षण गिनाये हैं। संतों के चरणों में सकल तीर्थों का वास कहा है। ऐसे संतों में समभाव है, पक्षापक्षी नहीं है। "पक्षापक्षी त्यां नहीं परमेश्वर" संतों में अभिमान नहीं है। नरसिंह ने अभिमानी जन को गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते की उपमा दी है।
"सकटनो मार ज्यम स्वान ताणे।"[4]

---

१. 'बृ० का० दो० भा० १, पृ० २६।
२. 'नरसिंह मेहता कृत काव्य', पद—८९।
३. 'नरसिंह मेहता कृत काव्य' पद—४८।
४. बृ० का० दो० भा० १, पृ० ३०।

(२) मीरां :

मीरां अपनी प्रेम-भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। नाभादास ने उनके प्रेम की तुलना गोपियों के प्रेम से की थी। मीरां प्रेम-दीवानी थीं, किन्तु उन्होंने निर्गुण की ज्ञान-गली की यात्रा भी की थी।

"निकसी मैं ज्ञान-गली, ऊंची अटरियाँ, लाल किवड़ियाँ, निर्गुण-स्हेज बिछी।" उनकी वाणी में यौगिक उपासना के भी दर्शन होते हैं। उन्होंने किसी संप्रदाय को स्वीकार नहीं किया, न कोई पन्थ चलाया। उन्होंने कोई शिष्य भी नहीं बनाया। एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

"नाम रहेगो नाम सो, सुनो सयाने लोई।
मीरां सुत जायो नहीं, शिष्य न मूंड्यो कोई॥"

मीरां ने पुष्टि-मार्ग में सम्मिलित होने से इन्कार किया था; जिसके फलस्वरूप ही उनको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा था। उनकी देवरानी अजबकुंवर ने पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली थी।[1] पुष्टिमार्ग के संत महल में आते जाते थे; उनका विरोध नहीं था, किन्तु मीरां ने चमार भक्त रैदास से दीक्षा ली थी, इसलिए उनका विरोध किया जाता था। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, कि मीरां बाई पुष्टिमार्ग में नहीं थीं, इसलिए पुष्टिमार्ग के संत मीरां बाई से जब मिलते थे, तब मीरांबाई का अपमान करते थे।[2] गुजराती साहित्य के विद्वान् डॉ० मजुलाल मजमुदार ने इस तथ्य का समर्थन किया है।[3] चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मीरां के मन्दिर के पुजारी गोविंद दुबे को गोकुलनाथ द्वारा वापिस बुला लेने का उल्लेख है। मीरां ने अपने वैष्णव पुरोहित रामदास को आचार्य के बदले ठाकोरजी की स्तुति गाने को कहा; तो वह "तेरो मुखड़ो कबहु न देखूंगो।" कहकर उनको छोड़ चला गया था, इसका भी उल्लेख है।

"मीरां भाख्यो हरि चरित, गाओ द्विजराई।
सूनी अति कोपे, इन जाने नहीं वल्लभराई॥"

आचार्य महाप्रभु की सेविका नहीं बनने के कारण कृष्णदास अधिकारी ने उनकी भेंट को अस्वीकार किया था।

मीरां के गुरु का प्रश्न विवादास्पद है। यद्यपि मीरां ने अपने पदों में सन्त रैदास के नाम का उल्लेख किया है, किन्तु ये दोनों समकालीन सिद्ध नहीं होने से इस तथ्य का समर्थन तथा स्वीकार नहीं हुआ।

---

१. 'मीरां—एक अध्ययन', डा० पद्मावती शबनम।
२. हिं० सा० आ० ३, पृ० ५७४।
३. 'मीरांबाई—एक मनन', पृ० ४६।

(५) नाम का आधार :—नरसिंह ने परम्परित ग्रंथ के ज्ञान को आधार नहीं माना, क्योंकि इसमें खींचातानी है, पक्षापक्षी है, किसी ने सही बात नहीं बताई। "ग्रंथ गरबड़ करी, बात न करी खरी, जेहने जे गमे, तेने पूजे।"[1] इसलिए नाम का आधार लेना चाहिये। नरसिंह ने कहा, कि मैं अब मात्र हरिनाम के भरोसे हूँ। "मारे तो आशरो एक हरि नामनो"।[2]

(६) हरिजन प्रेम :—हरिजनों के प्रति नरसिंह में जो समसम्वेदना का भाव है, इसका मूल कबीर की विचारधारा में हो सकता है। नरसिंह हरिजनवास में जाकर रात भर भजन करते थे, जिसके फलस्वरूप उनको जाति बाहर होना पड़ा था।[3]

(७) कर्म तथा मिथ्याचार विरोध :—नरसिंह मेहता ने स्वीकार किया है, कि वे पहले धर्म-कर्म मानते थे, किन्तु जब इसके मर्म का ज्ञान हुआ, तब उनका भ्रम दूर हो गया।

"वर्णना धर्म ने कर्म करवां टल्यां।
मर्म जाण्यो त्यारे भर्म भांग्यो॥"

आचारों की निरर्थकता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा, कि स्नान, सेवा, पूजा करने से क्या हुआ ? दान देने से, केश रखने से, भस्म लगाने से या बाल कटवाने से भी क्या हुआ ? तप, तीर्थ या माला से भी क्या होगा ? तिलक, तुलसी या गंगा-जल से भी क्या होगा ? वेद पढ़ने से, रागरंग जानने से, षट् दर्शन को मानने से या वर्णभेद रखने से भी क्या लाभ होगा ? ये तो सब पेट भरने के प्रपंच हैं, आतम राम को कोई नहीं जानता।[4]

यह प्रपंच ही माया है। जीव तथा शिव के ऐक्य में माया बाधक है। जीव तथा शिव मूल में एक हैं। अपनी इच्छा से अलग हुए हैं। सुवर्ण के विभिन्न घट होने से नाम-रूप बदलता है, किन्तु मूल सुवर्ण में अन्तर नहीं पड़ता। रामकबीर-संप्रदाय तथा सखा-प्रणालिका में ब्रह्म की नाम-रूप अवस्था को इसी अर्थ में स्वीकार किया गया है।

कबीर के अगम्य देश का वर्णन नरसिंह ने कबीर के ही शब्दों में किया है। वहाँ बिना बत्ती, तेल तथा सूत्र के दीप जलता है। वहाँ सच्चिदानन्द की आनन्द-क्रीड़ा होती है। उनको बिना नेत्र देखना है, तथा हरिरस का प्रेम पियाला पीना है।[5]

---

१. वही, पद—२६।
२. 'नरसिंह मेहता कृत काव्य', पृ० ४८३।
३. 'माइल स्टोन इन गुजराती लिटरेचर', पृ० ४७।
४. बृ० का० दो० भा० १, पृ० ३०।
५. 'नरसिंह मेहता नां भजनो' स० सा० व० का० पद—८६।

(२) मीरां :

मीरां अपनी प्रेम-भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। नाभादास ने उनके प्रेम की तुलना गोपियों के प्रेम से की थी। मीरां प्रेम-दीवानी थीं, किन्तु उन्होंने निर्गुण की ज्ञान-गली की यात्रा भी की थी।

"निकसी मैं ज्ञान-गली, ऊंची अटरियां, लाल किवड़ियां, निर्गुण-स्हेज बिछी।"

उनकी वाणी में यौगिक उपासना के भी दर्शन होते हैं। उन्होंने किसी संप्रदाय को स्वीकार नहीं किया, न कोई पन्थ चलाया। उन्होंने कोई शिष्य भी नहीं बनाया। एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

"नाम रहेगो नाम सो, सुनो सयाने लोई।
मीरां सुत जायो नहीं, शिष्य न मूंड्यो कोई॥"

मीरां ने पुष्टि-मार्ग में सम्मिलित होने से इन्कार किया था; जिसके फलस्वरूप ही उनको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा था। उनकी देवरानी अजबकुंवर ने पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली थी।[1] पुष्टिमार्ग के संत महल में आते जाते थे; उनका विरोध नहीं था, किन्तु मीरां ने चमार भक्त रैदास से दीक्षा ली थी, इसलिए उनका विरोध किया जाता था। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, कि मीरां बाई पुष्टिमार्ग में नहीं थीं, इसलिए पुष्टिमार्ग के संत मीरां बाई से जब मिलते थे, तब मीरांबाई का अपमान करते थे।[2] गुजराती साहित्य के विद्वान् डॉ० मंजुलाल मजमुदार ने इस तथ्य का समर्थन किया है।[3] चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मीरां के मन्दिर के पुजारी गोविंद दुबे को गोकुलनाथ द्वारा वापिस बुला लेने का उल्लेख है। मीरां ने अपने वैष्णव पुरोहित रामदास को आचार्य के बदले ठाकोरजी की स्तुति गाने को कहा; तो वह "तेरो मुखड़ो कबहु न देखूंगो।" कहकर उनको छोड़ चला गया था, इसका भी उल्लेख है।

"मीरां भाख्यो हरि चरित, गाओ द्विजराई।
सूनी अति कोपे, इन जाने नहीं वल्लभराई॥"

आचार्य महाप्रभु की सेविका नहीं बनने के कारण कृष्णदास अधिकारी ने उनकी भेंट को अस्वीकार किया था।

मीरां के गुरु का प्रश्न विवादास्पद है। यद्यपि मीरां ने अपने पदों में सन्त रैदास के नाम का उल्लेख किया है, किन्तु ये दोनों समकालीन सिद्ध नहीं होने से इस तथ्य का समर्थन तथा स्वीकार नहीं हुआ।

---

१. 'मीरां—एक अध्ययन', डा० पद्मावती शबनम।

२. हि० सा० आ० ३, पृ० ५७४।

३. 'मीरांबाई—एक मनन', पृ० ४६।

मीरां के गुरु—डॉ० पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल तथा प्रो० तारकनाथ अग्रवाल ने सन्त रैदास को मीरां का गुरु नहीं माना। उनकी धारणा है, कि रैदास की मृत्यु के बाद उनके विचारों से मीरां प्रभावित हुई थीं। एक सम्भावना यह उपस्थित की गई कि कोई अन्य रैदास होगा। नाभाजी की भक्तमाल में एक विट्ठलदास रैदासी के नाम का उल्लेख है। किन्तु मीरां ने विट्ठलदास के नाम का कहीं उल्लेख नहीं किया। समय तथा अन्य परिचय के अभाव में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उनको स्वीकार नहीं किया।[1] श्री शम्भूप्रसाद बहुगुणा ने विट्ठलदास रैदासी का परिचय देते हुए लिखा है कि किसी राणा तथा उनकी कन्या के ये पुरोहित थे। किन्तु उस राणा तथा उनकी कन्या के विषय में कोई परिचय प्राप्त नहीं होता।[2]

श्री वियोगी हरि ने जीव तथा मीरां के मिलन के आधार पर जीव गोस्वामी को मीरां का गुरु ठहराया था। मीरां की वृन्दावन यात्रा ही संदिग्ध है, किन्तु यदि मीरां का जीव गोस्वामी के साथ मिलन स्वीकार कर लिया जाय, तथापि जीव मीरां के गुरु प्रमाणित नहीं किये जा सकते। एक तो जीव तथा रूप गोस्वामी उम्र में मीरां से छोटे हैं, तथा मीरां द्वारा भेजा गया सन्देश उनके गुरु मीरां के होने की सूचना देता है।[3]

मीरां ने अपनी वाणी में अनेक स्थान पर रोहीदास के नाम का तथा उनके मिलन का उल्लेख किया है। "गुरु रैदास मिले मोही पूरे"। या "काशी नग्र के चौक में, गुरु मिल्या रोहीदास।" जैसे अनेक उल्लेख हैं।

गुजरात के विद्वान् श्री के० का० शास्त्री ने लिखा है, कि मीरां किसी भी संप्रदाय से प्रभावित हुए बिना भक्ति मार्ग की अनुयायी थी।[4] श्री कनैयालाल मुन्शी ने मीरां पर संत रैदास के प्रभाव को स्वीकार किया है। श्री अनन्तराय रावल ने मीरां पर जीव एवं रूप सनातन के प्रभाव को मानते हुए भी गुरु के रूप में रैदास का नाम दिया है, तथा उनकी वाणी पर रैदास की वाणी के प्रभाव के दृष्टांत दिये हैं।[5]

मीराँ का समय :—पं० गौरीशंकर ओझा ने मीरां का जन्म सं० १५७५ तथा निधन सं० १६०२ में माना है।[6] डा० गेटा ने अपने नये अनुसंधान में एक नये तथ्य की स्थापना की है; सं० १५९३ में द्वारका आने के पश्चात् सं० १६०४ में मीरां का

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० २८२।
२. 'मीरां स्मृति ग्रन्थ', बंगीय हिन्दी परिषद्।
३. मीरां—एक अध्ययन— डा० पद्मावती शबनम।
४. 'कवि-चरित', पृ० [illegible]।
५. 'गुजराती साहित्य', पृ० [illegible]।
६. 'राजस्थान का इतिहास', पृ० [illegible]।

निधन नहीं हुआ था। सं० १६०७ में मीरां वांधोगढ़ में थीं, तथा सं० १६२० में वहीं उनका निधन हुआ था।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी मीरां का निधन सं० १६२० में माना था। डा० रामकुमार वर्मा ने मीरां का जन्म सं० १५५५ में तथा निधन सं० १६३० में माना है।[2] श्री वेणी माधव ने मीरां का विवाह सं० १५७२ में होने का उल्लेख किया था, किन्तु पं० गौरीशंकर ओझा, मुन्शी देवी प्रसाद, श्री हरविलास शारदा आदि विद्वान् स० १५७३ को उनके विवाह का वर्ष मानते हैं। ठाकुर गोपालसिंह राठौर ने लिखा है, कि विरमदेव ने वि० सं० १५७३ में अपने कनिष्ठ भ्राता रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई का ब्याह किया था।[3] यदि विवाह के समय मीरां की उम्र सोलह या अठारह वर्ष की हो, तो उनका जन्म का वर्ष सं० १५५५ संभव जान पड़ता है। जो लोग सं० १५७३ को मीरां का जन्म वर्ष मानते हैं, उनके विषय में डॉ० प्रभात ने अपने प्रबन्ध में निर्देश किया है कि उन्होंने मीरां के विवाह के वर्ष को ही संभवतः उनके जन्म का वर्ष मान लिया है।[4]

कर्नल टोड ने मीरां को राव दूदा की पुत्री तथा राणाकुंभा की पत्नी माना था। राणाकुंभा द्वारा निर्मित वराह एवं कुंभस्याम के मन्दिर "मीरांबाई के मन्दिर" के नाम से प्रसिद्ध है, अतः टोड ने कुंभा के साथ मीरां का नाम जोड़ दिया।[5] मेकालिफ, विल्सन तथा कृष्णलाल झवेरी जैसे विद्वान् तथा एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने भी इस मत का स्वीकार कर लिया था। सर्वप्रथम स्ट्रेटन ने "मेवाड़ एन्ड इट्स फेमिलिज" में इसका भण्डाफोड़ किया। तदनंतर मुन्शी देवी प्रसाद ने टोड के मत का खंडन कर मीरा का रावदूदा के पुत्र रत्नसिंह की बेटी तथा कुंभा के पुत्र राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की पत्नी के रूप में प्रमाणित किया था।

मीरां पर निर्गुण-भक्ति का प्रभाव :—संत रैदास अपने अन्तिम दिनों में मेवाड़ में थे। कुंभस्याम के चौराहे पर "संत रविदास की छतरी" है। रैदास की मृत्यु सं० १५७६ तथा १५८४ के बीच हुई।[6] मीरां के पति भोजराज का निधन सं० १५७५ तथा १५८० के बीच किसी वर्ष हुआ था। विधवा होने के पश्चात् किसी वर्ष मीरां ने रैदास से दीक्षा ले ली हो, तो इसमें कुछ असंभव नहीं जान पड़ता।

मीरां के "जो तुम तोड़ो पिया, मैं नहीं तोड़ूं रे।" तथा "तुम भये चन्दा, मैं भई चकोरी।" वाले पदों पर रैदास के प्रसिद्ध पद "प्रभुजी! तुम चन्दन हम पानी!" पद के प्रभाव का उल्लेख श्री अनन्तराय रावल ने किया है।

---

१. गुजरात संशोधन मण्डल—त्रैमासिक, अप्रैल, १९५६।
२. हिं० सा० आ० इ०, पृ० ५८१।
३. 'उदयपुर राज्य का इतिहास', पृ० ३८४।
४. 'मीराबाई', पृ० ११५।
५. 'राजपूताने का इतिहास', पृ० ६७०।
६. 'सन्त रविदास और उनका काव्य', पृ० ८४।

प्रो० तारकनाथ अग्रवाल ने तो मीरां की गणना ही संतमत की परिधि में कर ली है।[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने मीरां के साथ रैदास के भावसाम्य को देखते हुए भी सन्त परम्परा के प्रमुख प्रवर्तक कबीर द्वारा मीरां को अधिक प्रभावित माना है।[2] उन्होंने मीरां के "नैनां वणज" वाले पद पर कबीर के "नैना अन्दर आवतु" का तथा "रङ्गमहल" पर कबीर के "काया महल" के भावसाम्य का उल्लेख किया है।

गुजरात के विद्वान् डा० मजमुदार ने मीरां की निर्गुण भावना को कबीर की निर्गुण-भावना से मिलती हुई माना है।[3]

सूरत के प्रसिद्ध सन्त निर्वाण साहब से मीरां का मिलन हुआ था। इस प्रसंग पर निर्वाण साहब ने तथा मीरां ने पद लिखे हैं। मीरां का एतद्विषयक एक पद निम्नांकित है।

"अगना आये साहब निर्वाण ।। टेक ।।
ऐसे सन्तन के दर्शन पैहो, मिटे आवागमन ।।
सन्त चरण कमल बलि जैहो, सद्गुरु कृपानिधान ।।
सन्त साहब मीरां को पेख्या, नाम "साहिब-निर्वाण" ।।"[4]

इससे प्रतीत होता है, कि ऐसे निर्गुण-पन्थी सन्तों के सत्संग ने मीरां पर निर्गुण भक्ति का प्रभाव पड़ा था। मीरां की वाणी पर कबीर-वाणी के प्रभाव को देखने पर लगता है, बांधोगढ़ के निवास में कबीरवाणी के अध्ययन का अवसर उनको मिला होगा।

राम-नाम :—गिरिधर नागर की दासी मीरां ने अविनाशी राम की आराधना भी की है। मीरां ने अनेक पदों में "राम" का नाम लिया है। रामरमकडुं [illegible]-अब तो मेरा रामनाम-मीरां दासी रामकी-मेरे नयन बसे रघुबीर-राममन्दिर में मीरां नाचें तथा मीरां दासी रामभरोसे-जैसे पदों में रामनाम की भक्ति के दर्शन होते हैं। राम से अधिक महत्व उनके नाम को दिया गया है। नाम का माहात्म्य उनको गुरु द्वारा सिखाया गया है। उन्होंने नाम का भरपूर प्याला पिया है।

"पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय।"

मीरां मूल सगुण भक्त थीं, किसी गुरु या सन्त के प्रभाव से निर्गुण-भक्ति की ओर झुक गईं। उन्होंने अपनी वाणी में इसका उल्लेख करते हुए कहा, कि मैं

---

१. 'मीरां स्मृति ग्रन्थ' बंगीय हिन्दी परिषद्, पृ० २५० ।
२. 'मीरांबाई की पदावली' की भूमिका, पृ० [illegible] ।
३. मीरांबाई—[illegible], पृ० ८५ ।
४. 'सन्त निर्वाण साहब'—श्री [illegible], पृ० [illegible] ।

मन्दिर में पूजा करने जा रही थी, किन्तु मार्ग में एक सन्त मिल गये। उन्होंने घर-घर अलख की धुन लगाई थी। उनके प्रभाव से मैंने साड़ी को चीरकर कुरता बनाया तथा अंग पर भभूत चढ़ा ली।[1]

आतम राम :—मीरां ने कहा है, "हम बिच तुम बिच अन्तर नाहीं।" परब्रह्म से उनका पति-पत्नी का सम्बन्ध है, किन्तु उनके पति उनके भीतर बसते हैं। जिनका पति विदेश बसते हैं, वे पत्र लिखती हैं, मैं तो पति को छोड़ कहीं आती-जाती नहीं हूँ।

"जाके प्रिय परदेश बसत हैं, लिखि-लिखि भेजें पाती।
मेरे प्रिय मो मांही बसत हैं, कहूँ न आती जाती।।"[2]

मीरां अपने साहब से दया की भीख माँगती हैं, तो कभी जनम-जनम की दासी बन "साहब" के गुण गाती हैं। जिस भेष से साहब प्रसन्न होते हैं, वही भेष धारण करती हैं।

"जिन भेषां म्हारो साहब रीझे, सोही भेष धरूँगी।"[3]

मीरां कबीर के अगम-देश में चलना चाहती हैं, क्योंकि वहाँ प्रेम के हौज में हंस केलि करते हैं। ज्ञान की युक्ति है तथा साधु का संग है। मीरां की सत् की नाव है, तथा खेवैया सद्गुरु है, वह भवसागर तैर जायगी। सत् की नाव, खेवैया सद्गुरु, भवसागर तर आयो।"

धनराज

गुजराती साहित्य में एक स्वतंत्र पदकार के रूप में धनराज पड्या के पदों का विवरण श्री० के० का० शास्त्री ने दिया है। उनके पदों की एक हस्तलिखित प्रति (नं० ३४६) गुजरात विद्यासभा में थी, किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं होती। शास्त्रीजी ने भाषा के आधार पर इसे स० १६५० से पूर्व की होने का मत दिया है।[4]

उनके विषय में कोई भी वृत्त अब तक प्राप्त नहीं हुआ था। धनराज पंड्या के जिन पदों की चर्चा शास्त्रीजी ने की है, ये सारे पद रामकबीर-संप्रदाय के भजन संग्रहों में संगृहीत हैं। इसके रचयिता धनराज को ये लोग "अध्यारुजी" कहते हैं। अध्यारुजी के २८ कीर्तन उन लोगों के लिए देव-वाणी समान है। भूत-प्रेत, रोग, या साँप-विच्छू के जहर को निकालने के लिए अध्यारु के कीर्तनों का पाठ किया जाता है।

---

१. 'मीरांबाई ना भजनो', पृ० ३२।
२. 'मीरांबाई की पदावली', पृ० १०८।
३. 'मीरांबाई की पदावली', पृ० १२३।
४. 'कवि चरित', पृ० ४०७।

धनराज ने अपने नाम के साथ "पंडित" लिखा है। चतुरवदन रास के अन्त में उन्होंने लिखा है।

"वैष्णव भक्ति मुक्तिफल काजि, रास कीधुं पण्डित धनराजि ॥"[१]

"उदा धर्म पंचरत्न माला" ग्रंथ में "रास कर्यो पंडे धनराज" लिखा है। इससे लगता है, कि "पंडित" का "पंड्या" हुआ है, तथा मूल नाम "धनराज अध्यारु" है। "पंडित" शब्द उपाधि का सूचक है।

मुस्लिम शासन में धनराज किसी उच्च अधिकारी के पद पर थे। कबीर के शिष्य पद्मनाभ के प्रेम में अधिकार का उन्होंने त्याग किया।[२] पद का त्याग कर वे पद्मनाभ के साथ उनकी पद्मवाड़ी में निवास करने चले गये। दोनों ने मिलकर वाड़ी की योजना की थी, तथा सं० १४७० में वाड़ी की स्थापना की थी। वे पद्मनाभ से ज्ञान-वार्ता भी करते थे। मित्र होने पर भी अध्यारु जी पद्मनाभ को अपना गुरु तथा परमात्मा का स्वरूप मानते थे।

"पद्मनाभ परब्रह्म तू, अने तू छे, गुरवो राय।"[३]

पद्मनाभ ने सात दिन का काम एक दिन में किया था तथा पाटण के सूबा का रोग मिटा दिया था, इससे धनराज प्रभावित हुए थे, किन्तु एक स्थान पर उन्होंने अपने जीर्णरोग को मिटाने का उल्लेख किया है।

"सन्त संगते सहु मल्युं, गयो जन्म-जीरण-रोग।"[४]

जीवणजी के शिष्य कृष्णदास के पुत्र श्यामदास ने "ज्ञानमहिमा" में पद्मनाभ द्वारा धनराज को दीक्षा देने के प्रसंग का उल्लेख किया है, तथा इस अवसर पर कबीर की उपस्थिति तथा आशीर्वाद का विवरण दिया है।

"तहाँ दास कबीर भये सहाई, सन्त संगत हरिभक्ति दृढ़ाई।
सतगुरु दास कबीर परमाना, रघुपति सत्साहेब करो जाना।
कृपा करी माथे कर दीन्हों, निज भगत अपनो कर लीनो॥"[५]

जीवणजी ने पद्मनाभ को कृष्ण का तथा धनराज को सुदामा का अवतार बताते हुए लिखा, कि दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। स्वामी-सेवक ने मिलकर भक्तों के काम किये थे।[६]

---

१. 'कवि चरित', पृ० ४०६।
२. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० ४४१।
३. वही, कीर्तन १३, पृ० ३६।
४. उ० ध० प० र० मा० पदम घोल—६।
५. वही, पृ० २३६।
६. उ० ध० पं० र० मा० पृ०, १ ० ।

अपने मित्र तथा कबीर के शिष्य पद्मनाभ का परिचय धनराज ने अपने पद "पदम धोल" में" दिया है कि पाटण में "पद्म-प्रजापति" के नाम से वे प्रसिद्ध थे। पिता करण तथा लक्ष्मणा माता के पुत्र तथा पातालदे के वे पति थे।

धनराज ने २८ पद लिखे हैं, ये वेद, पुराण तथा शास्त्रों के साररूप माने जाते हैं, क्योंकि चार वेद, षट् शास्त्र तथा अठारह पुराण मिलकर २८ का अंक ही आता है। उन पदों को संप्रदाय वाले कीर्तन कहते हैं। इनके नाम निम्न प्रकार हैं।

"गणपति नो रास, विनति, ब्रह्महली, हेली, साहेली, घोडलो, वाणी, आरती, बीडुं, कडवुं, वडी कारज, लोढी कारज, हर्ष मोवन, शोक मोवन, वेद पुराण, सारङ्गी, पृथ्वी धोल, वडुं धोल, पदम धोल, वाडीनो रास, लघु रास, चतुरवदन नो रास, अहर्निशा नोरास, सन्त सोहागो, पसावलो, उमावलो, खांडणां तथा हिंडोला।"

धनराज की निराकार, निरंजन ब्रह्म की स्तुति के आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने उनको वेदांत मतावलंबी माना था,[1] किन्तु उनके ऊपर कबीर-विचारधारा का सीधा प्रभाव है।

धनराज ने एक "नाम-चरित" नाम का ग्रंथ भी लिखा है। इसमें पीछे से किसी धर्मदासी साधु ने कुछ अंश जोड़ दिये हों, ऐसा लगता है।[2]

उनकी वाणी वैराग्य प्रधान है। शास्त्रीजी ने उनके विषय में लिखा है, कि "आत्मज्ञान खेलता हुआ उसकी वाणी में उतरा है, तथापि गांभीर्य है। कुछ अंश में गुजराती कवियों में वह नया रूप देता है।"

धनराज भक्त हैं। उनमें स्वाभाविक नम्रता है। अपने लिए उन्होंने "अणछतो" भक्त शब्द का प्रयोग किया है। स्वयं पण्डित होने पर भी उन्होंने लिखा है, कि मैं भाषा या छन्द नहीं जानता, एक मेरे स्वामी को जानता हूँ।

"भाषा न जाणूं ने छंद न जाणूं, एक जाणूं स्वामी सांडणहार है।
'अणछतो" भगत विनति करे, स्वामी। आत्मा फेडीने अलगो शुँ करे।।"[3]

ये अवतार को नहीं मानते, क्योंकि ये स्वयं मूलपुरुष नहीं हैं। आदि पुरुष उन सब के ऊपर है। वे त्रिदेव के भी पिता हैं।

"रूप विहोणो मांडे व्याप, आदि ब्रह्मा-शंकर नो बाप।"[4]

उनकी आराधना "नाम" की साधना है। जिसने "नाम" की महिमा जान ली, उनको परमपद निश्चित रूप से प्राप्त होता है। जो ब्रह्माण्ड बनाता या तोड़ता है,

---

१. 'कवि चरित', पृ० ४१०।
२. यह ग्रंथ वडनगर में श्री वल्लभराम मेहता के पास है।
३. उ० ध०.पं० र० मा० कीर्तन १५, पृ० ४७।
४. वही, कीर्तन २३, पृ० ८४।

उनको छोटेसे डिब्बे में या सिंहासन पर कैसे रखें ? जिसके मुख में चौदह ब्रह्मांड थे, उनके माथे पर पुष्प कैसे चढ़ाये जा सकें ?[१]

परमात्मा अजर, अमर तथा अकलंक है, इसलिए कर्म अनावश्यक है। परब्रह्म मूर्ति में नहीं है, तब पूजादि के दूसरे प्रपंच नहीं करने चाहिये।[२]

संसार में एक ही ब्रह्म है। जीव इससे जुदा पड़ता है, किन्तु वह ब्रह्म का ही अंश है। वस्तुतः वही ब्रह्म हैं। ब्रह्म बोलता है और ब्रह्म ही सुनता है। ब्रह्म देखता हैं, तथा ब्रह्म ही जपता है।

भालण

पाटण में धीवटा लता की चोपदारी खड़की में भालण का घर था। वहाँ भालण खड़की भी है।[3] स्व० श्री नारायण भारती ने वहाँ से मिले एक पत्र के आधार पर उनके पिता का नाम दवे मंगलजी दयालजी बताया है; किन्तु "मामकी-आख्यान" में उन्होंने "त्रवाड़ी" लिखा है। वह निशंक ब्राह्मण था, किन्तु उसमें श्रीमाली, नागर, औदिच्य या चतुर्वेदी मोढ था, यह विवादास्पद है। दशमस्कंध की एक ह० लि० प्रति में "मो..........................ब्राह्मण भालण कृत" लिखा है, इसमें खाली अक्षर "ढ" होने की सम्भावना के आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने उनको मोढ ब्राह्मण माना है, जो सर्वाधिक स्वीकृत लगता है।

उनके पुत्र उद्धव तथा विश्नुदास ने रामायण के कुछ अंश लिखे हैं। भालण की रचनाएँ—कादंबरी, रामविरह, राम बाल चरित; ध्रुवाख्यान, जलंधराख्यान, नलाख्यान, कृष्ण बाल चरित, दशमस्कंध (अप्रकट) कादंबरी भा० २, मृगी आख्यान, सीता-विवाह, कृष्ण विष्टि।[४]

श्री नारायण भारती को भालण की एक प्रतिमा मिली थी, जिसके ऊपर "पुरुषोत्तम महाराज पाटणना" लिखा हुआ था। स्व० श्री रामलाल मोदी का मत है, कि भालण का उत्तरावस्था का नाम पुरुषोत्तम था। संभवतः दीक्षा के पश्चात् उन्होंने यह नाम रखा था। एक ऐसी धारणा है, कि भीम ने "हरिलीला" में जिसे अज्ञात ब्राह्मण गुरु तथा "प्रबोध-प्रकाश" में जिस पुरुषोत्तम द्विज के नाम का उल्लेख किया है, वह भालण है।[५]

---

१. वही, कीर्तन—१६, पृ० ४८।
२. वही कीर्तन—१४, पृ० ४५।
३. 'कवि चरित' भा० १—२, पृ० १५४।
४. 'भालण, उद्धव-भीम,' पृ० ६।
५. 'कवि चरित', पृ० ८७।

समय :—उनके समय के विषय में मतैक्य नहीं है। श्री कृष्णलाल झवेरी ने भालण का समय सं० १४६५ से १५६५ दिया है। श्री कनैयालाल मुन्शी ने सं० १४८२ से १५५६ तथा श्री विजयराय वैद्य ने सं० १४६४ स १५१४ तक माना है। श्री रामलाल मोदी ने सं० १४६५ से १५४६ तथा श्री जेठालाल त्रिवेदी ने सं० १५६० से १६०२ तक जीवित बताया है।[1] नल.ख्यान की एक ह० लि० प्रति के आधार पर के० का० शास्त्री उनका अस्तित्व सं० १५४५ में स्वीकार करते हैं।

भालण का गुरु :—भालण के गुरु के विषय में भी मतैक्य नहीं है। "मामकी-आख्यान" की पुष्पिका के आधार पर श्री रामलाल मोदी ने श्री ब्रह्म प्रियानन्द को उनका धर्मगुरु माना है।[2] उनके ध्रुवाख्यान में श्री पात जी के नाम का उल्लेख है।

"श्री पातजी नी कृपा करिनि, कथा कांई कहेवाय।
कहे कवि हुँ गुरु तणा, अहोनिश पूजुं पाय॥"

इसके आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने श्रीपात को भालण का गुरु माना है। श्री नारायण भारती ने भालण के घर की गद्दी उनके गुरु परमानन्द की होने का उल्लेख किया है, तो अन्य स्थान पर उनके गुरु के रूप में "सदानन्द" का नाम दिया है, किन्तु पुरुषोत्तम की जो जकरी प्राप्त हुई थी, उसकी प्रथम पंक्ति में सदानन्द का नाम है, तो दूसरी में "ब्रह्मप्रिया" का नाम है।

"मुग्ध तन्वीत सदानन्द सागर, आनन्द होय दृष्ट समाने।
शिव भैरव के नाम से पूरन, ब्रह्मप्रिया नाम को स्वास समाने॥"

भालण ने ब्रह्म तत्व की स्तुति में सात श्लोक लिखे हैं, स्व० श्री भारती का मत है, कि ये गुरु परमानन्द की स्तुति में लिखे गये हैं। श्री शास्त्रीजी ने स्व० भारती की स्थापनाओं को विश्वस्त नहीं माना।[3] श्री शास्त्रीजी ने भालण का गुरु श्रीपात् है या श्रीपति है, यह प्रश्न उपस्थित किया है। यदि श्रीपति है, तो वह श्रीपति कौन है? जूनागढ़ का कवि या विश्नु भगवान्। भालण ने प्रथम पंक्ति में विश्नु की तथा दूसरी में गुरु की वन्दना की हो यह असंभव भी नहीं होगा। इस प्रकार ब्रह्म-प्रियानन्द तथा सदानन्द आदि के उल्लेख भी ब्रह्म के सूचक हो सकते हैं। ये ब्रह्मानन्द जैसे आनन्दवाची उल्लेख भी हो सकते हैं। इस प्रकार अखा ने भी अपनी वाणी में ब्रह्मानन्द, पूर्णानन्द, प्रेमानन्द तथा अल्पानन्द जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

भालण पहले देवी-भक्त (शाक्त) था, पीछे से रामानन्दी हुआ। श्री मुन्शी ने इसका समर्थन किया, किन्तु श्री राम लाल मोदी ने बताया, कि "रामानन्दी होने का कोई सबल प्रमाण प्राप्त नहीं होता।"[4]

---

१. 'भालण के पद', पृ० १२।
२. 'बुद्धि प्रकाश' फरवरी, १६२७।
३. भालण—एक अध्ययन, पृ० ५५।
४. भालण—उद्धव-भीम, पृ० १३।

एक अन्य संभावना–गुरु रघुनाथदास

१. भालण ने स्थान-स्थान पर "भालण प्रभु रघुनाथ" का प्रयोग किया है। साधारणतः रघुनाथ को राम के अर्थ में लिया गया है, किन्तु पाटण में पद्मनाभ के शिष्य नीलकंठदास का एक शिष्य रघुनाथ भालण का प्रायः समकालीन था। पाटण की पदमवाड़ी में उनके नाम का "द्वारा" भी है।

२. ये रघुनाथ भी भालण की ही जाति (मोढ़ त्रिवेदी ब्राह्मण) का था।

३. श्री जेठालाल त्रिवेदी ने भालण का समय सं० १५६० के अनन्तर माना है। सम्भव है यह उनकी दीक्षा का वर्ष हो।

४. भालण के पदों में "रघुनाथ" शब्द का प्रयोग इष्टदेव तथा गुरु के अर्थ में सम्भव हो सकता है। साधारणतः "राम" नाम का प्रयोग सामान्य है, "रघुनाथ" शब्द का प्रयोग क्वचित् होता है; भालण में यह सर्वत्र हुआ है।

५. पाटण में कबीर के शिष्य पद्मनाभ का स्थान है; उनके प्रभाव से मुक्त रहना भालण जैसे कवि के लिए सम्भव नहीं लगता।

६. पाटण में रघुनाथ के नाम का महोल्ला "रघुनाथनो पाड़ो" है; तथा इसमें उनकी जाति के मोढ़ त्रिवेदी ब्राह्मण ही निवास करते हैं।[1]

७. रघुनाथ रामकबीर परम्परा के संत थे। रामकबीर सम्प्रदाय के भजनसंग्रहों में भालण के पद संगृहीत हैं।

८. भालण के संन्यास लेने का उल्लेख संदिग्ध है।

९. श्री कांटावाला ने भालण द्वारा जीवन्त-समाधि लेने का उल्लेख किया है। यह समाधि हरिहर महादेव के पास है।[2] इस प्रकार जीवन्त-समाधि लेने की परम्परा रामकबीर-सम्प्रदाय के संतों में थी। रघुनाथ रामकबीर सम्प्रदाय के संत थे।

१०. भालण के एक पद में कबीर के सत्यनगर एवं सत्यलोक का उल्लेख है। भालण के प्रभु रघुनाथ की वाड़ी में उन्होंने मुकाम किया था।[3] यह वाड़ी पाटण की "पदमवाड़ी" हो सकती है।

कबीर मत का प्रभाव— भालण ने राम तथा कृष्ण के चरित के प्रसंग लिखे हैं, किन्तु उनका राम परब्रह्म का स्वरूप है। राम तथा कृष्ण में भेद नहीं है। राम की आराधना में लिखा है: "जय पुरुष [illegible] सचराचर सकल ब्रह्मांड।"

---

१. 'भालण, उद्धव भीम', पृ० २३।

२. भालण कृत 'दशमस्कंध', पृ० १६०।

३. 'सत्यनगर सतलोक पे, कलिनो न पहोंचो हाम।
भालण प्रभु रघुनाथना, वागमां कीधो मुकाम॥'

भालण के जीवन में चार चमत्कार प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक दातून की चीर से वटवृक्ष उगाने का चमत्कार है। गुजरात में कबीरवट के विषय में यही जनश्रुति है, कि वह कबीर की दातून से प्रस्फुटित हुआ था। इस जनश्रुति की परम्परा में ऊपर की कथा जोड़ दी गई हो ऐसा लगता है।

भालण ने निरंजन का उल्लेख किया है, तथा ससार के ३२ लक्षण के साथ निरंजन के ३३ लक्षण बताये हैं। इस प्रकार संसार को १४ विद्याओं पर पंद्रहवीं विद्या "सोऽहम्" का ज्ञान कहा हैं।[१] आतम-तत्व का सिद्धान्त कबीर मत का है।

ध्रुवाख्यान के एक पद में पिंड-ब्रह्मांड के ऐक्य का उपदेश मुनि द्वारा ध्रुव को दिया गया है। इसके अंत में लिखा है।

"उदक मांही ज्यम चन्द्रमा, नानाविध दिसे रूप।
त्यम पिंड-ब्रह्मांडि व्यापी रह्यो, सकल भूतल भूप ॥"[२]

राम अविनाशी अगम्य ब्रह्म हैं, उनको पहचानना चाहिये। पल में वह ब्रह्मांड को बना दे या तोड़ भी सकता है। वेद उनको नहीं पा सकता।

पलमां ब्रह्मांड मांगे, सरजे, पार न पामे वेद।
अगमनी तारी गम नहीं, तो कोण कठाये भेद ॥"[३]

मांडण बंधारो

श्री के० का० शास्त्री ने उनको सं० १५७४ तक जीवित माना है।[४] श्री विजयराय वैद्य ने सं० १५३६ में उनको विद्यमान माना था।[५] सं० १५७५ को यदि उनका अंतिम वर्ष समझा जाय तो सं० १५३६ को उनका जन्म संवत् नहीं, उपस्थिति-काल समझना चाहिये। तदनुसार उनके जन्म का वर्ष सं० १५०० के आसपास होना चाहिये; किन्तु श्री मणिलाल व्यास ने "प्रबोध बत्तीसी" का रचनाकाल सं० १६०० माना है। यदि यह सत्य हो, तो सं० १५३६ उनका जन्म संवत् संभव होता है। डॉ० रामकुमार गुप्त ने सं० १५३६ को उनका जन्म संवत् माना है;[६] यह उचित लगता है।

अंतःसाक्ष्य के आधार पर उनके पिता का नाम हरि तथा माता का नाम मेघू ज्ञात होता है। रुग्मांगद कथा के प्रारम्भ में उन्होंने अपने को जोशी मादन का शिष्य कहा है।

---

१. भालण अष्टक की पुष्पिका, भा० उ० भी०, पृ० ४।

२. भालण उद्धव-भीम, पृ० २७।

३. वही, पृ० ६९।

४, 'कवि चरित' भा० १-२, पृ० ७९।

५. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १००।

६. गुजराती साहित्य की रूपरेखा, पृ० ५३।

मांडण ने परम्परानुसार प्रबोध बत्तीसी, रामायण, रुक्मांगद कथा, सत्यभामा न रुपणु, पांडवविष्टि आदि ग्रंथ लिखे थे। 'प्रबोध बत्तीसी' में बीस पदों की एक ऐसी बत्तीस बीसियां हैं। मांडण कबीर तथा उनके शिष्य ज्ञानीजी तथा पद्मनाभ का समसामयिक है। उनकी वाणी पर कबीरमत का प्रभाव होना स्वाभाविक है। अखा की वाणी पर जैसा मांडण की वाणी का प्रभाव है, वैसा ही मांडण की वाणी पर ज्ञानीजी की वाणी का प्रभाव है। मांडण का "प्रबोध-बत्तीसी" ज्ञानीजी की "ज्ञान बत्तीसी" की परम्परा में लिखी प्रतीत होती है। दोनों में भाव, भाषा तथा विषय का ऐक्य है। ज्ञानीजी की कुछ पंक्तियां यथारूप मांडण ने ले ली हैं।

ज्ञानी—"जदा सोई जींदगी जाने ॥१६॥"
मांडण—"जीते जींदगी सोई जंदा।"
ज्ञानी—"हिन्दू सोई जपे हरिनाम ॥१३॥"
मांडण—"हिन्दू सोई धर्मकु जाने।"
ज्ञानी—"हक चले सो मुसलमाना ॥१५॥"[1]
मांडण—"चले हक सो मुसलमाना।"[2]

कबीरमत का प्रभाव—मांडण की विचारधारा पर कबीरमत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी वाणी में कबीरमत के निम्नांकित तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। राम की भक्ति, निर्गुण-निरंजन-ब्रह्म की उपासना, अभिमान त्याग, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावना, नामस्मरण, आचार-विरोध, पाखंड-विरोध तथा मूर्ति-विरोध। तदुपरांत बंदगी, साहब, रोजा, जंदा जैसे शब्दों का प्रयोग कबीरवाणी की परम्परा में प्रयुक्त हों, ऐसा लगता है।

मांडण ने हिन्दी में जकड़ियाँ लिखी हैं, जिसमें उन्होंने धर्म के नाम एवं प्रपंच पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। कर्मकांड तथा मिथ्याचार का विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि यदि तूने निरंजन को जानकर प्रेम न किया, तो एकादशी या रोजा रखना व्यर्थ है।

"दरद बिराना सो नहीं जाना, पढ़ा पुराना क्या होआ।
ले तसबी नहीं खोजा मनकु, बसे निरंजन मन दोआ।
कैसे नाह्यो, खायो बिन धंने, नर तार उठे बिन गोजा।
कह मांडण सुन दोस्त पियार, क्या एकादशी, क्या रोजा?"[3]

---

१. विक्रम तारण संग्रह, पृ० १८८।
२. 'अमरवाणी', पृ० २४३।
३. 'भवाई संग्रह', (पृ० ५४) हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १०२।

प्रबोध बत्तीसी की बीसियाँ कबीर वाणी जैसे अंगों में विभक्त हैं; भक्ति बीशी, माया बीशी, गृहस्थाश्रम बीशी, दान बीशी, पाखंड बीशी, हास्य बीशी इत्यादि।

मांडण ने षट्-दर्शन को पर्द-पति की उपमा दी। उन्होंने कहा कि पति तो एक ही होना चाहिए। बाह्याचारों का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा कि मन में मलीनता का वास है, और हम ऊपर से शरीर को धोते हैं; "मांहि मल, उपरि मज्जन।"

तीर्थ, व्रत, मूर्तिपूजा, कथा, पोथी, पुराण, आचार्य, जप-तप, ग्रह, भूत-प्रेत, वहम तथा ऊँच-नीच भेदभाव पर अखा ने आगे जो प्रहार किये हैं, मांडण उन सबके ऊपर अधिक तेज प्रहार कर चुके हैं।

"तीरथ, तप, व्रत, शवी चुकव्या, अछता देव, करि नई स्तव्या।"[1]

ऊपर की पंक्ति में "अछता" शब्द आता है, इसका मूल उनके प्रायः समकालीन धनराज के पदों में देखा जा सकता है।

गुरु की महत्ता गाते हुए मांडण ने कहा कि स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल में एक सद्गुरु मात्र है, अन्य सब व्यर्थ हैं। मांडण सम्प्रदायों के महंत, मन्दिरों के पुजारी तथा दंभी गुरुओं से बाज आ गये थे। ऐसे ढोंगियों की जमात को उन्होंने मछली-चिंतन करने वाले बगुलों की टोली की उपमा दी है।

"खोटा यति नाटोलां मिल्यां, जिम बहु बगला ध्यानी मिल्या।"

झूठी पंडिताई का विरोध करते हुए उन्होंने कहा, कि ये ग्रन्थ काने घड़े जैसे हैं। पानी रूपी ज्ञान इसमें नहीं रह सकता। इन पण्डितों की वाणी बुद्धि का मात्र वाक्-विलास है। ब्रह्मातीत गीत वे नहीं लिख सकते। यह तो व्यर्थ की बकवास है[2]

मांडण की वाणी पर कबीर वाणी का कैसा प्रभाव है, उन दोनों की कुछ पंक्तियों को मिलाने से दृष्टिगत होता है। मूर्तिपूजा के विरोध में जो तर्क कबीर ने दिया, वही तर्क मांडण ने भी अपनी वाणी में दिया है।

कबीर—"पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।"
मांडण—"जू प्रतिमा पर देवत जाण, पूजूँ गिरि, गिरिगण पाषाण।"

दंभी साधुओं में कोई बाल बढ़ाता है, कोई समूल कटवाता है। उनके विरोध में दोनों ने समान भाव व्यक्त किया है।

कबीर -"केशन कहा बिगारिया, जो मूँड़े शत बार।"
मांडण—"के सिर काढई बाल समूल, एकै जटा वधारई स्थूल।"

---

१. 'अखो—एक अध्ययन', पृ० ९१।
२. 'मति उपाय, बुद्धि प्रकाश, बुद्धि तणु ए वाक् विलास।
ब्रह्मातीत गीत किम लहई, मांडण नाम 'लवारी' कहई॥"

हिन्दू तथा मुसलमानों में अपनी जाति का मिथ्याभिमान है। यह झूठा है, क्योंकि दोनों में से कोई भी जाति किसी विशेष अधिकार के साथ पैदा नहीं हुई। इस तथ्य की अभिव्यक्ति में मांडण ने कबीर वाणी का अनुसरण ही किया है।

कबीर—"जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर सुन्नत क्यों न कराया ?
जो तू बामन बामनी जाया, और मारग क्यों नहीं आया ?"

मांडण—"वे उपवित पेटि नव जण्यां, तूरक म सूनति साथि जण्यां।
शिरे नौ लूंची श्रावक नीसरा, फाटेकान न योगी गया ॥"

भीम—गुजराती साहित्य में तीन भीम हुए हैं। एक "सदयवत्स चरित" (सं० १४६६) का कर्ता, दूसरा 'प्रबोध प्रकाश' का कर्ता। एक पुष्टिमार्गी भीम सत्रवीं शताब्दी में हुए थे। नरसिंह मेहता के "हार सभे" के पदों में जिनकी चर्चा हुई थी, वे 'प्रबोध प्रकाश' के रचयिता भीम ही थे, ऐसा श्री के० का० शास्त्री का मत है।[1] स्व० श्री रामलाल मोदी ने हारमाला वाले भीम को अंधा तथा प्रबोध प्रकाश वाले भीम को नग्न बताकर दोनों की भिन्नता दिखाने का प्रयास किया है, किन्तु उन्होंने अन्य कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया।

हमारे अभिप्रेत भीम हारमाला वाले भीम हैं। ये निर्गुण राम के भक्त थे। सम्भव है, ये भी पहले कृष्णभक्त रहे हों, तथा नरसिंह, भालण तथा मीरां के जीवन की उत्तरावस्था में जो परिवर्तन आया था, ऐसा परिवर्तन उनके जीवन में भी आया हो।

उन्होंने सं० १५४१ में "प्रबोध प्रकाश" तथा सं० १५४६ में "हरि लीला" की रचना की थी।[2] उनके स्थान के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। "हरि लीला" के उल्लेख के आधार पर स्व० श्री रामलाल मोदी ने सिद्धक्षेत्र (सिद्धपुर पाटण) को उनका निवास स्थान माना है। "प्रबोध प्रकाश" की रचना प्रभास में होने से श्री के० का० शास्त्री उनको प्रभास पाटण का निवासी मानते हैं। श्री कृष्णलाल झवेरी उनको सिद्धपुर का मोढ़ ब्राह्मण मानते हैं।[3] स्व० मोदी ने उनकी रचनाओं में ब्राह्मणों का विशेष आदर देखकर उनको ब्राह्मणेतर माना है। भीम के जन्म-मृत्यु के वर्षों के साथ उनके माता, पिता, गुरु आदि का पूर्ण अभाव है।

श्री के० का० शास्त्री नरसिंह व्यास को भीम का गुरु मानते हैं, श्री अंबालाल जानी उनको भीम का पिता मानते हैं।[4] प्रबोध प्रकाश के आरम्भ तथा अंत में भीम ने किसी पुरुषोत्तम की [illegible] की याचना की है।

---

१. 'कवि चरित', पृ० १३५।
२. 'भालण, उद्धव भीम', पृ० ८६।
३. 'गु० सा० मा० सू० स्तं०', पृ० ५३।
४. हरिलीला—'षोडश कला', पृ० ३८।

"श्रीपुरुषोत्तम तरण प्रसादे की धुं, एह कथा अनुवाद।" इस पर विस्तृत चर्चा के पश्चात् श्री के० का० शास्त्री ने समन्वय करते हुए लिखा, कि भीम ने सिद्धपुर में पुरुषोत्तम का तथा प्रभास में नरसिंह व्यास का आश्रय ग्रहण किया था। यह पुरषोत्तम संभवतः भालण था, ऐसी एक सम्भावना की चर्चा भालण के चरित्रांकन में की गई है।

भीम राम का भक्त था, इसलिये उनको रामानन्दी मान लिया गया, किन्तु उन्होंने हारमाला मे नरसिंह को दम्भ छोड़कर निर्गुण नाथ की आराधना का उपदेश दिया है।

"नरसैया तज दंभ तू, निर्गुणनाथ शक्यो तथी जाणी।"[१]

भीम की निर्गुण राम-भक्ति पर रामानन्द से अधिक कबीर-विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि भीम ने मिथ्याचार का विरोध किया है। नरसिंह की माला-तिलक वाली सगुण भक्ति का विरोध किया है। यदि वे रामानन्दी होते, तो नरसिंह के विरोध का कोई कारण ही नहीं था, क्योंकि राम तथा कृष्ण विश्नु के ही अवतार माने जाते हैं।

भीम ने कहा कि कलि में योग, तप, दान या व्रत निरर्थक है; रामनाम के समान कुछ भी नहीं है।

"कलियुग याग, तप, दान दया व्रत।
कोई नावि राम-नाम तोलई॥"[२]

शूद्र तथा स्त्री जाति के प्रति भीम में सहानुभूति है। ब्रह्मविद्या एवं आत्मयोग जैसा कठिन विषय इसलिए उन्होंने जन भाषा में गाया है।

"ब्रह्म विद्या, नई आतमयोग, वलि विशेषई शास्त्र प्रयोग।
तिणि कारणि शुद्र नयी नारी, कठिन ग्रंथ नहीं लहि विचारी।
प्राकृत अर्थ जाणवा सही, भणई भीम कीधी सुपई॥"[३]

गुजराती साहित्य में संतमत के प्रवर्तक कबीर

गुजराती साहित्य के अनेक कवियों की वाणी पर कबीर की विचारधारा तथा कबीर की वाणी का प्रभाव है। उन संत कवियों की वाणी कभी-कभी कबीर की वाणी का भाव, भाषा तथा विचार में अनुसरण करती है, कभी-कभी उनकी वाणी की पंक्तियों को यथारूप स्वीकार भी कर लेती है। नरसिंह, मीरां, भालण, मांडण

१. 'नरसिंह महेताना भजनो' स० सा० व० का०, पृ० ८०।
२. 'कवि चरित', पृ० १००।
३. हरिलीला—सोडश कला, उपोद घात।

तथा धनराज पर कबीर का व्यापक प्रभाव है। इन कवियों द्वारा कबीर मत का प्रभाव गुजराती साहित्य में आगे परम्परित हुआ है।

गुजरात के अनेक विद्वानों ने गुजराती संत साहित्य के प्रवर्तक के रूप में कबीर को स्वीकार किया है। श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी ने गुजराती साहित्य के पन्द्रह भक्त-कवियों को कबीर तथा अखा की परम्परा में दर्शाया है।[1] श्री कनैया लाल मुन्शी ने गुजराती के मध्यकालीन साहित्य पर कबीर तथा गोरखनाथ के पंथों का प्रभाव माना है।[2]

प्रो० मंजुलाल मजमुदार ने लिखा है, कि गुजरात के ये सन्त कवि तो कबीर, नानक जैसे थोक विक्रेता के छोटे-छोटे अभिकर्ता थे, जिन्होंने उनके ज्ञान के माल को घर-घर पहुँचा दिया था[3]। प्रो० रमेश जानी ने पन्द्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के गुजराती साहित्य को "संत साहित्य" कहा है, जिसका प्रेरणा स्थान उन संतों को माना है[4]। डॉ० रामकुमार गुप्त ने गुजरात के समग्र संत-साहित्य को कबीर द्वारा सर्वाधिक प्रभावित माना है।[5]

गुजरात में कबीर के शिष्य तथा उनकी परम्परा के अनेक प्रभावशाली संतों ने हिन्दी में संतवाणी की रचनाएँ की थीं। उनका प्रभाव गुजराती संत कवियों पर पड़े बिना नहीं रहा। गुजराती संत साहित्य के साथ हिन्दी में भी विपुल संत साहित्य का सर्जन गुजरात में हुआ था।

---

१. 'क्लासीकल पोएट्स आफ गुजरात', पृ० ५५।
२. 'गुजराती साहित्य', पृ० ८८।
३. 'गुजराती साहित्यनां स्वरूपो ([illegible])', पृ० [illegible]।
४. 'पारब' संत-विशेषांक, पृ० २२७।
५. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ८०।

दसवाँ अध्याय

परवर्ती गुजराती साहित्य पर कबीर-प्रभाव

अखा भगत—अखा का जन्म सं० १६७२ में तथा निधन सं० १७३२ हुआ था। अपने मूल निवास स्थान जेतलपुर से वे अहमदावाद आये थे। अहमदावाद-खाडिया में "कुवावला खांचा" में एक स्थान है जो "अखानो ओरडो" नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ के निवासी अखा की जो परम्परा देते हैं, वह संदिग्ध है। वे जाति तथा व्यवसाय के सुनार थे तथा स्थिति से सम्पन्न थे। उनके जीवन की दो घटनाओं ने उनको संसार से विरक्त कर दिया था।

वे टकसाल के प्रमुख अधिकारी थे। सिक्के की बनावट में निकृष्ट धातु के प्रयोग का झूठा आक्षेप उन पर किया गया था; किन्तु जांच करने पर वे निर्दोष प्रमाणित हुए, तब वन्दी-गृह से मुक्त किये गए। जीवन की एक अन्य घटना ने उनके हृदय को झकझोर दिया था। उनकी पत्नी तथा बहन का निधन हो गया। एक धर्म की बहन थी। उनकी सोने की जंजीर अखा ने बनाई थी। उन्होंने भी संशय कर कटवा कर देखा तो शुद्ध सोने की निकली, किन्तु इस बात का पता लग जाने पर अखा जी को आघात पहुँचा। संसार को छोड़ वे सच्चे गुरु की खोज में निकल पड़े। मार्ग में गोकुलनाथ ने उनको आदर दिया था। काशी में किसी ब्रह्मानन्द से ज्ञानप्राप्ति कर लौटते हुए वे गोकुलनाथ के पास गये, तो निर्धन देखकर उनका सत्कार नहीं हुआ। इससे भी उनको बड़ी ठेस पहुँची थी।

गुरु—अखा का गुरु कौन था, यह विवादास्पद है। अखा ने अपनी वाणी में गुरु का कहीं उल्लेख नहीं किया। "गुरु कीधा में गोकुलनाथ" वाली साखी में गोकुलनाथ का उल्लेख आदर के साथ नहीं किया गया। इससे मात्र इतना ही सम्भव हो सकता है, कि गोकुलनाथ को प्रथम गुरु किया हो, किन्तु पीछे से उनको छोड़ किसी अन्य को गुरु किया हो। अन्य गुरु के विषय में एकमात्र ब्रह्मानन्द का नाम लिया जाता है। उनके दादागुरु के रूप में किसी जगजीवन का नाम आता है, एक पक्ष "गुरु था तुं तारो तुज" के आधार पर मानता है, कि उनका कोई गुरु नहीं था। उनकी वाणी में किसी भूतनाथ का नाम भी आता है।

समीक्षा—श्री नर्मदाशंकर मेहता ने अखा की वाणी में प्रयुक्त "ब्रह्मानन्द" शब्द को गुरु के नाम के अर्थ में लिया है।[1] अखा के साथ नरहरि, बुटिया तथा गोपाल उनके शिष्य माने जाते हैं। डॉ० योगीन्द्र त्रिपाठी ने अपने पिता सागर महाराज की डायरी से गुरु के रूप में ब्रह्मानन्द का समर्थन किया है; किन्तु प्रो० रामप्रसाद शुक्ल ने अपने एक लेख "मध्यकालीन सन्तकविता" में डॉ० योगीन्द्र त्रिपाठी के अधुना प्रकाशित ग्रन्थ "अखो अने मध्यकालीन संत परम्परा" की समीक्षा करते हुए सागर महाराज की डायरी के उल्लेख को श्री सागर का एक मत मात्र माना है।[2]

चारों कवियों ने कहीं भी गुरु के रूप में ब्रह्मानन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया। गोपाल ने "गोपाल गीता" में अपने गुरु के रूप में किसी सोमेश्वर का नाम लिखा है। उनके नाम एक दोहा प्रचलित है, जिसमें चारों को ब्रह्मानन्द के बालक कहा है। श्री उमाशंकर जोशी का मत है, ये चारों कवि ज्ञानी कवि थे, अतः किसी ने उनके नामों को एक साथ जोड़ दिया।[3]

डॉ० केशवलाल ठक्कर ने कुबेरदास के ज्ञान सम्प्रदाय की वाणी में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, इसमें ब्रह्मानन्द की अखाजी से मिलने का उल्लेख है।

"ब्राह्मनंद आखाजीने मेट्या, जीव शिवना संशे मेट्या।"[4]

यह वाणी कुबेरदास की है, ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। वरन् इसमें किसी अर्वाचीन संत ने कुबेरदास के विषय में लिखा है। इसमें स्वामी रामानन्द, कबीर तथा अखाजी का उल्लेख है। परम्परा का यह क्रम उचित है, किन्तु ब्रह्मानन्द का उल्लेख मात्र जनश्रुति या वर्तमान उल्लेखों के आधार पर हुआ है। इसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

अखाजी की वाणी में जो "ब्रह्मानन्द" शब्द आया है, उसे गुरुवाची समझना युक्तिसंगत न होगा; क्योंकि व्याकरण की दृष्टि से प्रो० के० का० शास्त्री ने "ब्रह्मानन्द स्वामी अनुभव्यो रे" का अर्थ "हे स्वामी! मैंने ब्रह्मानन्द का अनुभव किया" दिया है। ब्रह्मानन्द के साथ अखाजी ने 'अलखानन्द,' 'पूर्णानन्द' तथा 'परमानन्द' जैसे आनन्दवाची शब्दों का प्रयोग भी किया है। शास्त्री ने एक स्थान पर ऐसे ही

---

१. "अखाकृत काव्यो" भा० १, पृ० १७

२. "लोकसत्ता" (दैनिक पत्र) दिनांक ११-२-१९७१

३. "अखानां छप्पा" भूमिका

४. आ० गु० सं०, पृ० ३६

"परमानन्द" शब्द का प्रयोग किया है, इसके आधार पर स्व० नारायण भारती ने उनको भालण का गुरु मान लिया था। भालण ने भी इस प्रकार सदानन्द, ब्रह्मप्रियानन्द जैसे आनन्दवाची शब्दों का प्रयोग किया था अतः इसे व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में ले लेना अनुचित होगा।

वस्तुतः अखा ने अपनी वाणी में किसी गुरु का उल्लेख नहीं किया था, अतएव ब्रह्मानन्द की खोज की गई थी। जब यह निष्फल रही, तो अन्य विकल्प यह रहा कि अखा का कोई गुरु ही नहीं था। "गुरु था, तुं तारो तुज" के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्रमाणित भी किया गया, कि अखा के गुरु स्वयं अखाजी ही थे।

प्रपंच अंग में गुरुओं के दम्भ पर यथेच्छ प्रहार करने के पश्चात् अखाजी ने लिखा है, कि मैंने गोकुलनाथ को गुरु किया था, किन्तु तत्व से मैं दूर ही रहा। आतमराम को जगाकर उनको ही गुरु मानने की सूचना इसलिए उन्होंने दी थी।[1] उस काल में "नुगरा" शब्द संतों के लिये घृणास्पद समझा जाता था। एक दूसरे के परिचय में गुरु तथा पंथ का नाम ही पूछा जाता था।

"सब कोई पूछत सुन अखा कौन गुरु ! तेरा पंथ ?
कौन घर ले बोलिया, के ईश्वर के जंत ॥"

अखाजी गुरु-परम्परा तथा पंथ-स्थापना के प्रबल विरोधी थे, इसलिए ऊपर के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा, कि परब्रह्म ही मेरे गुरु हैं, जो मेरे नखशिख में व्याप्त हैं। उन्होंने मुझे अपना "नाम" दे दिया, अब मैं किसकी माला जपूं ?[2]

गोकुलनाथ के अनुभव के पश्चात् अखा ने संभवतः कुछ समय किसी अन्य संत से दीक्षा न ली हो, किन्तु कबीर की संत-परम्परा का प्रभाव अखाजी की विचारधारा पर दृष्टिगोचर होता है।

अखा की परम्परा जगजीवन स्वामी से प्रारम्भ होती है। ब्रह्मानन्द को जगजीवन का शिष्य दिखाया गया है। अखा के दादागुरु के रूप में जगजीवनदास को स्वीकार करते हुए कुंवर चन्द्र प्रकाशसिंह ने तीन जगजीवन की चर्चा की है। निरंजनी तथा सत्नामी जगजीवनदास को छोड़कर दादू के शिष्य जगजीवनदास की सम्भावना की ओर उन्होंने निर्देश किया है।[3]

वड़ोदे के एक जगजीवन कानदास के सुलतान बोध, ज्ञानगीता, पंचीकरण, ज्ञानमूल आदि ग्रन्थ गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद में हैं। ज्ञानगीता के अन्त में

---

१. "अनुभव बिंदु", पृ० १८३ (२) "अक्षयरस", पृ० १७३
३. "अक्षयरस", पृ० ३४

रचना वर्ष सं० १७७२ लिखा है, "पंचीकरण" के अन्त में सं० १६७२ पढ़ा जाता है, इसलिए उनका समय निश्चित करना दुष्कर हो गया है। यदि सं० १६७२ ठीक है, तो ये जगजीवन अखाजी के समकालीन प्रमाणित हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। वे कबीर की किसी परम्परा के संत थे, किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता, कि किस परम्परा के संत थे।

एक सम्भावना—उदापन्थ के प्रवर्तक जीवनदास अखाजी के समकालीन थे। अखाजी का समय सं० १६७२ से १७३२ है; तथा जीवनदास का समय सं० १६४६ से १७३७ है। यद्यपि उनको लोग जीवणदास कहते थे, तथा पीछे से जीवणजी महाराज भी कहने लगे थे, किन्तु उनका मूलनाम जगजीवनदास था। जीवणदास के शिष्य कृष्णदास की परिचई उनके पुत्र स्यामदास ने लिखी है, उसमें उनके मूल नाम का उल्लेख हुआ है।

"सतसाहब है परम निधाना, ताको है "जगजीवन" नामा।"[1]

जीवनदास ने इसे और भी छोटा कर "जीवणा" लिखा है। स्यामदास ने जीवणदास के पांच शिष्यों के नाम दिये हैं, उनमें एक अखाजी का नाम है।

"बालक पांच प्रगट भये आई, एक पे एक उजागर भाई।

प्रगट नाम भक्तन के आगर, वसंतदास, स्याम, सुखसागर।
बाबा गोविंद दास सुखकारी, अखै तातको भक्त विचारी॥"[2]

हस्तलिखित ग्रन्थों में इस सम्प्रदाय के संतों की वाणी के साथ अखाजी की वाणी भी है। जीवणदास के एक शिष्य का नाम गोपालदास था।

एक अन्य सम्भावना—१. संत दादू का समय सं० १६०० से १६६० तक था, इसके आधार पर लगता है, कि दादू का शिष्य जगजीवन भी अखाजी का समकालीन सम्भव होता है।

२. दादू पन्थ में "ब्रह्मानन्द" के नाम से गुरु का निर्देश करने की परिपाटी है।[3]

३. कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने दादू शिष्य जगजीवन को अखा-परम्परा के मूल पुरुष के रूप में स्वीकार किया है। जगजीवनदास को उन्होंने अखा का दादा गुरु माना है।[4] वस्तुतः ब्रह्मानन्द नाम के किसी व्यक्ति का ही अस्तित्व नहीं होने से जगजीवनदास ही अखा के गुरु रह जाते हैं।

४. दादू के शिष्य जगाजी के पन्थ का मन्त्र "ॐ सत्य निरंजन धारके राम"

---

१. उ० प० पं० र० भा०, पृ० २३३
२. वही, "ज्ञानमहिमा", पृ० २६०
३. सुन्दर ग्रंथावली, सं० श्री हरि नारायण शर्मा, पृ० १६०
४. अखापरस पृ० ३७

दिया हुआ है। ऐसा ही मन्त्र अखाजी को भी अपने गुरु द्वारा मिला था, ऐसा सागर महाराज ने लिखा है।

"ॐकार ब्रह्म, निराकार राम, काया काशी, हृदये स्नान।
ज्योतिस्वरूप आत्मध्यान, तत्वनिरंजन राम।
त्रिभुवन व्यापी तारक राम॥"[1]

५. अखाजी की वाणी पर कबीर विचारधारा का प्रभाव इतना अधिक दृष्टि-गोचर होता है, कि उन्हें कबीर की किसी-न-किसी परम्परा से सम्बन्धित होना चाहिये, ऐसा लगता है।

६. दादू पन्थ की परम्परा में गुरु को स्वामी कहने की एक परिपाटी है। दादू को दादू स्वामी, जगाजी को जगा स्वामी कहा जाता था।

इसी परम्परा में जगजीवन स्वामी लिखा गया होगा। "संत प्रिया" के अन्त में "अखा स्वामी विरचितं" लिखा गया है, यह भी द्रष्टव्य है।

७. दादू का पन्थ-विरोध अखा तथा उनकी परम्परा के संतों में उतना ही तेज है। अखा ने नाद तथा बूँद गद्दी की परम्पराओं का विरोध किया है।

"नाद न बूंद, विस्तार न वाचा, ज्यूंका त्यूं परब्रह्म वेथा।"[2]

अखा की विचारधारा—अखाजी ने अपने आराध्य के लिये परब्रह्म या निरंजन शब्द का प्रयोग किया है। ये वेद या दर्शन को नहीं मानते। ब्रह्म के अर्थ को जानने वाला वेद से पर है। उन्होंने कहा कि ब्रह्म की अनुभूति के पश्चात् वेद की वेदना शांत हो जाती है।[3]

ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका ब्रह्म शब्दातीत (बावन बाहेरो) है। आत्मदर्शन उनका लक्ष्य है। जिनको ये "राम" के नाम से पुकारते हैं, वही उनके परब्रह्म हैं। उनके परब्रह्म को पण्डित नहीं पा सकते, क्योंकि उनमें पण्डिताई का अभिमान है तथा हृदय में घोर अंधेरा है। वस्तुतः सच्चा ज्ञानी वही है, जो गोपी की दशा का अनुभव करता है।

"तेज ज्ञानी, जेने गोपीनो दशा।" अखा के इन विचारों पर कबीर के "ढ़ाई अच्छर प्रेम का" वाले मत का प्रभाव है।

अखाजी पन्थ प्रचलन के तेज विरोधी थे। विभिन्न पन्थों ने एक ईश्वर को विभिन्न रूप दे दिये हैं। तदनन्तर आक्षेप एवं निन्दा की जाती है। "हम पा गये और

---

१. वही, पृ० ३८

२. अक्षयरस संतप्रिया-१२८, पृ० १६७

३. अखो-एक अध्ययन, पृ० २६४

वे रह गये" की अभिमान-ध्वनि सुनाई देती है। चावल पर के 'फोंतरा' जैसा मन से अभिमान उड़ा देना चाहिये।[1]

अखाजी ने निर्गुण परब्रह्म से प्रेम किया है। सहज में उनको स्वामी मिल गये हैं। वेद या कुरान उनको नहीं पढ़ने पड़े।[2] अखा ने निर्गुण के साथ सगुण का समन्वय किया है। सगुण उपासना से उनका विरोध नहीं है, किन्तु उनका मत है, निर्गुण को जानकर सगुण की भक्ति की जा सकती है। भक्ति एवं ज्ञान के समन्वय के दर्शन उनकी वाणी में होते हैं। उन्होंने लिखा है, कि भक्तिरूपी पंखिनी के ज्ञान एवं वैराग्य रूपी दो पंख हैं। यौगिक उपासना के क्षेत्र में अखा ने कबीर की सहज-समाधि का आधार लिया है। उन्होंने लिखा है, कि हरि को प्राप्त करने के लिये सब तप करते हैं, किन्तु अखा भगत स्वयं सहज में हरि में मिल जाते हैं।

"हरिने पामवा सहु तप करे, अखो हरि में मेले फरे।"

अखा की विचारधारा पर कबीर-प्रभाव—अखा की वाणी पर कबीर वाणी का प्रभाव समग्र रूप में परिलक्षित होता है। कबीर की भाषा के भाव, अलंकार तथा अभिव्यक्ति की समग्र योजना कभी-कभी रूपांतरित होकर आई है। गुजरात के अनेक विद्वानों ने अखा पर कबीर के प्रभाव का उल्लेख करते हुए दोनों के व्यक्तित्व एवं विचारधारा के साम्य की सराहना की है।

विद्वानों का मत—१ "अखो-एक अध्ययन" के विद्वान् लेखक श्री उमाशंकर जोशी ने लिखा है कि अखा की वाणी का मेल कबीर को छोड़कर अन्य किसी से नहीं है। उनका कथन एक कबीर के मत से मिलता था।[3] (२) श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने अखा को सम्प्रदायों के प्रति पुण्य प्रकोप की साक्षात् मूर्ति कहते हुए लिखा कि उनका मोक्ष एवं ज्ञान, उनके शब्द-प्रकोति एवं व्यंग्य उनके पुरोगामी कबीर एवं दादू के हैं।[4] (३) डा० मंजुलाल मजमुदार ने अखा की ज्ञान-भक्ति को कबीर की विरासत माना है। (४) गुजरात के हिन्दी सन्त साहित्य के विद्वान् डा० अम्बाशंकर नागर ने अखा की विचारधारा के आधार पर उनको "गुजरात का कबीर" कहा है।[5] (५) डा० रामकुमार गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा कि इनकी वाणी

१. अक्षय रस मलडो-२०
२. अखेगीता कडवुं-१०
३. अखाना छप्पा, पृ० ५
४. मध्यकालीन गुजराती साहित्य, पृ० १३४
५. काशी ना० प्र० प० (२०१५) अंक-२, पृ० १३८

कबीर की तरह जीवन के कटु अनुभवों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। डांट-फटकार और अक्खड़पन में तो इन्होंने कबीर को भी मात कर दिया है।[1] (६) कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने उन दोनों की वाणी में सामाजिक व्यवस्था, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के प्रति उनके असंतोष तथा आक्रामकता में जो साम्य है, उसका निर्देश किया है।[2] (७) महात्म्यराम ने कबीर को अखाजी रूपी गजेन्द्र का मौक्तिक कहा था।

"ए सुसंग कबीर अखाजी बने, गजमद्रके मस्तके मोती बने।"[3]

अखा प्रणालिका के संतों की वाणी में कबीर का महत्व—(१) रामकबीर सम्प्रदाय के एक भजन-संग्रह में अखाजी का एक पद है, जिसमें उन्होंने कबीर की प्रशस्ति एवं वन्दना की है।

"अमरापुरीनी जग्तमां रे, एमां एनो वास।
कर जोडी अखो कहे, एवा दूर्लभ दास—कबीर॥"[4]

(२) अखाजी ने अपने एक पद में अपने ऊपर कबीर एवं नरसिंह मेहता के प्रभाव को स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है, कि उनके निर्गुण मत पर कबीर का तथा सगुण पर नरसिंह का प्रभाव है।

"निर्गुण कथता कबीर प्रभव्यो, सगुण गातां नरसें रे महेतो।"[5]

(३) अखाजी के शिष्य लालदास ने अपनी वाणी में कबीर को उनकी आत्मा तथा अपने आपको कबीर का मत कहा था।

"कबीर हमारी आत्मा, हम कबीरा की मत।[6]

(४) अखा-परम्परा के सन्त कुबेरदास ने सद्गुरु के रूप में कबीर का नाम लिया है। "चकित भये सद्गुरु जभी, साम्रत साहेब कबीर।" उन्होंने अपने शिष्य से कहा था, कि जो उपदेश कबीर साहब ने धर्मदास को दिया था, वही उपदेश मैं तुम्हें देता हूँ।

(५) अखा की प्रणालिका के एक सन्त श्री "सागर" ने अपनी वाणी में अपने आपको इस युग में कबीर का प्रतिनिधि कहा था।

पूर्व जन्म्यो एक कबीरा, के दूजा सागरराज।"

---

१. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० ११२
२. अक्षयरस, पृ० ८६
३. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० २०२
४. रा० क० भ० म० सं०, पृ० ४७६
५. अखो-एक अध्ययन, पृ० ८७
६. संतोनी वाणी सं० सागर, पृ० ५३

कबीर-वाणी का अखा की वाणी पर प्रभाव

१. कबीर—"पावक कह्या पांव जो दाझे, जल कहे तृषा बुझाई।
भोजन कह्या भुख जो भाजे, तो सब कोई तिरा जाई।।"
अखा—"रवि रवि करतां रजनी नहीं मटे, अंधारं रवि उग्या पछी जाय।
जल जल करतां तृषा नहीं टले, अन्न अन्न कहेतां भागे नहीं भूख।।"

२. कबीर—"आंगन बेली आकाश फल, अनब्याही का पूत।
ससासींग का धनुष करी, खेले बांझन पूत।।" क० ग्रं०
अखा—"ससासींग नु वहाण न कर्यु, मघदरिये जईने तर्यु।
वंझासुत वे वहाणे चढया, "ख" पुष्पना वसाणां मर्या।।"

३. कबीर—"गगन घटा गहराई संतो। गगन घटा गहराई।'
अखा—"ज्ञान घटा चढ़ी आई, अचानक ज्ञान घटा चढ़ी आई।"

४. कबीर—"कस्तुरी कुंडल बसे, मृग ढूंढे बनमाहीं।
ऐसे घट में प्रिय है, दुनिया जान नाहीं।।"
अखा—"मिरघ के पास कस्तुरी है, जाई पत्थर को सुंघता है।
अखा आप पहचान बिना सब कोई ऐसे भूलता है।।

५. कबीर—"पांव न टिके पिपिलिका पंडित लादें बैल।"
अखा—"पग न टिके रे पिपिलीनो, त्यां छे सांकडी शेरी।

६. कबीर—"सैना बैना करी समझावूं गूंगे का गुड़ भाई।
अखा—"गुंगानो सानमां सामो समझे नहीं, अदबद मुठडी रही रे बांधी।

७. कबीर—"पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
अखा—"एक मूरख ने एवी टेव पत्थर एटला पूजे देव।"

८. कबीर—"तोरो न पाति, पूजो न देवा, राम भक्ति बिन निष्फल सेवा।"[1]
अखा—"तुलसी देखी तोड़े पान, नदी देखी करे स्नान।"

९. कबीर—"कांकर पाथर जोरी के, मस्जिद लीय बनाय।"
अखा—"कांकरे पाथरे देखी रीझे, जो मिलावे तिम पर सीझे।

१०. कबीर—"हेरत हेरत हेरिया, रह्या कबीर हेराय।"
अखा—"हरिकु हेरतां रे, अमो मैं रे हेराणो।"

११. कबीर—"पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
अखा—"मैं तो पानी का परपोटडा,[2] क्या बोले ने जाते।

---

१. क० ग्रं०, पृ० ३१६
२. बुदबुदा

१२. कबीर—ना दसरथ घर अवतरया, ना लंका के रावण मारा।
अखा—दसरथ पहेले हतो जे राम, तेह वसुदेव घेरे कृष्णनाम।
१३. कबीर—घूंघट का पट खोल रे, तोको पिव मिलेंगे।
अखा—पिउ बोलते, मैं ही जोरूं, तोहि बिना घूंघट नाहीं खोलूं।
१४. कबीर—मूरत केरी पूतली, खावे और पूजावे।
अखा—बहु मूरत केरी पूतली, पट पूजे घी थाल।
१५. कबीर—आठों पहर अपना, सेवा नाम अधीन।
ऐसे भेद बिचारा हरी कबूर कहना ॥ क० ग्र०
अखा—जैसे जल अपार भरया, मन मोहे कबहुं चला।
सेवा न भावे, न भावे पाषाण, कहे अखा ए बातो मानो ॥

अन्य संत कवि

(१) गोपालदास—एक परवर्ती ग्रंथ के अनुसार उनका नाम रामानंद के बारह शिष्यों में जोड़ दिया गया, किन्तु गोपाल ने स्वयं ने उन्होंने किसी ब्रह्मानंद के नाम का उल्लेख किया है। वे मूल नन्दाबाद (गवरवाड़ा) के निवासी थे। जिनकी ... अहमदाबाद में निवास कर "ज्ञान प्रकाश" तथा "गोपालगीता" की उन्होंने रचना की थी। श्री कृष्णलाल झवेरी ने उनको सूरत का निवासी माना है, किन्तु गोपालगीता के अंत में उन्होंने नन्दाबाद के निवास का उल्लेख किया है।

बृ० का० दो० भा० ५ में उनके ११ पद हैं, तथा गु० व० सो० का ३० लि० प्रति (क्रम ११६) में १५ पद संगृहीत हैं। रामकबीर सम्प्रदाय के भजन-संग्रह में भी इनके दो पद हैं।[1]

गोपालदास का अन्य वृत्त उपलब्ध नहीं है। इसी समय एक गोपालदास पुनियाद के संत जीवणजी के शिष्य थे। जीवणजी के शिष्यों में एक अखा का नाम लिया गया है, किन्तु ये दोनों ही वे थे; ऐसे अन्य प्रमाण नहीं हैं। "गोपालगीता" के एक पद में गुरु सोमराज द्वारा दीक्षा में "माला" मिलने का उल्लेख है। दीक्षा में माला प्रदान करने की परिपाटी जीवणजी के रामकबीर सम्प्रदाय में है।

गोपाल ने निर्गुण राम की भक्ति की है। उनके राम परब्रह्म हैं, अगम्य हैं; जो उनकी सच्ची पहचान करा सके, उनकी सेवा करनी चाहिये।[2] राम निरंजन हैं,

१. रा० क० भ० म० सं० पद ७७७ तथा ८११
२. गुजराती मध्यकालीन साहित्य खंड-५, पृ० ३७५

उनका "निजधाम" अचल-अमर है । ये आदि तथा अन्त में एक हैं । अखण्ड आत्मा एक है । पिंड उपाधि (माया) के कारण अनेक रूप में दीख पड़ता है ।

अखड आत्मा अगोचर एक, पिंड उपाधि ए मासे अनेक ।[1]

ये आतमराम के उपासक हैं, उन्होंने आतमराम की चुनरी ओढ़ी है ।

"व्हाले चुँदडी ओढाडी पाका रंगनी, छेडे आतमरामना रंग ।"[2]

(२) बूटा भगत—ये अखाजी के समकालीन थे । उनके विषय में कोई वृत्त प्राप्त नहीं हुआ । श्री के० का० शास्त्री ने उनके नाम के आधार पर उनको निम्न जाति का माना है ।[3] उनके फुटकल पद मिलते हैं । कबीर की परम्परा के सन्तों पर साधारणतः केवलाद्वैत के सिद्धान्तों का आरोप किया जाता है; ऐसा उनके विषय में भी हुआ है ।

गुजरात विद्या सभा के एक हस्तलिखित ग्रंथ (२२१६) में कबीर, ज्ञानी, दादू एवं अखा की साखियों में बूटा की निम्नांकित साखी भी है ।

आधी साखी सिर कटे, जो विचारी जाय ।
समझण विना बुटिया, पींजण पखेड़ा खाय ।।

इससे एक निर्देश मिलता है, कि अखाजी तथा बूटाजी कबीर की परम्परा के संत थे।

बूटाजी कबीर के आत्मतत्व के उपासक थे । नाम द्वारा उसे प्राप्त करने का उन्होंने उपदेश दिया है । उससे अज्ञात मनुष्य को उन्होंने अन्धा कहा है । इसके लिए उन्होंने वैराग्य को आवश्यक साधन माना है । आँख खोलकर अविनाशी ब्रह्म को समझना चाहिये ।[4]

बूटाजी ने हमेशा सत्य की प्राप्ति के प्रयास किये हैं ।

"सत्य मेलव बुटिया, समज्यानी एतो सान ।"

परमात्मा एक है जो आदि, मध्य तथा अंत में अविनाशी तथा अखण्ड रहता है ।

"पूरण ब्रह्म, अखंड अविनाशी, सोहं ब्रह्म जेणे जाण्या रे ।"

सोऽहम् को जाननेवाला ब्रह्म से मिल जाता है । मिलन के अनंतर पुनः द्वैत नहीं होता, जैसे समन्दर में सिंधव तथा अग्नि में पतंग गिरकर पुनः लौट नहीं सकता । उसका अपना रूप और रंग मिट जाता है ।[5]

---

१. बृ० का० दो० भा० ३, पृ० ५१२
२. रा० क० भ० म० सं०, पृ० ४५४
३. कविचरित, भा० १—२, पृ० ५६२
४. कवि चरित, भा० १ —२, पृ० ५६१
१. प० प० सं०, पृ० २८०

(३) नरहरि भगत—डा० सुरेश जोशी ने नरहरि पर लिखे अपने प्रबन्ध में उनको "बावला" गांव का पाटीदार जाति का संत कहा है।[1] "हस्तामलक" के अंत में नरहरि ने अपने बड़ौदा-निवास का उल्लेख किया है।[2] संभवतः ये बावला से आकर बड़ौदा बस गये थे। जनश्रुति के अनुसार ब्रह्मानन्द के चार शिष्यों में उनका नाम है, किन्तु उन्होंने उनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया।

रचनाएं—ज्ञानगीता, हरिलीला, भक्तिमंजरी, प्रबोध मंजरी, मास, गोपी उद्धव संवाद, कक्का तथा संतनां लक्षण।

नरहरि ज्ञानी-भक्त थे;; सगुण एवं निर्गुण से परे एक ब्रह्म की सत्ता को ये मानते थे।

निर्गुण सगुण ते एक परिब्रह्म, समझो, समझु एहेज मर्म।"[3]

अगम्य तथा अनिर्वचनीय परात्पर ब्रह्म मात्र आनन्द के प्रयोजन से विभिन्न रूप धारण करता है।

(४) मुकुंद—अपनी भक्तमाल (सं० १७०८) के कारण गुजराती साहित्य में ये प्रसिद्ध हुए थे। संभवतः एक सौ आठ चरित्र लिखने की उनकी इच्छा थी। उनमें से दो संतो के चरित्र उपलब्ध हुए हैं। कबीर साहब को उन्होंने माला की "मेर" कहा है, तथा इसे सं० १७०८ में लिखने का उल्लेख किया है।

"सत्तरा में अष्ट साल, मालिका मंडी रसाल।
पहलो ही "मेर" साधो, कबीर आनंद-कंद॥"[4]

एक अन्य चरित्र गोरखनाथ का मिला है, जिसका क्रम आठवां आता है, इससे निर्देश मिलता है, कि उन्होंने कम से-कम आठ चरित्र तो लिखे होंगे।

ये द्वारिका के गुगली ब्राह्मण थे। किसी केशवदास ने उनको जगाया, तथा "नाम" का माहात्म्य समझाया था।

कबीर के चरित्र में चमत्कार आये हैं। कबीर की पत्नी का नाम उन्होंने "रूपा" दिया है।[5] उनके कबीर चरित्र में यही एक विशेषता है।

(५) धीरा भगत—बड़ौदा के निकट गोठडा (बावली) के निवासी धीरा भगत के पिता का नाम प्रताप बारोट तथा माता का नाम देवबा था। उनका जन्म प्रायः स० १८०९ तथा निधन सं० १८८१ में हुआ था। सत्रह वर्ष की उम्र में किसी

---

१. ज्ञानगीता, हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १२५
२. गुजरात विद्या सभा, ह० प्रति (क्रम ३४२)
३. हरि लीलामृत, पृ० ७१
४. प्रा० का० मा० ग्रं० ११, पृ० २१२
५. वही, पृ० २२३

संत की सेवा की थी। उनके उपदेश से भक्तिमार्ग का ज्ञान उन्होंने संपादन किया था।

गुजराती के साथ हिन्दी भाषा में भी उन्होंने अनेक पदों की रचना की थी। रचित पदों को वे एक बांस की नली में बंद कर नदी के पानी में छोड देते थे। इस प्रकार उनके पदों का प्रचार हुआ था। उन्होंने गुरु धर्म, शिष्य धर्म, योग मार्ग, ज्ञान ववका आदि की भी रचना की थी। "आत्मज्ञान" तथा "ज्ञानबत्रिसी" उनकी श्रेष्ठ रचनाएं है। धीरा का मूल्यांकन इन दो रचनाओं के आधार पर ही किया जा सकता है।[1]

धीरा ने अपनी काफियों को कबीर वाणी के अनुकरण में विभिन्न अंगों में विभक्त किया है। धीरा ने उनको स्वरूप कहा है। प्रत्येक स्वरूप में ३० "काफी" हैं। स्वरूप का निम्नांकित नामकरण भी परंपरित है। गुरु स्वरूप, माया स्वरूप, मनस्वरूप, तृष्णा स्वरूप, लक्ष्मीस्वरूप, यौवन स्वरूप, काया स्वरूप, इत्यादि। ये संप्रदाय एवं मत मतांतर के विरोधी थे। उनके शिष्यों में स्यामरात्र, जीवणगाव, निरांत तथा बापूसाहब प्रमुख थे।

परंपरा—धीरा भगत के गुरु कौन थे तथा वे किस संप्रदाय के थे, यह अनिश्चित रहा है। उनके विषय में एक मत है, कि वे पहले वैष्णव थे, तदनंतर वैरागी हुए थे। अन्य मत उनको रामानंदी मानता है।[2] रा० रा० सुरेश दीक्षित ने अपने एक लेख में उनके विषय में वैष्णव कुल धर्म को छोड़कर रामानंदी पंथ में दीक्षित होने का उल्लेख किया है। संभवतः उसके आधार पर ही डॉ० रामकुमार गुप्त ने लिखा है, कि बचपन में किसी अध्यारु के पास विद्याभ्यास के हेतु वे जाया करते थे, किन्तु वहाँ मन रमा नहीं।[3] इसमें "अध्यारु" शब्द का अर्थ शिक्षक के रूढ़ अर्थ में लिया गया है। धीरा भगत ने अ ने एक पद में अध्यारुजी का उल्लेख किया है।

"अध्यारुजी ए जे भणाव्युं, ते तो गुरुजी ए कह्युं"

(१) धीरा ने कहा है, कि जो अध्यारुजी ने पढ़ाया है, वे सारी बातें मेरे गुरुजी ने कही थी। इससे प्रतीत होता है, कि ये अध्यारुजी साधारण अक्षरज्ञान देने वाला शिक्षक नहीं, किन्तु अध्यात्म-ज्ञान करानेवाले कोई अन्य अध्यारुजी थे, जिनका उपदेश गुरु के उपदेश के साथ बहुत कुछ मिलता था। ये अध्यारुजी कबीर के शिष्य पद्मनाभ के शिष्य धनराज होने चाहिये। रामकबीर-संप्रदाय में उनके लिखे कीर्तनों का पाठ किया जाता है तथा अध्यारुजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

---

१. गुजराती साहित्य, पृ० २११
२. प्रा० का० मा० ग्रं० २३
३. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १६६

यह सम्भव लगता है, कि धीरा ने रामकबीर-संप्रदाय के किसी सन्त को गुरु किया हो तथा संप्रदाय की वाणी में अख्यारुजी की वाणी का प्रभाव पड़ा है; इसलिए उन्होंने अख्यारुजी की वाणी को गुरु के उपदेश से तुलना की हो।

(२) उनकी राम-भक्ति के आधार पर उन्हें "रामानन्दी" घोषित किया गया हो, यह भी सम्भव है, क्योंकि वस्तुतः तो उन्होंने सत् पुरुष की बांह ग्रही थी।

"सत्य स्वरूप में कांई ना निरख्युं,
त्यारे सत्य-पुरुष नी ग्रही बांही ॥"[1]

(३) रामकबीर-सम्प्रदाय के "नानखा", "मरजादा" तथा "हरि-गुरु-सन्त" जैसे कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग धीरा की वाणी में हुआ है।

(४) अख्यारुजी ने अपने कुछेक पदों में अपने लिए "अणछता-भगत" शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द मूल कबीर के "अछता" शब्द प्रयोग से आया है। इसकी परम्परा धीरा की वाणी में है।

लोभ बड़ाई कारणे, "अछता" मूल न खोई।"[2]

अख्यारुजी ने अपने पद में "अणछता भगत" के नाम से लिखा है।

अणछतो भगत विनति कर जोड़, तु मले हरे म कुड़ छोड़ ॥[3]

(५) अख्यारुजी ने अपने कीर्तनों में शोक भोवन, हर्ष भोवन जैसे नामके पद लिखे हैं, धीरा भगत ने उनकी परम्परा में "प्रेम भोवन" शब्द का प्रयोग किया है।

धीरा भगत पर कबीर-मत का प्रभाव—सत्गुरु के शब्द का महत्व बताते हुए उन्होंने कहा, कि दिल को शुद्ध रखकर पिंड में देखने से ही दीदार होगा, क्योंकि निरंजन-नाथ दूर नहीं हैं।[4]

उन्होंने कहा कि मैंने अलख निरंजन के दर्शन किये हैं। वे तो अलख के अखाड़े के सन्त थे। उनका अलख अगम्य है। वाणी की वहाँ पहुँच नहीं। यह एक ऐसा देश है, जहाँ बुद्धि थक जाती है।

"अगम केरी गम नहीं रे, वाणी न पहोंचे विस्तार।
एक देश एवो रे, बुद्धि थाकी रहे तहीं ॥"[5]

जिस प्रकार तिल में तेल; काष्ठ से अग्नि तथा दधि में घृत छिपा है, इसी प्रकार पहाड़ जैसा ब्रह्म मायारूपी तिनके के पीछे छिपा है। जब गुरु की कृपा हुई, तब उसके दर्शन हुए।

---

१. प्रा० का० मा० ग्र० २४, पृ० २
२. क० ग्रं०, पृ० २५
३. रा० क० भ० म० सं० पद ८३०
४. प्रा० का० मा० ग्रं २४, पद १९५
५. प० प० सं०, पृ० १९४

धीरा ने ज्ञानियों से कहा कि तुम आत्मतत्व की खोज कर उनकी अखण्ड चूड़ी पहनो। मैंने भी काशी, गोदावरी, गया, जगन्नाथजी तथा डाकोर जाकर उनको ढूंढा किन्तु ये कहीं नहीं मिले, तब गुरु ने दिखाया कि त्रिभुवन का ठाकोर तो मेरे में वसता है।[1]

मनःशुद्धि कर अजपाजाप करने से अलख के दर्शन होते हैं। तन तथा मन को मूंडने से यह भेद प्राप्त होता है, तथा अलख निरंजन के दर्शन होते हैं।

"मनकु मूंड्या, तन कु मूंड्या, तिनही पाया ए भेद।
दास धीरो कहे नजरे दीठा, अलख-निरंजन एक।"[2]

धीरा ने पाखण्ड का विरोध करते हुए कहा, कि दुनिया दीवानी है, वह पाखंड की पूजा करती है।[3] जगत् ऐसा अंध है; कि चैतन्य पुरुष को छोड़कर काष्ठ एवं पाषाण की पूजा करता है। मुझे तो आप स्वामी मिल गये, मैं अब पत्थर की पूजा क्यों करूँ?

"पाषाण कोण पूजे रे, मने मल्या तमो धणी।"

(६) भोजा भगत—उनका जन्म वि० सं० १८४१ में सौराष्ट्र के गालोल गांव में करसनदास सावलिया के घर हुआ था। ये जाति के कुनबी-पाटीदार थे। चन्द्र-हासाख्यान के रचयिता एक अन्य भोजा कवि सूरत में भी हुआ है।[4]

डा० केशवलाल ठक्कर ने उनको आजीवन-ब्रह्मचारी माना है;[5] किन्तु स्व० इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने उनके विवश विवाह तथा उनकी कर्कशा पत्नी का उल्लेख किया है। वड़ोदा के दीवान विट्ठलराव ने उनकी कसौटी की थी। शरीर के प्राकृतिक धर्म पर उनका अधिकार देखकर वे प्रभावित हुए थे। उनको उपदेश के रूप में भोजा ने प्रायः डेढ़ सौ "चाबखा"[6] कहे थे।

उनके गुरु एवं पन्थ के विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। जनश्रुति के अनुसार गिरनार की ओर से आनेवाले किसी रामेतवन नाम के सन्त से उन्होंने दीक्षा ली थी।[7] द्वादश वर्ष उन्होंने मात्र दुग्धाहार किया था। दीक्षा के अनन्तर द्वादश वर्ष उन्होंने "सोऽहम्" का जाप किया था।

उनके दो शिष्यों के उल्लेख मिलते हैं। एक जीवराम भगत उनको फत्तेपुर

---

१. प० प० सं, पृ० १६३
२. प्रा० का० मा० ग्रं० ३, पृ० १९५
३. संत वाणी; पृ० ५६
४. बृ० का० दो० भा० ८, पृ० ६८
५. गुजराती साहित्य का एक काव्य प्रकार
६. हिं० सा० गु० सं० क० दे, पृ० १९०
७. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १९०

ले गये थे। दूसरे शिष्य जलाराम का प्रस्थापित अन्नक्षेत्र राजकोट के पास वीरपुर में आज भी चलता है। हिन्दू तथा मुसलमान उनको मानते हैं। फतेपुर में भोजा भगत की गद्दी पर उनके पश्चात् उनका भतीजा अर्जुन भगत तथा तदनन्तर लक्ष्मण भगत आये थे।

भोजा ने साधारणतः फुटकल पद लिखे हैं। तदुपरांत "नानी भक्तमाल" ब्रह्मबोध, बावनाक्षर; ककका, प्रभातियां, सरवडां, काफी तथा होरी आदि भी लिखे हैं। "चाबला" द्वारा उन्होंने साधुओं के दम्भ का पर्दाफाश किया। अपनी वाणी द्वारा दंभियों को सुधारने का प्रयास किया, इसलिए श्री० जेठालाल त्रिवेदी ने उनको समाज सुधारक भी कहा है।[1]

उन्होंने राम की परब्रह्म के रूप में उपासना की थी। उनका मंत्र था।

"अंग चराचर व्यापक राम, न्यारुं-न्यारुं धरियुं नाम।"[2]

संसार स्वप्न है; जिस प्रकार सूर्य अपनी इच्छा से किरणों द्वारा विलस रहे हैं, इस प्रकार अपनी मौज से हरि लीलारूप संसार में व्यक्त हुए हैं। पुरुषोत्तम पूर्ण-ब्रह्म निर्गुण हैं। ये शब्दातीत हैं, अधरलोक में बसते हैं; धीरा ने उनको रामनाम से जाना है। सात पाताल में इक्कीस ब्रह्मा रामनाम का उच्चार करते हैं।[3]

शून्य शिखर पर उनके "नाम" के दर्शन होते हैं। "साहेब" हमारे स्वामी हैं; उनके आश्रित को वे पार लगा देते हैं। ब्रह्म-स्वामी से जिसने भोग नहीं किया, उनका योग वियोग जैसा है।

"ब्रह्म भरतारनो भोग मान्यो नहीं, त्यां लगी योग वियोग जेवो।"[4]

उन्होंने कहा कि अभिमानियों से साहब दूर रहते हैं। दम्भी साधुओं की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा कि वे पेट भरने के लिए वेश बनाते हैं, जगत् को दिखाने के लिए माला फिराते हैं, उनको मन में माला फिरानी चाहिये।[5]

(७) दीन भगत—गोधरा की प्रजापति जाति के एक भक्त पुरुषोत्तम ने अपना नाम "दीन" रखा था। उनका जन्म सं० १९१२ में तथा निधन सं० १९८३ में हुआ था। पिता भी भक्त थे, घर में सन्त-समागम होता रहता था। बचपन से उनके ऊपर भक्ति के संस्कार पड़े थे। किसी अवधूत सन्त को वे छाछ-रोटी दे आते थे,

---

१. भोजा भगत ना चाबखा, पृ० ८
२. बृ० का० दो० भा० ८, पृ० ७५
३. भोजा भगतना चाबखा, स० सा० व० का०, पृ० ६८
४. वही, पृ० ५९
५. वही, पृ० ४४

उन्होंने उनको दीक्षा दी थी।[1] वह सन्त कबीर-पन्थी लगता है, क्योंकि दीन भगत की वाणी में सत्यधर्म या सतधर्म जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है।

ये निर्गुण मार्गी सन्त थे। उन्होंने निर्गुण मार्ग पर चलने के लिए सुरत निरत को एक करना आवश्यक माना है। जगत् पानी का बुदबुदा है। मनुष्य के सुख-दुःख का कारण मन है। मन ही सब कुछ है, वही वेद है, वही वाणी है, वही पण्डित है, वही पुराणी है।

"मन ही वेद, मन ही वाणी, मन पन्डित और मन पुराणी।
मन है जोगी, मन है भोगी, मन जीते मन ही हारी॥"[2]

(८) वस्तो विश्वंभर— उक्त वस्ताजी खंभात के पास सक्करपुर के निवासी थे, तथा वे वस्तो-विश्वंभर के नाम से गुजराती साहित्य में प्रसिद्ध हैं। गुजरात में एक अन्य वस्ताजी बोरसद में हुए थे जो "वास्तो डोडियो" के नाम से जाने जाते है। उक्त वस्ताजी औदिच्य टोलक ब्राह्मण थे। सक्करपुर में उनकी समाधि है। उनके अनुयायी "खारवा" जाति के लोग उसकी समाधि की पूजा करते हैं।

वस्ताजी का जन्मसंवत् अज्ञात है, किन्तु सं० १८३१ में उन्होंने अमरपुरी गीता तथा सं० १८४१ में कक्का (अप्रसिद्ध) की रचना की थी। इसके आधार पर उनके जन्म का वर्ष सं० १८०० के आसपास होने का अनुमान किया जा सकता है।

रचनाएं—हिन्दी तथा गुजराती भाषा में उन्होंने अनेक रचनाएं की हैं। "अमरपुरी गीता'; की रचना अपने दादा गुरु अमरपुरी की स्मृति में की गई है।[3] इसमें गुरु तथा शिष्य के बीच सगुण-निर्गुण मत की चर्चा है। "वस्तु-विलास" में भी गुरु-शिष्य संवाद है। तदुपरांत मास, तिथि, वार; कक्का तथा सात सौ के ऊपर रचनाएं की हैं। कुछ रचनाएं पद, प्रभातियां एवं गरबी में हैं। उन्होंने २६४३ साखियाँ लिखी हैं। वस्तुगीता ज्ञानमार्गी कृति है। उन्होंने प्रायः ५०० गरबियों में अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति की अभिव्यक्ति की है। बारमास, तिथि आदि में हरि-विरह की भावना दृष्टिगत होती है।

परंपरा—वस्ता के नाम के साथ विश्वंभर का नाम उनकी वाणी में आता है; संभवतः इसके आधार पर डा० योगीन्द्र त्रिपाठी विश्वम्भर को उनका गुरु मानते हैं; किन्तु ये विश्वम्भर कौन थे, यह ज्ञात नहीं होता। डा० त्रिपाठी ने उनको रामानंदी कहा है, किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अनुराग सागर में

---

१. आ० गु० सं०, पृ० २००
२. प० प० सं०, पृ० ३६०
३. अमरपुरी गीता, डा० अनील त्रिपाटी, गु० सा० प० (सूरत), पृ० २१

कबीर के बारह पन्थ के प्रवर्तक शिष्यों में, रामकबीर संप्रदाय के प्रवर्तक के रूप में विश्वम्भर का नाम आता है।[1]

डा० रामकुमार गुप्त ने अपने प्रबन्ध में "वस्तावाणी" के गुटके में परम्परा के किसी शिष्य द्वारा प्रस्तुत वस्ताजी की परम्परा दी है, किन्तु वे स्वयं उसको असंदिग्ध नहीं मानते। उन्होंने वस्ताजी को गोपाल एवं नरहरि की परम्परा का ज्ञानी कवि माना है।[2] डा० गुप्त ने उनको अखा की परम्परा का सन्त माना है, तथा इसके समर्थन में निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत किये हैं।

(१) वस्ताजी की रचनाएं अखा की परम्परा वाले स्थान "ब्रह्मानन्द बंगलों" से प्राप्त हुई थीं।

(२) अखा, गोपाल, नरहरि आदि का इनकी पोथियों में उल्लेख है।

(३) "अखे गीता" की परम्परा में उन्होंने "वस्तुगीता", "गुरुगीता" तथा "अमरपुरी गीता" की रचना की है।

(४) "बावन बाहर", नुगरा सुगरा, ढीमर, गुरु गोविंद अथा झाकमझोल जैसे अखा-परम्परित शब्द उनकी वाणी में आये हैं।

(५) हिन्दी के ज्ञानाश्रयी कवियों की परम्परा का अनुसरण करती हुई एक रचना "मंगल" भी उन्होंने लिखी है।

डा० रामकुमार गुप्त की यह धारणा उपयुक्त लगती है, क्योंकि वस्ताजी की वाणी में उनके साथ इन संतों के नाम आये हैं।

"वस्ताराम ईश्वर बहलाकु, रख्या रामने उरमाला कु।
अखा, नरहर, बूटा गोपाला, ए चयों ब्रह्मानन्द के वाला॥"

अखा की वाणी का प्रभाव वस्ताजी की वाणी पर परिलक्षित होता है। गुरु के विषय में अखाजी ने कहा था "गुरु था तूं तारो तुज।" वही उन्होंने भी कहा, "गुरु आपमां आप।"

अखाजी की परम्परा पर हमने जो राम-कबीर संप्रदाय का प्रभाव देखा है तथा इस परम्परा के संत जीवणदास की अखाजी का गुरु होने की एक संभावना व्यक्त की है। वस्ताजी की वाणी पर यही प्रभाव परिलक्षित होता है

(१) रामकबीर संप्रदाय के "नामरूप" वाले सिद्धांत का विवरण वस्ताजी की वाणी में इस प्रकार है।

---

१. नवमो पन्थ सूनो धर्मदासा, दूत विश्वम्भर करे तमाशा।
राम कबीर पन्थ कर नाऊ, निरगुण सिरगुण एक मिलाऊ॥

२. हिं० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १७८

"शुद्ध स्वरूप जोयो जोश, नाम-रूप गुणनो नहीं दोष।"
वह एक मन की कल्पना है, जो पीछे समा जाती है।

(२) वस्ताजी ने जैसा "मंगल" लिखा, ऐसे मंगल रा० क० संप्रदाय के ग्रंथों में हैं।[१]

(३) इसी संप्रदाय में धनराज अध्यारु के कीर्तनों का पाठ किया जाता है। अध्यारुजी ने अपने लिये "अणछतो भगत" शब्द का प्रयोग किया है। वस्ताजी की वाणी में यह शब्द परम्परित हुआ है।

"गुरु आगल "अणछतो" धाय, पोते शमो गुण गुरुना गाय।"

(४) वस्ताजी खंभात के पास के "खारवा" जाति के गुरु थे। गुजरात में सर्वप्रथम इस जाति में कबीर ने मत-प्रचार किया था।[२]

(५) वस्ताजी के कुछ पद रा० क० संप्रदाय के भजन-संग्रहों में संकलित हैं। कबीर विचार-धारा का प्रभाव :—वस्ताजी ने गुरु के महत्व को स्वीकार किया था। गुरु सेवा है, गुरु ही पूजा है, गुरु समान अन्य कोई देव नहीं। तमाम शास्त्रों की चाबी गुरु है।

"गुरुही सेवा, गुरु ही पूजा, गुरु समरेव नहीं को दूजा।"

मन राम को पाने के लिये आतुर है, अतः मेरी वासना मर गई है। राम का मेरे आतमराम से मिलन जब होगा, मेरा तन-मन शीतल हो जायगा।

योगी उनको अगम्य कहते हैं, किन्तु श्याम के स्वरूप का भेद वे नहीं पा सके। वस्ता ने उनसे जो प्रेम किया है, उस प्रेम की बात वेद भी नहीं जानता।[३]

ब्रह्मरूप राम में से ये विभिन्न देवरूप निकले हैं। सब से बड़ा अचंभा यह है, कि इन नामरूपों में अरूप राम निहित है।[४]

मन पर विजय प्राप्त किये बिना मुक्ति संभव नहीं होती। वस्त्र को छोड़कर धूनी जलाने से या घर को छोड़ मठ में निवास करने से कोई लाभ नहीं। सारे अनर्थों की जड़ जैसे मन को मारना चाहिये।[५]

---

१. रा० क० म० म० सं०, पृ० ४६१
२. कबीर चरित्र (ई० स० १८८१) श्री वालजी वेचर (प्रेस्बीटेरिन चर्च, बोरसद)
३. एम० एस० युनिवर्सिटी पत्रिका, वो० १२ नं० १ अप्रैल, १९६३
४. अमर पुरी गीता, सं० डा० अनील त्रिपाठी
५. साखी ग्रंथ (अप्रसिद्ध) मनको अंग, पृ० २३३।

कबीर की भांति उन्होंने भी मिथ्याचार का विरोध किया है। सेवा पूजा को छोड़ भक्ति में मन लगाने का उन्होंने उपदेश दिया है। हम न गायेंगे, न स्नान करेंगे, न ताल मिलायेंगे, न पंडितों की पोथियाँ पढ़ेंगे। हम तो सहज ही अमरपद प्राप्त कर लेंगे।[1]

तप, तीर्थ, व्रत, दान, कोटि यज्ञ और योग राम के वियोग में दुश्मन जैसे हैं। वेद हद का मार्ग है, सन्त का मार्ग बेहद का है। जिसको गुरु-गम ज्ञान मिला है, वही हद-बेहद के भेद को जानता है।[2]

वस्ताजी की निम्नांकित वाणी में कबीरमत का प्रभाव द्रष्टव्य है।

"वेद नहीं, वाणी नहीं, नहीं को बोलनहार।
वहां लग रही बन्दगी, जहां आद्य पुरुष निरधार॥
सूरत लगी है सहज में, फोड़ चली आसमान।
यहां लग रही बन्दगी, जहां नहीं चन्दा भाण॥
हदे हदे सब को चले, बेहद धरे न पाय।
बेहद केरे पन्थमें, चलना हो सो आय॥
समुद्र में लहरी होत है, पीछे समुद्र समाऊं।
समुद्र समाणो लहरमें, सो कांठी क्यों जाऊं॥
सब घट साहेब देखिया, आप घट कहां जाय।
खोजत खोजत खोजिया, आपा रह्या समाय॥"

वस्ताजी ने कबीर की परम्परा में ऐसी उलटबासियां भी लिखी हैं।

"बापे बेटा जाइया, बेटे जाया बाप।
नेह कर्मा की रीत है, खोजो आपोआप॥"

वस्ताजी की कुछ वाणी पर कबीर वाणी का सीधा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

कबीर—राम राखे वैसा रहूं, जो देवे सो खाऊं।
वस्ता—जैम राखे तेम राखे राम, आपमतानु नहीं त्यां काम।
कबीर—जो घर जलादे अपना, वो चले हमारे साथ।
वस्ता—घर बाली तीरथ करे, उनका है यहां काम॥

(९) प्रीतमदास—सन्त कवि प्रीतमदास का जन्म बावला गाँव में भाट जाति में सं० १७७५ तथा १७८१ के बीच किसी वर्ष हुआ था। सं० १८१७ में

---

१. वस्तो कृत पद, पृ० १२०।
२. वस्ताकृत साखी-बेहद का अंग।

बावला छोड़ जब वे सन्देसर आये, तो उनकी उम्र चालीस वर्ष की बताई गई है।[१] इसके द्वारा उनका जन्म वर्ष सं० १७७८ निश्चित किया जा सकता है।

स्व० इच्छाराम सूर्यराम देसाई प्रीतम को विवाहित मानते थे, किन्तु भिक्षु अखंडानन्दजी की खोज में प्रीतम अविवाहित प्रतीत हुए थे। गुजराती साहित्य के इतिहासकार श्री कृष्णलाल झवेरी ने अखंडानन्द जी की खोज को अधिक विश्वस्त माना है।[२]

गुरु-परम्परा—कवि नर्मदाशंकर ने प्रीतम के विषय में कहा था, कि शैव होने पर भी शिव तथा विष्णु के बीच में, उन्होंने कोई भेद नहीं देखा था। "ए बे एक स्वरूप अन्तर नव गणशो।"[३]

श्री कृष्णलाल झवेरी ने नड़ियाद के गोविन्दराम को प्रीतम का गुरु कहा है, किन्तु प्रीतमदास ने अपनी वाणी में गुरु के रूप में "बापू" का नाम लिया है। श्री के० का० शास्त्री ने भाईदास को प्रीतम का गुरु तथा बापू को उनका गुरुबन्धु मान कर कहा कि "भाईदास की मृत्यु के पश्चात् प्रीतम ने बापू को गुरु रूप में माना था।[४] डॉ० रामकुमार गुप्त ने स्वामी रामानन्द से प्रीतमदास तक की परम्परा दी है, किन्तु उन्होंने स्वयं इसे खण्डित माना है।[५]

प्रभाव—रामकबीर-सम्प्रदाय के सन्त रविसाहब तथा सन्त निरांत प्रीतम के समकालीन थे। उनके साथ उनका मिलन-सत्संग होता रहता था। रविसाहब के दर्शनार्थ वे शेरखी गये थे। रवि के पत्र का जवाब उन्होंने पन्द्रह "चौक" में दिया है। उनके ऊपर इन निर्गुण सन्तों का प्रभाव पड़ना सहज था। श्री० के० का० शास्त्री ने निर्देश किया है, कि उनकी सबल ज्ञानपूर्ण रचनाएँ उत्तरावस्था की हैं।

निर्गुण-मत—(१) प्रीतम पूर्वावस्था में कृष्ण की सगुण भक्ति करते थे। ठाकुरजी की पूजा भी करते थे; किन्तु जब से उनको गुरुगम ज्ञान प्राप्त हुआ, तब से ईश्वर को आतमराम के रूप में घट में देखने लगे। वह अविनाशी, चैतन्य स्वरूप, शब्दातीत ब्रह्म उनको प्राप्त हो गया, अब कोई संशय नहीं रहा।[६]

(२) कृष्ण के अनन्य भक्त प्रीतम ने, उत्तरावस्था में समझा कि राम एवं कृष्ण में कोई भेद नहीं है। विश्वात्मा के उस रूप को प्रीतम ने पहचाना था।[७]

---

१. गु० सं० हि० वा० (स० प० युनि०) पृ० ६२
२. गु० सा० मा० सू० स्तं० द्वितीयावृत्ति, पृ० १७७
३. जूनुं नर्म गद्य—श्री विजयराम वैद्य, पृ० ४७१
४. गु० सं० हि० वा० (स० प० युनि०), पृ० ६२
५. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १६४
६. बृ० का० दो० भा० २, पद–५, पृ० ६६६
७. श्री० प्रीतमनी वाणी, पृ० ६८३

(३) प्रीतम ने इसे "राम" नाम से पुकारा, क्योंकि राम का नाम सर्व शिरोमणि है। प्रीतम ने रामरसायण पीने को कहा है। राम से अधिक महत्व उनके नाम को देते हुए उन्होंने कहा, कि नाम बिना मुक्ति नहीं है। तप, तीर्थ, व्रत, दान या यज्ञफल भी नाम के समकक्ष नहीं ठहर सकता।[1]

(४) कायारूपी काशी में आतमराम विश्वनाथ बसते हैं।

(५) प्रीतम उस अविनाशी आद्य-पुरुष की दासी है, अपने प्रियतम से पल भर भी अलग रहना उनको स्वीकार्य नहीं।[2]

(६) प्रीतम ज्ञानी कवि हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में आतमज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। यह गुरुगम ज्ञान है। हरि, गुरु एवं सन्त में भेद नहीं है। प्रीतम ने हरि-गुरु-सन्त की सेवा के गीत गाये हैं।

"आनन्द मंगल करू' आरती, हरि-गुरु-संतनी सेवा।"[3]

(७) प्रीतम ने भक्तिमार्ग के यात्री को "मरजीवा" कहा है। कबीर ने भी कहा था कि मरजीवा ही राम की कसौटी सह सकता है।

"राम कसौटी सो सहे, जो मरजीवा होय।"[4]

प्रीतम का एक पद "मरजीवा" गुजरात में अत्यन्त प्रसिद्ध है। हरि भक्ति का मार्ग बहादुरों का मार्ग है, कायरों का नहीं। समन्दर से मोती निकालने के लिये मरजीवा जान की बाजी लगाता है; ऐसे भक्तों को सुत, वित्त, दारा तथा अपने सिर की बाजी लगानी पड़ती है, तब महापद प्राप्त होता है।

कबीर-प्रभाव—प्रीतम के समय में रामकबीर-सम्प्रदाय के रविसाहब जैसे प्रभावशाली सन्तों का प्रभाव समाज में अत्यधिक था। तदुपरांत कबीर मत से प्रभावित सत्केवल पंथ, निरांत पंथ, तथा अखाजी की परम्परा का प्रभाव भी बलवत्तर था। प्रीतमदास पर कबीर, दादू तथा रविसाहब के प्रभाव को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है।

वि० वा० श्री० के० का० शास्त्री ने लिखा है; "इनकी परम्परा कबीर आदि सन्तों की थी, जो अखा तक आ चुकी थी।[5] प्रीतम पर रामकबीर सम्प्रदाय के सन्त रविसाहब के प्रभाव को श्री हिंमतलाल अंजारिया ने अपने साहित्य के इतिहास में स्वीकार किया है।[6] डॉ० अंबाशंकर नागर ने प्रीतम की वाणी में कबीर के

१. बृ० का० दो० भा० २, पृ० ६७६
२. प० प० सं०, पृ० २३३
३. पद संग्रह-संतराम मन्दिर, नड़ियाद, पृ० १५७
४. क० ग्रं० परिशिष्ट, पृ० २५०
५. गु० सं० हि० वा० (स० प० युनि०), पृ० ९७
६. साहित्य प्रवेशिका, पृ० ८५

सिद्धान्त तथा एक कवि की मृदुता को देखकर उनको दादू की कोटि का सन्त कहा है।"[१]

कबीर की भांति प्रीतम ने पंथ का विरोध कर भक्ति को अपनाया था। उन्होंने "आत्म ज्ञान" प्राप्त नहीं करने वाले पण्डितों की निन्दा की। शाक्तों को श्वानपुच्छ की उपमा दी, जो कभी सीधी नहीं होती। शाक्तों का संग करने से तो महाविष खाना अच्छा है।

"साकुट नरनो संग न करीए, मरीए महाविष खाई।"[२]

सत्नाम तथा सत्पुरुष जैसे शब्दों का प्रयोग प्रीतम की वाणी में हुआ है। प्रीतम ने सत्पुरुष के देदार की याचना की है।

"सत्नाम प्रभू तम तणु, सत्य सत्पुरुष विचार।
कहे प्रीतम शुद्ध भाव शु, दीजे नित्य देदार।"[३]

रामकबीर-सम्प्रदाय के ग्रंथों की वाणी के "मरजीवा", "अणछतो" तथा "हरि-गुरु-सन्त" जैसे शब्द प्रीतम की वाणी में भी आये हैं। प्रीतम ने अपनी साखियों को २४ अंगों में विभक्त कर ली थी। कबीर की परम्परा में उन्होंने तीन "रमैनी" भी लिखी थी।

(१०) रतनदास—गुजराती साहित्य में रतनजी नाम के तीन कवि हुए हैं। एक "विभ्रंशी राजानूं आख्यान" के कर्त्ता, दूसरा "चेलैया" आख्यान तथा "महिनाओ" का लेखक तथा "नरसिंह मेहता की हुन्डी" का लेखक।[४]

उक्त रतनदास ने नासिक के पास "वागलाण" में कुछ समय निवास किया था तथा सं० १७१३ में आख्यान की रचना की थी।

गुरु—उनके गुरु के विषय में एक भ्रम प्रवर्तित है। उन्होंने गुरु के रूप में "भाण" का नाम लिया है।

"रतनदास कहे भाण-प्रतापे, तेने छोडिये कम।।"[५]

इस प्रकार कहीं पर "भानू सूत" शब्द का प्रयोग भी है। इस विषय में श्री० के० का० शास्त्री ने दो सम्भावनाओं का निर्देश किया है। एक सम्भावना उनके पिता का नाम भानु या भाणजी होने की है, दूसरी रतनजी के भणसाली होने

---

१. गु० स० हि० वा०, गुर्जर भारती, अहमदाबाद, पृ० १९६
२. बृ० का० दो० भा० २, पृ० ६७४
३. वही, पृ० ६८३
४. कवि चरित भाग १-२, पृ० ४४६
५. गुजरात विद्या सभा-हस्तलिखित प्रति-क्रम २५४

की सम्भावना है। भणसाली व्यापारियों का नाम है, रतनदास व्यापारार्थ गुजरात से बाहर गये थे।[1]

उनका "भाण" शब्द का उल्लेख रामकबीर-सम्प्रदाय के सन्त भाण साहब के लिये होना चाहिए। गुजरात के सन्त-साहित्य के विद्वान् श्री माणेकलाल राणा ने भाण साहब के शिष्यों में रतनदास का उल्लेख किया है। रतनदास की गद्दी तथा स्थान सौराष्ट्र में वांकानेर में है। भाण साहब के अन्य शिष्यों ने भी अपनी वाणी में "गुरु भाण प्रतापे" लिखा है। भाण साहब का समय सं० १७५४-१८११ है। स्व० केशव हर्षद ध्रुव ने रतनदास को सं० १७७४ में रखा है। इससे ये भाण साहब के समकालीन ठहरते हैं।[2]

रतनदास की वाणी में रामकबीर-सम्प्रदाय के विभिन्न तत्वों के दर्शन होते हैं। उनमें साम्प्रदायिकता-विरोध, अभेद, अनुभूति के ज्ञान का महत्व, सन्तों का देश, हरि-गुरु-सन्त की सेवा तथा पिंड-ब्रह्मांड का ऐक्य प्रमुख है। उनकी वाणी का अवगाहन करने पर प्रतीत होता है, कि रतनदास रामकबीर-सम्प्रदाय के सन्त भाण साहब के ही शिष्य थे।

(११) मनोहर स्वामी—ये जूनागढ़ के नागर थे। उनको संस्कृत, फारसी, हिन्दी एवं गुजराती भाषा का ज्ञान था। उनका समय सं १८४४ से १९०१ था। सं० १८६५ में, कहते हैं, उन्होंने संन्यास धारण किया था। वैष्णव स्मार्तों द्वारा परेशानी तथा एक जाली दस्तावेज के झूठे आक्षेप के कारण वे संसार से विरक्त हो गये थे।[3]

उनकी वाणी में बाह्याचार, मूर्ति-पूजा, तीर्थयात्रा आदि का विरोध लक्षित होता है। उन्होने कहा कि गले में बहुत मालाएँ डाल कर ये लोगों के धन का हरण करते हैं।

"तूला कन्ठी गरे बहु डारिके, पामर नरके धनहि हरैया।"

लाखों लोग मूर्ति को पूजा करते हैं। किसी की मूर्ति बोली नहीं, तथापि मूर्ख लोग उसी मार्ग पर चलते हैं।[4] जप-तप-तीर्थ, व्रत-स्नान-दान आदि को छोड़ कर हृदय के सच्चे प्रेम का प्रश्रय लेना चाहिये, ऐसा उन्होने लिखा है।

(१२) संत कवि छोटम्—ये अखा-परम्परा के सन्त कुबेरदास के शिष्य

---

१. कवि चरित भा० १-२, पृ० ६२८

२. भाण साहेब, पृ० १११

३. हि० सा० गु० सं० क० दे०, पृ० १६३

४. पांचवीं गुजराती साहित्य परिषद् नो अहेवाल, पृ० ३०

थे । "छोटम् कुबेर कृपा थकी, उघड़े नेत्र अनन्त ।"[1] कहते हैं, सन्त कुबेरदास की वाणी तथा उपदेश को वे लिख लेते थे । गुजराती साहित्य में वे एक ज्ञानी-कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । मलातज (सांठोदरा) में एक नागर परिवार में उनका जन्म सं० १८६८ में हुआ था । अपना सारा जीवन अध्यात्म की उपासना में बिताने में उनके भाइयों ने उनकी मदद की थी । उनको नर्मदा तट पर किसी पुरुषोत्तम आचार्य नाम के योगी से ब्रह्म का उपदेश मिला था । ७३ वर्ष की उम्र में सं० १९४१ में उन्होंने जीवन्त-समाधि ले ली ।

उन्होंने योगाभ्यास किया था, अतः योग के शब्द उनकी वाणी में सहज ही आ गये हैं ।

"अनहद का डंका बजा, देख लो, शून्य मंडल की मजा ।"

कुबेरदास का पंथ कबीर मतावलम्बी है । छोटम् कुबेरदास के शिष्य थे, अतः उनकी वाणी पर भी कबीर का प्रभाव है ।

कबीर-मत का प्रभाव—रचनाएँ-कीर्तन, महीना, भक्ति-निरूपण, रास-भूमिका, विवेक वर्णन, ब्रह्म-निरूपण, आत्मा-अनात्मा विवेक, अक्षरबावनी, सांख्य सार एवं साखी जैसी अनेक विध रचनाएँ उन्होंने हिन्दी तथा गुजराती में की हैं । उनकी साखियाँ कबीर वाणी की भांति अंगों में विभक्त हैं । कबीर की परम्परा में "बादल बिन, बीज चमकारा" जैसी उलटबांसियाँ भी उन्होंने लिखी हैं ।

गुजराती साहित्य के समीक्षकों ने अखा की भांति छोटम् को भी ज्ञानी-कवि मान लिया है; किन्तु कबीर परम्परित राम-भक्ति का प्रश्रय उन्होंने लिया था । भक्ति के विषय में उन्होंने लिखा है, कि भक्ति से ही मुक्ति मिलती है । उनके रोम-रोम में रामरस का अमल हुआ है; "रामरस रोमे-रोमे चढ़े ।"[2] उनके राम दशरथ पुत्र राम नहीं हैं; वे तो निरालम्ब, निर्लेप एवं गुणातीत हैं । "ते निरालम्ब निर्लेप है, गुणातीत साक्षी सदा ।" ईश्वर का मूल रूप निर्गुण है, वह कभी-कभी गुणों को धारण करता है । वह एक बड़ा बाजीगर है, संसार उनकी बाजी है; इसे कोई नहीं समझ सकता ।[3]

पोथी का ज्ञान व्यर्थ है, अनुभूति का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है, जो गुरु बिना प्राप्त नहीं होता । "ज्ञान न उपजे गुरु बिना ।" पुराणों में पारस लिखा हो, इससे लोहा सोना नहीं होता, वह तो पारस के स्पर्श से होता है ।[4]

---

१. त्रि० ता० सं०, पृ० १८१

२. प० प० सं०, पृ० २४

३. छोटम्नी वाणी, पृ० ७

४. वही, पृ० ६

सत्य की पहचान के बिना योग, जप, तप, तीर्थ सब व्यर्थ है। दंभी गुरुओं का पर्दाफाश करते हुए उन्होंने लिखा था, कि पाखंड पृथ्वी को खा गया, सत्य की प्राप्ति नहीं हुई। इन ठग गुरुओं ने धर्म का बड़ा नुकसान किया है।[1]

कबीर साहब की वाणी का छोटम् की वाणी पर पड़े प्रभाव का एक दृष्टांत निम्नांकित है।

छोटम—"हम बासी उस देश के, जहां अगम्य का खेल।
दीप जरैं अगम्य का, बिन बाती बिन तेल।"

कबीर—"कोई देखो रे आ घट नो खेल
जामें दीप जले, बिनबाती, बिन तेल।।"[2]

आधुनिक काल के कवि

(१) कवि नर्मद—सूरत के कवि नर्मदाशंकर (सं० १८९०-१९४३) गुजराती वर्तमान-साहित्य के अग्रदूत माने जाते हैं। बहुत कम लोग जानते हैं, कि अपनी युवावस्था में प्रेम एवं शौर्य के गीत गाने वाले कवि ने अपनी उतरावस्था में नीति एवं निष्ठा के प्रति अपने आपको ले जाने के लिये अदृष्ट के हाथ में अपने को असहाय छोड़ दिया था। अपने उत्तरकाल में उन्होंने ज्ञान एवं वैराग के प्रायः २०० पद लिखे थे, जिनमें से अधिकांश हिन्दी में हैं। ये पद आत्मलक्षी हैं।[3] उन्होंने संसार की लीला देखी थी, इसलिये ब्रह्म की उपासना की थी।

"पनघट लीला देख ही नर्मद, निशदिन रहत ब्रह्म-पूजैया।"[4]

ज्ञान एवं भक्ति की तुलना करते हुए उन्होंने कहा था, कि ज्ञानी को लोग मानते हैं, किन्तु भक्ति से तो परब्रह्म की पहचान होती है। परब्रह्म से उनको प्रेम था। उनके विरह में चकोर एवं मीन जैसी तड़पन है। अगम्य के अनुराग की ज्योति सदा जलती रहती है।

"कमल चहत है सूरको, चन्दा चहत चकोर।
जल बिन तलपत मीन मैं, मत तोड़ कलेजे की कोर।।"

(२) शामल भट्ट—गुजराती साहित्य में कबीर वाणी का प्रभाव शामल भट्ट जैसे कथाकार को भी कैसे स्पर्श कर गया है, यह द्रष्टव्य है। ईश्वर-प्राप्ति में मिथ्याचार की व्यर्थता शामल ने कबीर के शब्दों में ही अभिव्यक्त की है।

---

१. वही, पृ० १३
२. प० प० सं०; पृ० १२८
३. अर्वाचीन कविता, पृ० ३४
४. हि० वि० गु० फा०, पृ० १९३

कबीर—"मुँड मुँडाये जो सिद्धि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँची कोई ।
नागे फिरे जोग जे होई, वन का मृग मुक्ति गया कोई ।"
"कहा भयो तिलक, गरे जपमाला, मरम न जाने मिलन गोपाला ।"[1]
शामल—"जटा धरे वटवृक्ष, पतंग निज बाले काया ।
जलचर जलमें न्हाय, ध्यान धरवा बग धाया ।
गाडर मुंडावे शिष, अजा मुख दाढ़ू राखे ।
गर्दभ लोटे छार, शुक मुख रामज भाखे ।
वली मोर तजे छे मानिनी, श्वान सकलनु खाय छे ।
कवि शामल कहे साचा विना, कोण स्वर्ग में जाय छे ?"

(३) मणिलाल द्विवेदी—श्री मणिलाल द्विवेदी (सं० १९१४-१९५४) नड़ियाद के निवासी थे । ये "प्रेममय उपास्य ब्रह्म" मे मानते थे । उन्होने लिखा है, कि ब्रह्म की आभा मेरे दिल में छा रही है, नयन उस रस से भरे हैं, पलक नहीं लगती, नित्य नवीन सुधा बरस रही है । विविध रंगी संसार में चारों ओर ब्रह्मानंद का नर्तन होता है ।[2] ब्रह्म का यह खेल अनादि एवं अनन्त है । "सन्तो ! खेल अनादि अनन्त ।" द्विवेदी जी ने अपने आपको प्रेम का पागल फकीर कहा है, जो "निरंजन" के नाम का "जामा" पहनता है ।[3] अपने उस्ताद से प्रेम का प्याला उन्होने पिया है, फिर पता चला, कि पीने वाला तथा पिलाने वाला एक है ।[4]

माया भेद उपस्थित करती है, अन्यथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश एक हैं । "आतम-ब्रह्म" को छोड़ कर अन्य किसी की खोज नहीं करनी चाहिये ।

सर्वत्र अभेद है; मैं "तुम" हूँ, और तुम "मैं" हो; मैं सब हूँ, तथा सब में "मैं" हूँ । मैं अभेद का मन्त्र जपता हूँ, अभेद ही मेरा वेद है ।[5]

हिन्दू-मुस्लिम भेद, पण्डिताई, बाह्याचार, मन्दिर तथा मूर्ति का कबीर की भांति उन्होंने विरोध किया है ।

हिन्दू एवं मुसलमान को वे नमस्कार करते हैं । अभिमानी पण्डित, मौलवी तथा पादरियों को उन्होंने कहा कि तुम्हे प्रेम के जाम पीने की जरूरत है ।

---

१. क० ग्रं० पद १३२-१३६, पृ० १३०-१३१
२. आपणी कविता समृद्धि स० ब० क० ठाकोर, पृ० ७२
३. आत्म-निमज्जन, पृ० २२
४. आत्म-निमज्जन, पृ० ३०
५. आत्म-निमज्जन, पृ० ७२

व्रत, तप, योग या पूजा-प्रसाद सब झूठ है। वेदांती पण्डितों ने यह जाल बनाया है। अन्यथा मन्दिर, काबा, कुश आग, तस्वीं, भभूत, तिलक की छाप आदि निरर्थक हैं। दिल की श्रद्धा एवं प्रेम की आवश्यकता है।[1]

द्विवेदीजी ने लिखा है कि मुझे अभिमान का त्याग करना चाहिये, क्योंकि अपने आपको भूले बिना मैं तेरे में लुप्त नहीं हो सकता।[2]

(४) खबरदार— श्री खबरदार ने निम्नांकित रचनाएँ गुजराती में की हैं। काव्य-रसिका, विलासिका, प्रकाशिका, भारत नो टंकार, संदेशिका, रासचंद्रिका, भजनिका, दर्शनिका, कल्याणिका, राष्ट्रिका तथा नन्दनिका। "लघे-गीता" नाम की एक अन्य रचना भी प्रसिद्ध है।[3] इन संग्रहों में से भजनिका एवं दर्शनिका में कवि अभेद एवं आत्म-चेतना में निमग्न होता है। संसार में एक आत्मा ही सत्य है। आत्मा के तेज बिना बुद्धि पंगु है। सर्जनहार अपने सर्जन में भी व्याप्त है। काया कच्चा कुंभ है, किन्तु चैतन्य रूप जीव सत्य है। अन्तर में स्नेह रखकर मनुष्य जगत् में सबको निजरूप में देखेगा।

"मानवी सर्व निजरूप जोशे जगे, अंतरे स्नेह स्थापी सदानो"[4]

(५) पूजालाल—श्री ब० क० ठाकोर ने पूजालाल को नरसिंह-मीरां के ढाई शताब्दी पश्चात् हुए भक्त-कवि के रूप में देखा है।[5] पूजालाल ने सहज भक्ति भाव से अलख-काव्य की रचना की थी।

"कथा अलख काव्य नी, सहज भक्ति-भावे सजे।"[6]

जगत् की उत्पत्ति का कारण एवं मूल सोहं की ज्योति को माना है; उसके द्वारा ही मनु ने स्थिर राज्य की स्थापना की थी।

सोहंतणी अलख ज्योत विराट व्यापी।
राजे मनु प्रभु तहीं, स्थिर राज्य स्थापी।।[7]

आराध्य सत्यरूप है; कवि उनके सुपवित्र आदेश को कार्यरत करने वाला साधन बनना चाहता है। उस अरूप ज्योति में अपनी ज्योति को मिलाने के लिये

---

१. वही, पृ० ३८
२. वही, पृ० ३२
३. साहित्य प्रवेशिका, पृ० २६२
४. दर्शनिका
५. पारिजात प्रवेशक, पृ० १४
६. पारिजात-तारो लहियो
७. वही; मनु प्रभु; पृ० २४

अपने शरीर, मन, प्राण आदि को खींच कर मिला लेने की प्रार्थना वे करते हैं। "अतिथि" काव्य में अनन्त से प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा, कि विराट वामनरूप धारण करके इस कुटिया रूपी शरीर में आयेगा। जगत् की उत्पत्ति, वह देश, सत्य, तत्व, अलख की भक्ति तथा आतमराम का ज्ञान जैसे कबीर-विचारधारा के तत्व पूजालाल की वाणी में दृष्टिगोचर होते हैं।

(६) ललित—सूरत निवासी श्री ललितशंकर-लालशंकर व्यास (सं० १९०५ से १९७७) जाति के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। अपने उत्तरकाल में वे स्वामी पूर्णानन्द के प्रभाव में आये थे। उन्होंने भारत खण्डनो इतिहास, करणघेलो, हरिश्चन्द्र, समरपृथु, पांडव-विजय, राम-विजय जैसे नाटक तथा "ललित काव्य संग्रह" जैसे काव्य-ग्रंथ लिखे हैं।

ब्रह्म का मूल रूप निर्गुण निरंजन है। उन्होंने कहा था, "भवभन्जन प्रभू आप निरंजन।"[1] ये परात्पर-ब्रह्म जगत् का कर्त्ता है; ये वाणी में नहीं आते, अतः शब्दातीत हैं। "वाणी थकी पर आप विराजो।"[2] ललित ने उनको "रामनाम" से पुकारा है। संसार में रामनाम सत्य है, उनको छोड़ तू कहाँ जायगा? "छोड़ी सत्य रामनाम, तू जईश कोनी पासे?"[3]

राम से बड़ा राम का "नाम" है। सन्तों के लिये हमेशा नाम का आधार है। ईश्वर को खोजने दूर क्यों जाते हो? जगत् का स्वामी तुम्हारे में स्थित है। उस आत्म-तत्व को पहचानना चाहिये।

छे तुजमां जग जगनाथ, जग तुजमय पुरण ताल।
तु आत्म-तत्व एक जात ।।"[4]

कबीर-प्रवर्तित "सत्य" शब्द का प्रयोग ललित की वाणी में अनेक बार हुआ है। सत्यनाम तथा सत्यशिखर जैसे शब्दों के प्रयोग उनको कबीरपंथ के निकट ला देता है।

सत्य शिखर पर करशे गमन।
ने पामशे नूर अखंड ।।"

(७) करसनदास माणेक—श्री माणेक अलख की धुन में मस्त रहकर अक्षर-आराधना करते हैं। कबीर की भांति उनमें समाज सुधार के साथ आतमराम की उपासना भी है। उन्होंने मूर्ति-स्थानों की निन्दा की है। आत्मा के गहन वन में

---

१. ललित काव्य संग्रह, पृ० ८
२. वही, पृ० १९
३. वही, पृ० १२१
४. वही, पृ० १२

माणेक ने आत्मा की आवाज सुनी है, यह उनकी अन्तिम प्रार्थना थी ।[1] अलख ब्रह्म के चिरंतन रास में आनन्द-प्राप्ति होती है । स्वप्नों की अशाश्वत दुनिया एवं इन्द्रियों की शय्या छोड़कर राम का नाम लेना चाहिये । राम तथा आतमराम एक तथा अभिन्न हैं, इसलिये उन्होंने प्रथम आतमराम को जगाया है । "जागो आतमराम ।" इनका मत है, कि आत्मा का माया से उद्धार आत्मा ही कर सकती है । आत्मा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा है, कि "तू क्यों खल्क में खो गई है ? तू अनन्त के रंग में मस्त थी । विराट से वामन बनकर क्यों प्रपंच में फँस गई थी । असीम गगन को छोड़ शरीर की सीमा में क्यों बंद हो गई ? सार्वभौम स्वामित्व छोड़ कर हीनों की हुकूमत में तू कैसे आ गई ?[2] उर के अँधेरे में माणेक ने रामरूपी दीप प्रज्ज्वलित किया है ।

ब्रह्म तथा पत्थर की मूर्ति भिन्न हैं । खालिक खल्क में कहीं खो गये हैं, और दुनिया पत्थर की पूजा करती है । "खालिक तो क्यांक खोवाणा, पूजी रह्या पामर पाणा ।"[3] वे ईश्वर मन्दिर में नहीं जाते, क्योंकि वहाँ भेदभाव है ।[4]

अपनी प्रसिद्ध कविता "हरिनां लोचनियाँ" में माणेक ने समाज में प्रवर्तित असमानता, भेदभाव, वहम, अंधश्रद्धा आदि पर कटु व्यंग किया है । उन्होंने अपने उपास्य के लिये "सत्" एवं "ज्योति" शब्द का प्रयोग किया है । उन्होंने लिखा है कि ब्रह्मांड के दिये में सत् का घृत छलछला रहा है ।[5]

(८) सुन्दरम्—गुजराती साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि सुन्दरम् ने अखा भगत, भोजा भगत तथा धीरा भगत की परम्परा में "कोया भगत" नाम धारण कर धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्ड का पर्दाफाश किया था । अपनी कटु उक्तियों वाली उन कविताओं को उन्होंने "कोया भगतनी कड़वी (कटु) वाणी" नाम दिया था । प्रताड़ित एवं पददलित जनों के प्रति उनके मन में संवेदना थी । अपने उत्तरकाल में सुन्दरम् की वाणी में श्रद्धा एवं भक्ति का स्वर सुनाई देने लगा । तदनन्तर "यात्रा" में अगम्य की रहस्यात्मक अनुभूति के दर्शन होने लगे ।[6] सुन्दरम् में कबीर की भांति ज्ञान, भक्ति एवं योग के समन्वय का निर्देश मिलता है । उनकी वाणी में कबीर की रहस्यात्मकता भी है ।

---

१. समर्पण-आलवेल
२. श्रावण-भादरवो संकीर्तन, पृ० ६०
३. वही, पृ० ११
४. आलवेल-आफतनो अवाज
५. वही, पृ० ६४
६. साहित्य प्रवेशिका, पृ० ३५६

कवि ने आत्मज्योति के दर्शन किये हैं, इसलिए उनको यह प्रश्न होता है, कि मैं किसको नमन करूँ ? किसके स्तोत्र का गान करूँ ?"[1] उस गगनचारी ब्रह्म से अपने को ले लेने की कवि प्रार्थना करता है। उस आकाश रूपी दीप पात्र में जलती हुई उस झलमल ज्योति के लाख-लाख स्रोत हैं। कवि उस विराट को अपने अन्तर के आवास में कदम रखने का निमन्त्रण देता है।

"मारे अन्तर ने आवास, प्रभु । तारी पगली पडे।" विराट की मूर्ति अंगुली-सी बनकर अन्तर में आकर झलमल ज्योति-सी जल रही है। ये ही "राम" हैं; किन्तु ये दुनिया के तथा सीता के राम नहीं हैं, ये सर्जनहार-राम हैं।[2] उनसे उन्होंने विवाह किया है। उनको पाकर वे सुभागी बन गई हैं।

"मेरे पिया । तुम अमर सुहागी, तुम पाये मैं बड़ु बड़भागी।"

आत्मा एवं परमात्मा के विवाह-मिलन से एकात्म भाव की स्थापना हुई है।

सुन्दरम् ने मूर्ति या मन्दिर को महत्व नहीं दिया। उन्होंने लिखा है, कि भगवान् के नाम का झूठा बहाना बनाकर ये मन्दिर बनाये गये थे। मैं बीसियों मालाएँ नहीं पहनूंगा, छापातिलक नहीं करूँगा, द्वारका-डाकोर की यात्रा नहीं करूँगा, पत्थर की मूर्ति को प्रसाद नहीं धरूँगा, मैं मात्र दरिद्रनारायण की सेवा करूँगा।"[3]

(९) उशनस्—गुजराती साहित्य की वर्तमान कविता में ज्ञान-भक्ति की परम्परा कुछ धुँधली-सी नजर आती है, तथापि वर्तमान समय में कुछ ऐसे संवेदनशील कवि हैं, जो ज्ञान, भक्ति एवं योग के समन्वयात्मक प्रभाव से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सके। ब्रह्म के निगूढ़ तत्व के प्रति ये आकर्षित हुए हैं। अगम्य को गम्य करने का प्रयत्न उन्होंने किया है। ब्रह्म की निगूढ़ता तथा अपनी मूढ़ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है।

"हे निगूढ़ । हे सुरम्य ।
पूर्ववत् रह्यो हजीय तुं, अगम्य नो अगम्य ।।
पूर्ववत् रह्या अमे, विमूढना हजी विमूढ ।।"[4]

"अहमद नो सरहदे" काव्य में कवि ने अपने सुन्दर वर से मिलन की याचना की है। साँई की सूरत उनके नयनों में बस गई है। सारे संसार में प्रियतम की

---

१. यात्रा; पृ० ६
२. वही, सीताजीनो पोपट, पृ० १८
३. साहित्य प्रवेशिका हरिनो जवाब, पृ० १२
४. सांप्रत साहित्य—मनोमुद्रा

सांवरी सूरत के दर्शन सहज समाधि में हुए।[१] कवि प्रियतम की प्रतीक्षा में हर घड़ी विवाह-चुनरी पहनते हैं, न जाने कब प्रियतम आकर विवाह कर लें।[२]

सन्तों की यौगिक-शब्दावली का प्रयोग उनकी वाणी में हुआ है। सुरत-निरत, अरध-उरध, गगन, निरंजन, ज्योत, अनहदनाद तथा सहज समाधि जैसे शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं, जो कभी सन्तों की वाणी में आते थे। 'समन्दर सरिता के रूप में आकर उनमें ढलता है; उनकी मस्ती में तरंगें उठती हैं।' समन्दर को ब्रह्म, सरिता को आत्मा तथा तरंगों को संसार का रूपक देकर कवि ने ब्रह्म के तंत्र को समझाया है।

मायारूपी यह संसार तथा सामाजिक मतों की संस्कृति आत्मा एवं परमात्मा के बीच दीवार बनकर आती है। कवि कहता है, "मैं ससीम हूँ और आप असीम हैं, मैं छोटा हूँ, और आप बड़े हैं; हमारे प्रेम के मार्ग में संस्कृति की यह दीवार खड़ी है।[३] उपरान्त बाह्याचार के स्थान पर प्रेम को महत्त्व देते हैं, यह सन्त कवियों की परम्परा है।

"ज्ञान ध्यान तप कछु नहीं जानूँ।
प्रेम-पदारथ सहज पीछानूँ॥"[४]

(१०) सुधांशु—सुधांशु का नाम दामोदर भट्ट है। सौराष्ट्र में पोरबन्दर में रामटेकरी पर उनका निवास है। "रामसागर", "अलख तारो" तथा "सोहम्" नाम के उनके काव्यों के तीन संग्रह प्रसिद्ध हुए हैं। उनके काव्य-संग्रह के नामकरण से उनकी रामभक्ति, अलख उपासना, तथा आतमराम की भक्ति का निर्देश मिलता है। सुधांशु को "अभेद का उपासक सोहम् वीर", "पुरानी परम्परा का मीठा झरना", तथा "मरजीवा" के उपनाम विभिन्न साहित्यकारों द्वारा प्राप्त हुए हैं।[५]

अपने जीवन में निरन्तर संघर्षरत रहने पर भी उनकी कविता भौतिक धरातल को छोड़कर अध्यात्म के विहंगम मार्ग से गुजरती है। वे स्वयं निर्धन हैं; किन्तु परिस्थितियों से उनकी कोई फरियाद नहीं, वरन् संतोष है। वे समन्दर-तट के निवासी हैं। समन्दर से एक मटकी भर जल माँगते हैं, वह यदि न मिले, तो एक अंजलि भर से भी चल जायगा, किन्तु यह भी यदि न मिले, तो भी संतोष है।

उनकी स्वभावगत नम्रता के साथ उनमें कबीर-सी मस्ती भी है।

---

१. प्रसून
२. आर्द्रा
३. मनोमुद्रा
४. हि० वि० गु० फा०, पृ० ६६
५. सांप्रत साहित्य, पृ० १०४

कवि ने आत्मज्योति के दर्शन किये हैं, इसलिए उनको यह प्रश्न होता है, कि मैं किसको नमन करूँ ? किसके स्तोत्र का गान करूँ ?"[1] उस गगनचारी ब्रह्म से अपने को ले लेने की कवि प्रार्थना करता है। उस आकाश रूपी दीप पात्र में जलती हुई उस झलमल ज्योति के लाख-लाख स्रोत हैं। कवि उस विराट को अपने अन्तर के आवास में कदम रखने का निमन्त्रण देता है।

"मारे अन्तर ने आवास, प्रभु । तारी पगली पडे।" विराट की मूर्ति अंगुली-सी बनकर अन्तर में आकर झलमन ज्योति-सी जल रही है। ये ही "राम" हैं; किन्तु ये दुनिया के तथा सीता के राम नहीं हैं, ये सर्जनहार-राम हैं।[2] उनसे उन्होंने विवाह किया है। उनको पाकर वे सुभागी बन गई हैं।

"मेरे पिया । तुम अमर सुहागी, तुम पाये मैं बड़ बड़भागी।"

आत्मा एवं परमात्मा के विवाह-मिलन से एकात्म भाव की स्थापना हुई है।

सुन्दरम् ने मूर्ति या मन्दिर को महत्व नहीं दिया। उन्होंने लिखा है, कि भगवान् के नाम का झूठा बहाना बनाकर ये मन्दिर बनाये गये थे। मैं बीसियों मालाएँ नहीं पहनूंगा, छापातिलक नहीं करूँगा, द्वारका-डाकोर की यात्रा नहीं करूँगा, पत्थर की मूर्ति को प्रसाद नहीं धरूँगा, मैं मात्र दरिद्रनारायण की सेवा करूँगा।"[3]

(६) उशनस्—गुजराती साहित्य की वर्तमान कविता में ज्ञान-भक्ति की परम्परा कुछ धुँधली-सी नजर आती है, तथापि वर्तमान समय में कुछ ऐसे संवेदनशील कवि हैं, जो ज्ञान, भक्ति एवं योग के समन्वयात्मक प्रभाव से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सके। ब्रह्म के निगूढ़ तत्व के प्रति ये आकर्षित हुए हैं। अगम्य को गम्य करने का प्रयत्न उन्होंने किया है। ब्रह्म की निगूढ़ता तथा अपनी मूढ़ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है।

"हे निगूढ़ । हे सुरम्य ।
पूर्ववत् रह्यो हजीय तुं, अगम्य नो अगम्य ।।
पूर्ववत् रह्या अमे, विमूढना हजी विमूढ ।।"[4]

"अहमद नो सरहदे" काव्य में कवि ने अपने सुन्दर वर से मिलन की याचना की है। सांई की सूरत उनके नयनों में बस गई है। सारे संसार में प्रियतम की

---

१. यात्रा; पृ० ६
२. वही, सीताजीनो पोपट, पृ० १८
३. साहित्य प्रवेशिका हरिनो जवाब, पृ० १२
४. सांप्रत साहित्य—मनोमुद्रा

सांवरी सूरत के दर्शन सहज समाधि में हुए।[1] कवि प्रियतम की प्रतीक्षा में हर घड़ी विवाह-चुनरी पहनते हैं, न जाने कब प्रियतम आकर विवाह कर लें।[2]

सन्तों की यौगिक-शब्दावली का प्रयोग उनकी वाणी में हुआ है। सुरत-निरत, अरध-उरध, गगन, निरंजन, ज्योत, अनहदनाद तथा सहज समाधि जैसे शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं, जो कभी सन्तों की वाणी में आते थे। 'समन्दर सरिता के रूप में आकर उनमें ढलता है; उनकी मस्ती में तरंगें उठती हैं।' समन्दर को ब्रह्म, सरिता को आत्मा तथा तरंगों को संसार का रूपक देकर कवि ने ब्रह्म के तंत्र को समझाया है।

मायारूपी यह संसार तथा सामाजिक मतों की संस्कृति आत्मा एवं परमात्मा के बीच दीवार बनकर आती है। कवि कहता है, "मैं ससीम हूँ और आप असीम हैं, मैं छोटा हूँ, और आप बड़े हैं; हमारे प्रेम के मार्ग में संस्कृति की यह दीवार खड़ी है।[3] उन्होंने बाह्याचार के स्थान पर प्रेम को महत्त्व दी है, यह सन्त कवियों की परम्परा है।

"ज्ञान ध्यान तप कछु नहीं जानूँ।
प्रेम-पदारथ सहज पीछानूँ ॥"[4]

(१०) सुधांशु—सुधांशु का नाम दामोदर भट्ट है। सौराष्ट्र में पोरबन्दर में रानटेकरी पर उनका निवास है। "रामसागर", "अलख तारो" तथा "सोऽहम्" नाम के उनके काव्यों के तीन संग्रह प्रसिद्ध हुए हैं। उनके काव्य-संग्रह के नामकरण से उनकी रामभक्ति, अलख उपासना, तथा आत्माराम की भक्ति का निर्देश मिलता है। सुधांशु को "अभेद का उपासक सोहम् वीर", "पुरानी परम्परा का मीठा झरना", तथा "नरजोता" के उपनाम विभिन्न साहित्यकारों द्वारा प्राप्त हुए हैं।[5]

अपने जीवन में निरन्तर संघर्षरत रहने पर भी उनकी कविता भौतिक धरातल को छोड़कर अध्यात्म के विहंगम मार्ग से गुजरती है। वे स्वयं निर्धन हैं; किन्तु परिस्थितियों से उनकी कोई फरियाद नहीं, वरन् संतोष है। वे समन्दर-तट के निवासी हैं। समन्दर से एक मटकी भर जल मांगते हैं, वह यदि न मिले, तो एक अंजलि भर से भी चल जायगा, किन्तु यह भी यदि न मिले, तो भी संतोष है।

उनकी स्वभावगत नम्रता के साथ उनमें कबीर-सी मस्ती भी है।

---

१. प्रसून
२. आर्द्रा
३. मनोमुद्रा
४. हिं० वि० गु० फा०, पृ० ६६
५. सांप्रत साहित्य, पृ० १०४

कवि ने शब्द को देखा है, उसकी ध्वनि उसके भीतर छा गई है। उसकी रनकार अन्तर में रह गई और विराट में मिल गई है। आत्मा एवं परमात्मा का विवाह एवं मिलन गगनमन्डल में होता है। नीलगगन की कुंजों में स्नेह की धाराएं बहती हैं। "नील की कुंजो मां नेहधारा नीखरे।" सितारों के वल्लवित तोरणों से घिरे हुए "गगन-माह्वरा" में आतम-परमात के लिए दूल्हा-दूल्हान के गीत कवि ने गाये हैं।

"आपणो सहाचार, अभिसार आतम नो।"

उस समय हरिहर के ताल में अलख के "मंजीर" बजते हैं।[1] गुरु में जो ऊंकार है, वही ब्रह्म घट-घट में है; राम नाम का यह एक ही तत्व है, दूर जाना नहीं है, स्वयं ताला है, तथा स्वयं उसकी चाबी भी है।[2]

(११) राजेन्द्र शाह—यद्यपि ये नयी पीढ़ी के कवि हैं, उनकी अभिव्यक्ति बौद्धिक मात्र नहीं, अनुभूतिजन्य हैं। उनकी वाणी में स्थूल एवं सूक्ष्म ध्वनि का प्रयोग है। श्री राजेन्द्र शाह श्रेय साधक अधिकारी वर्ग के सभ्य हैं। इसके संस्थापक नृसिहाचार्य अखा की परम्परा के सन्त थे। अखा की परम्परा कबीर मतावलम्बी है अतः राजेन्द्र शाह पर कबीर मत का प्रभाव स्वाभाविक है। उन्होंने अपने एक ही गीत में सृष्टि, ब्रह्म, "काया", आत्मा आदि का सम्बन्ध तथा स्थिति समझा दी है। अलख आत्मा शरीर की कोठरी में बन्द है। ब्रह्म ने अपने ही आनन्द के लिये अनेक होकर संसार की रचना की थी। माया की सहायता से उन्होंने ऐसा खेल रचा, कि स्वयं अलग अनजान होकर छुप गया। भेद जानने वालों ने उनको अपने में ही देखा, तथा अन्य में अपने ही संगी को भी देखा।[3]

उनका भेद नयनों से नहीं पाया जा सकता, क्योंकि वे अरूप हैं। उसकी सुषुमना का तार कौन बजाता होगा? मन्दिर में "शब्द" सुनकर वे मान को गंवा देती हैं। अमृत की प्राप्ति होती है। ये अदृष्ट कब पहचाने जायेंगे?[4]

---

१. राम सागर

२. वही, पृ० १४६

३. कायाने कोटडे बंधायो, अलख मारो लाखेणा रंगमा रंगायो।
कोई रे ज्यां न्होतुं त्यारे, निज ते आनन्द काजे—
झाझानी झंखनाओ कीधी।
घेरा अंधार केरी मुंगी शून्यताने, माया ने लोक भरी लीधी ।। अलख०
नजरुं नो खेल एवो रच्यो ने जोनार थी ज्यां अलगो संतायो अणजाण्यो
जाणरे भेद ए जोयो, निजमां बीजामां जेणे—
पोते पोतानो संग माल्यो ।। अलख०

४. ध्वनि, पृ० १५३

घट रूपी मन्दिर में हरि का निवास है। मुझे उनके इस स्थान का पता मिल गया। हम पुराने वियोगी हैं, किन्तु हमारे बीच में एक "किनखाव" का परदा पड़ गया है। मैं खो गया, क्योंकि तुमने मुझे अपने में गँवा लिया।[1]

(१२) ज्ञानी—काजी अनवर मियां गुजराती साहित्य में "ज्ञानी" नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। सं० १८९८ में उनका जन्म तथा निधन सं० १९७३ में हुआ था। बचपन से विरक्त होकर बस्ती से दूर जंगल एवं कब्रस्तान में निवास करते थे। सैयद हैदरशाह से उनको गुरुगम ज्ञान मिला था। वीसनगर के काजीवाड़ में उनका स्थान आज भी है। हिन्दी तथा गुजराती में उन्होंने काव्य-रचना की है। उनकी कविताओं का एक संग्रह "अनवर काव्य" के नाम से प्रकाशित हुआ था।

पालनपुर के नवाब उनके शिष्य थे। उन्होंने योग, भक्ति एवं ज्ञान का उपदेश दिया है। नवाब ने उनके नाम पर एक रौजा बनवाया है; प्रति वर्ष वहाँ मेला लगता है।

उनके काव्य में तत्व दर्शन के साथ चमत्कृति भी है, तथा कबीर जैसे सन्तों की बानी का लाघव एवं बल भी है।[2] उन्होंने अगम-पंथ पाया है। मन से जब अभिमान दूर हो जाता है, तब वह अलख पुरुष का निवास बन जाता है।

"आपे से जब हम आप निकल गये, अलख पुरुष घर आया।"[3]

उन्होंने कर्मकांड का विरोध करते हुए पूजा, व्रत आदि के त्याग का उपदेश दिया था।[4]

दम्भ का पर्दाफाश करते हुए उन्होंने लिखा है कि बाह्याचार से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। दृष्टांत देकर समझाया कि मांस खाने से तथा दाढ़ी बढ़ाने मात्र से मुसलमान नहीं बन सकते, क्योंकि अनेक हिन्दू मांस खाते हैं, तथा सिख दाढ़ी रखते हैं।

"गोस्त खाने से मुसलमां नहीं कहाता अय मियां।
और बड़ी दाढ़ी रखने से भी मुसलमां नहीं होते जान।
गोस्तए तो खाते हैं हिन्दू बहोत से अय भाई जान।
और शिख रखते हैं दाढ़ी, तुमसे भी लंबी पहचान॥"[5]

परवर्ती गुजराती कवियों पर कबीर-प्रभाव का मूल्यांकन

१. वही, पृ० १५
२. अर्वाचीन कविता, पृ० ४९८
३. अन्वर भजन संग्रह, भजन-४
४. वही, भजन-१०
५. अर्वाचीन कविता, पृ० ४९८

गुजरात में कबीर की अनेक शिष्य-परम्पराएँ चली हैं। कबीर की वाणी का प्रचार पठन-पाठन से हुआ था तथा इन परम्परा के सन्तों की हिन्दी तथा गुजराती वाणी पर कबीर की विचारधारा का प्रभाव स्वाभाविक रूप में पड़ा था। सन्तों की उस वाणी का प्रभाव गुजराती साहित्य पर भी पड़ा है। कबीर वाणी का प्रभाव ज्ञानी जी की वाणी पर उनके शिष्य होने के कारण पड़ा था। ज्ञानीजी की वाणी (ज्ञान-बत्तीसा) का प्रभाव मांडण की "प्रबोध-बत्तीसी" पर आगे देखा गया है। मांडण का प्रभाव गुजराती साहित्य में अखा पर दिखाया गया है। अखा की वाणी का प्रभाव उनकी परम्परा के सन्त तथा अन्य परवर्ती कवियों पर पड़ना स्वाभाविक है। अखा की परम्परा के सन्त नृसिंहाचार्य की वाणी द्वारा गुजराती के आधुनिक कवि श्री राजेन्द्र शाह तक यह प्रभाव पहुँचा है। इस प्रकार कबीर की विचार-धारा का प्रभाव प्रवर्तित एवं परम्परित हुआ है।

गुजरात में कबीर-परम्परा के सन्तों ने हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में सन्त-साहित्य की रचना की थी। हिन्दी में लिखा गया सन्त साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान का अधिकारी होगा। गुजराती-साहित्य में इन सन्तों की गुजराती-रचनाओं का समादर हुआ है। गुजराती भजन-संग्रहों में कबीर साहब के भजन सर्वाधिक मात्रा में संकलित किये गये हैं। कबीर के अनेक पद तथा साखियाँ गुजरात के जनजीवन में गूँजती रही हैं। ऐसी ही एक निम्नांकित साखी से प्रेरणा लेकर गुजरात का प्रथम प्रसिद्ध नाटक "राईनो पर्वत" श्री रमणभाई ने लिखा था। नाटक के प्रथम पृष्ठ पर इसे अंकित किया गया है।

"सांई से सब कुछ होत है, बंदे से कछु नाहीं।
राई से परवत करे, परवत राई मांहीं।।"

गुजराती साहित्य के अनेक सन्त कवियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध कबीर साहब की परम्परा से रहा है। अखा-परम्परा के साथ वस्ताजी, छोटम् तथा उनके समकालीन, नरहरि, बुटाजी तथा गोपाल का सम्बन्ध है। धीरा भगत तथा उनकी परम्परा के सन्त निरांत बापू, प्रीतमदास रामकबीर-सम्प्रदाय से सम्बन्धित लगते हैं। रतनदास तो भाण साहब के ही शिष्य थे। आधुनिक कवि राजेन्द्र शाह अखा की परम्परा के कवि हैं।

इनमें से ऐसे भी कवि हो गये हैं, जिन्होंने कबीर वाणी का अध्ययन किया हो, ऐसा उनकी वाणी से निर्देश मिलता है। अखाजी की वाणी पर कबीर वाणी का विस्तृत प्रभाव पड़ा है। शामल जैसे कथाकार ने कबीर वाणी का अनुसरण किया है। छोटम् इसी परम्परा के सन्त थे, इसलिए उनकी वाणी पर कबीर वाणी का स्वाभाविक प्रभाव था। धीरा की वाणी पर कबीर वाणी का प्रभाव द्रष्टव्य है।

कबीर—"मालिन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बार॥"
धीरा—"माली वीणे रुडां फूलडां रे, कलियो करे छे विचार।
आजनो दिन रलियामणो रे, काले आपणो ज वार॥"

साधारणतः कबीर एवं उनकी सन्त-परम्परा की धारा वर्तमान गुजराती साहित्य में विच्छिन्न हो गई है, तथापि पुरानी परम्परा के इने-गिने प्रतीक सम पूजालाल तथा सुधांशु तथा अलख के गायक राजेन्द्र शाह जैसे कवि इस धारा को प्रवहमान रख रहे हैं।

अध्याय ग्यारह

उपसंहार

(१) आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर को साम्प्रदायिकता से परे दिखाते हुए भी कहा कि "उनका मुख्य अभिप्राय किसी एक ऐसी विचारधारा को जन्म देना था, जो सर्वमान्य बन सके।"[1]

(२) विद्वानों ने कबीर को विचारधारा को किसी-न-किसी दार्शनिक सिद्धान्तों की परिसीमा में बांधने का प्रयास किया है। कबीर के विधानों की एकरूपता के अभाव में डॉ० की ने उनको किसी विशेष मतवाद का प्रवर्तक नहीं माना। उन्होंने लिखा है कि धार्मिक सत्य की कबीर ने चर्चा-मात्र की थी, जिसका कोई निर्णयात्मक तथ्य नहीं निकल सकता।[2]

(३) आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने डॉ० का के मत का समर्थन करते हुए कबीर के "निगुणराम" के विषय में लिखा कि वह किसी भी दार्शनिक वाद से परे है, तार्किक बहस के ऊपर है, पुस्तकी-विद्या से अगम्य है, पर प्रेम से प्राप्य है, अनुभूति का विषय है, सहज-भाव से भावित है, यही कबीरदास का "निर्गुणराम" है।[3]

(४) कबीर के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन करते हुए पण्डित सुन्दरलाल ने उनको वर्णाश्रम तथा जाति भेद का विरोधी कहा था। उन्होंने लिखा है, कि कबीर ने निर्भीकता के साथ दोनों धर्मों की रूढ़ियों का खण्डन किया और प्राणी मात्र के साथ प्रेम तथा निराकार की भक्ति का उपदेश दिया।[4]

(५) हरिऔध ने कबीर को एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद, अहिंसावाद तथा मिथ्यावाद के प्रतिपादक, तथा मायावाद, अवतारवाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थ यात्रा तथा वर्णाश्रम-धर्म का कट्टर विरोधी कहा था।

---

१. उ० भा० सं० प०, पृ० १३२
२. कबीर एन्ड हिज फोलोअर्स, पृ० ७१
३. कबीर, पृ० १२७
४. भारत में अंग्रेजी राज्य, पृ० ५५

(६) पं० रामचन्द्र शुक्ल ने "निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक" के रूप में उनका परिचय दिया है।[१]

(७) डा० बड़थ्वाल ने कबीर को "निरगुनिया" तथा कबीरमत को "निर्गुण-पंथ" कहा था। आ० चतुर्वेदी ने लिखा, कि कबीर आदि संतों ने निर्गुण वा सगुण से परे किसी अनिर्वचनीय वा अक्षेय किन्तु अंशतः अनुभवगम्य वस्तु को ही परमतत्व माना है। सगुण तथा निर्गुण का वहाँ पर कोई प्रश्न ही नहीं रहता।"[२]

डा० रांगेय राघव ने कबीर को निर्गुण से परे माना है।[३]

डा० युसुफ हुसेन ने कबीर को जातिभेद एवं धर्मग्रन्थों का विरोधी तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के समर्थक के रूप में देखा है।[४]

डा० सत्येन्द्र ने कबीर साहब के निर्माण के कुछ निम्नांकित तत्वों का उल्लेख किया है; गोवध विरोध, पुनर्जन्म विरोध, वेद-कुरान खंडन, ज्योति से संसार की उत्पत्ति, प्रेम का महत्व, हठयोग की साधना, राम नाम के जप, निर्गुण राम, गुरु का महत्व, संत का महत्व, माया का ठगिनी रूप, देवस्थान एवं तीर्थों का विरोध तथा पाखण्ड-विरोध।[५]

गुजरात के विद्वानों का मत :—कबीर के उपदेश को शंकराचार्य के मत से भिन्न द्वैतवादी सिद्ध करने का प्रयास डा० भांडारकर ने किया था, किन्तु आ० आनन्दशंकर ध्रुव ने लिखा कि संस्कृत काल में निर्गुण ब्रह्म के अद्वैत का तथा ज्ञान एवं वैराग्य का जो उपदेश शंकराचार्य ने दिया था, जिसके फलस्वरूप वे "प्रच्छन्न बौद्ध" कहलाये, वही उपदेश भाषा युग में कबीर ने दिया था।[६]

श्री दुर्गाशंकर शास्त्री ने नाम की महिमा, मूर्तिपूजा-विरोध, जाति-भेद विरोध, मद्य-मांस-विरोध तथा गुरुमहिमा, नश्वरता, वैराग तथा हृदय-शुद्धि के समर्थन को कबीरमत के प्रमुख तत्व माना है। कबीरमत के सिद्धांतों के रूप में प्रमुख जीव-शिव ऐक्य तथा नाम को प्रेममय भक्ति को माना है।[७]

---

१. हि० सा० इ०, पृ० ७२
२. उ० भा० सं०, प०, पृ० ८
३. लोई का ताना, पृ० ६
४. ग्लीम्पसीज आफ मिडीएवल इन्डियन कल्चर, पृ० ७४
५. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन", पृ० [illegible]
६. हिन्दू वेद धर्म, पृ० ३०३
७. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १४६

गुजरात में कबीर साहब के विस्तृत प्रभाव का समर्थन करते हुए स्व० श्री कनैयालाल मुन्शी ने कबीर को उपासना, उपदेश, वैराग, तथा उच्च शुद्धि की भावना का प्रवर्तक माना है। कबीर के विषय में उन्होंने लिखा है, कि कबीर प्रभु को शुद्ध प्रेम देता है, विना माधुर्य के दैन्य में तड़पन का अनुभव करता है। उनको सत्संग चाहिये। निर्मलता उनको प्रिय है; नामस्मरण श्वास एवं प्राण है। वे अवतारों को नहीं मानते। मूर्तिपूजा से उसे घृणा है। वह मात्र आत्म-शुद्धि पर विश्वास करता है।[१]

डा० मंजुलाल मजमुदार ने कबीरमत में अद्वैत की कुछ स्थूल बातों के साथ सूफ़ी संस्कार भी देखे थे।[२]

श्री उमाशंकार जोशी ने एक चतुर समन्वयकार के रूप में कबीर का परिचय देते हुये लिखा है कि "हिन्दू-धर्म पुराणों के अनेक देववादी जाल मे फंसा पड़ा था। उसके सामने उसका नितांव विरोधी आचार वाला इस्लाम खड़ा हुआ। कबीर आये और उन्होंने यहां की सहस्त्रविध उपासनाओं के मर्म से निष्कर्ष स्वरूप निर्गुण की उपासना निकाली, जो दोनों धर्मों के लिए स्वीकार्य थी। उन्होंने राम-रहीम का भेद मिटा दिया।"[३]

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रमणलाल देसाई ने कबीर की राम-रहीम ऐक्य की स्थापना तथा आचारों के खोखलेपन पर प्रहार आदि को कबीर में विकसित भारतीय संस्कृति की सब से बड़ी सिद्धि माना था।[४]

गुजरात में कबीर का स्थान :

गुजरात में कबीर के आगमन से पूर्व उनको कीर्ति पहुँच चुकी थी। स्वामी रामानन्द के साथ द्वारिका-यात्रा के समय काशी से गुजरात पहुँचने में दो माह लग गये थे, क्योंकि मार्ग में उनके सम्मान एवं सत्कार के कारण यात्रा की गति मंद रहती थी।

"शनैः शनैः धरती पग धरहीं शनैः शनैः मारग अनुसरहीं।
गाँव गाँव कबीर की जाता, दरसन कर तन लोक अघाता।।"[५]

गुजराती कवि मुकुंद गुगली ने अपनी भक्तमाल (सं० १७०८) में लिखा है, कि रामानद के शिरोमणि शिष्य कबीर गुरुकृपा से पीरों के भी पीर हुये थे। सर्वत्र "कबीर" "कबीर" सुन पड़ता था।[६]

---

१. गुजराती साहित्य खंड—५, पृ० ३२३
२. मीरांबाई—एक मनन, पृ० ६४
३. अखाना छप्पा, पृ० ६
४. भारतीय संस्कृति
५. पीपा परिचई-ह० लि० ग्रंथ (लेखक के पास है)
६. प्रा० का० मा० ग्रं० ११, पृ० २२९

कबीर के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी की परंपरा के शिष्य संत जीवणदास ने कबीर साहब को "संत-शिरोमणि" की अंजलि दी है।

"जग जुलाहे जीतियो, सब संतनको सिर ।
नाम-बंटाई जीवणा, जाकु जैसी धीर ।।"[1]

रामकबीर-संप्रदाय में कबीर को राम के अवतार के रूप में देखा गया है: द्वापर के कृष्ण तथा त्रेता के राम कलि में कबीर के रूप में प्रकट हुए थे, ऐसा ये लोग मानते हैं।

बाबा दीन दरवेश ने कबीर के गुजरात आगमन के विषय में लिखी अपनी एक कुण्डली के अंत में लिखा है :

कहत दीनदरवेश, "सत्" का शब्द सुनाया ।
करुणा-सिंधु कबीर, बंदी छुड़ावन आया ।।"

गुजराती के समर्थ समालोचक श्री ब० क० ठाकोर ने कबीर की वाणी का मूल्यांकन करते हुए इसे "सिद्ध मन्त्रों की चमत्कारिक गुटिका" कहा था।

"अन्या अनन्य परचामरि ए पद्मावलि ।
ए मंत्र-सिद्ध गुटिका, भवताप हारि ।
आत्मा तणी तरस, भूख निवारती ए ।
हन्ता तणी अमरता सरजंत ए सुधा ।।[2]

श्री किशोर लाल मशरूवाला ने समाज में परिवर्तन लाने वाले लोकोत्तर पुरुष के रूप में कबीर की सराहना की है। गुजराती साहित्य परिषद् में धर्म के तत्व को समझाने के लिए जिन उद्धरणों का उन्होंने आधार लिया था, ये सब कबीर वाणी से लिये गये थे।[3]

कविवर श्री उमाशंकर जोशी ने मध्यकाल में भारत की आत्मा को सतेज रखनेवाले तत्वज्ञ तथा गूढ़ कवियों में कबीर को "सर्व-शिरोमणि" माना है।[4]

अखा परंपरा के नड़ियाद निवासी संत संतराम ने कबीर वाणी का महत्व समझाते हुए कबीर की आधी साखी को करोड़ ग्रंथों के बराबर कहा था।

"आधी साखी कबीर की, कोटि ग्रंथ करो जाण ।
संतराम जग झूठ है, सुरति-शब्द पहचान ।।"[5]

---

१. उ० ध० पं० र० मा०, पृ० ११०
२. कबीर संप्रदाय की भूमिका
३. तेरहवीं गुजराती साहित्य परिषद् नो अहेवाल, पृ० १५६
४. अखो-एक अध्ययन, पृ० २६५
५, पदसंग्रह-संतराम मन्दिर, नडियाद

गुजरात में कबीर की शिष्य-परंपरा

गुजरात में कबीर साहब के पांच गुरुमुख शिष्य थे। निर्वाण साहब ने सूरत में, ज्ञानीजी ने राजपीपला विभाग के मोटासांभा गांव में तथा पद्मनाभ ने पाटण में निवास किया था। कमाल साहब अहमदाबाद में थे। तत्वाजीवा ने संभवतः गुरु आदेश से गुजरात को छोड़ "फतुहा" में गद्दी की स्थापना की थी। उनके स्थान (कबीरवट) पर कबीर साहब ने अपने एक अन्य शिष्य नीरदास को नियुक्त किया था। नीरदास के पश्चात् कबीरवट वाले स्थान पर ज्ञानीजी ने अपने शिष्य देवदास की नियुक्ति की थी। उनकी परंपरा आज भी वहां प्रवर्तमान है। ज्ञानीजी के स्थान की परंपरा पुत्र-परंपरा है। ज्ञानीजी के शिष्य भगवानदास के शिष्य गोपालदास की गद्दी शाहपुरा में है। गोपालदास के प्रतापी शिष्य जीवणजी ने बुनियाद में गद्दी की स्थापना कर कानम विभाग में रामकबीर-संप्रदाय का प्रचार किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को "उदापंथी" कहा था। जीवणजी के एक शिष्य कृष्णदास ने उत्तर गुजरात में सरदारपुर में गद्दी की स्थापना की थी।

पद्मनाभ के एक शिष्य लोचनदास ने सूरत में आश्रम की स्थापना की थी। सूरत में निर्वाण साहब का स्थान था। पद्मनाभ के एक अन्य शिष्य नीलकंठदास ने गुरु-आज्ञा से सौराष्ट्र में दूधरेज में आश्रम की स्थापना की थी। वहां उनकी परंपरा प्रवर्तमान है। इस परंपरा के एक प्रतापी शिष्य भाण साहब ने शेरखी में गद्दी की स्थापना की थी। उनकी परंपरा के संतों ने कानम, सौराष्ट्र तथा कच्छ में कबीर मत का प्रचार किया था।

अहमदाबाद में कमाल के साठ भक्त थे। अहमदाबाद से दादू तथा रियाखान, पाटण से दुर्जनसाल; नांदौद (राजपीपला) से बांकीदास उनके गुरुमुख शिष्य हुए थे। इसी प्रदेश के एक संत श्यामदास भी कमाल के शिष्य हुए थे।

कबीर-परंपरा की गुजरात में व्याप्ति

दक्षिण गुजरात में भरूच के पास नर्मदातट पर मंगलेश्वर में कबीर साहब ने कुछ समय निवास किया था। उसके सामने तट पर नंदीगढ (राजपीपला) के राजा का प्रदेश था। इसमें एक छोटी-सी मणिपुर की रियासत थी। मुस्लिम-आक्रमण में वह नष्ट हो गई। वहां मोटासांभा नाम का गांव है, जहां कबीर साहब के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी का स्थान, मंदिर, एवं समाधि है।

मंगलेश्वर में तत्वाजीवा का स्थान था, जहां आज कबीरवट खड़ा है। मणिपुर में एक धर्मसम्मेलन का आयोजन ज्ञानीजी ने किया था। इसमें उनके साथ कबीर साहब तथा मणिपुर के राजा खडगसिंह भी यजमान थे।

सूरत में संत निर्वाण साहब का प्रभाव था। उनके निमंत्रण से कबीर साहब

वहाँ गये थे। कबीर के प्रभाव से वे "निर्वाण महाराज" के स्थान पर "निर्वाण साहब" कहलाने लगे। वे मूल रामानंदी थे, किन्तु तदनंतर कबीर-मतावलंबी हो गये। सूरत में आज भी निर्वाण साहब का अखाड़ा तथा उनकी परंपरा है।

सूरत में सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कबीर-शिष्य पद्मनाभ के शिष्य लोचनदास ने आश्रम की स्थापना की थी। इस परंपरा के संत समर्थदास, माधवदास तथा प्यारेदास उच्च कोटि के संत एवं कवि थे। वास्तव में यह रामकबीर-संप्रदाय की ही एक शाखा थी। इस परंपरा के संत प्यारेदास जी ने जोगाहरि नाम के एक अंत्यज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर समाधि ले ली थी। उनके पश्चात् आश्रम के अन्य साधुओं ने तथा ब्राह्मणों ने मिलकर आश्रम को नष्ट कर दिया। इस परंपरा के संतों ने दक्षिण गुजरात में कबीर-विचारधारा का प्रचार किया था।

उस काल में सूरत में नवाबी राज्य था। मुस्लिम-शासकों ने इन संतो को परेशान करने में कोई कसर नहीं की थी, किन्तु निर्वाण साहब, तथा लोचनदास जैसे संतों की आध्यात्मिक शक्ति के सामने उनको भी झुकना पड़ा था।

अपने उत्तरकाल में कमाल ने अहमदाबाद में निवास किया था। शाहआलम के रोजा के सामने एक "कमाल का रोजा" है, किन्तु यह इसी कमाल साहब का है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। साबरमती के तट पर एक स्थान को कमाल-टेकरी कहते हैं। अहमदाबाद में कमाल के शिष्य दरियाखान पठान तथा उनके शिष्य भूलनशा फकीर थे।

उत्तर गुजरात में तत्कालीन पाटनगरी पाटण में कबीर के शिष्य पद्मनाभ का स्थान-पद्मवाड़ी आज भी है। पद्मनाभ के एक शिष्य नीलकंठ ने सौराष्ट्र में वढ़वाण के पास दूधरेज में सं० १५६५ में आश्रम की स्थापना की थी। इसी परंपरा में प्रतापी संत भाण हुए। पाटण के प्रजापतियों में पद्मनाभ के पुत्रों की परंपरा प्रवर्तमान है। उनके एक पुत्र माधवदास की परंपरा अहमदाबाद में चली थी।

कबीर साहब ने सौराष्ट्र की यात्रा की थी। वे द्वारिका तथा जूनागढ़ गये थे। अपने एक पद में उन्होंने सोरठ देश का वर्णन किया है। जूनागढ़ के भक्त कवि नरसिंह मेहता से मिलने का उल्लेख है। अपने एक पद में कबीर साहब ने वागड (कच्छ) की भूमि का ऐसा तादृश चित्र दिया है, कि लगता है, उन्होंने इसे स्वयं देखा हो। कबीर की सिंध-यात्रा यदि प्रमाणित हो सके, तो सिंध में जाने का मार्ग यही कच्छ था। कच्छ में समंदर तट पर "रापर" में भाण के पुत्र खीम साहब का स्थान है।

सौराष्ट्र में नाथ पंथी योगियों का प्रभाव कबीर निर्गुण भक्ति के प्रचार से कम हुआ। कबीर के अन्नदान के उपदेश को जितना सौराष्ट्र ने अपना लिया, इतना अन्य किसी प्रदेश ने नहीं अपनाया। आज भी सौराष्ट्र में स्थान-स्थान पर अन्नक्षेत्र चलते हैं। वीरपुर में संत जलाराम का अन्नक्षेत्र विशेष प्रसिद्ध है।

गुजरात में कबीर साहब के प्रभाव से योगियों की जमात के स्थान पर भजन मंडलियां बनी हैं, साधुओं की "धूनी" के स्थान पर अन्नक्षेत्र के चूल्हे जलने लगे हैं तथा तुंबी की जगह प्याऊ बनवाये गये हैं। कबीर साहब के प्रभाव से गुजरात के समाज, संत तथा साहित्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया था।

गुजरात में कबीर का प्रभाव

गुजरात में कबीर के आगमन, निवास तथा उनकी परंपरा के कारण गुजरात के जनजीवन पर कबीर का सम्यक् प्रभाव पड़ा है। गुजरात के अनेक विद्वानों ने तथ्य का समर्थन किया है। गुजरात के संत साहित्य के विद्वान् डा० अम्बाशंकर नागर ने लिखा है, "कबीर गुजरात में आये थे अथवा नहीं, यह विषय संदिग्ध एवं शंकास्पद हो सकता है, पर गुजराती समाज और साहित्य पर कबीर का जो प्रभाव पड़ा है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। नरसिंह मेहता से लेकर आजकल के कवियों पर कबीर का थोड़ा बहुत प्रभाव दिखाई देता है।[1]

श्री कनैयालाल मुन्शी ने गुजरात में कबीर की महती प्रतिभा द्वारा हिन्दू-मुस्लिम जातियों पर बड़े प्रभाव का समर्थन किया है।[2]

पं० दुर्गाशंकर शास्त्री ने लिखा है, कि नरसिंह मेहता और उनके समकालीन काशी के कबीर साहब का शब्द गुजरात में सुना गया है। रामानंद एवं कबीर का प्रभाव गुजरात में दृष्टिगोचर होता है।[3]

डा० निपुण पंड्या ने अपने शोध प्रबंध "मध्यकालीन गुजराती साहित्य में तत्व विचार" में गुजरात में कबीर के प्रभाव का समर्थन करते हुए लिखा है कि रामानंद का प्रभाव गुजरात पर पड़ा है, ऐसा मानने में आता है, किन्तु कबीर का प्रभाव स्पष्ट है। कवि मुकुंद ने अपनी भक्तमाल में " कबीर चरित्र" लिखा था, इस पद से कबीर का कितना प्रभाव गुजरात में था, इसकी प्रतीति होती है।[4]

श्री किसनसिंह चावडा ने लिखा है, कि गुजरात के निम्नवर्ग के लोगों में भक्तिभाव, सरलता, मानसिक पवित्रता तथा परोपकार आदि का दृढ़ प्रभाव पड़ा

---

१. ना० प्र० प० (सं० २०१५) अं० २, पृ० ३६
२. गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर (१९५४), पृ० १६४
३. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास", पृ० १८५
४. "मध्यकालीन गुजराती साहित्यमा तत्वविचार", पृ० २३८

था। इन लोगों की जीवनदृष्टि को उच्च बनाने में कबीरमत का प्रभाव कुछ कम नहीं ।[1]

गुजराती के साहित्यकार श्री वाडीलाल शाह ने कबीर की हृदय-भेदकता एवं स्पष्टता, शुद्ध हृदय, तत्वज्ञान, प्रौढ़ विचार तथा आत्मविश्वास को उनकी वाणी के प्रभाव का कारण माना है ।[2]

कवि मुकुंद ने "कबीर चरित्र" में लिखा है, कि कबीर साहब का प्रभाव गुजरात में इतना बढ़ गया था, कि गुरु रामानंद का संप्रदाय छुप जाने लगा था ।[3]

श्री जनक दवे ने गुजरात में हिन्दी के विकास में कबीर के उपदेश की देन को स्वीकार किया है। सौराष्ट्र में नाथ पंथ के प्रभाव में कबीर की भाव भक्ति के कारण जो अवरोध हुआ, इसका वर्णन करते हुए श्री मकरंद दवे ने लिखा था, कि नाथपंथियों के जर्जरित त्रिशूल-चिमटे को उन्होंने अपने हृदय की भट्ठी में डालकर जला दिया है, और नये सिरे में उनकी प्यास छिपाने अर्थ "प्याले" बनवाकर भारत के प्रांत-प्रांत में बांटे हैं ।[4]

निर्गुण भक्ति का प्रवर्तन

गुजरात में कबीर की यात्राएं एवं निवास के कारण गुजराती साहित्य, समाज एवं संप्रदायों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा। गुजरात में शैव एवं शाक्तों के बीच व्यापक संघर्ष था। सौराष्ट्र में नाथपंथी सिद्धों तथा वैष्णवों के बीच तीव्र वैमनस्य था। कबीर ने अपना निर्गुण-भक्ति का समन्वयकारी रूप सब के सामने रखा। कबीर का विरोध एक शाक्तों की हिंसा से था तथा उन्होंने मिथ्याचार तथा दंभ का विरोध किया था।

नरसिंह, मांडण, भीम जैसे तत्कालीन कवियों पर निर्गुण-भक्ति का प्रभाव पड़ा था। कबीरवाणी तथा रैदास के उपदेशों का प्रभाव मीरां पर भी है। इन सगुण वैष्णव भक्तों ने निर्गुण राम की भक्ति के पद भी लिखे हैं।

कबीर विचार-धारा से प्रभावित ये लोग कबीर के शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी की छत्र-छाया में "रामकबीर" नाम से एकत्रित हुए थे। आगे चलकर वह मंडल एक सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। कालक्रम में अनेक निर्गुण मार्गी पंथों का गुजरात में प्रचलन हुआ।

---

१. कबीर संप्रदाय, पृ० १४५

२. कबीरना आध्यात्मिक पदो, पृ० ६

३. प्रा० का० मा० ग्र० ११, पृ० २५०

४. सतकेरी वाणी, पृ० ४६

कबीर के शिष्यों की परंपराओं में अनेक संत हुए हैं। इन संतों ने गुजरात भर में निर्गुण-भक्ति का प्रचार किया था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से कबीर-पंथी संतों ने कबीर पंथ प्रचार गुजरात में किया; किन्तु गुजरात में कबीर की विचारधारा का प्रचार करने का श्रेय रामकबीर-संप्रदाय के संतों को ही मिलना चाहिये। इन संतों ने एक ओर हिन्दी भाषा में उच्च कोटि की संतवाणी की रचना की, तथा दूसरी ओर भजन मंडलियों द्वारा कबीर का उपदेश घर-घर पहुँचाया। इन संतों ने कबीर-वाणी का अध्ययन किया था, ऐसा लगता है। क्योंकि कबीर-वाणी की परंपरा का दर्शन उन संतों की वाणी में होता है।

उपलब्धियाँ

कबीर के जीवनवृत्त पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है। कबीर के जीवन विषयक प्रामाणिक सामग्री के अभाव में उनके जीवन की अनेक बातें विवादास्पद रही हैं। मुकुंद गुगली ने कबीर की पत्नी का नाम रूपा बताया है। कबीर साहब के समकालीन निर्वाण साहब ने अपनी वाणी में कबीर के गुरु के रूप में स्वामी रामानन्द का उल्लेख किया है। संभवतः यह एतद् विषयक प्राचीनतम उल्लेख है। कबीर की गुजरात-यात्रा असंदिग्ध है। कबीर, ज्ञानीजी, निर्वाण आदि अनेक संतों की वाणी में कबीर की गुजरात-यात्रा के उल्लेख हैं। बाबा दीन दरवेश ने कबीर के गुजरात भ्रमण का विस्तृत वर्णन किया है।

कबीर के किसी भी शिष्य का वृत्त अप्राप्य था। अब तक एक भी कबीर का गुरुमुख शिष्य प्रमाणित नहीं हो सका था। गुजरात का यह गौरव है, कि इस प्रदेश ने कबीर को प्रत्यक्ष शिष्य दिये थे। इतना ही नहीं, इसी प्रदेश से कमाल साहब के भी पांच प्रत्यक्ष शिष्यों के वृत्त प्राप्त हुए हैं। कबीर के दो शिष्यों की अनेक परंपराएं आज भी गुजरात में प्रवर्तमान हैं।

एक कबीर पंथ (सत्कबीर संप्रदाय) को ही कबीर का पंथ समझा जाता था, किन्तु वास्तव में इसका प्रवर्तन कबीर की मृत्यु के सौ वर्ष अनन्तर हुआ था, किन्तु कबीर की उपस्थिति में उनके शिरोमणि शिष्य ज्ञानीजी ने गुजरात से रामकबीर संप्रदाय की स्थापना की थी।

गुजरात में प्रवर्तित कबीर-परंपरा के प्रायः अस्सी संतों का जीवनवृत्त एवं कुछ रचनाएं प्राप्त होती हैं। गुजराती का प्रबंधकार पद्मनाभ कबीर का शिष्य नहीं है, और गुजराती का कवि धनराज पद्मनाभ का शिष्य है। रसमंजरीकार वच्छराज कबीर पंथी नहीं है: कबीरपंथी वच्छराज एक अन्य संत थे। सोखड़ा के संत जगाजी रामानंदी परंपरा के संत नहीं हैं: वे संत दादू के शिष्य हैं।

परिशिष्ट-१

गुजरात की निर्गुण-धारा के संतों की सूची

अन्नपूर्णा—अरजण भगत—अर्जुन भगत—ऋषीराज—ओखा—करीमशाह—कल्याणदास—कंवलदास—कुबेरदास—कृष्णदास—केशवदास—खीमसाहब—गंगसाहब—गणपतदास—गबलदास—गोपालदास—गौरीबाई—चन्द्रावती—चरणदास—जगन्नाथदास—जंभाराम—जगाजी—जीवणजी—दासी जीवण—जीवणदास—जुगलदास—जुहारीदास—जोगाहरि—जैतसिंह—तिलकदास—त्रिकमदास—दयालदास—दरियाखान—दादू--दीनदरवेश—दुर्जनशाल—देवासाहब—दूलाराम—धनदास—नागदास—निर्मलदास—निर्वाणसाहब—नीलकंठ—नुरुद्दीन—नृसिंहाचार्य—पद्मनाभ—प्रभूदास—प्राणनाथ—प्यारेदास—बाबा पीथ्यल—प्रेमा बाई—बाबा फकरुद्दीन—बंकाजी—बादलसाहब—बापू साहब—बांकीदास—बीजल—बोधानन्द—भक्तिराम—भाणसाहब—भीमसाहब--मदयन्ती—मन्नतखान—बाबा मलेक—मस्तराम—मेहेरमदास—माणेकदास—माधवदास—मीठो ढाढी—बाबा मुराद—मूलदास—मेघो खाचर—मोरार साहब—यादवदास—रंगदास—रघुनाथदास—रंग अवधूत—रतनबाई—रतनदास—रविसाहब—रहमतखान—राघोदास—राजुल—रामस्वामी—रूखडाजी—लालदास—लालदास—(अखा का शिष्य)—लालसाहब—लोचनदास—वच्छराज—वाराणसी—श्यामदास—(कमाल शिष्य)—शोभाराम—षट्प्रज्ञदास (छट्ठा बाबा)—संतराम—सदानन्द—सम्मदशेख—समर्थदास—स्वरूपदास—सतारशा—"बापू" सागर—सुजानसिंह—सोहनदास—हरिदास—हरिलोचनदास—हरजीवनदास—हीरादास—हुर्रा—होथी—ज्ञानीजी।

———

हिन्दी वाणी			
गुजराती संतों की हिन्दी वाणी	सरदार पटेल युनिवर्सिटी,	विद्यानगर	२०२७
पारखमत समीक्षा	स्वामी ब्रह्मलीनजी	सूरत	२०१५
भक्तमाल की टीका	रूपकलाजी	लखनऊ	२००७
भक्तमाल की टीका	भक्तिदास गुणचित्रनी		
भक्तिरस बोधिनी टीका	प्रियादास	(ह० प्र०)	१७०२
भारत के संत महात्मा	रामलाल	बम्बई	२०१३
भारत में अंग्रेजी राज्य	पं० सुन्दरलाल	इलाहाबाद	१९८५
मध्ययुग की साधना धारा	क्षितिमोहन सेन		
मीरांबाई की पदावली	परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद	२०११
मीरां—एक अध्ययन	डा० पद्मावती शबनम		२००९
"मीरांबाई"	डा० प्रभात	बम्बई	२०२१
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतांत्रिक अध्ययन	डा० सत्येन्द्र	आगरा	२०१६
मध्यकालीन धर्मसाधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी	इलाहाबाद	२०२६
रामानन्द संप्रदाय	डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव,	प्रयाग	२०१४
राघोदास की भक्तमाल	सं० अगरचंद नाहटा		
"लोई का ताना"	डा० रांगेय राघव		
वैराग प्रकाश	स्वामी हनुमानदास	वाराणसी	२०१७
वैष्णव कबीर	गोस्वामी योगीराज	अहमदाबाद	२०२५
संत कबीर	डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद	२०१३
संत साहित्य और साधना	भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र	दिल्ली	२०२५
संत काव्य	परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद	२००८
संत रविदास और उनका काव्य	रामानन्दी शास्त्री	हरद्वार	२०११
संत संग्रह	राधास्वामी सत्संग	आगरा	
सागर (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)	डा० अनील त्रिपाठी	बड़ौदा	(अप्रसिद्ध)
सुन्दर ग्रंथावली	सं० हरिनारायण शर्मा	कलकत्ता	१९९३

सद्गुरु श्री कबीर चरितम्	मुनि ब्रह्मलीनजी	वड़ोदा	२०१६
श्री सद्गुरु चरित्र प्रकाश	वटपत्याश्रम,	दूधरेज	
हिन्दी संत काव्य संग्रह	गणेश प्रसाद द्विवेदी	इलाहाबाद	२००८
हिन्दी साहित्य की भूमिका	हजारी प्रसाद द्विवेदी	बम्बई	२०१९
हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव संत-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा० नरहरि जोगलेकर	मथुरा	२०२५
हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य	डा० प्रभाकर माचवे	वाराणसी	२०१९
हिन्दी साहित्य का इतिहास	पं० रामचन्द्र शुक्ल	काशी	२०१८
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद	२०१०
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बरदत्त वड़थ्वाल		२०२४

साम्प्रदायिक-साहित्य

अध्यात्म तत्व संवाद	स्वामी हनुमानदासजी	वाराणसी	२०००
अनुराग सागर	वीरक्षेत्र मुद्रणालय प्रेस	वड़ौदा	१९४९
अमरसिंह बोध	—वही—	—वही—	१९४९
अघोर संप्रदाय	रविशंकर-मेहता	बम्बई	२०२५
उदाधर्म पंचरत्न माला	प्र० रामकबीर मन्दिर	पुनियाद	२०२४
कबीर महिमा	शिवनारायण	बिकानेर	१९८४
कबीरगाथा	कबीर सम्प्रदाय	बम्बई	२०-०
कबीर साहेबनो सरोदो	मोतीदासजी "चैतन्य"	बड़ौदा	२०१९
कबीरवाणी	वेरामजी मादन	बम्बई	१९५२
कबीरसाहबनुं बीजक	सं० मणिलाल मेहता	वड़ोदा	२०२१
कबीर मन्सूर भा० १–२	सं० स्वामी परमानन्द	वड़ोदा	२०१३
कबीर बह्म प्रकाश	श्री तपस्वी साहब	सूरत	२०१६
कबीर कसौटी	सं० बाबू लहनासिंह	बम्बई	२०१९
कबीर संप्रदाय	किसनसिंह चावड़ा	बम्बई	१९९४
गर्भावली		बड़ौदा	१९४९
त्रिकम तारण संग्रह	प्र० किशोर प्रिंटिंग प्रेस	बोडेली	१९९५

परिशिष्ट-२

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन स्थान	वर्ष वि० सं०
अक्षय रस	सं० कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह	बड़ौदा	२०२०
उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	आ० परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद	२०२१
कबीर साहित्य की परख	आ० परशुराम चतुर्वेदी	प्रयाग	२०११
कबीर ग्रंथावली	श्याम सुन्दर दास	काशी	२०११
कबीर और उनका काव्य	भोलानाथ तिवारी	दिल्ली	२०१८
कबीर—व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त	डा० सरनामसिंह शर्मा	जयपुर	२०२५
कबीर का रहस्यवाद	डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद	२०१७
कबीर साहित्य का अध्ययन	पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव	काशी	२००८
कबीर और जायसी का रहस्यवाद	डा० गोविंद त्रिगुणायत	देहरादून	२०१६
कबीर	आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी	बम्बई	१९९८
कबीर-एक विवेचन	डा० सरनामसिंह शर्मा	दिल्ली	२०१६
कबीर की विचार-धारा	डा० गोविंद त्रिगुणायत	कानपुर	२०१४
कबीर और कबीर पंथ	डा० केदारनाथ द्विवेदी	प्रयाग	२०२१
कबीरदास	विश्म्भरनाथ उपाध्याय		
कबीर परिचय	दयालदासजी	(कबीर पंथ)	
कबीरवट महिमा	स्वामी हनुमानदासजी	बड़ौदा	२०१७
गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन	डा० रामकुमार गुप्त	मथुरा	२०२४
गुजरात के संतों की	सं० डा० अंबाशंकर नागर	अहमदाबाद	२०२५

पचम स्वसंवेद	श्री करुणासागर	वड़ोदा	२०१०
बीजक	श्री विचारदास शास्त्री	इलाहाबाद	१९८३
बीजक सारार्थ संग्रह	श्री जयंतिलाल मेहता	वड़ोदा	२०२२
बोधपाठ	सं० शंकरभाई पटेल, सोखड़ा	वड़ोदा	२०१६
भवतारण बोध	सं० महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे	अहमदाबाद	२०११
रवि गीता	सन्त रविदास	शेरखी	१९८७
रामकबीर भक्त-भजन संग्रह	प्र० रामकबीर मन्दिर	सूरत	२०१४
विवेक समुद्र	स्व० महंत श्री बापालालजी	सरदारपुर	१९९८
वैष्णव साहित्यनो इतिहास	श्री दुर्गा शंकर शास्त्री	अहमदाबाद	
शाक्त सम्प्रदाय	नर्मदाशंकर मेहता	बम्बई	
सद्गुरु कबीर साहेब	मोतीदास "चैतन्य"	वड़ोदा	१९८३
सर्वाजीत पंडित की गोष्ठी	महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे	अहमदाबाद	१९८६
सत्पंथ शास्त्र	श्री कासिमअली पिराणा	अहमदाबाद	
हिन्दू वेद धर्म	डा० आनंदशंकर ध्रुव	अहमदाबाद	१९७५
ज्ञानीजी का छप्पा	वीरक्षेत्र मुद्रणालय	वड़ोदा	१९४९
ज्ञान बत्रिसी	वीरक्षेत्र मुद्रणालय	वड़ोदा	१९४९

गुजराती

अखो–एक अध्ययन	उमाशंकर जोशी	अहमदाबाद	१९९८
अखो	स्व० नर्मदाशंकर मेहता (व्याख्यान)	,,	१९८३
अखाकृत काव्यो	स्व० नर्मदाशंकर मेहता	,,	१९८७
अखाना छप्पा	प्र० स० सा० व० का०	अहमदाबाद	२०२२
अर्वाचीन कविता	सं० सुंदरम्		२०१६
अर्जुन वाणी	सं० महादेव देसाई न० का०	अहमदाबाद	१९७८
आपणुं पाटण	(रजत महोत्सव)	पाटण	२०२१
आपणी लोक-संस्कृति	जयमल परमार	अहमदाबाद	२००६
आधुनिक गुजरातना संतो	डा० केशवलाल ठक्कर	वड़ोदरा	२०२२
ऋषीराजनां पद	सं० श्रीमाधव चौधरी	अहमदाबाद	२०१९
कविचरित भा० १–२	के० का० शास्त्री	,,	२००८
कबीर साहेब	श्री मणिलाल मेहता	,,	२०२५
कबीरदास	श्री भीमराव जोटे		
कबीर चरित्र	बालजी वेचर,	बोरसद	१९३७
कबीर साहेबनी साखी	मणिलाल मेहता	अहमदाबाद	२०२४

काव्य तत्व--विचार	आनन्द शंकर ध्रुव	अहमदाबाद	२००१
गुजराती साहित्यनी रूपरेखा	विजयराय वैद्य	बम्बई	१९९६
गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो	कृष्णलाल झवेरी	बम्बई	२००४
गुजराती साहित्य भा० १	अनंतराय रावल	बम्बई	२०१६
गुजरातना भक्तो	श्री माणेकलाल राणा	अहमदाबाद	२०२०
गुजराती साहित्य	श्री कनैयालाल मुन्शी		
गुजराती साहित्यनां स्वरूप	प्रो० मंजुलाल मजमुदार	वड़ौदा	१९५४
गुजराती साहित्यनी विकास रेखा	डा० धीरूभाई ठाकर	सूरत	१९६५
ग्रन्थ अने ग्रन्थकार पु० -६	गुजरात विद्या सभा	अहमदाबाद	१९३५
गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास-१	श्री भीमराव जोटे	अहमदाबाद	
गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन-१	श्री र० मो० जोटे	अहमदाबाद	
गुजराते हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो	श्री डाह्याभाई देरासरी		
गुजरातनो इतिहास भा० १-२	श्री गोविंदभाई देसाई गु० व० सो०	अहमदाबाद	
गुजराती साहित्य	हीरालाल टी० पारेख	अहमदाबाद	२०१८
छोटमनी वाणी	स० सा० व० का०	अहमदाबाद	२०२३
दासी जीवणनां पद	डा० दलपतभाई श्रीमाली	अहमदाबाद	२०१८
धीरा भगतनां पद	डुंगरसी धरमसी संपट	अहमदाबाद	२०२५
नरसिंह महेतानां भजनो	स० सा० व० का०	अहमदाबाद	२०२३
नृसिंह वाणी विलास	श्री नृसिंहाचार्य	,,	१९४६
प्राचीन काव्य माला ग्रन्थ-१०	सं० हरजीवनदास कांटावाला	वड़ौदा	२०१२
प्रवेशको गुच्छ २	श्री व० क० ठाकोर	वड़ौदा	२०२४
प्रबोध बत्रिसी मांडण	सं० मणिलाल बकोरभाई	डभोई	२०००
प्रबोध बावनी-दयाराम	स० ओच्छवलाल मढीवाला	नाडियाद	२०१४
पद संग्रह	प्र० संतराम मन्दिर	अहमदाबाद	२०२१
परिचित पद संग्रह	प्र० सं० सा० व० का०	बम्बई	२०२०
बावा दोन दरवेश	श्री माणेकलाल राणा	बम्बई	१९८१
बृहद् काव्य दोहन ग्रंथ-१, ७, ८	सं० ईच्छाराम देसाई	अहमदाबाद	२०२२
भक्त जलाराम	शास्त्री हिंमतराम जानी	,,	२०२३
भक्त पीपाजी	शास्त्री जयनारायण भट्ट		

भजन-सुधा सार-सिन्धु	सं० मांडणजी पटेल	अहमदावाद	१९८३
भक्तमाल (गुजरात अनुवाद)	डाह्याभाई सांडेसरा	"	१९८७
भजन सागर	प्र० स० सा० व० का०	अहमदावाद	१९९८
भजन संग्रह	प्र० स० सा० व० का०	"	२०१७
भजनमाला	स० महन्त चरणदास	झगडिया	२०१३
मालण-एक अध्ययन	श्री के० का० शास्त्री	बड़ोदा	२०१४
भोजा भगतना चाबखा	स० जेठालाल त्रिवेदी	अहमदावाद	२०२१
महात्मा मस्तरामजी	वामनराव पटेल	"	२०१५
मेवणादादा	श्री दूलेराय काराणी	"	२०१६
मध्यकालीन गुजराती साहित्यमां विचार तत्व	डा० निपुण पंड्या	"	२०२८
मीरांबाईनां भजनो	(स० सा० व० का) हरसिद्ध० दिवेटिया	"	२०२५
मीरांबाई-एक मनन	डा० मंजुलाल मजमुदार	बड़ोदा	२०१७
मीरांबाई	श्री सुरेश दलाल		
रवि, माण तथा मोरार साहेबनी वाणी	सं० नानालाल व्यास	अहमदावाद	२०२३
रामसागर	श्री सुधांशु		
ललित काव्य संग्रह	श्री ललित	अहमदावाद	१९९३
संत तेजानन्द स्वामी	श्री माणेकलाल राणा	सूरत	२०२६
संत दादू	श्री अनवर आगेवान	अहमदावद	२०१६
संत रवि साहेव	श्री माणेकलाल राणा	वम्बई	२०२१
संत निर्वाण साहेब	"	"	२०१६
संत माधवदासजी	"	"	२०१५
संत प्यारेदासजी	श्री माणेकलाल राणा	"	२०१८
संत माण साहेब	"	"	२०१९
संत निर्वाण साहेव (वृहद्)	"	सूरत	२०२७
सोरठी संत	श्री झवेरचन्द मेघाणी	अहमदावाद	२०००
सोरठी स्त्री संत	श्री० कालीदास महाराज	"	२०२४
संत वाणी	सं० श्री पुस्तक मन्दिर	"	२०२५
संतोनी वाणी	सं० भगवानदास महाराज	बड़ोदा	१९७६
सतकेरी वाणी	श्री मकरन्द दवे	बड़ोदा	२०२६
सहजानन्द स्वामी	श्री किशोरलाल मशरूवाला	अहमदावाद	
साहित्य प्रवेशिका	श्री हिमलाल अंजारिया	"	२००८
सोरठना सिद्धो	श्री कालीदास महाराज	"	२०२३

सोरठना संत	श्री देवेन्द्रकुमार पण्डित	अहमदाबाद	२०२१
सांप्रत साहित्य	डा० धीरुभाई ठाकर	सूरत	२०२४
सोरठी संत वाणी	श्री झवेरचन्द मेघाणी	अहमदाबाद	२००३
हिन्दीना विकासमां गुजराती ओनो फालो	श्रीजनक दवे	"	२०१६

ENGLISH

An outline of the religious literature of India	Farkuhar
A history of Gujarat Vol. I & II (1957)	M. S. Comissariat
Cultural History of Gujarat	Dr. M. R. Majmudar
Gujarati Language and Literature	Dr. N. B. Divetia
Gujarat and its Literature	K. M. Munshi
Kabir and the Kabir-Panth	Westkot
Kabir-his biography	Dr. Mohansingh
Kabir and his followers	Dr. F. E. Keey
Mile stones in Gujarati Literature	K. M. Zaveri
Medievel Mysticism of India (1929)	Khiti Mohan Sen
Modern Religious Movements of India (1915)	J. N. Farquhar
Muslim Rule in India	V. D. Mahajan
Main Tendencies in Medieval Gujarati Literature	Dr. M. R. Majmudar
One hundred poems of Kabir	Rabindranath Tagore
Religious Life of India-Series	G. W. Brigs
Sectch of the religious Sects of Hindus (1946)	H. N. Wilson
Saints and Sages of India	Dr. Pritam singh
The Vaishnavas of Gujarat	Dr. N. A. Thuthi
The glimpases of the Medieval Indian culture	Yusuf Husain
The classical poets of Gujarat	G. M. Tripathi
The Nirgun School of Hindi Poetry	Dr. Barthwal
The Delhi Sultanate	Dr. K. M. Munshi
The ism in Medieval India	J. Esten Karpentar
The Sociology of Culture in India	Dr. K. M. Kapadia

The Glory that was Gurjar Desh	Dr. K. M. Munshi
The Encyclopedia of Religion & Ethics	James Hastings
Vaishnavism, Shaivism and other minor religious systems	Dr. R. G. Bhandarkar

हस्त-लिखित-ग्रंथ

ग्रंथ	प्राप्ति स्थान
साखी-ग्रंथ (कबीर-ज्ञानीजी)	लेखक
अनन्त-परिचई	लेखक
ज्ञानीजी की वाणी	रा० क० मन्दिर, पाछियापुरा
रामसार-ग्रंथ	राम पुस्तकालय, पुनियाद
दादू दयाल की वाणी	लेखक
विचारमाला	रा० क० मन्दिर, पाछियापुरा
ज्ञानतिलक	वही
भक्तमाल	लेखक
संत श्यामदास की वाणी	लेखक
अखो, दादू, ज्ञानी तथा कबीर के पद नं० २२१६	गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद
धनराज अख्यानां पदो-नं० १७०७	वही
अख्यान-ज्ञानी पद संग्रह नं० १०६६	गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद
जनज्ञानी-कबीर पद संग्रह	वही
दादू, जगजीवन, जगाजी की वाणी (सं० १८२०)	लेखक
कबीर-रोहीदास संवाद	लेखक

कोश

नालंदा विशाल शब्द-सागर	न्यू इम्पिरियल बुक डेपो, देहली	सं० २००७
हिन्दी-गुजराती कोश	नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद	सं० २००२
वृहद् अंग्रेजी-हिन्दी	कोश, ज्ञान मंडल, काशी	सं० २०१६

पत्र-पत्रिकाएं

हिन्दी

"कल्याण" गीता प्रेस, गोरखपुर, भक्तांक

वही	भक्त चरितांक	सं० १९५२
वही	संत अंक	सं० १९९४

वही	संतवाणी अंक सं० २०११
"पाटल"	संतविशेषांक सं० २०११
साहित्य संदेश	संत विशेषांक सं० २०१४
"गीता धर्म"–काशी	ई० स० १९४६, १९४८, १९४९, १९५०
"संजय"–नयी दिल्ली	कलियुग अंक, सन् १९४९
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक-२	सं० २०१५

गुजराती

"बुद्धि प्रकाश" पत्रिका	ई० स० १९२७, १९३२
"वसंत" पत्रिका	ई० स० १९३२, १९६५
"जनकल्याण" धूपसली अंक	ई० स० १९६६
"गुजरात" दीपोत्सवी अंक	सं० २००९
"भील संदेश", राजपीपला	ई० स० १९४९-१९५०
विश्वमंगल-भक्तांक	ई० स० १९४५
"गुजराती" दीपोत्सवी अंक	स० १९२३
"क्षत्रिय-मित्र" भावनगर	ई० स० १९६०, १९६१
"गुजरात टाइम्स" दीपोत्सवी अंक	सं० २००८, २००९, २०१३
"राणा प्रगति" दीपोत्सवी अंक	सं० २००६
"किस्मत" बम्बई	ई० स० १९५७, १९७०
"गीता" अहमदाबाद	ई० स० १९४१, ४२, ४३, ४५
"विश्व कल्याण" धांगध्रा	ई० स० १९५५, १९६६
"राजपूत" पत्रिका	पु० ३ तथा ४
"निजानन्द" शुभेच्छा अंक	ई० स० १९७०
"राजपूत बंधु" बड़ौदा	ई० स० १९४७, १९४८
"रविवार" (साप्ताहिक) दीपोत्सवी अंक	सं० २००९
"नवसंस्कार" खंभात दीपोत्सवी अंक	सं० २०२१

अँग्रेजी

एम० एस० युनि० जर्नल वोल्युम १२ नं० १ अप्रेल, १९६३

बम्बई गजटियर, वो० ९ भा० १-२

इम्पीरियल गजटियर आफ इन्डिया वो० २, तथा ६

संक्षेप-संकेत

क० ग्रं०	— कबीर ग्रन्थावली
उ० भा० सं० प०	— उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा
हि० का० नि० स०	— हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
हि० सा० इ०	— हिन्दी साहित्य का इतिहास
हि० सा० आ० इ०	— हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
रा० सं०	— रामानन्द सम्प्रदाय
हि० सा० गु० सं० क० दे०	— हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्त कवियों की देन
गु० सा० मा० सू० स्तं	— गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो
प० प० सं०	— परिचित पद-संग्रह
प्रा० का० मा०	— प्राचीन काव्य माला
बृ० का० दो०	— बृहद् काव्य दोहन
ना० प्र० प०	— नागरी प्रचारिणी पत्रिका
हि० वि० गु० फा०	— हिन्दीना विकासमां गुजरातीओनो फालो
उ० ध० प० र० मा०	— उदा धर्म पंचरत्न माला
रा० क० भ० भ० सं०	— राम कबीर भक्त भजन संग्रह
त्रि० ता० सं०	— त्रिकम तारण संग्रह
सं० नि० सा०	— सन्त निर्वाण साहेब
आ० गु० सं०	— आधुनिक गुजरातना सन्तो
र० भा० स० वा०	— रवि भाण सम्प्रदायनी वाणी
र० भा० मो० वा०	— रवि भाण मोरार साहेबनी वाणी
स० सा० व० का०	— सस्ता साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद
गु० सं० हि० वा० (अहमदाबाद)	— गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी
गु० सं० हि० वा० (विद्यानगर)	— गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी

———